

# महाप्रभु श्री गौराङ्ग



Education is not the amount of information that is put into your brain and runs riot there, undigested all your life. We must have life-building, man-making, charecter-making, assimilation of ideas. If you have assimilated five ideas and made them your life and charecter, you have more education than any man who has get by heart a whole library.

—Swami Vivekananda.

*With the best Compliments of*

**ORISSA CEMENT LIMITED**

**Rajgangpur (orissa)**



*Manufacturers of*

KONARK Brand Cement, Special Cement, Quality Refractories, Soda Ash and Amonium Chloride



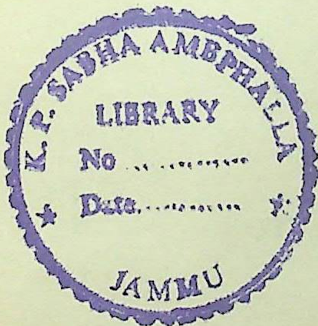
* श्रीश्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ जयतः *

178
Kashmiri Pandit Sabha
JAMMU

# महाप्रभु-श्रीगौरांग

[ स्मारिका ]

सर्वावतारवरेण्य प्रेमपुरुषोत्तम
भगवत् श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके
पंच-शताब्दी-आविर्भाव-महोत्सव पर प्रकाशित




सम्पादक

## श्रीश्यामदास

( श्रीश्यामलाल हकीम )

प्रकाशक

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल श्रीधाम-वृन्दावन



• प्रकाशक-- श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

• प्रथम संस्करण--१००० प्रतियाँ
श्रीगौरांग पूर्णिमा संवत् २०४१, गौरांगाब्द ४९९
दिनांक-७ मार्च, १९८५

• न्यौछावर-- ६०) साठ रुपये

• मुद्रक : श्रीहरिनाम प्रेस
हरिनाम पथ, श्रीवृन्दावन, फोन ४१५

श्रीहरिः

# ...सम्पादकीय

अपार करुणा-पारावार सर्वावतार-वरेण्य महावदान्य महा-भाव-रसराज स्वरूप श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेवके ही करुणालेशाभाससे प्रेरित होकर उन्हींकी अखिल-विश्व-पावन पंचशताब्दी-आविर्भाव-तिथि-आराधनाके सदुपलक्ष्यमें, उन्हींके विश्ववन्द्य, आपामर पतित-पावन-पादपद्मोंमें श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन, अपनी पुष्पाञ्जली रूपमें सहर्ष समर्पण करता है यह **'महाप्रभु-श्रीगौरांग-स्मारिका'**; जो पुनः प्रसादरूपमें विशुद्ध भक्तिपथ-साधक सुधी-पाठक-समाजके पक्षमें संसार-सिन्धु तारिका, सर्वसुख-विस्तारिका-रूप महामंगलमयी कारिका है।

परतत्त्व-निर्णायक प्रस्थानत्रयी भारतीय सनातन-वाङ्मयी संस्कृतिमें सच्चिदानन्दघन अद्वयज्ञानतत्त्व परब्रह्म स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके, अनन्तरस वैचित्री एवं अनन्तभाव-वैचित्रीके मूर्त्तरूप अनन्त भगवत्स्वरूपोंमें प्राकृत-ब्रह्माण्डमें अवतरित होनेका सुदृढ़ सिद्धान्त निर्णीत हुआ है। परब्रह्म स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, आतमाराम-आप्तकाम तथा स्वराट् या सर्वत्र सर्वतोभावेन अन्यनिरपेक्ष होकर भी, रस-स्वरूपमें निखिलैश्वर्य-माधुर्यरसामृतमूर्ति-होकर परमतम आस्वाद्य हैं और अलौकिक रसिक-चूड़ामणिरूपमें अशेष-विशेष रस-निर्यासके चरमतम आस्वादक हैं। वे ही अनन्त भगवत्-स्वरूपोंमें विभिन्न युगोंमें, सर्वलीलोपयोगी एकमात्र भूरिभाग्या भारत-भूमिके विभिन्न प्रदेशोंमें अपने चिन्मय धाम-परिकरों सहित अवतरित होकर विभिन्न रस-वैचित्रीका स्वयं आस्वादन करते हैं तथा साधु-भक्तजनोंका मन-विनोदन पूर्वक उन्हें रस-सुखसागरमें सराबोर करते हैं।

प्रधानतः एक विशिष्ट त्रेतायुगमें स्वयं-भगवान् अवधविहारी श्रीराघवेन्द्ररूपमें अवतरित होते हैं, भक्तजन-परित्राण एवं प्रीणनपूर्वक असुर-विनाश करते हैं। अपनेको एक निष्पक्ष न्याय-धर्म-प्रधान प्रजैकसंतोषी राजारूपमें ज्ञापित करते हैं और 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। उसी प्रकार और एक विशिष्ट द्वापर-युगमें वे स्वयं स्वरूपसे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णरूपसे व्रजमण्डलमें आत्मप्रकट करते हैं और नित्य-गोलोकमें सुदुर्लभ एवं असंभावित नित्य-परिकरोंके सर्वविध प्रेमरस-निर्यासका आस्वादनकर निजस्वरूपानन्द

तथा मानसानन्दकी परम चमत्कारमयी उपलब्धि करते हैं। मर्यादाकी सर्वविध दुर्जर श्रृंखलाओंको तोड़कर अनन्त चिन्मय मधुरात्मक लीला-विलासका हर संभव प्रकाश करते हैं; तभी वे यहां 'लीला-पुरुषोत्तम' कहे जाते हैं। किन्तु व्रजमें परिकरोंके सर्वविध प्रेमके केवल विषय (प्रेमास्पद) होनेके कारण वे केवल प्रेमका विषयात्मक-रस निर्यास ही आस्वादन कर पाते हैं, प्रेमका- आश्रयात्मक (प्रेमी-विषयक) रसनिर्यास-आस्वादन व्रजलीलामें उनके लिये सम्भवपर नहीं हो सकता; अर्थात् श्रीरासेश्वरी वृषभानुनन्दिनी, कृष्णवल्लभा श्रीराधाजी अपने अनिर्वचनीय कृष्ण-प्रेमकी आश्रयभूत होकर क्या-क्या, कैसा-कैसा आनन्द आस्वादन करती हैं, वह उनके पक्षमें एक पहेली बनकर रह जाता है। उस कृष्णप्रेमके आश्रयात्मक रसास्वादनके लिये वे लालायित ही रह जाते हैं।

अतएव उक्त द्वापर-विशेषके ठीक परवर्ती कलियुग विशेषमें (वर्तमान् कलिमें) स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सर्ववाञ्छापूर्तिकारी मादनाख्य-महाभावस्वरूपिणी कीर्तिकुमारी श्रीराधासे उनका भाव तथा कांति मांगकर अपनेको अन्तर-कृष्ण, बाहर राधास्वरूपमें श्रृंगारित करते हैं और श्रीनवद्वीप-धाममें कृष्णप्रेमाश्रयात्मक रस-निर्यासका आस्वादन करते हैं श्रीकृष्णचैतन्य स्वरूपसे अवतरित होकर। इस स्वरूपमें स्वयं श्रीकृष्णने राधा-भावविभावित होकर अपने ही (श्रीकृष्णके) श्रीनाम-रूप-गुण-माधुर्यका परिपूर्ण-पेटभरकर आस्वादन किया। राधा-भावके प्रवल तीखे झकझोरोंसे जब कृष्ण-माधुर्य-वैचित्री रससागर उच्छलित होता, तो उसकी कोटि-कोटि उत्तुङ्ग भावमयी रङ्ग-बिरङ्गी तरङ्गोंमें असंख्य आपामर जन-समाज प्रेमरङ्गमें सराबोर हो जाता। इनके अनुसन्धान विना इन प्रेमपुरुषोत्तमकी करुणा-कादम्बिनीने कण-कणको कृष्णनाम, कृष्णप्रेमभक्तिरससे अभिषिक्त कर कृतार्थ कर दिया।

अवश्य, परतत्त्वसीम इस असीम करुणा-विशिष्ट कलि-कुल-अनिष्टहारी नवद्वीपविहारीका सर्वैश्वर्य-माधुर्य-गर्भित स्वयं-भगवत्तत्व अपूर्व भक्तत्वकी महत्वपूर्ण भगवी-ओढ़नीमें ढका हुआ है। भक्तभाव विभावित-कृष्णाराधन, उच्चस्वरित संकीर्तन-नर्तन, अविरत शत-शताश्रुधाराकुलक्रन्दन, तृणादपि सुनीचत्व प्रदर्शन-गत वैष्णवसेवनादि प्रभृति तत्परतामय आत्मगोपनके घूँघटमें गोरी-भोरी नवकिशोरीके काले-कान्तको पहचानना सहज नहीं, अति कठिन व्यापार है। श्रीप्रह्लादजीने इस स्वरूपको **'छन्नः कलौ'** (भा० ७।९।३८)—कलिमें आच्छादित रूपमें अवतरित होने वाला पहले ही कह रखा है। श्रीमद्भागवत (१०।८।१३) में **'पीतः'**—पीतवर्ण, श्रुति (मुण्डक-३।१।३) में **'रुक्मवर्णं'** सोनेका वर्ण, महाभारत (श्रीविष्णुसहस्रनाम–७५-९२) में **'सुवर्ण वर्णो हेमांगो'**, तथा श्रीभागवतमें कलियुगके आराध्य निर्णय-प्रसंगमें **'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्'**—कृष्ण-कृष्ण नाम गान करनेवाले गौरवर्ण-आदि पदोंका स्पष्ट

उल्लेख होते हुए भी कलि-कलुषित स्पर्धा-संकीर्णता-कवलित-चित्त बुद्धिजीवी उन उल्लेखोंका रहस्य समझनेमें नितान्त असमर्थ हैं। जो सुमेधस हैं, सुबुद्धिमान हैं, अर्थात् जिन्होंने उनके चारु-चरणारविन्दके प्रसादलेशको प्राप्त किया है, वे ही उनके अनुपम भक्तत्वमें अनिर्वचनीय स्वयं-भगवत्तत्वका दर्शन प्राप्त कर सके हैं, कर रहे हैं। इनकी अपरूप स्वरूप-तत्त्व-माधुरीकी एक झलक पाकर फिर वे अद्वैतवीथी-पथिकाचार्य हों, चाहे सर्वविद्या-विशारद दिग्विजयी हों, अथवा सार्वभौम भट्टाचार्योपाधि-विभूषित ही क्यों न हों। कहे विना रह न सके—

पूर्णप्रेमरसामृताब्धिलहरी - लोलाङ्गगौरच्छटा-
कोटयाच्छादित विश्वमीश्वरविधिव्यासादिभिः संस्तुतम्।
दुर्लक्ष्यां श्रुतिकोटिभिः प्रकटयन्मूर्तिं जगन्मोहिनी-
माश्चर्यं लवणोदरोधसि परं ब्रह्म स्वयं नृत्यति ॥

——जिसकी विश्वनाथ-शिव, ब्रह्मा एवं व्यासदेवादि स्तुति करते हैं, तथा कोटि-श्रुतियोंसे भी जो तत्त्व अगोचर है, वह स्वयं परंब्रह्म परिपूर्ण-प्रेमरसामृत-सागरकी कोटि-कोटि लहरियोंसे चञ्चल-गौरांगछटासे आच्छादित होकर त्रिभुवन-मोहिनी मूर्ति धारणकर लवणसमुद्र-तटस्थित जगन्नाथपुरीमें नाच रहा है—अहो ! परम आश्चर्य ! महानाश्चर्य !!

एक बात और भी है, महाप्रभु श्रीगौरांगदेवने अपनी अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग लीलाओंका उपयुक्त क्षेत्र चुना मुख्यत: बंगाल और उड़ीसा प्रदेश। उनके समस्त लीला-परिकर उन प्रदेशोंमें आविर्भूत हुए। उन प्रदेशवासियोंने मुख्यत: उनके स्वरूप, उनकी निखिलैश्वर्य-माधुर्य भण्डित केलि-कलापोंका प्रत्यक्ष दर्शन किया। सब परिकर तथा प्रत्यक्षदर्शी थे बँगला-भाषी, किन्तु संस्कृत-भाषाके प्रकाण्ड-प्रतिभाशाली पण्डित-वरेण्य। उस समय व्याकरण-न्याय-दर्शन अलंकारादि शास्त्रीय उच्चविद्याका अद्वितीय केन्द्र था नवद्वीप। अत: श्रीगौरांगदेवके सम्बन्धमें, उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति-दर्शनको, भगवत् चरित्र, काव्य-पदावली, नाटक-अलंकार, यहां तक कि व्याकरण साहित्यकी जो भी सृष्टि हुई, सस्कृत-भाषामें होते हुए भी उसकी लिपि थी बँगला। अत: भारतके विभिन्न प्रान्तीय व्यक्ति संस्कृतके उत्कृष्ट पण्डित होकर भी उस साहित्य-भण्डारसे लाभान्वित न हो सके। दूसरी ओर बँगाली-विद्वद्समाजने कुछ प्रान्तीय संकीर्णतावश और कुछ हिन्दी आदि दूसरी भाषानभिज्ञतावश उस बहुमूल्य साहित्यको अन्यान्य भाषाओंमें रूपान्तरित करनेका कुछ भी प्रयास नहीं किया। इसी कारण गत दो-एक शतकों तक कलियुग-पावनावतार प्रेमपुरुषोत्तम, श्रीगौरांग, जिसने जीव-जगत्को उसके स्वरूपानुबन्धि साध्य-साधनका सर्वप्रथम सन्देश-परिचय दिया, जिस आराध्यदेवने चिरकाल पर्यन्त अनर्पित उन्नतोज्ज्वल रसमयी निज भक्तिसम्पत्तिको करुणापूर्वक पात्रापात्र विचार-रहित आपामर

प्रदान किया, जिस भगवत्स्वरूपने केवल कलि ही नहीं, सर्वयुगोंके परमधर्म श्रीनामसंकीर्तनका स्वयं आस्वादनकर, यात्रा-व्यपदेशसे देश-प्रदेशके कोने-कोनेमें प्रचार-प्रसारका सर्वशास्त्रसम्मत दृढ़ अवलम्बनीय सम्बल जीव-जगत्के लिये वितरण किया, वह **'बंगालियोंका ही भगवान्'** बनकर रह गया। देश-प्रान्त, काल-भाषाकी परिधियोंसे नितान्त परे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेवके विषयमें ऐसी असंगत धारणाओंने अनेक बुद्धिजीवी, साम्प्रदायिक संकीर्णताक्रान्त अन्त:करणोंमें घर कर लिया एवं वे इस स्वरूपके अनूप महत्वसे अपरिचितसे रहे आये।

आज जब उन सर्वकाल-करुणारसधारावर्षी श्रीमहाप्रभुकी असीम करुणा-प्रेरणासे उनके कृपा-शक्तिप्राप्त श्रीगौड़ीय-वैष्णव गोस्वामिवृन्दादि प्रणीत गौड़ीयवैष्णव-साहित्य हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती आदि भारतकी अन्य सब भाषाओंमें धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगा है, तब निष्पक्ष साम्प्रदायिकतासे ऊँचा उठा विद्वद्-समाज, इस परम करुणामय भगवत्-स्वरूपके अद्भुत अनूप महावदानका सावधान होकर अनुसन्धान करने लगा है और आनन्दोल्लाससे फूला नहीं समाता। यही कारण है कि आज श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेवका पंचशताब्दी आविर्भाव महोत्सव केवल गौड़ीय वैष्णव ही नहीं, रामानुज, निम्बार्क वल्लभ आदि समस्त--सम्प्रदायोंके वैष्णव सर्वत्र पूर्ण समारोहसे मना रहे हैं। जिन महानुभावोंको विपुल श्रीगौड़ीय-साहित्य अध्ययन करनेका सुअवसर किसी कारण प्राप्त नहीं हो सका है, उनको इस ग्रन्थरत्नमें एक जगह ही श्रीकृष्णचैतन्यदेवके सम्बन्धमें सर्वांगीण अध्ययन, सुविस्तृत परिचय प्राप्त हो सकता है—ऐसा मेरा विश्वास है।

भगवत्-तत्त्वज्ञानके लिये श्रीभगवान्के श्रीचरणनखचन्द्रकी किरण-ज्योतिकी ही अपेक्षाकृत अनिवार्यता है, फिर भी जो बुद्धिजीवी महानुभाव श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको, लीलावतार, अंशावतार, आवेशावतार, भक्त या महाभक्त मानकर अपने औदार्यका परिचय देते हैं, वे भी साधुबादके पात्र हैं। उनमें तत्व-ग्रहणकी इतनी ही योग्यता है।

महाप्रभु-श्रीगौरांग आविर्भाव-पंचशताब्दी प्रकाशन-शृंखलान्तर्गत प्रस्तुत स्मारिका ग्यारहवां संकलन है। श्रीमन्महाप्रभुके स्वरूप-चरित-दर्शन-उपासना-शिक्षा-उपदेश-मतादि प्रसंगोंका विस्तृत उल्लेख इस संकलनमें संग्रहीत हुआ है। भारतके प्रमुख विद्वान्, विश्ववन्द्य आचार्य-सन्तों-स्कालरोंने अपने-अपने सारगर्भित लेख-रचनाएं भेजकर इसको परमोपादेयतासे विभूषित किया है, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापनार्थ मेरे पास अक्षराभाव है एवं बुद्धि-अक्षमता भी। बे-नामके जो अनेक लेख हैं, वे श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यभागवत, गौड़ीय-वैष्णव अभिधान तथा गौड़ीय वैष्णव दर्शन आदि ग्रन्थोंके आधारपर

सम्पादक द्वारा ही संयोजित किये गये हैं। **'श्रेयस्तत्र हितं वाक्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम्'**— परमार्थ-शास्त्रके इस न्यायानुसार किसीके पक्षमें अप्रिय होते हुए भी हितवचनोंका उल्लेख करना ही इन लेखोंका उद्देश्य है, जो श्रीमहाप्रभु-गौरांगानुगत-गोस्वामि-वैष्णवाचार्योंका ही हार्द है।

इस महान-कार्यमें अनेक महानुभावोंका बहुमूल्य सहयोग मुझे अनेक प्रकारसे प्राप्त हुआ है। तन-मन-धन-वाणी द्वारा जैसा भी सहयोग जिन्होंने देकर मुझे आभार प्रदान किया है, मैं सबके प्रति करबद्ध-प्रणति पूर्वक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं। आर्थिक समस्या एवं ग्रंथ विस्तारभयसे अनेक लेख इसमें प्रकाशित नहीं हो सके, जिसके लिये मुझे अत्यन्त खेद है। उन लेखक महानुभावोंसे करबद्ध क्षमा याचना करता हूं और अब यथासम्भव उनको 'श्रीहरिनाम'-मासिकमें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करूंगा।

अनेक त्रुटि-विच्युतियां मुझमें सदा निवास करती हैं, जिनकी अभिव्यक्ति इस प्रयासमें भी अवश्य सामने आवेगी। सुधी-पाठकोंसे उनकी क्षमा याचना करनेमें भी मैं लज्जाका अनुभव करता हूं। करुणामय महाप्रभु श्रीगौरांगकी श्रीनाम-गुण-रूप-लीला-कथाकी स्मृति यदि इस स्मारिकासे मुझ दीन, साधन-भजनहीन जनके मलीन चित्तमें जागरूक हो उठे तो, मैं इसीमें अपने को कृतकृत्य मान लूंगा।

प्रभुपाद श्रीवीरचन्द्र गोस्वामी
आविर्भाव-तिथि
दि० २६-११-१९८४

वैष्णव-पदरजाभिलाषी
श्यामलाल हकीम



# श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल
# एक परिचय !

**स्थापना—**

बात है सन् १९३८ मार्चकी, जब हरिद्वारके कुम्भमेलेके परारूपमें असंख्य साधु समाज अपने दल-बलके साथ वृन्दावनमें यमुनाकी रेतीमें अपने खैमें डाले हुए था। भारतके समस्त प्रान्तोंसे दूर-दूरसे भक्तसमाज कुम्भमेला देखने आया था। एक जगह असंख्य साधु-सन्तोंका दर्शन, कथा-कीर्तन सदुपदेश फिर श्रीधामवृन्दावनमें, एक विरल-अवसर था भक्ति-साधकजनके लिये कृतार्थ होनेका।

पूज्य पिताजी—श्रीरघुनाथदासजी हकीम भी सपरिवार अपने तीनों भाईयोंके साथ वृन्दावन उन दिनों आये। पहले भी वे प्राय: वृन्दावन आते-जाते थे। इधर-उधर भाग-दौड़की बजाय भजनानन्दी अकिञ्चन महापुरुषोंके चरणोंमें बैठकर सत्संग—श्रीकृष्ण रूप-गुण-लीला-कथा श्रवण करनेकी तरफ उनकी अधिक रुचि रहती थी—यह उनका जन्मजात स्वभाव ही था।

पिताजी अपने बड़े भाई तथा अन्य साथियोंके साथ दाऊजीकी बगीचीमें पूज्यपाद सिद्ध पण्डित बाबा श्रीरामकृष्ण दासजीके दर्शन-करने गये। सब श्रीपण्डित बाबाजीको प्रणाम कर बैठ गये। बड़े भाई आगे बैठे थे और सब साथी भी, किन्तु दैन्यवश पिताजी सबसे पीछे बैठे। श्रीपण्डित बाबाजीने पूछा—कहाँसे आये हो सब ? कहाँ रहना है आपका ?। बड़े भाई हकीम ईश्वरदासजीने विनम्र होकर अपने शहर डेरा गाजीखान्का नाम लिया और कहा सिन्धुनदीके परलीपार पंजाब और बलोचिस्तानकी सीमापर वह बसा हुआ है।

श्रीपण्डित बाबाजीने पूछा—कुछ भजन-कीर्तन भी करते हो ? बड़े भाई कुछ बोलना ही चाहते थे कि बाबाने पिताजीकी तरफ अंगुलीका इशाराकर कहा—'मैं तुमसे पूछ रहा हूं। पिताजीने और तो कोई जवाब नहीं दिया, उच्चस्वरसे—

**'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।**
**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'**

इस महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ कर दिया। पण्डित बाबा सुनकर अति आनन्दित हुए और बोले—'तुम जाकर अपने शहरमें नामसंकीर्तनका प्रचार करो।' बड़े भाई हकीमजी कुछ कहना चाहते थे। बाबाने टोक कर कहा—'तुमसे नहीं, मैं उस (रघुनाथदास) से कह रहा हूं।'

सिद्ध बाबा द्वारा यही कृपादेश श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डलकी स्थापनाका सुखद बीज रोपण किया गया पूज्य पिताजीके हृदयमें। समय पाकर सब अपने देशमें लौट आये। श्रीपिताजीको बाबाका आदेश चैन नहीं लेने दे रहा था, चाहे नित्यप्रति एक दैनिक सत्संगमें भक्तिग्रन्थोंके पाठके अन्तमें पांच-सात बार महामन्त्रका सामूहिक रूपमें उच्चस्वरमें उच्चारण किया जाता था। इस सत्संगके प्रतिष्ठाता थे स्वामी श्रीइन्द्रभानुजी महाराज (श्रीललित-लड़ैतीजी)। थे तो वे पिताजीके चचेरे-भाई, किन्तु पिताजीका उनमें गुरु-भाव था। परम भागवत विरक्त आचरणशील सिद्ध सन्त थे वे। उनके प्रभावसे ही नगर डेरा गाजी खान् वैष्णवाचार-प्रधान था। श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे पिताजी ही उनके नित्यलीला-प्रवेशके बाद उस सत्संगके परिचालक थे। किन्तु श्रीनामसंकीर्तनका यथेष्ठ एवं श्रीमहाप्रभु-प्रदर्शित रूप उस समय उस प्रदेशमें कहीं भी प्रचलित न था।

**श्रीनामसंकीर्तन-आरम्भ—**

श्रीमन्महाप्रभु प्रेरणा पाकर डेरावाल भक्त श्रीनेभराजजी, जो उन दिनों फिरोजपुरमें एक कालेजमें प्रोफेसर थे, किसी कार्यवश डेरामें आये और उन्होंने श्रीसनातन धर्म सभा भवनमें अपना संकीर्त्तन-कार्यक्रम रखा। असंख्य नर-नारियोंके समक्ष उन्होंने खड़ताल हाथोंमें लेकर नृत्यपूर्वक श्रीनामसंकीर्तन किया-कराया। वह एक ऐसा प्रथम आदर्श था कि उससे स के दिलसे लाज-संकोच निकल भागे। फिर तो नित्यप्रति प्रातः काल सभा-भवनमें पूज्य पिताजी, तथा अन्य कई एक महानुभावों द्वारा श्रीनामसंकीर्तनका कार्यक्रम आरम्भ हो गया। उन संकीर्तन-प्रेमी महानुभावोंमें रायसाहब ईश्वरदास, पं० जगन्नाथ शास्त्री, गोस्वामी सोहनलाल, श्रीरामचन्द्र राजपाल, हकीम टेकचन्द्र, हकीम जमनलाल, भाई तेजभान, श्रीउत्तमचन्द्र, श्रीभगवानदास, श्रीगोविन्दलाल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नित्यप्रति असंख्य नर-नारी तथा भावुक संगीतज्ञ-वादक नियमपूर्वक श्रीनामसंकीर्तनमें सम्मिलित होने लगे। समय-समयपर नामसङ्कीर्तनकर्ता बाहरसे भी पधारकर उस कार्यक्रमको सुशोभित एवं आनन्दमय बनाने लगे।

सन् १९४३ में श्रीहरिनामसंकीर्तन मण्डलकी एक समिति ही स्वतः-गठित हो गई, जिसमें पदाधिकारों, सदस्याधिकारोंकी गन्दगी न थी; क्योंकि

पिताजी जानते थे कि संस्थापकों द्वारा ही चुने गये पदाधिकारी, चाहे वे कुछ भी सहयोग न दें, प्राय: संस्थाके पनप जानेपर संस्थाके संस्थापकका विरोधकर संस्थाके सर्वस्वको निगलनेकी चेष्टाएं करने लगते हैं, केवल अपनी स्वार्थ-पूर्त्तिके लिये, संस्थाके उद्देश्य पूर्तिके लिये नहीं। अत: एकमात्र नियमपूर्वक श्रीनामसङ्कीर्तन रसास्वादन करना ही समितिके सदस्योंका मुख्य कर्तव्य था। फिर भी सब सदस्य पिताजीको मण्डल-संस्थापकोचित सम्मान देते थे। किन्तु वे इस सङ्कीर्तनारम्भको श्रीमन्महाप्रभुका नगरवासियोंपर परम अनुग्रह मानते थे। अनेक प्रेमी भक्तोंके एक सूत्रमें बँधनेपर प्रति एकादशी, तथा जन्माष्टमी-रामनवमी आदि प्रमुख पर्वोंपर श्रीनामसङ्कीर्तन कार्यक्रमके विशेष आयोजन सम्पन्न होने लगे। उससे नगरके कोने-कोनेमें श्रीनामसङ्कीर्तन एक मधुर आयोजन, सर्वसाधन श्रेष्ठरूपमें प्रकाशित हो उठा। प्रभुप्रेरणासे श्रीसङ्कीर्त्तन कार्यक्रम फिर एकान्त स्वतन्त्र स्थानपर होने लगा।

**वार्षिक-सम्मेलन—**

**प्रथम श्रीहरिनाम संकीर्तन सम्मेलन**—सन् १९४४ में अतीव उत्साहसे मनाया गया। उसमें प्रमुख प्रवक्ता थे आचार्य श्रीगङ्गाशरण 'शील' (चन्दौसी) एवं सङ्कीर्तन-सङ्गीतज्ञ थे पं० श्रीकेशवानन्दजी (रुड़की)। श्रीहरिसभा, लाहौर तथा श्रीप्रह्लाद सङ्कीर्तन मण्डल, मुलतानके अनेक सदस्योंने उसमें भाग लेकर आयोजनको सफल बनाया। जिलेमें अपनी-तरहका यह पहला सम्मेलन था। अनेक पड़ौसी गांवोंसे भक्तोंने आकर भाग लिया, और उसके फलस्वरूप अनेक गांवोंमें भी श्रीनामसङ्कीर्तनका प्रचलन आरम्भ हो गया।

**द्वितीय सम्मेलन** सन् १९४५ में बड़े-पैमानेपर मनाया गया, उसमें अध्यक्ष-पद विभूषित किया श्रीमन्माध्व-गौड़ेश्वराचार्य गो० श्रीविजयकृष्णजी महाराजने (वृन्दावन), श्रीकपीन्द्रजी रामायणी (हाथरस), श्रीमनहरलाल संगीताचार्य (बहावलपुर), गो० श्रीराधारमणजी, रंगीली सखी श्रीकिशोरीलालजी (बरसाना) तथा प्रो० रामानन्द शर्मा संगीताचार्य (मुजफ्फरनगर) तथा अनेक सङ्कीर्तन मण्डलोंने सम्मिलित होकर श्रीभगवन्नामसङ्कीर्तन रससिन्धुमें सारे जनपदको आप्लावित कर दिया।

**तृतीय सम्मेलन** सन् १९४६ में आयोजित हुआ, जिसमें अध्यक्षताको विभूषित किया गो० श्रीविन्दुजी महाराज रामायणी (वृन्दावन) ने। रावलपिण्डीसे अनेक सङ्कीर्तन-प्रेमी भक्त उनके साथ पधारे। श्रीनवीनचन्द्र मिश्र शास्त्री (वृन्दावन) और पूर्ववत् सब सङ्कीर्तन मण्डलोंने पधारकर उत्सवको समारोह पूर्वक सम्पन्नता प्रदान की।

हर सम्मेलनके चार दिवसीय विशाल कार्यक्रमके बाद विराट् शोभा-यात्रा, नगर-कीर्तनका विशिष्ट आयोजन होता था। चारों दिन आगंतुकोंके आवास-प्रसादकी व्यवस्था मण्डल करता था। विशेषता यह भी थी कि पहले सम्मेलनको छोड़कर, अन्य सम्मेलनोंमें एक पैसा भी संकीर्तनमें नियमित भाग लेने वाले सदस्योंके अतिरिक्त किसीसे भी ग्रहण नहीं किया जाता रहा।

चतुर्थ सम्मेलन—सितम्बर १९४७ में मनाया जाना था और प्रवक्तादि आमन्त्रित किये जा चुके थे, किन्तु भारतके विभाजनके समाचारोंने तथा उस विभाजनसे घटित होने वाली भावी दुर्घटनाओंकी आशंकाओं या सम्भवानाओंने नगर-वासियोंके दिल दहला दिये। सब हिन्दू अपने जान-माल-आबरूको वहां नितान्त असुरक्षित जानकर महान् चिन्तित हो उठे। वहां हिन्दु थे केवल ७% गैर-हिन्दु ९३%। नगरकी स्थिति यह कि एक तरफ बलोचिस्तान-फ्रौंटियर और दूसरी ओर १० मील-पाटका सिंधुनद--संसारका अन्धा दरिया। स्टीमर द्वारा पार होकर ३० मीलकी दूरीपर रेलवे स्टेशन था और फिर भी सारे पाकिस्तानसे गुजर कर भारतमें पांव रखना सम्भव था।

'शहरको छोड़कर अभीसे भारत निकल चलना चाहिये, बहु-बेटियों, धन-मालको अभीसे भारतमें पहुंचा देना चाहिये'—इस प्रकारके अनेक मत-विचार भयभीत हृदयोंमें उभर उठे। किन्तु उस समय तक कहीं भी कोई अप्रिय घटना सारे पंजाबमें सुननेको न मिली थी। अतः केवल आशंका और अनुमानके आधार पर घर-बार-व्यापार छोड़कर, परिवारको साथ लेकर किसी अनिश्चित स्थानकी ओर भाग खड़ा होना सहज बात न थी, न बुद्धिमत्ता, बल्कि ठण्डे दूधको फूंक मारना लगता था।

नित्यप्रति प्रातः-कालीय संकीर्तनमें तथा सन्ध्याकालीय सत्संगमें लगभग दो-तीन सौ नर-नारी, शहरके सम्भ्रान्त लोग, वयोवृद्ध पैन्शनर सम्मिलित तो होते-ही थे। उन सबका एक दृढ़ संगठन सूत्रमें बँधा रहना स्वाभाविक था। प्रातः-सन्ध्या उक्त परिस्थितिपर सब ही परस्पर चर्चा करते, विचार-परामर्श करते। लम्बी तर्क-वितर्कके बाद भी किसी निर्णयपर पहुंचना किसीके बसकी बात न थी।

भावी सम्भावित भयाक्रान्त आस्तिक-जनसमूहके सामने संकीर्तन मण्डलने एक पारमार्थिक हल रखा। वह था कलियुग-सर्वभयहारी श्रीहरिनामका आश्रय ग्रहणपूर्वक भगवत् शरणागति। यह था आखिरी और शास्त्र-सम्मत सर्व-विपद-दलनकारी सुनिश्चित समाधान उस दुरूह ऊहा-पोहके साम्राज्यमें।

**सात-दिवस व्यापी अखण्ड श्रीनामसंकीर्तन—**

यह निश्चय किया गया कि पहले तीन दिनका अखण्ड श्रीनामसंकीर्तन आयोजन किया जाय, सफलताका लक्षण न दीखने पर उसे सात दिन तक बढ़ाया जाये, नामयज्ञकी सफलताका लक्षण या कसौटी यह निर्धारित की गई कि 'यदि तीन दिनोंमें अथवा फिर सात दिनोंमें नगरमें वर्षा हो जाये तो यज्ञ सफल है। फिर उसके बाद दृढ़ निश्चय पूर्वक यहां रहना होगा, इस विश्वासके साथ कि श्रीभगवान् हम लोगोंकी यहां ही रक्षा करेंगे। घर-बार छोड़कर कहीं नहीं भागना होगा। यदि वर्षा नहीं होती, तो फिर समझ लेना चाहिये कि हम यहां किसी भी विपत्तिमें पड़ सकते हैं।'

वर्षा की शर्त, इसलिये कि हर यज्ञकी सफलता का यह शास्त्रीय लक्षण है। फिर उन दिनों ३ वर्षसे नगर डेरा गाजीखान्‌में कहीं भी वर्षा न हुई थी। अनेक दुर्गा-यज्ञ, ब्रह्मभोज, सहस्र घटादि आयोजन इस सम्बन्धमें व्यक्तिगत रूपमें एवं सामूहिक रूपमें किये जा चुके थे, किन्तु पानीकी एक बूंद न पड़ी थी।

मण्डलके तत्त्वावधानमें संकीर्तन मण्डपमें तीन दिवसीय अखण्ड संकीर्तन आयोजन आरम्भ हुआ—

**'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।'**

इस नाम-मन्त्रकी ध्वनि गूंजने लगी। बात फैल गई इस आयोजनके भीतरी उद्देश्यकी। फिर तो क्या सनातन-धर्मी, वैष्णव-अवैष्णव, क्या आर्यसमाजी और क्या सिख–राधास्वामीमतावलम्वी–सब ही उस नामसंकीर्तनमें अधिकसे अधिक सख्यामें भाग लेने लगे, देखने लगे सफलताकी कसौटी वर्षा को। हर समय पिण्डाल नर-नारियोंकी भीड़से खचाखच भरा रहने लगा। भयभीत दिलोंकी पुकार थी, इसीमें भगवन्नामकी जीत-हार थी, किन्तु उत्कट इन्तजार थी सबको वर्षाधार की। श्रीनामाभासकी अद्‌भुत कृपा प्रत्यक्ष हो उठी, जब तीसरे ही दिन मध्याह्नोत्तर सिंहासनके ऊपर स्थित श्रीभगवान् मुरलीमनोहरके एक विशाल चित्रमें स्पन्दन अनेक भक्तोंने अनुभव किया। अनेकोंने उस श्रीविग्रहको एक ढोलक-बजाते हुए वासुदेव नामक बालक (१०-१२ वर्षीय) के सिरपर हाथ रखे खड़ा देखा। ऐसा होनेपर समुद्रमें ज्वार-भाटेकी तरह सारा पिण्डाल उछल पड़ा। सब स्त्री-पुरुष आवेशमें खड़े हो गये और नृत्यपूर्वक 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे' नामकी ध्वनिने आकाश-भेदी तुमुल स्वर पकड़ा। आकाशका भेदन होते ही मूसलाधार वर्षा रुक न सकी। चारों ओर पानी ही पानी था। किन्तु सच मानिये, संकीर्तनकर्ता तो नामामृत सिन्धुमें डूब रहे थे।

अनेक देर बाद बाह्यज्ञान हुआ। आनन्दकी लहर दौड़ गई समस्त नगरमें। तीन वर्षकी सुतप्त-तृषित धरणी तो शीतल हुई ही, कृष्णनाम-करुणा-कादम्बिनीने अपना अचिन्त्य-महिम छत्र प्रसारित कर किं-कर्तव्य-विमूढ़, निराश्रय भयभीत नगर वासियोंको अभय-वरदान प्रदान कर निर्भय कर दिया। चौथे दिन ही महान् हवन-यज्ञका आयोजन हुआ कोई विरला अभागी नगरवासी होगा, जिसने उसकी पूर्ण आहुतीमें भाग न लिया हो, वरन् सवेरेसे ही सबको हाथोंमें फूलमाला-नारियल-श्रीफल लिये पिण्डालकी ओर भागते देखा गया। अन्तमें ब्राह्मण-वैष्णव सेवा हुई तथा प्रसाद वितरण हुआ। उस दिनके बाद किसी नगर निवासीने आशंकित-विपत्तिकी चर्चा न की। दृढ़ निश्चय पूर्वक भगवत्-चरणारविन्दमें सबने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया; नित्य संकीर्तनमें जुट गये।

विभाजन हो गया। उसके बाद पंजाबमें क्या हुआ, क्या न हुआ, किसीसे छिपा नहीं। राज-विप्लव-कालीन प्राचीन इतिहास-कलंकितकारी नृशंस हिंसात्याचार रूपधारी परम्पराने जैसे सारे पंजाबमें नङ्गा नृत्य किया, उसकी कराल-पद ठोकरसे डेरागाजीखान् जिला भी बच न सका। एक ही दिन आधी रातके समय आस-पासके समस्त गांव-बस्तियोंमें आगजनी, लूट-खसूट, हिंसादि भड़क उठी और जान-मालकी अनेक क्षति हुई। शासकोंने हिन्दु सेना बुलाकर स्थितिको काबू किया और सब गांवोंके हिन्दु-लोग शहरमें पहुंचा दिये गये।

आप पूछेंगे कि शहर डेरागाजीखान्का क्या रहा?—आश्चर्य करेंगे यह जानकर कि शहर डेरागाजीखान्का बाल भी बांका न हुआ। किसी प्रकार की एक भी अप्रिय घटना न घटी। उस समय डी. एम एवं सी. एम. तथा एस. पी. ये तीनों अंग्रेज थे, जैसा कि सदा से वहां इन पदोंपर अंग्रेज लोग ही नियुक्त रहते थे। थानेदार एक मुसलमान था। उसकी छाती पर भगवान् श्रीगोपीनाथ ( डेरागाजीखान्में प्रतिष्ठित श्रीविग्रह ) नृसिंह रूपधर पहले ही दिन चढ़कर स्वप्नमें, बोले 'यदि एक भी हिन्दुकी हत्या हुई तो तुम्हें सपरिवार जिन्दा खा जाऊंगा।' यह बात बहुत ही स्पष्ट रूपमें मियांजी कहते 'कोई काला-काला देव मुझे रोज रात्रिको इस प्रकार कहता है।' इसके फलस्वरूप मियांजीने एवं अंग्रेज अधिकारियोंने हिन्दुओंकी जी-जानसे रक्षाकी। कितने आतंकवादी जेलमें भर दिये और वैसी कोई अप्रिय चेष्टा करने वाले कितने यवनोंको शासकोंने गोलियोंसे उड़ा दिया।

वास्तवमें यह आंखों देखी घटनाएं हैं, श्रीनाम-महिमा सम्बन्धित होनेसे इनका उल्लेख अप्रासंगिक न माना जाये। उन दिनों धारा १४४, ब्लैक आउट, कर्फ्यू समय-समयपर लगते रहे, किन्तु विश्वास करिये कि एक दिन भी सन्ध्याकालीन सत्संग बन्द न हुआ और न ही प्रातः कालीन श्रीनामसंकीर्तन। नगरवासियोंमें दृढ़ विश्वास और साहस था कि हमारा अनिष्ट नहीं हो सकता।

उधर मिलिट्री-पुलिस भी जानती थी कि ये एकमात्र धार्मिक समाज है और केवल भजन-निष्ठ है। कोई रोक-टोक इन कार्यक्रमों पर न थी। अन्तमें नवम्बरमें मिलिट्रीके पूर्ण संरक्षणमें डेरा निवासियोंको तथा वहां एकत्रित गांव निवासियोंको सकुशल भारत पहुंचा दिया गया। उस समय तक पंजाबमें भी खूनकी होली समाप्त हो चुकी थी। परम सत्य है कि डेरा वालोंने रास्तेमें भी किसी अप्रिय घटनाका सामना नहीं किया। और न आँखोंसे देखी। अस्तु।

**भक्ति साहित्य-प्रकाशन—**

पूज्य पिताजी सपरिवार अपनी चिर-व्रज-वासेच्छाके कारण सीधे वृन्दावन आकर बसे। नामसंकीर्तनके विना उनके प्राण छटपटाते रहते। फलस्वरूप गोविन्द बागमें निवास स्थानके निकट एक मंदिरमें नित्यप्रति संकीर्तन आरम्भ किया गया। तीन वर्षके बाद सेवाकुंजके किरायेके मकानपर नित्य संकीर्तन होता रहा। प्रभु-इच्छासे फिर वह दैनिक संकीर्तन बागबुन्देलामें निजी निवास स्थानपर आरम्भ हुआ, जो अब तक नित्य होता है। पूज्य पिताजीने सन् १९५५ में व्रजरज प्राप्त कर ली थी।

चतुर्थ सम्मेलनार्थ एकत्रित धनराशि (११३७ रु० छः आने) मंत्री होनेके नाते लेखकके पास थे। बाबा श्रीबलरामदासजी (उड़िया) की प्रेरणासे श्रीचैतन्य चरितामृतकी भूमिका, जो बंगला भाषामें डा० राधागोविन्दनाथने सम्पादन की, उसका आंशिक अनुवाद हिन्दीमें सम्पन्न किया गया और उसे **'श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तरत्न संग्रह'** नामसे उसी धनराशिसे प्रकाशित कराया गया सन् १९५३ में। कुछ प्रतियोंको चतुर्थ सम्मेलनके रूपमें मण्डलके सदस्योंमें वितरण कर दिया गया और शेषकी प्रतियोंको विक्रीके लिये रखा गया—यह था मण्डलके साहित्य प्रकाशनका सूत्रपात। उस विक्रीधनसे अनेक भक्ति-साहित्य, विशेषत: गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदाय साहित्य, जो बंगला भाषा और संस्कृतमें भी बंगला लिपि तक सीमित था, हिन्दी लिपिमें मूल, अनुवाद तथा सरल टीकाओं सहित प्रकाशित किया जाने लगा। श्रीचैतन्य चरितामृत मध्यलीलाके प्रकाशन हित महावदान्य सेठ श्रीजयदयालजी डालमियाने कागज प्रदान कर प्रकाशन स्तम्भको सुदृढ़ कर दिया। फिर भक्त श्रीविश्वम्भर दयालजीने श्रीगोपालचम्पू (पूर्वचम्पू) के प्रकाशनार्थ धनराशि मण्डलको प्रदानकर प्रकाशन-फण्डको पुष्ट करनेमें सक्रिय सहयोग दिया। अब तक छोटे-बड़े ६० ग्रन्थोंका प्रकाशन मण्डल द्वारा किया जा चुका है, जिनकी सूची आप अन्तिम पृष्ठोंपर देखगे। अनेक ग्रन्थोंके दूसरे-तीसरे संस्करण भी हो चुके हैं। अनेक उपादेय ग्रन्थ प्रेसमें हैं अनेक सम्पादित किये रखे हैं एवं कई एकोंके प्रथम संस्करण समाप्त हो चुके हैं। मण्डल उनके पुन: प्रकाशनके लिए कृत-संकल्प है। प्रभु कृपापर इस सब कार्यकी पूर्त्ति निर्भर करती है।

**श्रीहरिनाम संकीर्तन सम्मेलन (वृन्दावनमें)—**

साहित्य-प्रकाशन तथा श्रीमन्महाप्रभु प्रचारित प्रेमधर्म तथा उसके मुख्यतम साधन श्रीनाम प्रचारके लिये यहां पुन: एक समितिका गठन किया गया। मण्डलकी उद्देश्य पूर्त्तिके सन्दर्भमें वृन्दावनमें सन् १९६५ में श्रीगौरांग जयन्तीके उपलक्ष्यमें प्रथम, किन्तु मंडलका चतुर्थ सम्मेलन बसन्तीबाई धर्मशालामें आयोजित किया गया, जिसके आयोजनमें श्रीनन्दलालजी विरमानी, श्रीतेजभान नांज्ञाका स्तुत्य सहयोग आर्थिक दिशामें रहा। वृन्दावनमें वह अपने स्तरका पहला सम्मेलन था। उस समय वृन्दावनमें कहीं भी कोई श्रीहरिनामसंकीर्तन सम्मेलन या कैसा भी कोई सम्मेलन न होता था। समस्त सम्प्रदायोंके आचार्य, गोस्वामी-विद्वान् प्रवक्ताओं, रासमण्डलियोंके पूर्ण सहयोगसे इस प्रकारके कुल बीस सम्मेलन मनाये गये। प्रात: श्रीनाम संकीर्तन, श्रीरासलीला, मध्याह्नोत्तर प्रवचन-सभा, तथा रात्रिमें श्रीगौरांगलीला, भक्त-चरित्र नाटक तथा अन्तिम चौथे दिन विराट शोभा-यात्रा, नगर-सङ्कीर्तनके साथ सब सम्मेलन सम्पन्न हुए। अन्तके कुछ सम्मेलनोंमें शोभा-यात्रा स्थगित रखनी पड़ी।

वृन्दावनमें अनेक स्थलोंपर व्यापारिक दृष्टिसे सम्मेलनों एवं रासलीलाओंका प्रचलन देखकर मण्डलको सम्मेलनका आयोजन सन् १९८० से बन्द करनेमें ही भलाई दीखी। उसकी अपेक्षा साहित्य-प्रकाशन द्वारा मण्डलकी उद्देश्य-पूर्त्तिको अधिक श्रेयस्कर माना गया।

**श्रीहरिनाम-पत्रिका—**

श्रीमन्महाप्रभु-प्रचारित धर्म-सिद्धान्तोंको घर-घर पहुंचानेके लिये सन् १९७० में श्रीविजयदशमीके दिनसे 'श्रीहरिनाम' त्रैमासिक पत्रिकाका प्रकाशन-प्रसारण मण्डलकी ओरसे आरम्भ किया गया। सदस्योंके बार-बार आग्रह एवं लोकप्रियताके कारण सन् १९७७ से 'श्रीहरिनाम' को मासिक कर दिया गया। 'श्रीहरिनाम' में अनेक अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध भक्तिग्रन्थ क्रमश: प्रकाशित किये गये और अब भी हो रहे हैं। श्रीमहाप्रभु कृपासे आज तक पन्द्रह वर्षोंमें अबाध्य रूपसे 'श्रीहरिनाम' प्रकाशित होता है और हर मासकी १५-१६-१७ तिथियोंको सदस्योंको निश्चितरूपसे पोस्ट कर दिया जाता है। अनेक साहित्य-प्रिय पाठक 'श्रीहरिनाभ' के आजीवन सदस्य हैं। आजीवन सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि होनेसे ही पत्र स्वावलम्बी हो सकता है, किन्तु साधारण तथा आजीवन सदस्योंकी सन्तोषजनक संखया न होनेसे अभी तक पत्र स्वावलम्बी नहीं हो पा रहा है, विशेषत: जब कागज तथा मुद्रणमें आशातीत मंहगाई बढ़ती जा रही है।

**श्रीहरिनाम-कल्पतरु—**

श्रीमन्महाप्रभु गौरांग जयन्ती उपलक्ष्यमें मण्डलकी ओरसे

'श्रीहरिनाम-कल्पतरु' नामक पुस्तिका क्रमबद्ध पुष्पोंके रूपमें सन् १९६६ से प्रकाशित की जाने लगी। लगभग ५०० प्रतियाँ हर वार्षिक सम्मेलनमें अंतिम दिन पिण्डालमें निःशुल्क वितरणकी जाती रहीं। अब 'श्रीहरिनाम' मासिकके सदस्योंको उसी अवसरपर पत्रके साथ निःशुल्क भेजी जाती हैं। अब तक उसके १९ पुष्प प्रकाशित-प्रसारित किए जा चुके हैं। आकारमें ३२-३६ पृष्ठ होते हैं, किन्तु अति उपादेय विषयोंको, विशेषत: गौड़ीय वैष्णव दर्शनको क्रमबद्ध सरल-सरस-भाषामें प्रकाशित किया जा रहा है इन पुष्पोंमें। ये समस्त पुष्प पुस्तक रूपमें भी विक्री-हेतु, कार्यालयमें उपलब्ध रहते हैं। ये समस्त पुष्प पी. एच-डी. करने वाले स्कालरोंके लिये अति उपयोगी माने जाने लगे हैं।

**सत्संग—**

वृन्दावनमें हिन्दी-भाषामें गौड़ीय-ग्रन्थोंके पाठ-श्रवण आदिका चिर अभाव अनुभव किया जाता रहा है, जो अब भी है। इस दिशामें भी मण्डलने यथेष्ट प्रयास किया, किन्तु कलि-प्रभावसे वह वृहत् योजना साकार न हो सकी। अब तक भी कोई स्थान ऐसा नहीं है जहां गौड़ीय गोस्वामी-ग्रन्थोंका पाठ हिन्दी भाषामें नियम पूर्वक होता हो और आगंतुक अथवा स्थायी हिन्दी-भाषी गौड़ीय वैष्णव उनका श्रवण लाभ प्राप्त कर सकें।

अन्तमें यदि मण्डलके इस समस्त कार्यकलापके सहयोगी महानुभावोंका मैं धन्यवाद न करूं तो मैं समझता हूं जहां मण्डलके एक तुच्छ सेवकके नाते मेरी अकृतज्ञता ही सामने आयेगी वहां मण्डलका परिचय भी अधूरा सा रह जायेगा। अनेक महानुभावोंने तन से, मन से एवं धन से, स्थानसे, सम्मेलन सामग्रीसे सदा मण्डलको सहयोग प्रदान किया, तभी तो मण्डल अपने लक्ष्यकी ओर अभी तक आगे बढ़ सका है और बढ़ रहा है। अनेक विशिष्ट महानुभाव ऐसे भी हैं, जो वैष्णवोचित दैन्यवश अपना नाम भी प्रकाशमें नहीं लाना चाहते, फिर भी मण्डलके उन मूल आधारभूत महानुभावोंका संक्षिप्त परिचय मैं अगले **'आभार'** पृष्ठपर देने की धृष्ठता कर रहा हूं।

विनीत—

[signature]

वृन्दावन



# आभार

**१. सेठ श्रीजयदयालजी डालमिया**—आप पहले महानुभाव हैं, जिन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला, (प्रथम संस्करण) के लिये कागजका यथेष्ट सहयोग देकर मण्डलके प्रकाशन-स्तम्भका सुदृढ़ शिला-न्यास किया। अब भी हर कार्यमें आपका परम स्तुत्य सहयोग मण्डलको आभार प्रदान करता है।

**२. श्रीरामेश्वरदासजी टाटीवाला**—श्रीगौड़ीय वैष्णव-साहित्य तथा 'श्रीहरिनाम' के जयपुरमें प्रचार-प्रसारका समस्त श्रेय इनको ही है। मण्डलके आरम्भसे हो परम हितैषी गौरनिष्ठ-भक्त हैं आप।

**३. श्रीचन्द्रहंसजी पाठक**—गत कई वर्षोंसे मण्डलके सर्वांगीण उत्थानमें आपका बहुत बड़ा हाथ है। गौड़ीय-साहित्यके महत्व-ज्ञाता परम विद्वान् होनेसे आपने अनेक महानुभावोंको 'श्रीहरिनाम' का आजीवन-सदस्य बनाया है, गोस्वामि-ग्रन्थोंके अध्ययनकी अनेकोंको प्रेरणा दी है।

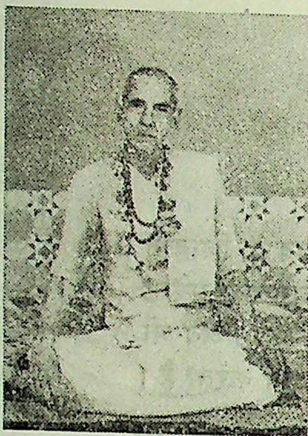
**४. श्रीशुभकरणजी धरणीधरका**—मण्डलके उद्देश्य पूर्ति-साधन-सम्पादन करनेमें आपका क्रियात्मक सहयोग है। 'श्रीहरिनाम' को स्वावलम्बी बनानेके लिये आपका स्तुत्य प्रयास है। पिछले ३ वर्षोंसे आपने विज्ञापन रूपमें आर्थिक सहयोग प्रदानकर मण्डलको आभारी किया है।

डा० श्रीकृष्णविहारीजी शास्त्री, पं० श्रीगोपालजी व्यास, श्रीजीवन भाईजी आध्यात्मिक कवि, श्री के. एन. धिंगरा, श्री ए. के. भरद्वाज, श्रीमदनलालजी अग्रवाल, श्रीगौरगोपाल मानसिंहका, श्रीरामसिंहजी, श्रीनियामतरामजी, श्रीसत्य नारायणजी अग्रवाल आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके द्वारा मण्डलको समय-समयपर विभिन्न रूपसे सहयोग प्राप्त होता रहा है और हो रहा है।

हर प्रकारके सौहार्द, तन-मन-धन अथवा किसी भी प्रकारसे मण्डलके सहयोगी महानुभावोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनके साथ—

विनीत-निवेदक
**श्यामलाल हकीम**





श्रीमन्नित्यानन्द-वंशावतंस प्रभुपाद
श्रीअपूर्वानन्दजी महाराज
का

# शुभाशिष्

सर्वानन्दकर परम दयालमूर्ति श्रीमन्नित्यानन्द-प्रभुपादके अभिन्न-स्वरूप परम करुणामय कलियुग-पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके पंचशताब्दी-आविर्भाव-महोत्सवोपलक्ष्यमें प्रकाशन-श्रृंखलान्तर्गत श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन द्वारा प्रकाशित '**महाप्रभु श्रीगौरांग**' ग्रन्थरत्नको देखकर मुझे अतिशय हर्ष हुआ है।

श्रीमन्महाप्रभुके अनुपम-स्वरूप, अलौकिक चरित्र, करुणावैशिष्ट्य, विशुद्ध भक्ति-सिद्धान्तसमूहका अभूतपूर्व संकलन है यह ग्रन्थ। परम स्तुत्य एवं अत्यन्त मंगलमय कार्य हुआ है।

गत ३१ वर्षोंमें मण्डल द्वारा श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका परमोपादेय साहित्य जो हिन्दी-लिपिमें प्रकाशित हुआ है, उससे गौड़ीय साहित्यका हिन्दी जगत्‌में चिर-अभाव दूर हुआ है।

मुझे इस अद्‌भुत कार्यको देखकर एक विशेष गर्व, अत्यधिक हर्षोल्लास इसलिये भी है कि मण्डलके संस्थापक, व्यवस्थापक तथा उक्त विपुल साहित्यके सम्पादक श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु वंशके कृपापात्र हैं।

संकीर्तन मण्डलकी सर्वांगीण उत्तरोत्तर उन्नति, कार्यक्षमता वृद्धिके लिये श्रीनिताई-चाँद प्रभुके चरण कमलोंमें विनम्र प्रार्थनाके साथ मैं हकीमजीके स्वस्थ चिरजीवनकी कामना करता हूं, जिससे श्रीमन्महाप्रभुके भक्तिसिद्धान्तोंका अधिकाधिक प्रचार होता रहे। इति;

अपूर्वानन्द गोस्वामी

श्रृंगारवट
श्रीवृन्दावन
दि० २०-१-८५



श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वराचार्य स्वामी
श्रीचैतन्यकृष्णाश्रय तीर्थ
महाराज
( गोस्वामी श्रीअतुलकृष्णजी महाराज )
का



# उपदेशात्मक-आशीर्वाद



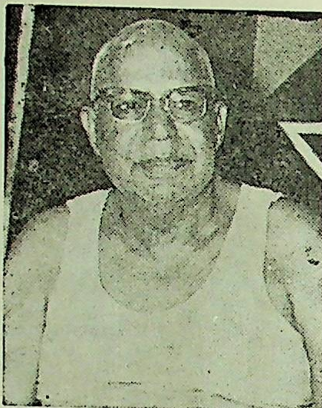
जय श्रीपुरी जहां पुरुषोत्तम, अचल-सचल रूपोंमें राजित।
राधा-कृष्ण सम्मिलित विग्रह, श्रीचैतन्यदेव हैं समुदित॥
हो जाओ उनके शरणागत, परम पतित-पावन करुणामय।
उनके आश्रयमें निश्चय तुम, सयश सरस होगे अकुतोभय॥

यह अवतार प्रेम-पुरुषोत्तम, प्रेमदानके हेतु सेतु-गति।
प्रेमभाव-रसको विनु हरिके, समझें कैसे लोक मूढ़-मति॥
'कृष्ण-कृष्ण बोलो' प्रभु बोलें, पाणि जानु-लम्बित उत्तोलित।
कृष्णनाम जितने अघ नाशे, कर पाये न जीव करणोद्यत॥

पश्चाताप व प्रायश्चित न, उचित कृष्णनाम कहने पर।
वह नामापराध ही होगा, परिष्कार परिहार न कणभर॥
करो कृष्णमें मति-रति-गति निज, कृष्णनामका चिर संकीर्तन।
कृष्णनामसे बन जाओगे, महा पवित्र तीर्थकुल पावन॥

तजो लोक, या तजे लोक ही, एक बात है अति मंगलमय।
उभय स्थितिमें कृष्ण-भजन ही, परम सार-शास्त्रोंका निर्णय॥
परमाश्रय श्रीकृष्णनाम है सब प्रकार हो इसपर निर्भर।
हो आनयन मग्न इसमें ही, पार इसीसे हो भव-सागर॥

प्रेमारम्भ निमित्त रहे जो, पर-धाराका हरिमें सङ्गम।
तुम अपने इस भाव-प्रेमको, नयी दिशा दो हरि हैं प्रियतम॥
हरे नाम सारा विष कल्मष, भरदे जीवनमें अनन्त-रस।
तुमपर वह, सारे जगपर तुम, बरसाओगे पौरुष-गोरस॥



अनन्त श्रीविभूषित
स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज
का

# शुभाशीर्वचन



—श्रीराधाकृष्णौ शरणम्

मैंने वाल्यावस्थामें ही क्रमशः 'अमियनिमाई-चरित' श्रीशिवपूजन सहायका 'गौरांग' तथा संस्कृतका 'श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय' पढ़ लिया था। जिस समय आदरणीय श्रीप्रभुदत्त-ब्रह्मचारीजी महाराज, 'श्रीचैतन्य-चरितावली' लिख रहे थे, मैं उनके वहुत सम्पर्क में था। श्रीचैतन्य चरितामृत तो मैंने बादमें पढ़ा। गृहस्थाश्रममें मेरे चित्तपर श्रीचैतन्य-महाप्रभुका इतना प्रभाव था कि पुत्र होनेपर मैंने उसका नाम 'विश्वम्भर' रखा। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवका प्रथम नाम 'विश्वम्भर' ही था। प्रयागमें रहते समय श्रीगौड़ेश्व -सम्प्रदायके श्रीकृष्णानन्दजी महाराज मिले। उन्होंने 'श्रीराधारस-सुधानिधि' के दो श्लोक मुझे बताए। उनमें से एक है—'अलं विषयवार्तया....' और दूसरा है –'दुकूलं विभ्रणाम् ..'। पहलेमें वैराग्यका इतना उत्कृष्ट निरूपण है कि ऐश्वर्य-मात्रसे अरुचि हो जाए। दूसरेमें रसभावनाकी परिणति। इन दोनों श्लोकोंका मेरे हृदयपर गम्भीर प्रभाव पड़ा। इस सम्प्रदायके अनेक ग्रन्थोंका मैंने अध्ययन किया। जैसे, श्रीमद्भागवतकी टीकाएँ, षड्सन्दर्भ, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्जवलनीलमणि, विदग्ध-माधव, ललित-माधव, जगन्नाथ-वल्लभ, आनन्द वृन्दावन चम्पू, श्रीगोपाल चम्पू एवं श्रीबलदेव विद्याभूषणके अनेक ग्रन्थ। मैं मुक्तकण्ठसे कह सकता हूँ कि मेरे जीवनमें श्रीमद्-भागवत् एवं भक्तिरसके सम्बन्धमें जितना गम्भीर चिन्तन एवं रस-रुचिका संवर्धन हुआ वह श्रीमहाप्रभु एवं उनके सम्प्रदायसे ही वृद्धि-समृद्धिको प्राप्त हुआ। वे श्रीधरस्वामीका विरोध न करके उनके अनुरोधसे ही व्याख्या करते हैं, यह भी आकर्षणका एक कारण रहा।

व्रजलीला एवं निकुञ्ज-रसके निरूपणमें एवं प्रेमके रसत्वकी स्थापनामें 'अलंकार-कौस्तुभ' आदि ग्रन्थोंका विशेष योग रहा। भक्तिरसकी पाँच विधाओंको भी पूर्ण रसके रूपमें श्रीरूपगोस्वामीजीने विभाव-अनुभाव आदि सामग्रियों सहित स्थापित कर दिया। श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपनी लीलामें 'वेणुगीत' के समग्र दृश्योंको लोक-प्रत्यक्ष कर दिया। श्रीचैतन्य महाप्रभुका जीवन श्रीराधामाधवकी एकात्मता एवं रसात्मकताको स्पष्ट करता है एवं 'अचिन्त्य द्वैताद्वैत' सिद्धान्तको लोक-ग्राह्य बनाता है।

मैं इस सम्प्रदायके आचार्यों, रसिकों, प्रभुपादों एवं गोस्वामियोंको बहुत आदर देता हूँ और चाहता हूँ कि सम्प्रदायके आचार्योंके द्वारा निरूपित भक्ति-रस जन-जनमें अपना स्थान बनाए। इस दिशामें श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डलका यह प्रयास अति सराहनीय है।

अखण्डानन्द सरस्वती

महाप्रभु-श्रीगौरांग ( स्मारिका )

# लेख-सूची



प्रचारका संकल्प । कलियुग-धर्म श्रीनामसंकीर्तन । कलिमें श्रीनामसंकीर्तनकी प्रशस्तताके कारण । उच्च-स्वरमें नामसंकीर्तन-महिमा । नाम संख्या-रक्षण । महाप्रभु-संकीर्तित श्रीनाम । सोलहनाम-बत्तीसाक्षरात्मक तारक ब्रह्मनाम । महामन्त्र विषयक शंका-निवृत्ति । श्रीमहामन्त्र-व्याख्या । श्रीनामसंकीर्तन कलौ परम-उपाय ।



•चित्रावली

परिशिष्ट



विज्ञापन

★ संलग्न श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरांग-चित्रपट श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वर मण्डल, जयपुर ने मुद्रित कराके प्रेषित किया है । हम हृदय से उनके आभारी हैं ।



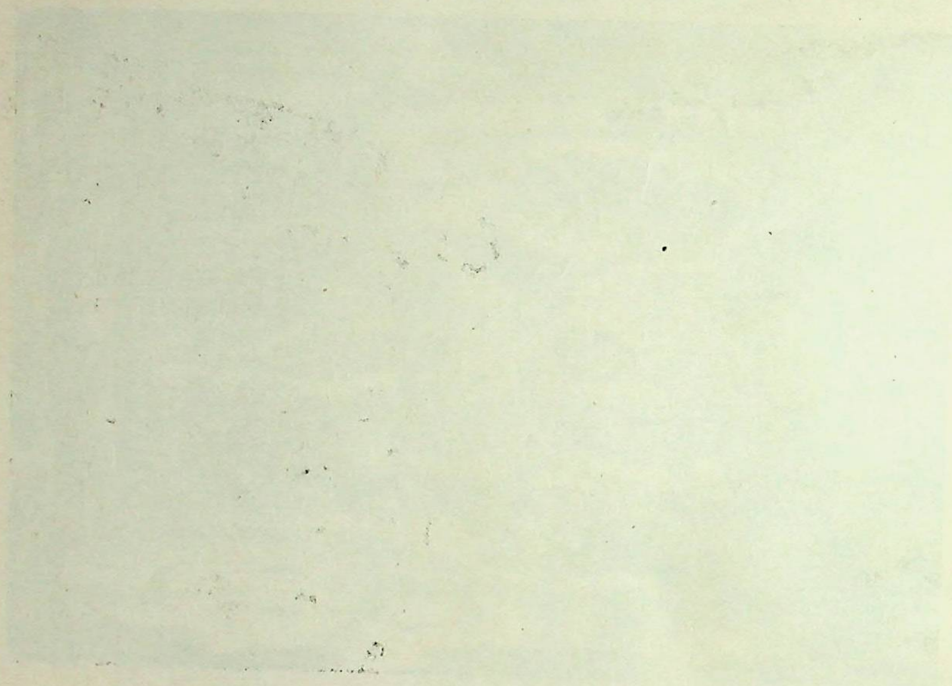


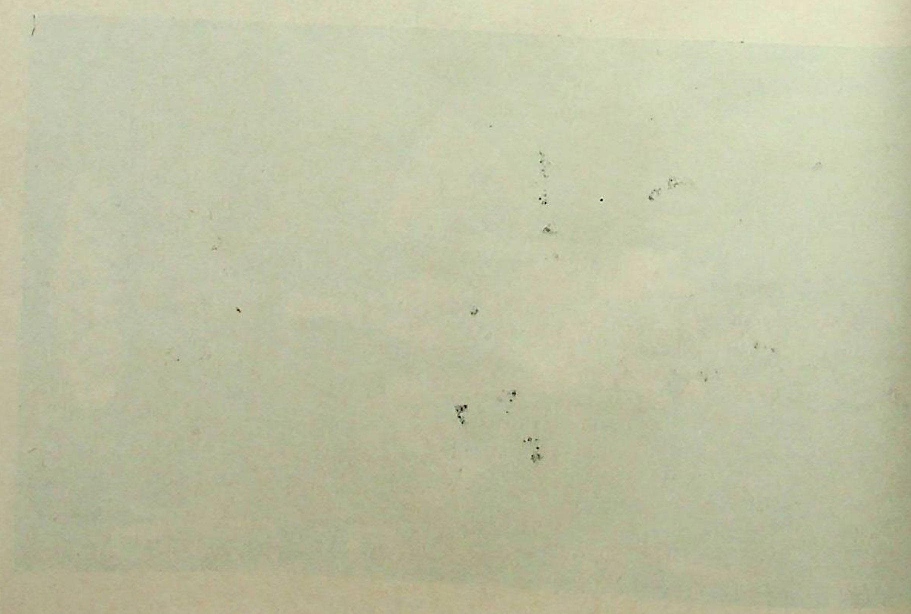
श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु
जन्मस्थान आश्रम, गर्भवास मन्दिर
एकचक्रा-धाम-वीरचन्द्रपुर ( वीरभूम )

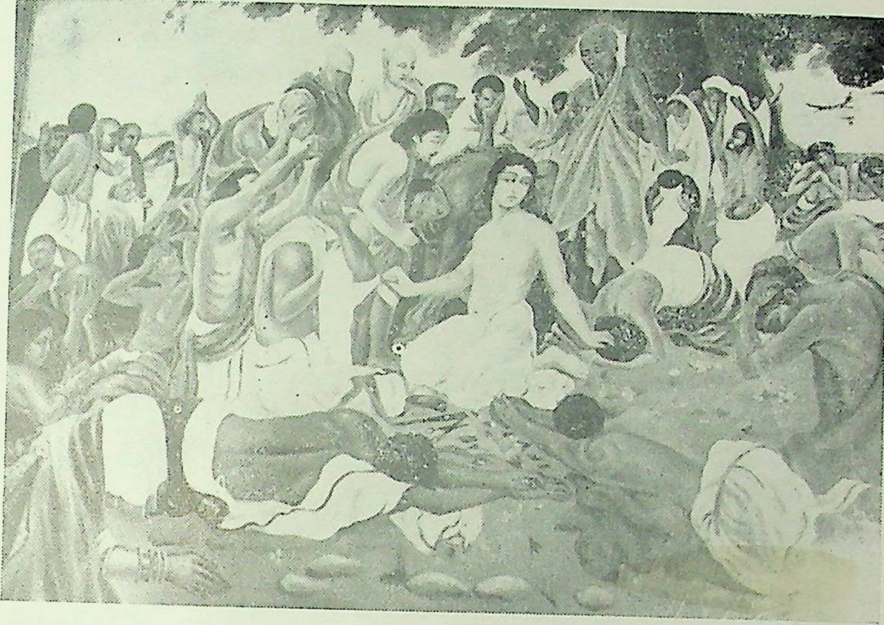
पंचतत्त्व
श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, महाप्रभु श्रीगौरांग,
श्रीगदाधर, श्रीश्रीवास.
[ विग्रह विराजमान इस्कॉन मंदिर लगुनाबीच, यू. एस. ए. ]











←
संन्यासोचित मस्तक-
मुण्डनसे पूर्व
कोटाया निवासी
व्याकुलित एवं
मूर्च्छितप्राय नर-
नारियोंके मध्य
महाप्रभु
श्रीगौरांग.



→
पुष्पोद्यानमें प्रेमा-
विष्ट श्रीमन्महाप्रभु
एवं चरण-सेवा-रत
वैष्णव वेशधारी
राजा
श्रीप्रतापरुद्र





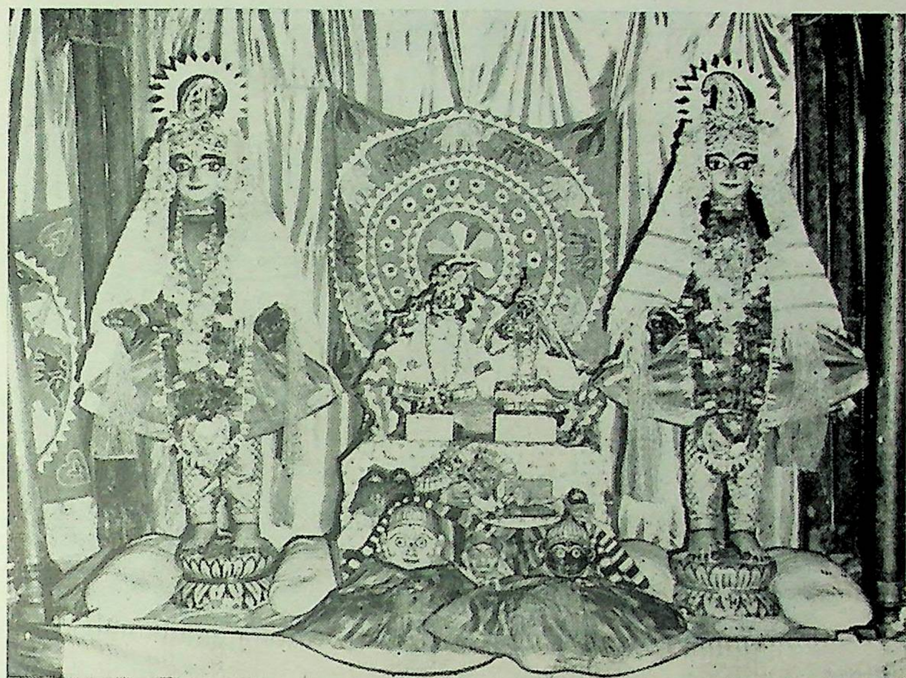
←

• वृन्दावन यात्रान्तर्गत
झारिखण्ड के
विभिन्न
हिंसक एवं
परस्पर-द्वेषी
वन्य पशुओं को
श्रीमन्महाप्रभु
द्वारा
श्रीकृष्णनाम
प्रेम-दान

→

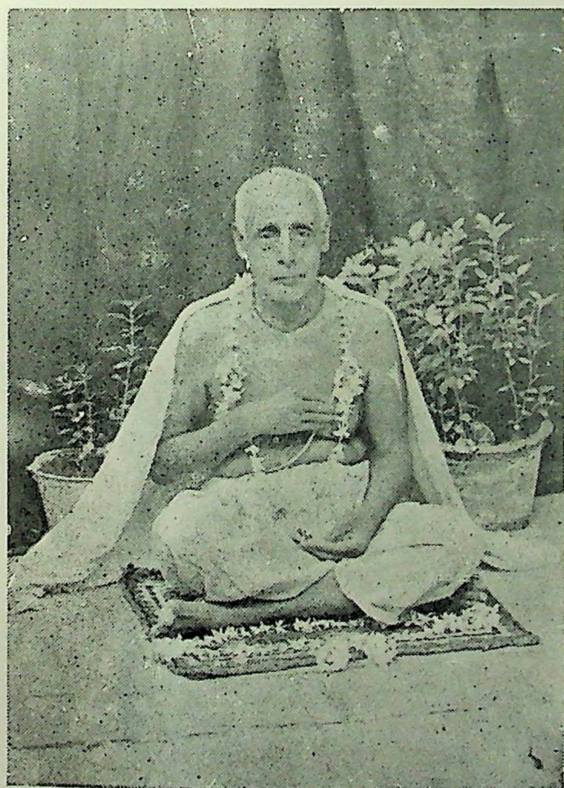
**• तमालतला**
श्रीश्रीराधा-श्यामकुण्ड
तीर्थोद्धारके
समय
महाप्रभु श्रीगौरांगने
यहां
विश्राम किया.





↑

शृङ्गारवट वृन्दावनमें सेवित श्रीश्री-
मन्नित्यानन्द श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु श्रीविग्रह
(१६वीं शताब्दीमें श्रीमन्नित्यानन्द-वंशज
श्रीरसिकानन्द विरक्त इन्हें पुणियासे
वृन्दावन लाये) बीचमें एवं नीचे
श्रीश्रीराधाकृष्ण, श्रीजगन्नाथ-सुभद्रादेवी
एवं श्रीबलराम.



←

श्रीमन्नित्यानन्द वंशावतंस प्रभुपाद
श्रीदेवकीनन्दन गोस्वामि महाराज
(सम्पादकके श्रीगुरुदेव)
शृङ्गारवट-वृन्दावन.





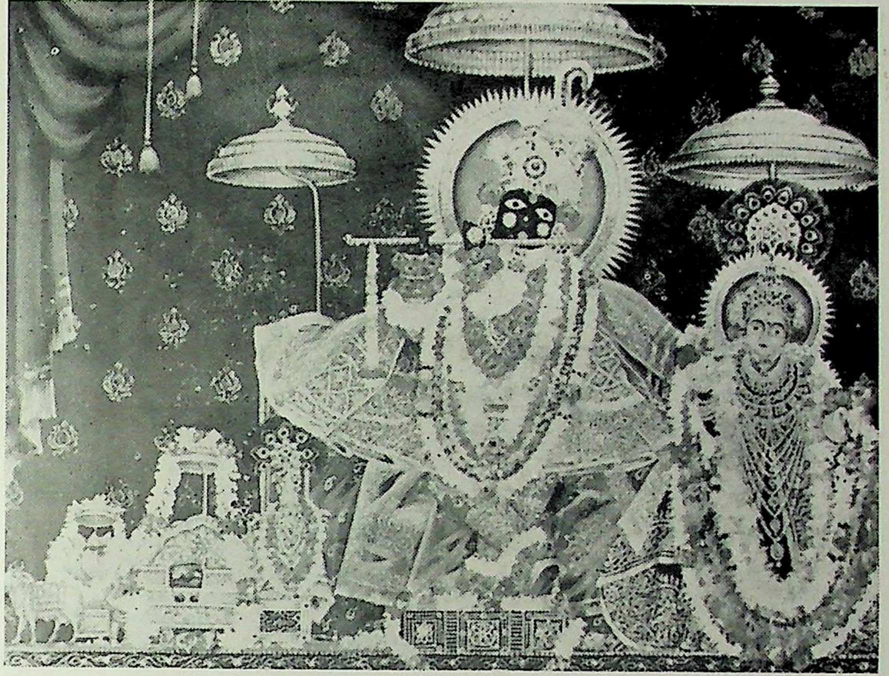
श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा का वेणी-गूंथनादि श्रृङ्गार
[ श्रृङ्गार-वट, बृन्दावन ]

- अपनी कामनानुसार काशी के राजा-रानी **श्रृङ्गार-वट** में वृक्षों के रूप में प्रकट हुए। हर मौसम में पुष्पादि सेवा सौभाग्य प्राप्त किया। क्रमश: एक वर्ष में ही दोनों राजा-रानी रूपी-वृक्ष बिना किसी को क्षति पहुंचाए टूट गये। राजा-वृक्ष का अवशेष अद्यावधि दर्शनीय है.

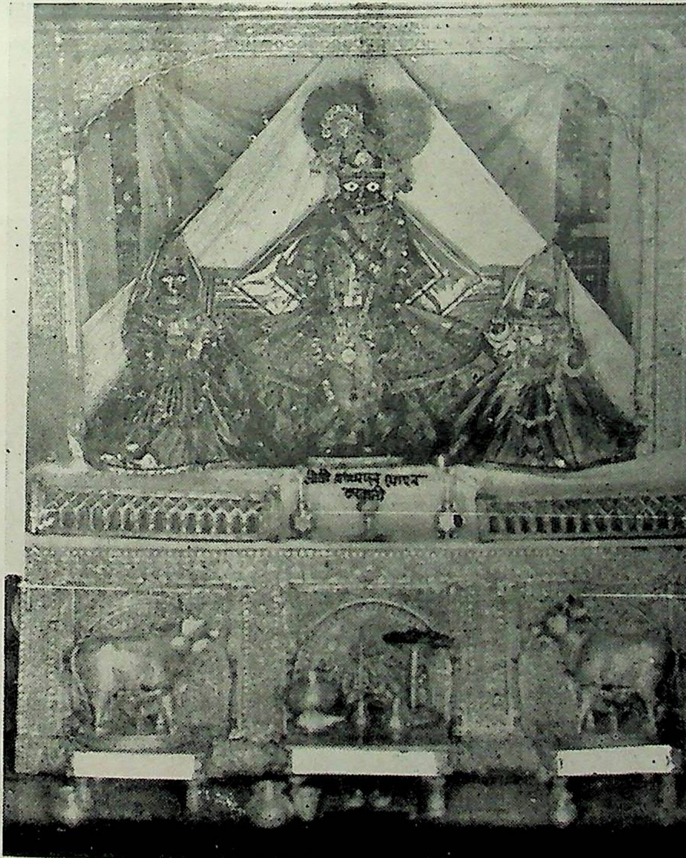




→



● ठाकुर श्रीश्री
राधागोविन्ददेवजी
महाराज
विराजमान जयपुर.
श्रीपाद रूप-
गोस्वामि-सेवित
श्रीविग्रह.



←

● ठाकुर श्रीश्रीराधामदनमोहनजी
महाराज विराजमान
करौली,
श्रीपाद सनातन गोस्वामि-सेवित
श्रीविग्रह.

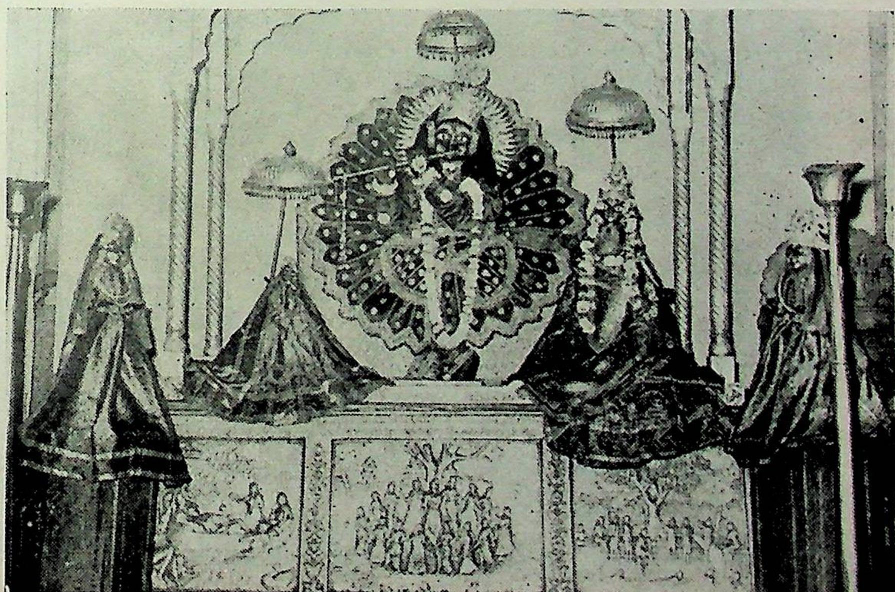




←

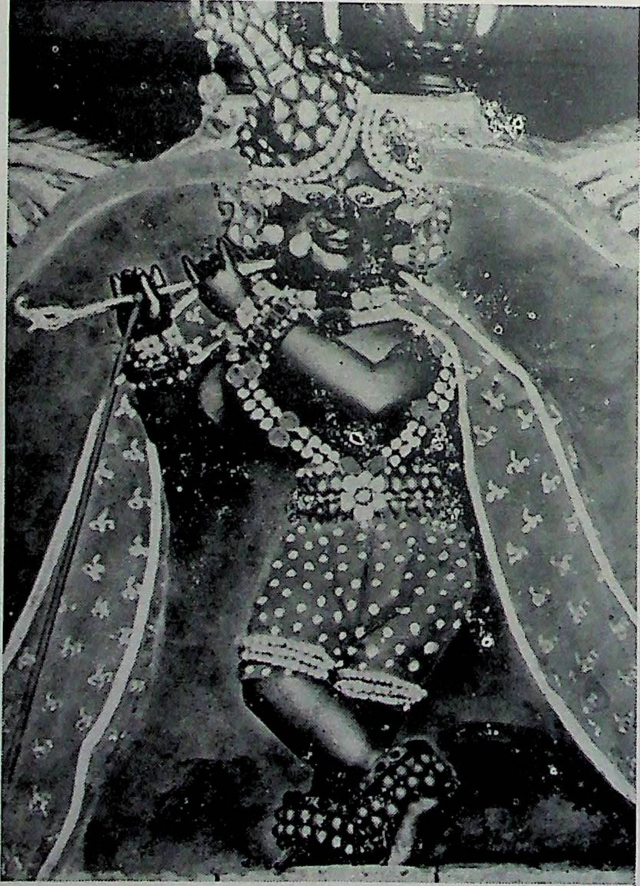
ठाकुर श्रीश्रीराधादामोदरजी महाराज विराजमान जयपुर। श्रीजीवगोस्वामि द्वारा सेवित श्रीविग्रह.

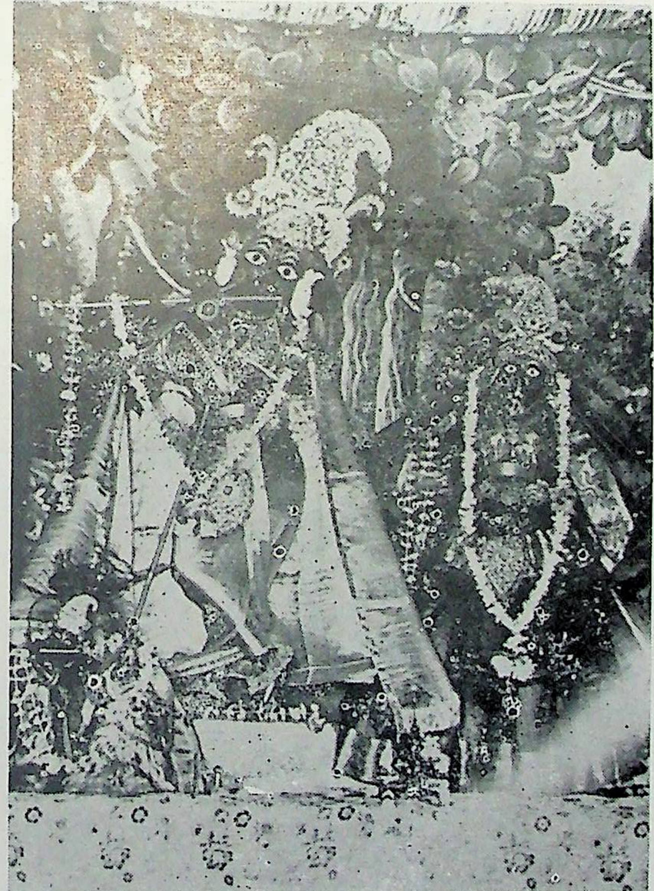
↓ ठाकुर श्रीश्रीराधागोपीनाथजी महाराज विराजमान जयपुर श्रीपाद मधुपण्डित द्वारा सेवित श्रीविग्रह.





• स्वयम्भू ठाकुर श्रीराधारमणलालजी महाराज
विराजमान श्रीवृन्दावन.
गोस्वामी श्रीगोपाल भट्टजी
द्वारा सेवित श्रीविग्रह.

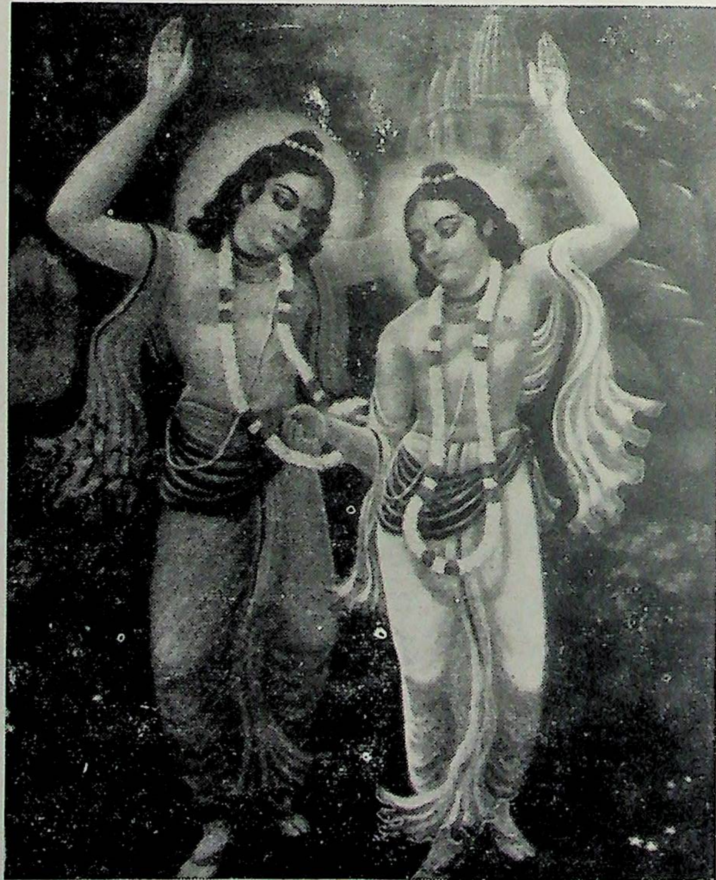




• ठाकुर श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दरजी महाराज
विराजमान श्रीवृन्दावन.
श्रीबलदेव विद्याभूषणजी द्वारा
सेवित श्रीविग्रह.



संकीर्त्तनैक-पिता महाप्रभु श्रीगौरांग एवं नित्यानन्द प्रभु नृत्य मुद्रा में



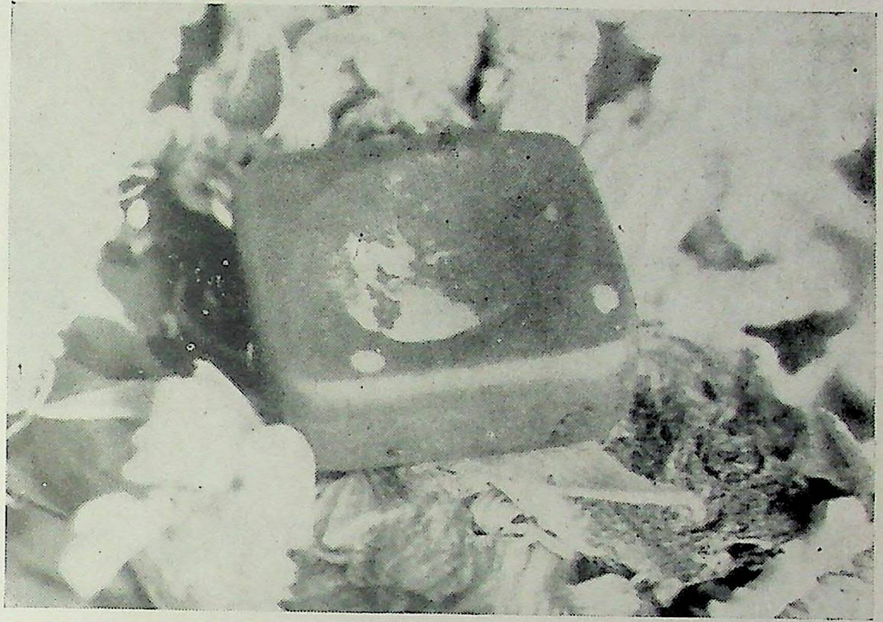




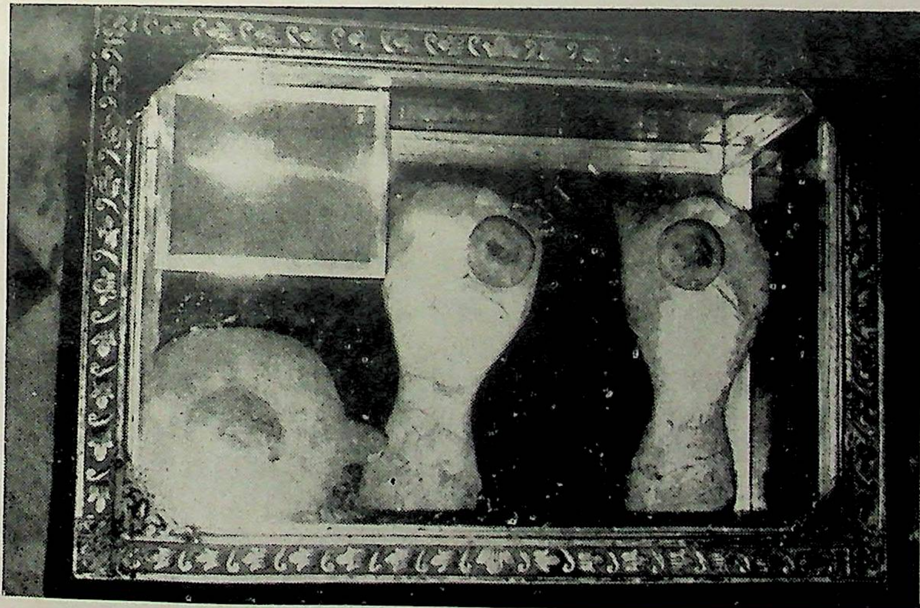
श्रीपाद गोस्वामी माधवेन्द्र पुरीजी को भगवान् श्रीकृष्ण (गोपवेश में) दुग्ध-देने के लिए प्रस्तुत.







→
• श्रीमन्महाप्रभु सेवित-**श्रीगिरिराज शिला**. प्रतिष्ठित-श्रीगोकुलानन्द मन्दिर. मतान्तरे श्रीभागवत-निवास, श्रीवृन्दावन.



←
• महाप्रभु श्रीगौरांगके चरण-पादुका कड़ुवा एवं कन्था. सेवित-श्रीराधाकान्त मठ, गम्भीरा मन्दिर पुरी.



↑ महाप्रभु श्रीगौरांग-हस्तलिखित श्रीमद्भागवतकी कुछ पंक्तियां

↓ श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु द्वारा हस्तलिखित श्रीमद्भागवतकी कुछ पंक्तियां





←

• गोपकुँआ
( श्रीराधाकुण्ड )
जहां
श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी
निवास
करते थे.

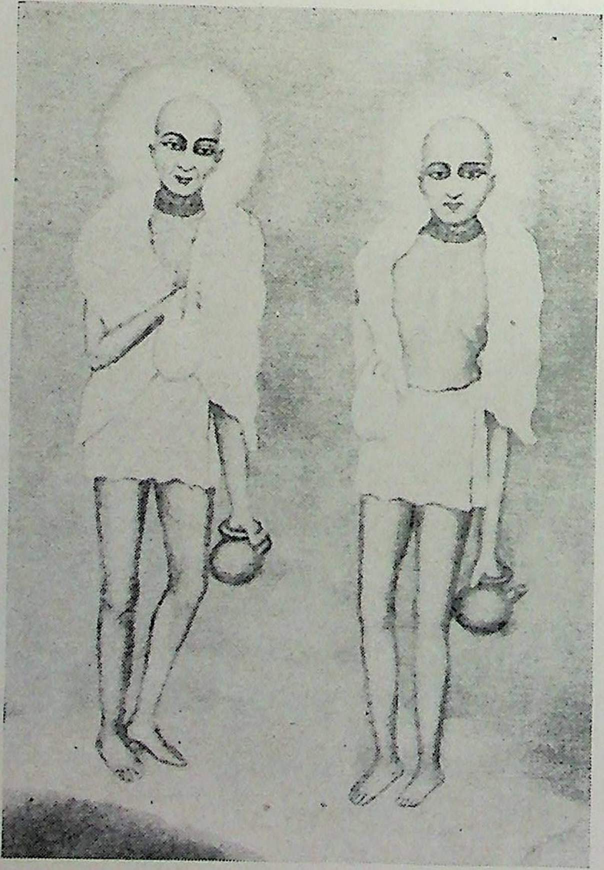


-->

श्रीकृष्णदास
कविराज गोस्वामि की
भजन-कुटी
( श्रीराधाकुण्ड )
जहां
श्रीचैतन्यचरितामृत
की
रचना हुई.



श्रीपाद रूप-सनातन गोस्वामी





श्रीपाद रघुनाथभट्ट-गोस्वामी

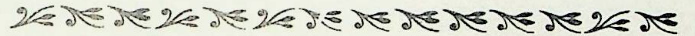






श्रीपाद जीव गोस्वामी

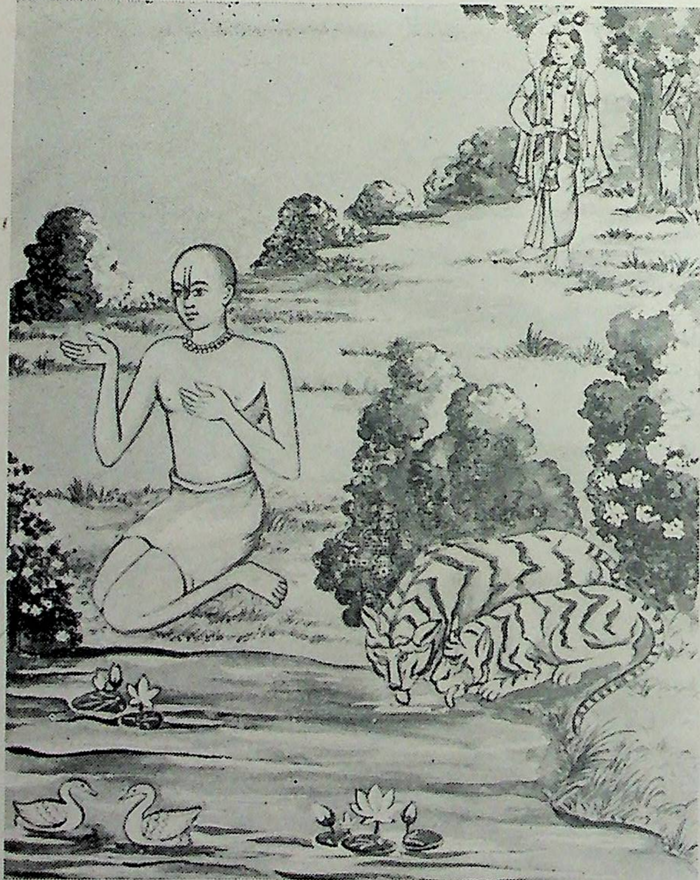




श्रीपाद गोपाल भट्ट गोस्वामी





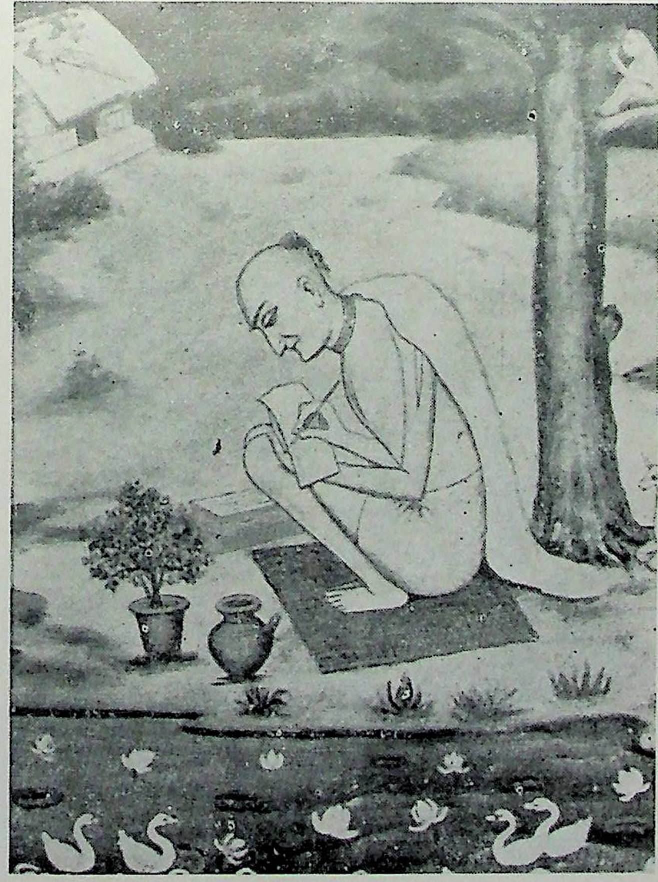


श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी
( श्रीराधाकुण्डतट पर )

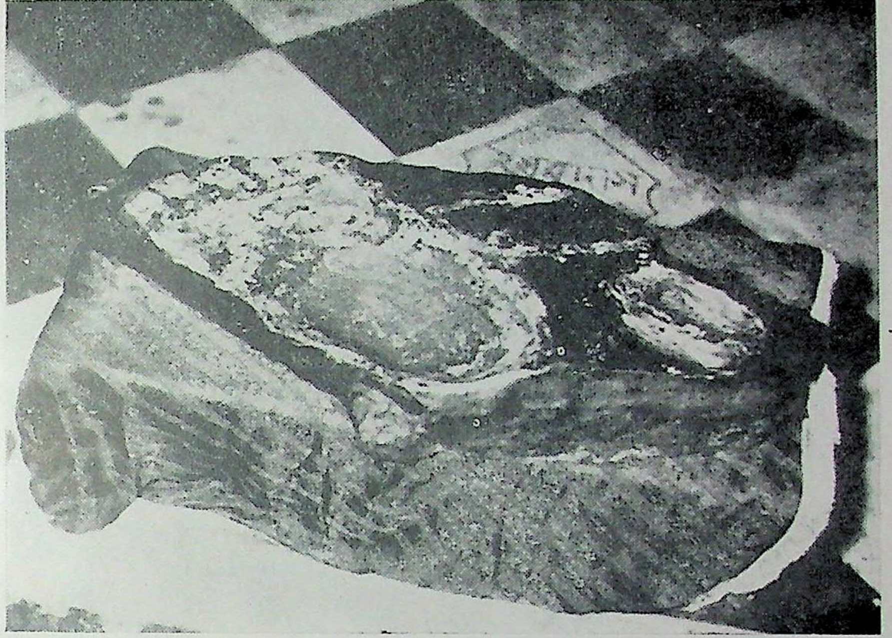




श्रीपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामी
( श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत लिखते हुए )

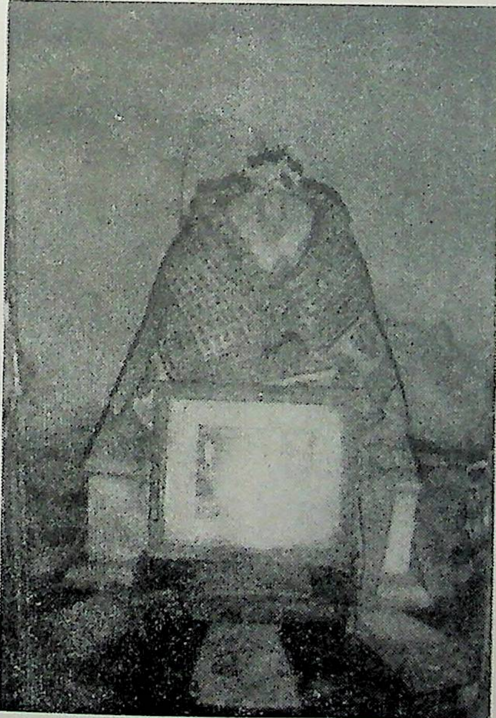






↑

- नित्य श्रीगिरिराज-परिक्रमा नियम-पालन में वृद्धावस्था के कारण अशक्त श्रीरूपगोस्वामी को श्रीश्यामसुन्दर द्वारा प्रदत्त स्वचरण एवं गोखुर चिह्नांकित श्रीगिरिराज-शिला। अद्यावधि सेवित— श्रीराधादामोदर मन्दिर, वृन्दावन.

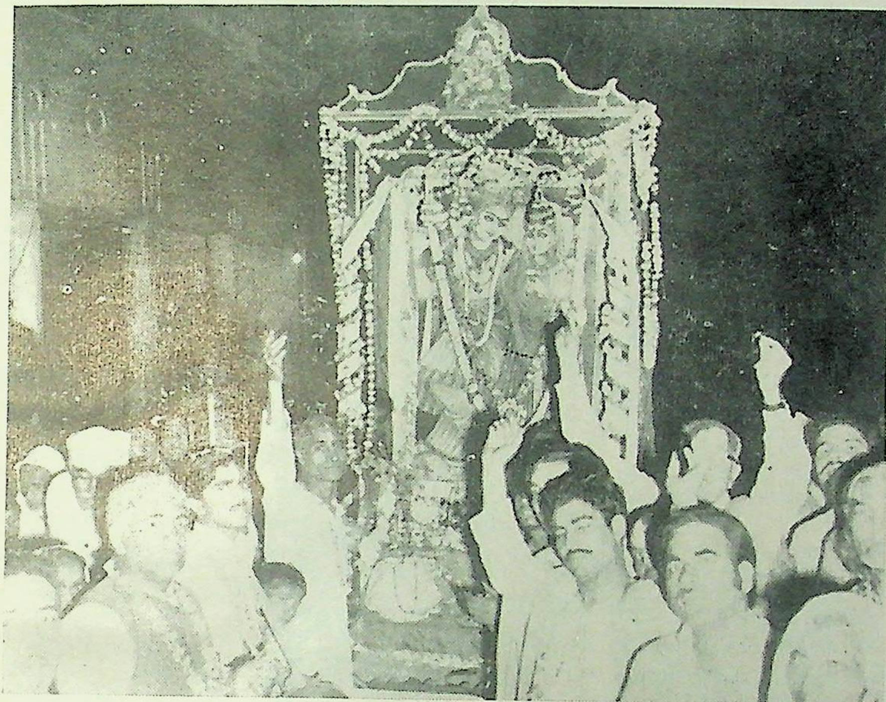


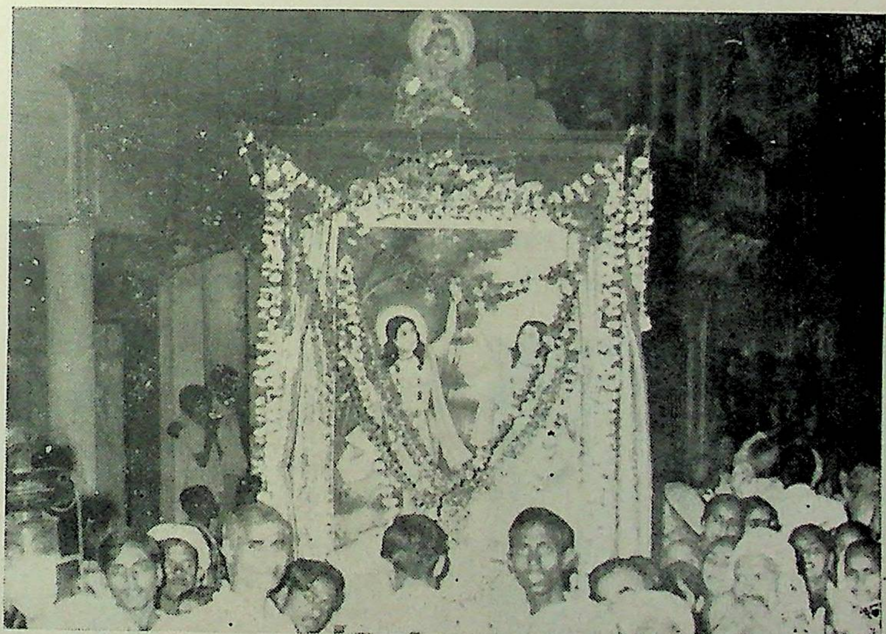
←

- श्रीराधाकुण्ड-तटस्थित श्रीपाद रघुनाथ-दास गोस्वामि-समाधि-मन्दिर.



● श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरांग-जयन्ति उपलक्ष्य में २० वर्षों तक प्रतिवर्ष आयोजित श्रीहरिनाम संकीर्त्तन सम्मेलन के अन्तिम दिन—





प्रियाप्रीतम श्रीश्रीराधाकृष्ण एवं प्रेमदाता श्रीश्रीनिताईगौर सहित नाम-प्रेमी भक्तों द्वारा नगर-संकीर्त्तन।





• वार्षिक श्रीहरिनाम संकीर्त्तन सम्मेलन में विराजमान
श्रीश्रीप्रियाप्रियतम एवं श्रीश्रीनिताई-गौर



↓ सम्मेलन-प्रवचन-सभा में प्रवचन देते हुए मण्डल अध्यक्ष नित्यलीला प्रविष्ट श्रीनृसिंहवल्लभ गोस्वामी, वेदान्त शास्त्री ( माइक पर ) एवं श्री गो० अतुलकृष्णजी महाराज । ( द्वितीय चित्र में ) अभिनव-व्याकरणाचार्य नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीरासबिहारीजी शास्त्री ।







**• विगत १५ वर्षों से अद्यावधि प्रकाशित मासिक पत्र श्रीहरिनाम के विमोचन समारोहके शुभावसरपर श्रीअमिय निमाई मन्दिर, वृन्दावन में--**

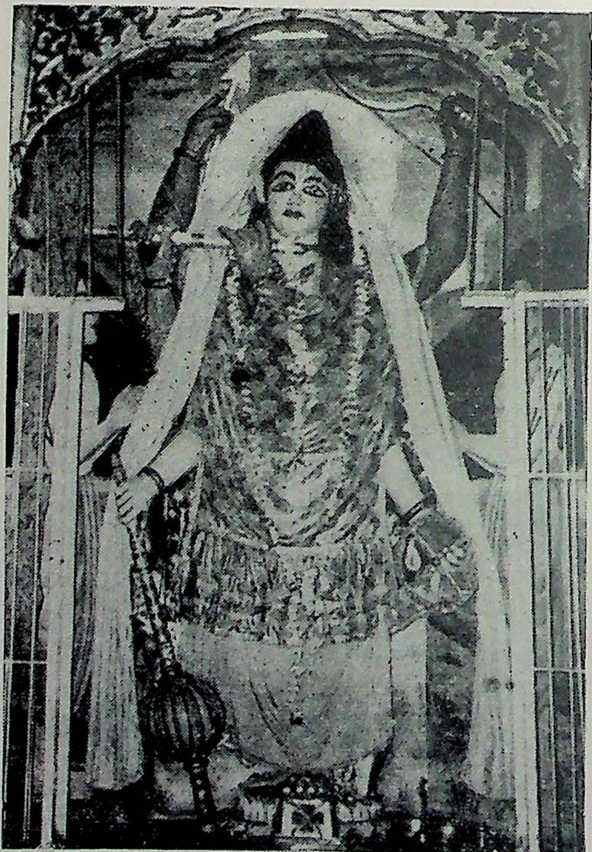
समारोह-अध्यक्ष साहित्यवाचस्पति श्रीप्रभुदयाल मीतल (मथुरा) को श्रीश्यामलाल हकीम (सम्पादक) प्रथम अंक समर्पण करते हुए--





समारोह-मुख्य-अतिथि-बाबू श्रीवृन्दावन दास (मथुरा) को मण्डलके विशिष्ट सदस्य श्रीनन्दलालजी विरमानी माल्यार्पण करते हुए.

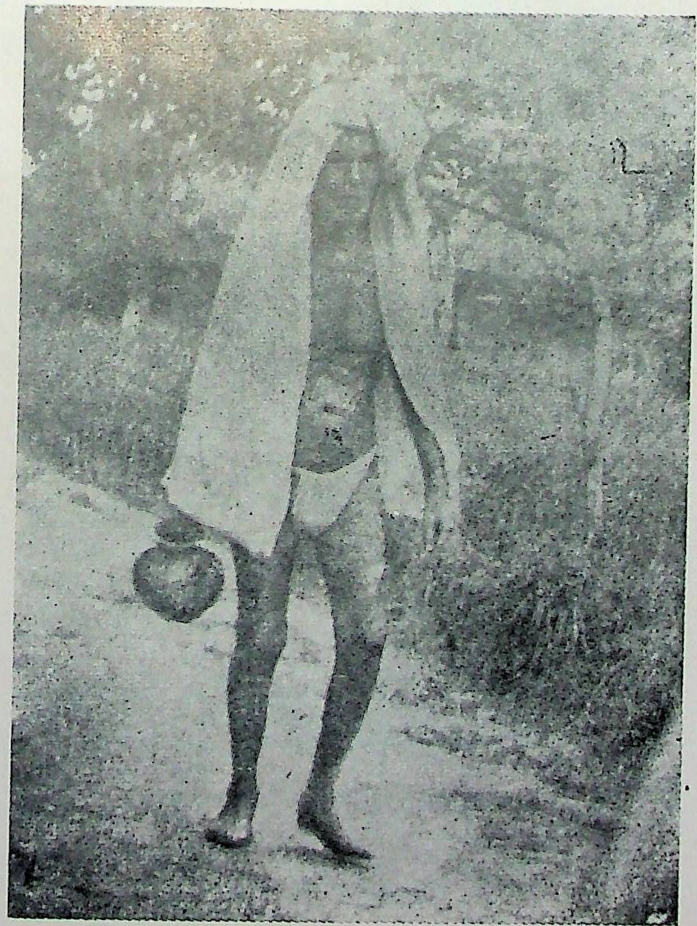




महाप्रभु श्रीगौरांग षड्भुज स्वरूप में

ब्रजमण्डल की महाविभूति

सिद्ध बाबा पं० श्रीरामकृष्णदासजी महाराज









**राय साहब श्रीरघुनाथदासजी हकीम**

मण्डल की स्थापना के सूत्रधार, सम्पादक के परम पूज्य पिता श्री.



**स्वामी श्रीललितलड़ैतीजी महाराज**

डेरागाजीखान् जनपद में श्रीमन्महाप्रभु-भक्ति-सिद्धान्त के प्रसिद्ध प्रतिष्ठाता.





गोस्वामी श्रीहरिदासजी महाराज
बंगला भाषा में प्रचुर गौड़ीय वैष्णव-साहित्य के प्रणेता
विशेषत: श्रीविष्णुप्रिया दास्य-निष्ठ साहित्य
के अनूठे-गायक



श्रीहरिदास दासजी महाराज, ( हरिबोल कुटीर )
श्रीगौड़ीयवैष्णव अभिधानादि अनेक
परमोपादेय सन्दर्भ ग्रन्थों के रचयिता एवं
प्रतिभाशाली व्याख्याता.

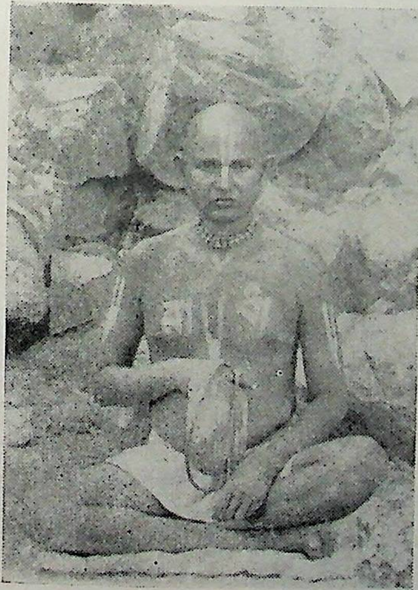




१

श्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्य के अमर सम्पादक, प्रकाशक व्याख्याता, प्रचारक भक्तप्रवर (१) डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथ पराविद्याचार्य, कलकत्ता (२) बाबा श्रीकुंजविहारीजी महाराज, श्रीराधाकुण्ड (३) पं० श्रीरामानन्दजी शर्मा शास्त्री, दिल्ली.

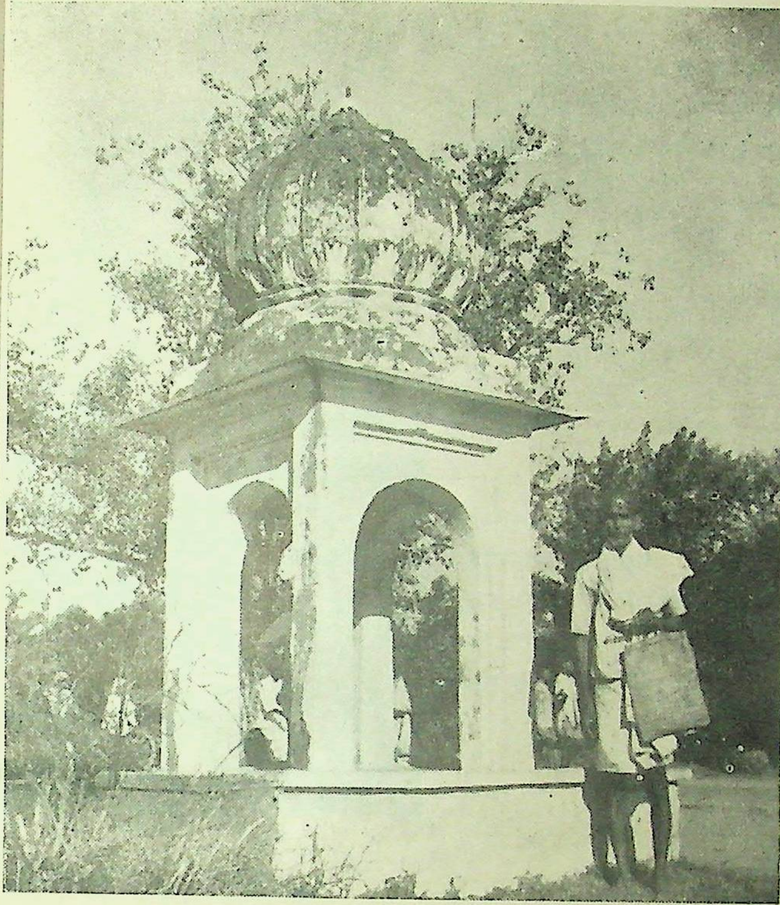
२





३





←

• ग्वालियर मन्दिर
कुसुम सरोवर
श्रीराधाकुण्ड की एक
प्राचीन बुर्जी के समीप
खड़े हुए—
विशाल गौड़ीय वैष्णव साहित्य
के हिन्दी भाषा के सम्पादक
एवं प्रकाशक
नित्यलीला प्रविष्ट
बाबा श्रीकृष्णदास जी
(कुसुम सरोवर
वाले).

→

• श्रीचैतन्य चरितामृत
हिन्दी संस्करण
के
विमोचन-अवसर
पर
चरितामृत-पाठ
एवं
भाषण
देते हुए
श्रीकैलाशनाथ
काटजू
तत्कालीन
वित्तमंत्री. उ. प्र.





→

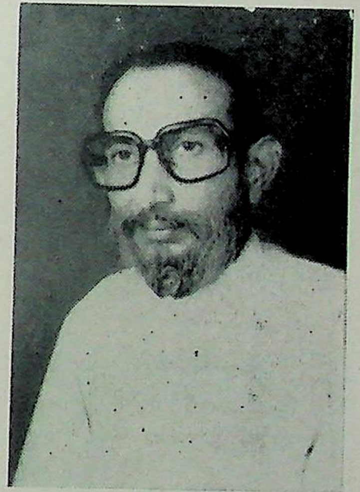


● सन्त प्रवर
पं० श्रीजगन्नाथजी भक्तमाली
श्रीहरिनाम संकीर्त्तन सम्मेलन में.




←

● स्वामी
श्रीमद्भक्ति हृदय
बन महाराज 'सम्मेलन'
में प्रवचन
देते हुए.



→

● पण्डित
श्रीगोपालजी व्यास
रामायणी
मण्डलके
हित-चिन्तक



←

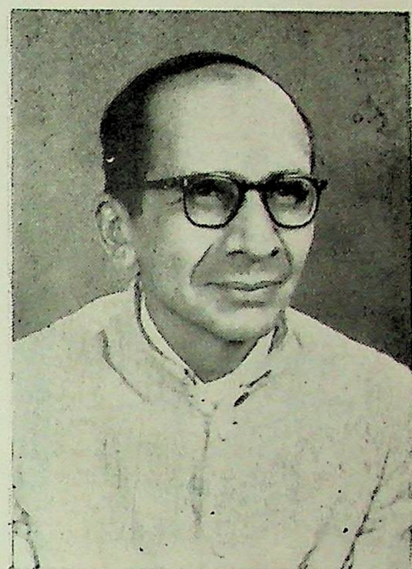
● भक्त श्रीरामचन्द्रजी राजपाल
आपने श्रीहरिनाम संकीर्त्तन मण्डल की स्थापना में
प्रमुख-योगदान दिया एवं मण्डल कार्यकारिणी
समिति के आजीवन सदस्य रहे।



## श्रीहरिनाम संकीर्त्तन मण्डल के सहृदय हित-चिन्तक—



वैष्णव प्रवर
श्रीचन्द्रहंस जी पाठक, आगरा

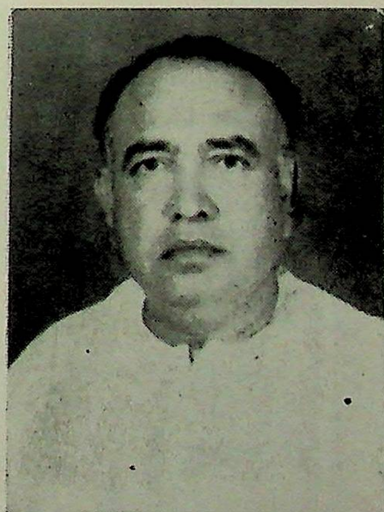


भूतपूर्व विधायक
श्रीकन्हैयालाल जी गुप्त

आध्यात्मिक कवि
श्रीजीवन जी
श्रीरामकिंकर जी को रचना भेंट करते हुए.



स्पेशल एक्जी. मजिस्ट्रेट
श्रीशुभकरण जी धरणीधरका
बम्बई.

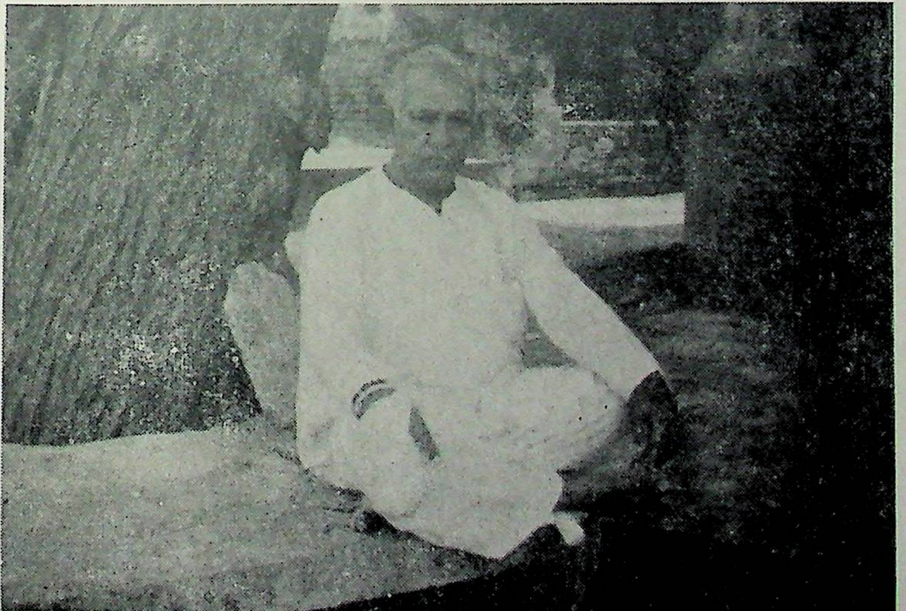






←

• श्रीमद्
ए. सी. भक्तिवेदान्त
स्वामी प्रभुपाद.
( श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त )
जिन्होंने
पाश्चात्य देशोंमें
महाप्रभु श्रीगौरांग
द्वारा प्रतिष्ठित
भक्ति-सिद्धान्त
एवं
श्रीनामसंकीर्तन तथा
गौड़ीय वैष्णव साहित्य
का
अभूतपूर्व प्रचार-
प्रसार
किया.



→

श्रीश्रीराधाश्यामकुण्ड-
तट पर
सम्पादक
श्यामलाल हकीम



॥ श्रीहरिः ॥

# महाप्रभु...

# ...श्रीगौरांग





※ श्रीहरिः ※

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ जयतः ॥

# महाप्रभु-श्रीगौरांग

## मंगलाचरण

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यं भगवन्तं कृपार्णवम् ।
प्रेमभक्तिवितानार्थं गौड़ेष्ववततार यः ॥१॥

स्वदयितनिजभावं यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमवतीर्णो भक्तरूपेण लोभात् ।
जयति कनकधामा कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः श्रीशचीसूनुरेषः ॥२॥

जयति जयति देवः श्रीशचीगर्भजन्मा
जयति जयति भक्तिप्रेमदानैकधर्मा ।
जयति जयति मेरुस्पर्धिगौराङ्गधामा
जयति जयति धन्यः कृष्णचैतन्यनामा ॥३॥

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥४॥

हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरूपोऽपि ।
तस्य हरे पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य ॥५॥

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥६॥



करुणा-सागर भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यकी मैं वन्दना करता हूँ, जो प्रेम-भक्तिको वितरण करनेके लिए गौड़-देशमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ १ ॥

स्वप्रिय-भक्तोंके प्रति अपने प्रेमसे अपने-प्रति भक्तोंके प्रेमको अधिक सुमधुर विवेचन कर, उस भक्तप्रेमको आस्वादन करनेके लोभसे भक्तरूपमें जो अवतीर्ण हुए हैं, उन सुवर्णद्युति-विशिष्ट संन्यासी-वेशधारी श्रीकृष्णचैतन्य-नामक श्रीशचीनन्दन-हरिकी जय हो ॥ २ ॥

भगवान् श्रीशचीनन्दन ! आपकी जय हो, जय हो; भक्ति-प्रेमदान-धर्मावलम्बी ! आपकी जय हो, जय हो; सुमेरु-विनिन्दित सुवर्णकान्ति-विशिष्ट तनुधारी ! आपकी जय हो, जय हो; परम-पावन श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी ! आपकी जय हो, आप सर्वोत्कर्षसे विराजमान् हैं ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णप्रेम-प्रदाता महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य-नामक गौरकान्ति-विशिष्ट श्रीकृष्ण ! आपको मेरा नमस्कार है ॥ ४ ॥

हृदयमें जिनकी प्रेरणा प्राप्तकर मैं अति अल्पबुद्धि होकर भी इस कार्यमें प्रवृत्त हो रहा हूँ, उन श्रीकृष्णस्वरूप श्रीकृष्णचैतन्यदेवके चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

वाञ्छापूर्त्तिमें कल्पतरु तुल्य, कृपासिन्धु तथा पतित-पावन वैष्णवजनको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥ ६ ॥





※ श्रीगौराङ्गविधुर्जयति ※

श्रीमद्रूपगोस्वामि विरचितं

# श्रीचैतन्याष्टकम्

**कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युतिभरादकृष्णाङ्गं कृष्णं मखविधिभिरुत्कीर्तनमयैः।**
**उपास्यं च प्राहुर्यमखिलं-चतुर्थाश्रमजुषां स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥१॥**

कलियुगमें सङ्कीर्त्तनमय यज्ञ-उपचारसे जिनकी विद्वान् लोग स्पष्ट रूपसे आराधना करते हैं; जो कृष्ण-वर्ण हैं, परन्तु अपने अङ्गोंकी अतिशय कान्ति द्वारा अकृष्ण अर्थात् गौर-वर्णमें प्रकाशित हो रहे हैं, जिन्हें चतुर्थ आश्रमके सेवन करनेवाले समस्त संन्यासियोंका उपास्य-देव कहा गया है, वे सच्चिदानन्द विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ १ ॥

**चरित्रं तन्वानः प्रियमघवदाह्लादन-पदं जयोद्‌घोषैः सम्यग् विरचित-शची-शोकहरणः।**
**उदञ्चन्मार्तण्ड-द्युतिहर-दुकूलाञ्चित-कटिः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥२॥**

जो पापीजनोंके लिये भी अतिशय आनन्द देनेवाले पतित-पावनरूप प्रिय-चरित्रका विस्तार करनेवाले हैं, जो 'जय-जय'-शब्द उच्च-ध्वनिसे माता-शचीके शोकको सम्यक् प्रकारसे हरण करनेवाले हैं, जिनकी कटिमें प्रचण्ड सूर्यकी कान्तिको भी निन्दित करनेवाला पीत (कषाय) वस्त्र सुशोभित हो रहा है, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ २ ॥

**अपारं कस्यापि प्रणयि-जन-वृन्दस्य कुतुकी रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।**
**रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिहि तदीयां प्रकटयन् स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥३॥**

जिन्होंने कौतुक-पूर्वक अपने किसी भक्त समुदाय—व्रजाङ्गनाओं (श्रीराधा)-की अनिर्वचनीय अपार मधुर-रस-राशिको चुराकर, उसका स्वयं आस्वादन करनेके लिये अपनी कृष्ण-कान्तिको छिपा लिया है एवं उनकी कान्तिको अर्थात् गौरवर्णको प्रकाशित या ग्रहण किया है, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ ३ ॥

**अनाराध्यः प्रीत्या चिरमसुर-भाव-प्रणयिनां प्रपन्नानां दैवीं प्रकृतिमधिदैवं त्रिजगति।**
**अजस्रं यः श्रीमान् जयति सहजानन्द-मधुरः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥४॥**

चिरकालसे असुरभावमें प्रीति करनेवाले लोग अर्थात् आसुरी प्रकृतिके लोग, जिनकी आराधना नहीं करते और दैवी-प्रकृति वाले जीवोंके जो सदा आराध्य हैं, जो निरन्तर तीनों लोकोंमें सर्वोत्कर्षसे लक्ष्मी-पति होकर जययुक्त विराजमान हैं तथा स्वाभाविक-आनन्दसे मधुर हैं, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ ४ ॥

गतिर्यः पौण्ड्राणां प्रकटित-नवद्वीप-महिमा भवेनालंकुर्वन् भुवन-महितं श्रोत्रियकुलम् ।
पुनात्यङ्गीकाराद्भुवि परमहंसाश्रम-पदं स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ५ ॥

जो पुण्ड्र-देशवासियोंके आश्रय हैं, जिन्होंने नवद्वीपकी महिमाको प्रकाशित किया है, जगत् वन्दनीय वैदिक विप्रवंशमें अवतार धारणकर जिन्होंने उसे विभूषित किया है एवं पृथ्वीपर संन्यास-आश्रमको अङ्गीकारकर जिन्होंने परमहंसोंके आश्रम-पदको पवित्र किया है, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ ५ ॥

मुखेनाग्रे पीत्वा मधुरमिह नामामृतरसं दृशोर्द्वारा यस्तं वमति घन-बाष्पाम्बु-मिषतः ।
भुवि प्रेम्णस्तत्त्वं प्रकटयितुमुल्लासित-तनुः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ६ ॥

जो पहले मधुर नामामृत रसको अपने श्रीमुखसे पानकर, फिर उसे नेत्रोंसे गाढ़-अश्रुओंके बहाने बरसाते हैं, पृथ्वीतलपर प्रेम-तत्त्वको प्रकटित करनेके लिये जिनका श्रीविग्रह सदा उल्लसित रहता है, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ ६ ॥

तनूमाविष्कुर्वन् नव-पुरट-भासं कटि-लसत् करङ्कालङ्कारस्तरुण-गजराजाञ्चित-गतिः ।
प्रियेभ्यो यः शिक्षां दिशति निजनिर्माल्यरुचिभिः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ७ ॥

जिनका श्रीविग्रह नवीन (तप्त) सुवर्णकी कान्तिके समान है एवं जिनका कटि-देश नारियलसे बने हुए जलपात्र रूपी अलंकारसे सुशोभित हो रहा है, जिनकी चाल तरुण गजराज-की चालको भी पराजित करनेवाली है एवं जो श्रीभगवान्‌की प्रसादी मालादिक वस्तुओंमें अपनी रुचि प्रकट करते हुए अपने भक्तोंको भी उस प्रकारकी रुचि रखनेकी शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ ७ ॥

स्मितालोकः शोकं हरति जगतां यस्य परितो
गिरां तु प्रारम्भः कुशल-पटलीं पल्लवयति ।
पदालम्बः कं वा प्रणयति न हि प्रेम-निवहः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ८ ॥



जिनकी मन्दमुसकानयुक्त अवलोकन जगत्‌के शोकको सम्यक् प्रकारसे हर लेती है, जिनकी वाणीका उपक्रम या आरम्भ समस्त मङ्गलोंका



विस्तार करनेवाला है, तथा जिनके चरणारविन्दोंका आश्रय किस व्यक्तिको प्रेम-राशि नहीं प्रदान करता ? —अर्थात् प्राणीमात्रको प्रेम प्रदान करनेवाला है, वे सच्चिदानन्द-विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करते रहें ॥ ८ ॥

**शचीसूनोः कीर्ति-स्तबक-नवसौरभ्य-निबिडं**
**पुमान् यः प्रीतात्मा पठति किल पद्याष्टकमिदम् ।**
**स लक्ष्मीवानेतं निजपद-सरोजे प्रणयितां**
**ददानः कल्याणीमनुपदमबाधं सुखयतु ॥ ९ ॥**

जो व्यक्ति, श्रीशचीनन्दनके कीर्ति-रूप गुच्छोंकी नवीन सुगन्धिसे परिपूर्ण इस अष्टकका प्रीतिपूर्वक पाठ करता है, उसे लक्ष्मीपति —श्रीशचीनन्दन अपने चरणकमलोंमें मङ्गलमयी प्रीतिको देते हुए प्रतिपद पर सुख प्रदान करते रहें ॥ ९ ॥

## श्रीरूप-शिक्षा—

वेदनिष्टमध्ये अर्द्धेक वेद मुखे माने ।
वेद-निषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे ॥
धर्माचारिगणमध्ये बहुत कर्मनिष्ठ ।
कोटि कर्मनिष्ठमध्ये एक ज्ञानी श्रेष्ठ ॥
कोटि ज्ञानीमध्ये हय एक जन मुक्त ।
कोटि मुक्तमध्ये दुर्लभ एक कृष्णभक्त ॥
कृष्णभक्त निष्काम, अतएव 'शान्त' ।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकामी सकलि 'अशान्त' ॥

श्रीचैतन्यचरितामृत २।१९।१२९-३२

※ श्रीशचीसूनवे नमः ※

श्रीमद्रघुनाथदास गोस्वामि-विरचितम्

# श्रीशचीसून्वष्टकम्



हरिर्दृष्ट्वा गोष्ठे मुकुर-गतमात्मानमतुलं
स्वमाधुर्यं राधा-प्रियतर-सखीवाप्तुमभितः ।
अहो गौडे जातः प्रभुरपरगौरैकतनुभाक्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ १ ॥

श्रीगोकुलमें श्रीकृष्णने दर्पणमें अपने अतुलनीय माधुर्यको देखकर, अपनी प्रियतमा सखी श्रीराधिकाकी तरह अपने उस माधुर्यको आस्वादन करना चाहा; अर्थात् जिस प्रकार श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णके माधुर्यका पूर्णतम रूपसे आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार अपने माधुर्यको आस्वादन करनेकी तीव्र उत्कण्ठा श्रीकृष्णमें जाग उठी। उसी वाञ्छाकी पूर्त्तिके लिये सर्वशक्ति-सम्पन्न श्रीकृष्ण श्रीराधाकी गौरकान्ति एवं भावसे सुवलित जिस विग्रहको धारण कर गौड़देशमें प्रकट हुए, अहह ! वे श्रीशचीनन्दन क्या फिर मेरे दृष्टिगोचर होंगे ?॥ १ ॥

पुरीदेवस्यान्तःप्रणय-मधुना स्नान-मधुरो
मुहुर्गोविन्दोद्यद्विशद - परिचर्यार्चित-पदः ।
स्वरूपस्य प्राणार्बुद-कमल-नीराजित-मुखः
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ २ ॥

श्रीईश्वरपुरी अथवा श्रीपरमानन्दपुरीके अन्तःकरणके प्रेम-मधुसे जो अभिषिक्त होकर मधुर रूपसे विराजमान हैं, जिनके चरणारविन्द श्रीगोविन्द नामक सेवकके द्वारा विशुद्ध एवं विशद सेवासे पूजित हैं, अर्थात् जिनके चरणोंकी विशुद्ध सेवा श्रीगोविन्द-नामक सेवक करता है, तथा श्रीस्वरूप दामोदरजी अपने असंख्य प्राणरूप कमलोंसे जिनके श्रीमुखकी आरती उतारते हैं, अथवा अपने असंख्य प्राणकमल जिनके श्रीमुख पर न्यौछावर करते हैं, वे श्रीशचीनन्दन नदिया-विहारी क्या फिर मुझे अपने दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे ? ॥ २ ॥





दधानः कौपीनं तदुपरि बहिर्वस्त्रमरुणं
प्रकाण्डो हेमाद्रि-द्युतिभिरभितः सेवित-तनुः।
मुदा गायन्नुच्चैर्निज-मधुर-नामावलिमसौ
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ ३ ॥

जो कौपीन धारणकर उसके ऊपर लाल (गेरवे) रंगका बहिर्वास पहने हुए हैं, जिनका विशाल श्रीविग्रह सुमेरुपर्वतकी कांतिराशिसे चारों ओर पूजित है, अर्थात् जिनके श्रीविग्रहकी परम उज्ज्वल कान्ति सुमेरु पर्वत-की भांति चारों ओर फैल रही है, और जो आनन्दपूर्वक उच्च स्वरसे अपने मधुर-मधुर नामोंका गान कर रहे हैं, वे शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्य क्या फिर मेरे नेत्रोंके सामने पधारेंगे ? ॥ ३ ॥

अनावेद्यां पूर्वैरपि मुनिगणैर्भक्ति-निपुणैः
श्रुतेर्गूढ़ां प्रेमोज्ज्वल-रसफलां भक्ति-लतिकाम् ।
कृपालुस्तां गौडे प्रभुरतिकृपाभिः प्रकटन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ ४ ॥

भक्ति एक लता है, जिसका फल उज्ज्वलरसमय प्रेम है, एवं जिसके तत्त्वको वेद भी नहीं जान सकते तथा भक्ति-मार्गमें प्रवीण प्राचीन मुनिगण भी जिस भक्तिके स्वरूपको सहजमें नहीं जान सके, उसी उज्ज्वल रसमयी भक्तिको जिन्होंने अपनी अतिशय करुणासे गौड़देशमें प्रकट किया अर्थात् प्रचार-प्रसार तथा आचरण पूर्वक प्रदान किया, वे परम करुणामय श्रीशचीनन्दन क्या फिर मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे ? ॥ ४ ॥

निजत्वे गौडीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान्
हरेकृष्णेत्येवं गणन-विधिना कीर्तयत भोः ।
इतिप्रायां शिक्षां जनक इव तेभ्यः परिदिशन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ ५ ॥

जिन्होंने जगत्में गौड़देशवासियोंको आत्मीयरूपसे अङ्गीकार किया है, और जिस प्रकार पिता अपनी सन्तानको शिक्षा देता है, उसी प्रकार जिन्होंने—'हे गौड़ीयजन ! आप 'हरे कृष्ण-इत्यादि महामन्त्रका संख्यापूर्वक उच्च स्वरसे सदा कीर्त्तन करो'—उन्हें यह शिक्षा प्रदान की है, उन्हीं शचीनन्दन श्रीगौराङ्गमहाप्रभुके क्या मुझे फिर दर्शन प्राप्त होंगे ? ॥ ५ ॥

पुरः पश्यन् नीलाचल-पतिमुरुप्रेम-निवहैः
क्षरन्नेत्राम्भोभिः स्नपित-निज-दीर्घोज्ज्वल-तनुः ।
सदा तिष्ठन् देशे प्रणयि-गरुडस्तम्भ-चरमे
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ ६ ॥

जो अपने परम प्रिय गरुड़स्तम्भके पीछेके स्थानमें खड़े होकर सदा अपने सामने विराजमान नीलाचलपति श्रीजगन्नाथजीके परम प्रेमपूर्वक दर्शन करते हैं और उस समय जिनका विशाल गौराङ्ग श्रीविग्रह प्रेमभरी अश्रुधाराओंसे भीगा रहता है, उन श्रीशचीनन्दन महाप्रभुका क्या मुझे फिर दर्शन प्राप्त होगा ? ॥ ६ ॥

मुदा दन्तैर्दष्ट्वा द्युति-विजित-बन्धूकमधरं
करं कृत्वा वामं कटिनिहितमन्यं परिलसन् ।
समुत्थाप्य प्रेम्णागणित-पुलको नृत्यकुतुकी
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ ७ ॥

रक्तवर्णके बन्धूक पुष्पकी कान्तिको पराजित करनेवाले अपने अधरको जो अपने दान्तोंसे हर्षपूर्वक दवाते हैं, और जो अपने वायें हाथको कमरपर रखकर तथा दायें हाथको ऊपर उठाकर सुशोभित होते हैं एवं प्रेममें विभोर हो अतिशय पुलकायमान होकर नृत्य-विलास करते हैं, उन नृत्य-कुतुकी श्रीशचीनन्दनके क्या मैं फिर दर्शन प्राप्त कर सकूंगा ? ॥ ७ ॥

सरित्तीरारामे विरह-विधुरो गोकुलविधो-
र्नदीमन्यां कुर्वन्नयन-जलधारा-विततिभिः ।
मुहुर्मूर्छां गच्छन्मृतकमिव विश्वं विरचयन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥ ८ ॥

श्रीगंगाजीके तीरस्थित ईशोद्यान नामक बागीचेमें गोकुलचन्द्र श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल होकर अपने नेत्रोंसे असंख्य अश्रुधाराओंको प्रवाहित करते हुए जो एक दूसरी नदीसी वहा रहे हैं और बारम्बार मूर्च्छित होकर समस्त विश्वको मानो मृतक तुल्य कर देते हैं, वे शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्यदेव क्या फिर मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे ? ॥ ८ ॥

शचीसूनोरस्याष्टकमिदमभीष्टं विरचयत्
सदा दैन्योद्रेकादति-विशद-बुद्धिः पठति यः ।
प्रकामं चैतन्यः प्रभुरति-कृपावेश-विवशः
पृथु-प्रेमाम्भोधौ प्रथित-रसदे मज्जयति तम् ॥ ९ ॥

समस्त मनोवाञ्छाओंको पूर्ण करनेवाले इस श्रीशचीसूनु-अष्टक स्तोत्रका जो विशुद्ध-बुद्धिवाला व्यक्ति दीनतापूर्वक सदा पाठ करता है, उसे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अतिशय करुणाके आवेशमें विवश होकर प्रख्यात भक्तिरस प्रदान करनेवाले विशाल प्रेमसागरमें सराबोर कर देते हैं ॥ ९ ॥







# पञ्चतत्त्वात्मक-कृष्ण-वन्दना



नमः श्रीगुरुकृष्णाय निरुपाधिकृपाकृते ।
यः श्रीचैतन्यरूपोऽभूत् तन्वन् प्रेमरसं कलौ ॥ १ ॥

श्रीमन्नित्यानन्दचन्द्रं करुणामयविग्रहम् ।
चैतन्याभिन्न—देहं तं वन्दे सर्वजनप्रियम् ॥ २ ॥

वन्दे आचार्यमद्वैतं भक्तावतारमीश्वरम् ।
यस्य ज्ञात्वा मनोवृत्तिं चैतन्योऽवतरेद्भुवि ॥ ३ ॥

श्रीह्लादिनी—स्वरूपाय गौराङ्गसुहृदाय च ।
भक्तशक्तिप्रदानाय गदाधर नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

श्रीवास कीर्तनानन्द भक्तगोष्ठ्येकवल्लभ ।
त्वां नमामि महायोगिन् भक्तरूपोऽसि नारदः ॥ ५ ॥

पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम् ।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम् ॥ ६ ॥

अहैतुक करुणाकर जगद्गुरु श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है, जो कलियुगमें प्रेमरस वितरणके लिये श्रीचैतन्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ १ ॥

श्रीचैतन्यकी अभिन्न-मूर्त्ति, सर्वजन-प्रिय, करुणामय-विग्रह श्रीमन्नित्यानन्दचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूं ॥ २ ॥

भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य-प्रभुकी मैं वन्दना करता हूं, जिनकी मनोवृत्तिको जानकर श्रीचैतन्यमहाप्रभु धरातलपर अवतीर्ण हुए ॥ ३ ॥

ह्लादिनी शक्ति—श्रीराधास्वरूप, श्रीगौरांगके सुहृद तथा भक्तशक्ति प्रदाता श्रीगदाधर पण्डितको मेरा नमस्कार है ॥ ४ ॥

कीर्तनानन्दी भक्तगोष्ठीके एकमात्र परमप्रिय महायोगी श्रीनारदरूप श्रीवास पण्डितको मेरा प्रणाम है ॥ ५ ॥

भक्तरूप (श्रीकृष्णचैतन्य), भक्तस्वरूप (श्रीनित्यानन्द), भक्तावतार (श्रीअद्वैताचार्य) भक्ताख्य (श्रीवासादि) तथा भक्तशक्ति (श्रीगदाधर)–इन पञ्चतत्त्वात्मक श्रीकृष्ण (श्रीकृष्णचैतन्य) को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥

## षड-गोस्वामि-वन्दना

श्रीरूपसानुग नमोस्तु नमोस्तु तुभ्यं
श्रीमत्सनातन नमोस्तु नमोस्तु जीव ।
श्रीयुक्तदासरघुनाथ नमोस्तु नित्यं
गोपालभट्ट रघुनाथ नमो नमोस्तु ॥





श्रीमन्महाप्रभु-गौरांग-मुखोद्गीर्ण

# * शिक्षाष्टक *



**चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं,**
**श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।**
**आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं,**
**सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनम् ॥ १ ॥**

जो चित्तरूप दर्पणको मार्जित करनेवाला है, संसार-तापरूप महादावानलको बुझानेवाला है, मंगलरूप कौमुदीके लिये ज्योत्स्ना वितरण करता है, विद्यारूप-वधूका प्राण स्वरूप है, आनन्द-समुद्रको वर्द्धित करनेवाला है, जिसके प्रतिपदमें ही पूर्ण अमृतका आस्वादन है, एवं सर्वात्म- (मनेन्दिय) की तृप्ति विधान करनेवाला है– ऐसा श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तन सर्वोत्कर्षसे विजययुक्त होकर विराजमान है ॥ १ ॥

**नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।**
**एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥ २ ॥**

भगवन् ! आपने (कृष्ण, गोविन्द, मुकुन्द—आदि) अनेक प्रकारसे अपने नामोंका प्रचार किया है, उन नामोंमें फिर आपने अपनी समस्त शक्ति भी अर्पण कर दी है । उन नामोंके स्मरण करनेमें कोई भी देश-कालादिका नियम नहीं है । हे प्रभो ! आपकी ऐसी कृपा है, किन्तु मेरे ऐसे फूटे भाग्य कि आपके ऐसे नाममें भी मेरा अनुराग नहीं उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

**तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।**
**अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥ ३ ॥**

तृणसे भी अति नीच होकर, वृक्षकी भांति सहिष्णु होकर, अपने लिये मानकी कभी भी इच्छा न रखकर, एवं दूसरोंको मान देनेवाला होकर ही सदा श्रीहरिनामका कीर्त्तन करना चाहिये ॥ ३ ॥

**न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये ।**
**मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥ ४ ॥**

—'हे जगदीश ! मैं आपसे धन नहीं मांगता, जन नहीं मांगता, सुन्दरी पत्नी अथवा सालंकार कविता भी नहीं चाहता हूं, मेरी एक मात्र प्रार्थना यह है कि आप ईश्वरमें मेरी जन्म-जन्ममें अहैतुकी भक्ति बनी रहे ॥ ४ ॥

**अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।**
**कृपया तव पादपङ्कजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥ ५ ॥**

हे नन्दलाल ! विषम संसार-समुद्रमें निपतित, अपने ही एक किंकर (दास) मुझको कृपा करके अपने चरण-कमलोंकी धूलि सदृश मान लीजिये ॥ ५ ॥

**नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्‌गद्‌रुद्धया गिरा ।**
**पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥ ६ ॥**

'हे भगवन् ! ऐसा कब होगा ? जब आपका नाम ग्रहण करते हुए विगलित अश्रुधारामें नेत्र परिव्याप्त होंगे, मेरा कण्ठ गद्‌गद् वाक्योंसे रुद्ध हो जायेगा एवं मेरा समस्त देह पुलकित हो उठेगा ॥ ६ ॥

**युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।**
**शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥ ७ ॥**

श्रीगोविन्दके विरहमें मेरे लिये एक निमेषकाल (पलक लगने तक का काल) एक युगके बराबर हो गया है । मेरे नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधाराकी वर्षा हो रही है। मुझे समस्त जगत् शून्य ही दीखता है ॥ ७ ॥

**आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।**
**यथा तथा वा विदधातु लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥ ८ ॥**

हे सखि ! श्रीकृष्ण अपनी पद-दासी मुझको आलिंगन द्वारा अपने वक्षस्थलसे लगाकर आत्मसात् ही करलें, अथवा दर्शन न देकर मुझे मर्माहत (मृत्युतुल्य पीड़ा प्रदान) ही करें, अथवा लम्पट (बहुवल्लभ) जहां-तहां विहार ही करते फिरें, ( वे कुछ भी क्यों न करें ) वे मेरे प्राणनाथ ही हैं, और कोई दूसरे नहीं ॥ ८ ॥







# महाप्रभु श्रीगौरांग-चरितांश



**जन्म—**

शुभसंवत् १५४२ (सन् १४८६, १९ फरवरी) फाल्गुन मासकी २३ तारीखको शनिवार था, सन्ध्याके समय सिंह लग्नमें जब सबके सब ग्रह उच्च स्थानपर थे, षड्वर्ग-अष्टवर्गादि समस्त शुभलक्षणोंसे परिपूर्ण क्षण आए तो मिश्र श्रीजगन्नाथ पुरन्दर—शचीदेवीके घर पुत्ररूपमें श्रीगौरचन्द्रने जन्म-लीला प्रकट की।

दिन तो था पूर्णिमाका, किन्तु अकलंक-अप्राकृत गौरचन्द्रके उदय होनेके कारण सकलंक चन्द्रकी कुछ भी प्रयोजनीयता न समझकर राहुने उसे आकर ग्रस लिया था। चन्द्र-ग्रहणको देखकर विश्वका हिन्दूजन-समाज भगवन्नाम, जपादि शुभानुष्ठानोंमें जुटा हुआ तो था ही, नवद्वीपका प्रत्येक नरनारी जगपावनी गंगा नीरमें 'हरि बोल हरि बोल' की तुमुल ध्वनिसे अजब आनन्द मना रहा था। वैसे भी फाल्गुन मास होलीके रंगीले वातावरणसे सर्वांग रंजित हो चुका था, जन-जनमें मनोल्लास ठाठें मार रहा था। इधर गौरचन्द्रके प्रकट होते ही चारों ओर अमृतमयी ज्योत्स्ना और शीतलताकी स्वच्छ कादम्बिनी छा गई। नवद्वीप-वासी श्रीकृष्णभक्त श्रीअद्वैताचार्यादिके आनन्दोल्लासका क्या पारावार? क्योंकि उनके उच्च हुंकारमय क्रन्दन, उत्कट साधना तथा जग-जीवोंकी भगवत् स्मृति-विहीन अतिशय दीन दशा निवृत्तिके लिये सच्ची पुकार ही इस करुणापारावार अवतार की आधार शिला थी।

मिश्र जगन्नाथ-शचीदेवीकी आठ कन्याओंकी एक-एक करके मृत्यु हो जानेके बाद उनका एक ही तो पुत्र पहले था—श्रीविश्वरूप। आज उस दम्पतीके आनन्दकी सीमा न थी। डाकिनी-शाकिनीके भयसे पुत्रको **'निमाई'** नामसे पुकारा जाने लगा। निमाईके नाना श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीने इनका नाम **'विश्वम्भर'** रखा, किन्तु नवद्वीपवासियोंको **'निमाई'** **'गौर-सुन्दर'** **'गौर-हरि'** **'गौरांग'** ये नाम अति प्यारे लगते थे, क्योंकि सोनेकी भांति चमकती हुई उज्ज्वल पीत कान्ति थी इनके श्रीविग्रहकी।

**विद्यारम्भ एवं अध्ययन-त्याग—**

यथा समय निमाई प्रभुने पं० गंगादासकी संस्कृत-पाठशालामें सम्मिलित होकर विद्या आरम्भ की। इनकी परम प्रखर प्रतिभा, असाधारण सुतीक्ष्ण बुद्धि कुछ एक दिनोंमें सबको प्रभावित करने लगी। जगह-जगह इनकी विद्वत्ताको प्रशंसा सुनकर पं० जगन्नाथजीने

इनका पढ़ना-लिखना बन्द करा दिया। डर था उनके दिलमें कि कहीं यह भी अधिक पढ़-लिखकर संसारकी असारताका अनुभव कर घरबारका प्यार छोड़कर संन्यासी न बन जाए, जैसे उनका बड़ा पुत्र विश्वरूप उन्हें छोड़कर चला गया था। अतः उन्होंने श्रीनिमाईका अध्ययन बन्द करा दिया।

बालक पढ़ेगा नहीं तो, चञ्चलता करेगा ही, अति चञ्चल हो उठे श्रीनिमाई। पाड़-पड़ौसके बच्चोंको मारना, वृक्षोंको तोड़ना, पवित्र-अपवित्रका कोई विचार न करना–ये सब ऐसी उद्धता कि सब परेशान होगए। सबने मिश्रजी को निमाईको पढ़ने भेजनेका आग्रहपूर्वक परामर्श दिया। श्रीमिश्रजीने इन्हें पुनः पढ़ने बैठाया। थोड़े समय बाद श्रीमिश्रजीका देहान्त होगया। शचीमाता अति दुखी हो उठीं, किन्तु श्रीनिमाईका प्राणोंकी तरह पालन करने लगीं।

**प्रथम-विवाह—**

अभी श्रीनिमाई अध्ययन ही कर रहे थे कि श्रीवल्लभाचार्यकी सुयोग्य कन्या श्रीलक्ष्मी प्रियाजीसे आपका विवाह कर दिया गया। जल्दी विवाहका कारण भी वही था कि श्रीनिमाई गृहस्थ होकर माताके पास रहा आवे, बड़े भाई श्रीविश्वरूपकी तरह विरक्त होकर घर-परिवारका त्याग न कर दे।

**अध्यापन, पूर्वीबंगाल-भ्रमण—**

अपना अध्ययन पूरा करते ही श्रीगौरांग छात्रोंको पढ़ाने लगे। देश-देशान्तरसे सैंकड़ों छात्र आकर आपसे विद्याध्ययन करने लगे। नवद्वीप उस समय विद्याका केन्द्र था। अनेक विद्वानोंका अखाड़ा था उन दिनों। नवद्वीपके पण्डितोंको विद्यामें पराजित करनेके लिए दूर-दूरसे दिग्विजयी आया करते। किन्तु श्रीनिमाई पण्डितके आगे सबको हार ही स्वीकार करनी पड़ती।

विद्या–वितरणके उद्देश्यसे श्रीनिमाई भी अनेक विद्यार्थियोंके साथ एकबार पूर्वी-बंगाल गये। वहां असंख्य विद्यार्थियोंने आपसे विद्या अध्ययन की।

**श्रीनाम-प्रचार—**

श्रीगौरांगने पूर्वीबंगालमें ही सर्व प्रथम श्रीहरिनामका प्रचार भी आरम्भ किया। हरि-ध्वनिमें ही आपका आविर्भाव हुआ था। जब बचपनमें इनका रोना बन्द न होता, तो सब 'हरि-हरि' बोलते तब इनका रोना तत्काल बन्द हो जाता था। नाम-प्रचार तो इनके आविर्भावका एक कारण ही है, जो पूर्वीबंगालसे आरम्भ हुआ।





**द्वितीय-विवाह—**

श्रीगौरांग बंगालमें ही थे कि पीछेसे पति-वियोगने सर्पके रूपमें आकर श्रीलक्ष्मीदेवीको काटा और उसका अन्तर्धान हो गया। घर लौटने पर आपने माताको सान्त्वना दी। माताके आग्रह पर आपने राजपण्डित श्री-सनातन की कन्या विष्णुप्रियाजी का पाणि ग्रहण किया।

**गया-यात्रा एवं दीक्षा—**

कुछ दिनों बाद श्रीगौरांग अपने पिताजीका श्राद्ध करनेके लिये गया गये। श्रीविष्णुचरण-दर्शन करते ही विह्वल हो उठे। वहां इन्होंने श्रीईश्वरपुरीजीसे श्रीकृष्णमन्त्र की दीक्षा ग्रहण करनेकी लीला की। दीक्षाके बाद कृष्णप्रेममें उन्मत्त हो उठे श्रीगौरांग। नवद्वीप लौटकर कृष्णभजनके लिये वृन्दावनकी ओर जानेका संकल्प किया, किन्तु आकाश-वाणीने निषेध किया। जो श्रीगौरांग गया गए थे, अब श्रीगौरांग वे न थे, अब वे थे एक कृष्णप्रेमोन्मत्त, विरह-कात्तर, कृष्णमिलनके लिये दैन्यका मूर्त्त-विग्रह।

**परिवर्त्तन—**

श्रीगौरांगकी यह परिवर्तित अनूठी दशा देखकर नवद्वीपवासी भक्तोंके प्राण खिल उठे। इनकी अद्वितीय प्रतिभा देखकर पहले वे परस्पर कहा करते थे, यदि निमाई पण्डित कृष्णभजनमें प्रवृत होजाए, तो नवद्वीपके कृष्ण-विमुख विद्वान् जो काली, चण्डी देवी की उपासना में जीवन वृथा खो रहे हैं और वैष्णवोंको गालियां दे-देकर दुखी करते हैं, सब ठीक हो जायें। आज उनकी मनोकामना पूर्ण हो गई। श्रीगौरांग अब अध्ययन नहीं कराते, विद्यारसास्वादनके लिए पण्डितोंकी सभामें न जाते। शिष्य समाजमें बैठते तो केवल 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते रहते। सूत्रोंकी व्याख्या क्या करते, श्रीकृष्णकथा ही कहते। अब हर समय वे वैष्णव मण्डलीमें श्रीकृष्ण नाम-गुण-लीलाकथामें विभोर दीखते प्रमोन्मत्त होकर पृथ्वीपर कभी-कभी लोटते दीखते थे। अनेक वैष्णवोंसे मिलकर नगरमें, श्रीवासांगनमें नाम-संकोर्त्तनकी ध्वनि-ही ध्वनि सुनाई देती थी।

**कीर्त्तन-विघ्न एवं काजी-दमन—**

मुसलमानी राज्य था उस समय, चारों ओर उच्च श्रीहरिनामध्वनि मुसलमानोंको तो खटकती ही थी, उनसे कहीं अधिक देवी-चण्डीके उपासकोंको दिलमें दर्द पैदा करती थी। कीर्त्तनमें बाधा डालने वालोंकी कमी उस समय भी न थी। काजीको शिकायत की गई कि दिनरात इस शोरोगुलसे आपकी प्रजा परेशान है। काजीने तत्काल कीत्तन, खोल बजाने उच्चनाम-गानपर रोक लगा दी। कहीं-कहीं जाकर खोल-मृदंग पांव मारकर तोड़ भी दिये गए। वैष्णवोंके प्राण रो उठे।

श्रीगौरांगकी शरणमें आए सब मिलकर। श्रीगौरांगने महा नगर संकीर्त्तनका आयोजन किया। सन्ध्याके समय हाथोंमें हजारों हिन्दुओंने जलती मशालें पकड़ीं और वैष्णवों की टोलियां खोल-ताल लेकर उच्च संकीर्त्तन करते हुए उसी चाँद काजीके घरकी तरफ चल दिये। नेतृत्व कर रहे थे संकीर्त्तन सम्राट श्रीगौरांग। नवद्वीपका आकाश मण्डल नामध्वनि से गूंज उठा।

काजीको सूचना मिली कि संकीर्त्तन-यात्रा तुम्हारे घरकी ओर आ रही है। दहल गया काजी और अन्त:पुरमें जा छिपा। छिपनेसे काम थोड़ा बननेका था। दरवाजेपर आकर श्रीगौरांगने काजीको ललकारा अद्भुत तेजके साथ। त्रिभुवन मनहारी माधुर्य था श्रीगौरांगके मुखचन्द्रपर। काजी बाहर आया, उस अपरूप रूपको देखकर बिक सा गया। प्रभुने उसे बैठाकर वार्त्तालाप किया। यवन-धर्मकी आलोचना की। प्रभुके आगे मस्तक झुकाकर काजीने एलान किया कि आजके बाद नवद्वीपमें ही नहीं सर्वत्र नदियामें नामसंकीर्त्तनमें कोई भी विघ्न नहीं होगा। श्रीगौरांगने उसे गले लगाकर अपना कृपापात्र बना लिया। समस्त वैष्णव आनन्दसे नाचते हुए अपने घरोंमें लौट आए।

**जगाई-माधाई उद्धार—**

जगन्नाथ और माधव थे तो ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न, किन्तु कोई दुराचार, अनाचार उनसे छूटा न था। मद्य-पीना, मांस-खाना, लोगोंको लूटना, व्यभिचार, हिंसा, ऐसा कोई कर्म न था जो वे न कर डालते। किन्तु श्रीगौरांगने दयाल-मूर्ति श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु एवं श्रीहरिदास ठाकुरको उनके पास भेजकर उनका उद्धार कर दिया। सिरपर शराबकी सुराही दे मारी माधवने, श्रीनित्यानन्दप्रभुका मस्तक फट गया; किन्तु उनसे श्रीहरिनामकी भिक्षाका हठ नहीं त्यागा। वहां पहुँचने पर श्रीगौर श्रीनित्यानन्दप्रभुकी रक्तधाराको देख भूल गए अपने आपको, क्रोधके आते ही हाथपर सुदर्शन चक्र चमक उठा, किन्तु श्रीनिताई चाँदने थाम लिया और प्रभुको विवश कर दिया उन दोनों पापियोंको पावन करनेके लिये। दोनोंने प्रभुकी चरण-शरण पकड़ी। कलके महान् दु:श्चरित्र दुराचारी आज परम वैष्णव, दीनताकी मूर्त्ति होकर श्रीकृष्ण-नाम संकीर्त्तनमें नाच रहे थे। परम दुर्लभ वस्तु कृष्ण-प्रेम प्रदानकर करुणाकी पराकाष्ठा प्रकाशित कर दी प्रेमावतार श्रीगौरांग प्रभुने।

**संन्यास—**

यवन काजी तथा जगाई-माधाईके उद्धार हो जानेके बाद भी अनेक ऐसे स्वाभिमानी पण्डित रह गए थे जो श्रीगौरांग प्रभुकी निन्दा करते थे। श्रीगौरांगने मनमें विचार किया, मेरा अवतार है सबको निष्पाप, निरपराधकर उन्हें प्रेमभक्ति प्रदान करना। किन्तु ये निन्दक लोग तो मेरी निन्दाके अपराधके कारण कभी प्रेम-भक्ति प्राप्त न कर सकेंगे। हां, यदि ये मुझे नमस्कार करें तो इनका निन्दा अपराध दूर हो सकता है। प्रभुने उसका





एक ही उपाय संन्यास ग्रहण करना निश्चित किया, क्योंकि संन्यासीको देखकर सब लोग उस समय और अब भी नमस्कार करते हैं ।

संन्यास लेकर ही इन्हें दूर देशान्तरमें जाकर जीवोंके उद्धार करनेका सुयोग्य अवसर प्राप्त हो सकता था, और भी अनेक कारण थे जिनको लक्ष्य कर श्रीगौरांगने सवत् १५६६ (सन् १५०९) २७ माघ, बृहस्पतिवार रात्रिको गृह त्याग कर दिया। माता शची एव नवकिशोरी श्रीविष्णुप्रियाजोको सोता हुआ एवं असहाय-अवस्थामें छोड़कर आप कोटाया नगरमें पहुंचे और २९ माघ मकर-संक्रान्ति पूर्णिमाके दिन श्रीकेशवभारतीजीसे संन्यास दीक्षा ग्रहण कर ली । आप उस समय २३ वर्ष ११ मासके थे । दीक्षा ग्रहणका एक नाटक सा रचा । पहले स्वयं श्रीगौरांगने श्रीभारतीजीके कानमें मन्त्र फूंका और फिर उनसे उसी मन्त्रको ग्रहण किया । जगद्-गुरुका भला कौन गुरु ? तभीसे आप 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामसे विख्यात हुए ।

**नीलाचल-यात्रा एवं सार्वभौम वासुदेव—**

संन्यास ग्रहणके बाद श्रीगौरांग शान्तिपुर होते हुए नीलाचल–श्रीजगन्नाथपुरी पहुंचे । श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें उन्हें प्रेमोन्मत्त अवस्थामें बेसुध पड़ा देख श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य उठवाकर अपने निवास-स्थानपर ले गये । श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अद्वैतवादके प्रखर विद्वान् एवं स्तम्भ थे । न्यायादि दर्शनोंमें परम निष्णात थे वे । अनेक शिष्योंको अद्वैत-वेदान्त पढ़ाते थे । श्रीचैतन्यको श्रीसार्वभौमने वेदान्त सूत्र सुनाया । फिर श्रीमहाप्रभुने उन्हें वेदान्तसूत्रोंका प्रकृत अर्थ सुनाया और श्रीपाद शंकराचार्यके भाष्यका खण्डन किया । श्रीसार्वभौम आश्चर्य-चकित रह गए । अन्तमें उन्होंने श्रीचैतन्यके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर दिया । साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णरूपमें प्रभुके दर्शन श्रीसार्वभौमने किये ।

**दक्षिण-यात्रा एवं राय रामानन्द—**

नीलाचलमें कुछ दिन रहनेके बाद श्रीगौरांगप्रभु दक्षिण देशकी यात्रापर चल दिये । रास्तेमें अनेकानेक लोगोंको कृष्ण-प्रेम सुरसरिमें अवगाहन कराते हुए गोदावरी-तीरस्थ राजमुन्दरीके राज्यपाल श्रीराय रामानन्दसे मिले । उनके साथ श्रीमहाप्रभुने साध्य-साधनका निर्णय किया । रायरामानन्द अद्वितीय विद्वान् एवं परमभक्त थे । श्रीगौरांगने पूर्वपक्ष उठाकर अथवा जिज्ञासु बनकर उनके हृदयमें कृष्णभक्तिका संचार किया और उनके मुखसे परम साध्यको प्रकाशित कराया । उन्होंने फिर पुरीमें आकर श्रीमहाप्रभुके चरणोंमें वास किया ।

दक्षिण यात्रामें श्रीवैंकटभट्ट, जो श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके भाई थे, के घर आपने चातुर्मास्य बिताया । श्रीवैंकटभट्टके सुपुत्र श्रीगोपालभट्टजी हैं जो छः गौड़ीय गोस्वामियोंमें अन्यतम हैं । श्रीमहाप्रभुने दक्षिण देशमें जो भक्ति मन्दाकिनी चिरकालसे सूखी पड़ी थी, फिरसे प्रवाहित कर दी । सर्वत्र भगवद्भक्तिका बोल-बाला हो उठा ।

**वृन्दावन-यात्रा—**

श्रीगौरांगने श्रीलोकनाथ गोस्वामी एवं श्रीभूगर्भ गोस्वामीको लुप्त-प्राय वृन्दावनमें भेजा और उन्हें श्रीकृष्णकी लीला-स्थलियोंके उद्धारका काम सौंपा। उन्होंने इस दिशामें सफलता प्राप्त की। लगभग ५ वर्ष वाद सन् १५१४ में श्रीगौरांग वृन्दावन-यात्राके लिये तैयार हुए। किन्तु रामकेलि ग्राममें साकर-मलिक - श्रीसनातन और दवीर-खास—श्रीरूपके परामर्शसे वापस पुरी लौट गये। लगभग एक वर्ष वाद श्रीगौरांग झारिखण्डके रास्तेसे, वाराणसी होते हुए प्रयाग और वहांसे यमुनाके किनारे-किनारे चलकर वृन्दावन आए। यहां इनका श्रीकृष्णविरह, दिव्योन्माद पराकाष्ठापर प्रकाशित हो उठा। आपने बारह वनोंमें प्रेम-दशामें भ्रमण किया तथा श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डको प्रकाशित किया।

वृन्दावनसे लौटते समय प्रयागमें श्रीगौरांगके दर्शन श्रीवल्लभाचार्यको प्राप्त हुए। वे इन्हें अपने अडैलग्राममें ले गये और श्रीकृष्णके समान इन्हें तुलसी डालकर अमनिया भोग लगाया। प्रयागमें ही श्रीरूप एवं वाराणसीमें श्रीसनातन गोस्वामीने आकर श्रीगौरांगको आत्म-समर्पण किया। श्रीमन्महाप्रभुने उन दोनोंमें अपनी कृपाशक्तिका सञ्चार किया और विशुद्ध वैष्णव-धर्मकी शिक्षा देकर वृन्दावन भेज दिया। उन्होंने असंख्य वैष्णव धर्मग्रन्थोंकी रचनाएं कीं एवं व्रजके लुप्त तीर्थोंका उद्धार किया।

वाराणसीमें मायावादी संन्यासियोंके गुरु श्रीप्रकाशानन्दका उद्धार किया। उन्हें 'प्रबोधानन्द' नाम देकर वृन्दावन भेजा। उन्होंने श्रीचैतन्य-निष्ठा, श्रीराधादास्यनिष्ठा, श्रीवृन्दावन-निष्ठाके अतिरिक्त अनेक भक्तिग्रंथोंकी रचना की।

**पुरीमें निज-रसास्वादन—**

इस यात्रासे आनेके बाद श्रीगौरांग फिर पुरीसे बाहर कहीं भी न गये। अठारह वर्ष पर्यन्त वहां रहकर श्रीगौरांगने कृष्ण-विरहमें दिव्योन्मादमयी आनन्दावस्थाका आस्वादन किया। श्रीस्वरूपदामोदर श्रीरायरामानन्दके साथ निश्दिन कृष्णलीला-कथाके माधुर्यमय अथाह सागरमें निमग्न रहे आये। उनमें जो सात्त्विक विकारोंका प्रकाश हुआ, उसका उल्लेख किसी औरके पक्षमें नहीं देखा-सुना जाता।

**लीलावसान—**



संवत् १५९१ का आषाढ़ मास, ३१ तिथि, (सन् १५३३, २९-जून) जीव-जगत्के असीम दुर्भाग्यका कारण बनी, जिसमें ४७ वर्ष चार मास १२ दिन पर्यन्त पृथ्वी तलपर वर्तमान रहनेवाले एक स्निग्ध ज्योतिपुञ्ज प्रेमामृत-सञ्चारी श्रीगौरचन्द्र लोगोंकी दृष्टिसे ओझल हो गये। भक्तवृन्दका प्राणधन लुट गया और पृथ्वीपर निरानन्दका राज्य छा गया। श्रीगौरांग



तो श्रीजगन्नाथजीके श्रीविग्रहको आलिंगनकर ( कईयोंके मतमें टोटा श्रीगोपीनाथ-विग्रहमें ) निज नित्य लीलामें प्रवेश कर गए ।

असंख्य, अपार, अद्भुत चरित्र हैं महाप्रभु श्रीगौरांगके, जिनका अति विस्तृत वर्णन हुआ है—श्रीचैतन्य-भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत; श्रीचैतन्यचन्द्रामृत, श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक, श्रीचैतन्यचरितामृत–महाकाव्य, श्रीचैतन्यमंगल, श्रीचैतन्यप्रेमसागर आदि अनेक ग्रन्थोंमें । यहां केवल चरितांशकी छोटी सी झलक दिखाई गई है परिचय मात्रके लिये । इनमेंसे कुछ ग्रन्थोंके हिन्दी संस्करण उपलब्ध हैं, उनका अध्ययन अपेक्षाकृत आवश्यक है ।

## महाप्रभु-श्रीगौरांग जन्म-कुण्डली

| | | |
|---|---|---|
| ७ | ११ | १८ |
| १५ | १६ | ४ |
| ३१ | ० | ० |
| ० | ० | २३ |

**शाके मुनि व्योम-युगेन्द्र-गण्ये**
**पुण्ये तथा फाल्गुण पौर्णमास्याम् ।**
**त्रैलोक्य – भाग्योदय – पुण्यकीर्तिः**
**प्रभुः शचीमन्दिरमाविरासीत् ।।**

**शकनरपतेरतीताब्दा १४०७ फाल्गुणस्य त्रयोविंशति वासरे सिंहलग्ने राहुग्रस्तनिशाकरे उत्तर फाल्गुन्यां सिंहराशौ चन्द्रे श्रीमद्वृन्दावन पुरन्दरः पुरन्दर शचीमन्दिरमाविरासीत् इति ।**

# महाप्रभु-श्रीगौरांगकी स्वयं-भगवत्ता

नित्यलीला-प्रविष्ट डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथजी
एम. ए., डी. लिट्-पराविद्याचार्य, विद्यावाचस्पति



व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही सच्चिदानन्दघन परब्रह्म, स्वयं-भगवान् हैं, अनादिकालसे ही अनन्तरूपोंसे आत्मप्रकाश करते हुए वे विराजित हैं; उन समस्त अनन्त प्रकाशोंमें वासुदेव, नारायण, राम, नृसिंह, सदा शिवादि उनके अंश हैं—यह बात श्रुति-स्मृति, पुराण-शिरोमणि श्रीमद्भागवतादि शास्त्रोंमें अनेक स्थलोंपर स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित की गई है। परब्रह्म स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णका एक और स्वरूप भी है; वह स्वरूप उनका अंश नहीं है; किन्तु उसमें स्वयं-भगवत्ता ही विराजित है। वह स्वरूप किन्तु व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी भांति श्याम-वर्ण नहीं है, वह है पीतवर्ण। इस पीतवर्ण स्वयं भगवान्-स्वरूपका वर्णन पंचमवेद–श्रीमद्भागवत तथा स्मृति-श्रुति, महाभारतादिमें निरूपित हुआ है। वह पीतवर्ण स्वयं-भगवान् हैं–श्रीगौरांग-महाप्रभु। इस विषयको हम यहां संक्षेपसे प्रस्तुत करते हैं—

श्रीमद्भागवतमें —

यह प्रसङ्ग सर्वविदित है कि श्रीवसुदेवजीने अपने कुलगुरु श्रीगर्गाचार्यको श्रीनन्द-महाराजके पास भेजा श्रीकृष्ण-बलरामके नामकरणके लिये। उस दिन श्रीकृष्ण ठीक सौ दिनके थे। प्रातःकाल मुनि श्रीनन्दराजके गोष्ठमें पहुंचे। श्रीनन्दराजने श्रीकृष्ण-बलरामके नाम-करण-की उनसे प्रार्थना की। उन्होंने रोहिणी-पुत्रके तीन नाम राम, बल तथा संकर्षण बताये। श्रीकृष्णको देखकर वे बोले—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु युगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥

—श्रीभागवत १०-८-१३

हे व्रजराज! तुम्हारा यह पुत्र भिन्न-भिन्न युगोंमें भिन्न-भिन्न शरीर धारण करता है। शुक्ल, रक्त तथा पीत, इन तीन वर्णोंके शरीर इसके पहले हो चुके हैं; अब यह कृष्णताको प्राप्त हुआ है।

श्रीनन्दमहाराज शुद्ध वात्सल्यके विग्रह हैं, वे श्रीकृष्णको अपना पुत्र मात्र ही जानते हैं, उनमें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कभी ईश्वर-बुद्धि नहीं जागती। इसलिए श्रीगर्गाचार्यने कृष्णका नाम-करण करते हुए कृष्णतत्त्वको ऐसे ढंगसे प्रकाशित किया कि श्रीनन्दजीके हृदयभावको कोई आघात न लगे। यह कह भी दिया उन्होंने कि यह स्वयं-भगवान् हैं, प्रतियुगमें विभिन्न





नामों एवं वर्णोंसे ये अवतार ग्रहण करते हैं।

सत्ययुगमें शुक्लवर्णका अवतार होता है, त्रेतामें रक्तवर्णका, द्वापर की बात वे कह ही रहे थे, कि अब यह कृष्णताको-कृष्णवर्णको प्राप्त हुआ है। चौथा वर्ण रह जाता है पीत और युग भी बाकी रहता है कलियुग। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि श्रीभगवान् पीत-वर्णसे कलियुगमें अवतीर्ण होते हैं।

किन्तु गर्गाचार्यने पीत-वर्ण अवतारकी बात किस कलिके बारेमें कही ? —उस समय अभी कलि नहीं आया था। अत: यह किसी पहले कलियुगके सम्बन्धमें उन्होंने कहा कि पहले किसी कलिमें यह पीत वर्ण भी धारण कर चुका है।

श्रीगर्गाचार्यने शुक्ल, रक्त तथा पीतवर्ण जैसे कहे, उसी प्रकार कृष्ण' न कहकर यह कहा कि 'इदानीं कृष्णतां गत:'—अब यह कृष्णताको प्राप्त हुआ है। इस पद द्वारा श्रीगर्गाचार्य-ने वास्तवमें श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ताका वर्णन किया है। इसी द्वापरमें अब यह कृष्णताको प्राप्त हुआ है, पहले किसी द्वापरयुगमें नहीं।

कृष्ण—शब्दसे परंब्रह्म स्वयं-भगवान् ही श्रुति द्वारा प्रमाणित हैं—

**कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।**
**तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥**
**सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्ट-कारिणे।**
**नमो वेदान्त-वेद्याय गुरुवे बुद्धि-साक्षिणे॥**

गोपाल पूर्वतापनी श्रुति—१

जिसमें आनन्द तथा आकर्षण एकत्र समाविष्ट हैं, वे श्रीकृष्ण हैं। वे वेदान्त-वेद्य हैं; अक्लिष्ट-कारी हैं, गुरु तथा बुद्धिके साक्षी हैं, सच्चिदानन्द-विग्रह हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि पीत-वर्णका अवतार किसी कलिका युगावतार है ? या कोई अन्य भगवत्-स्वरूप है ?

शास्त्रोंमें कहीं भी किसी भी कलिके युगावतारका वर्ण पीत होनेका उल्लेख नहीं है। बल्कि द्वापरके युगावतारका वर्ण भी शुकपत्राभ—तोतेके पंखके रंगका शास्त्र द्वारा प्रमाणित होता है और कलियुगके युगावतारका वर्ण सर्वस्थानोंमें श्याम बतलाया गया है। इससे स्पष्ट है कि द्वापरमें जो श्रीभगवान् कृष्णवर्णसे नन्दभवनमें अवतीर्ण हुए, वे द्वापरके युगावतार नहीं, बल्कि वे स्वयं-भगवान् ही अवतीर्ण हुए; क्योंकि ब्रह्माके एकदिनमें एक हजार द्वापर युगोंमें केवल एक द्वापरमें ही स्वयं-भगवान् अवतीर्ण होते हैं, बाकीके ९९९ द्वापरोंमें भगवान्का युगा-वतार हुआ करता है। फिर जिस द्वापर विशेषमें स्वयं-भगवान् अवतीर्ण होते हैं, उस युगमें युगावतार पृथक् रूपमें प्रकट नहीं होता। युगधर्मका प्रवर्त्तन स्वयं-भगवान् ही उस युगमें करते

हैं। युगधर्म-प्रवर्त्तनको देखकर श्रीकृष्णको साधारणतः द्वापरका युगावतार मान लिया जाता है, किन्तु वे द्वापरके युगावतार नहीं हैं।

पहले कह आये हैं कि कलिके युगावतारका वर्ण श्याम या कृष्ण है। फिर यह पीत वर्णका अवतार कैसा ? किस कलिका अवतार है ? इस प्रश्नका समाधान 'आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य' श्लोकका विचारपूर्वक विवेचन करनेसे सहजमें प्राप्त होता है। 'शुक्लो रक्तस्तथा पीतः'—इस पदमें 'तथा'-शब्दका प्रयोग श्रीगर्गाचार्यने किया है। जहां 'तथा'- शब्द प्रयुक्त होता है, वहां 'यथा'-शब्द अवश्य रहता है। 'यथा'-शब्दका प्रयोग स्पष्टतः 'कृष्णतां गतः'-के साथ है। 'यथा इदानीं कृष्णतां गतः, तथा पीत.—पीततां गतः —इस प्रकारका अन्वय संगत है, क्योंकि यथा-तथा शब्दोंका प्रयोग शास्त्रमें समान धर्मके पदार्थोंमें हुआ करता है।

अतः द्वापरके युगावतारका वर्ण शुकपत्राभ होनेपर भी जैसे अब श्रीभगवान् कृष्णता-को प्राप्त हुए हैं स्वयं-भगवान् होनेके कारण; उसी प्रकार कलिके युगावतारका कृष्ण वर्ण होते हुए भी किसी विशिष्ट कलिमें वे पीतताको ग्रहण करते हैं, अर्थात् जैसे इस द्वापरके अवतार श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, उसी प्रकार किसी कलि विशिष्टके अवतार जो पीत-वर्णसे प्रकट होते हैं, वे भी स्वयं-भगवान् हैं।

किस कलि-विशिष्टमें स्वयं-भगवान् पीत वर्णमें अवतीर्ण होते हैं ?—इस सम्बन्धमें यहां इतना ही उल्लेखनीय है कि जिस द्वापर-विशेषमें स्वयं भगवान् कृष्णवर्णसे अवतीर्ण होते हैं, ठीक उसके परवर्ती कलिमें वे पीत वर्णसे अवतीर्ण होते हैं—वह कलि वर्तमान ही है। पीतवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीगौरांग ही हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।

श्रीमद्भागवत नवयोगेश्वर-उपाख्यानमें श्रीकरभाजन योगेन्द्रने श्रीनिमि महाराजके प्रति प्रतियुगके अवतारका, तथा उनकी उपासना-विधिका वर्णन करते हुए कहा है—

> कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्।
> यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
> श्रीभागवत ११-५-३२

हे राजन् ! बुद्धिमान् व्यक्ति संकीर्त्तन-प्रधान पूजाके द्वारा गौर-कान्तिवाले भगवान्‌की उपासना या अर्चना करते हैं, जो सदा 'कृष्ण'-नाम-रूप-लीला-गुणोंका वर्णन करते हैं और जिनके अङ्ग-उपाङ्ग ही अस्त्र और पार्षद हैं; अर्थात् वे किसी अस्त्र-शस्त्र द्वारा पापियों, राक्षसोंका संहार नहीं करते, बल्कि अपने पार्षदों द्वारा ही कृष्ण-नाम-प्रेम-भक्तिका प्रचारकर असुरोंका उद्धार कर युगधर्म नामसंकीर्त्तन-का प्रवर्त्तन करते हैं।



इस श्लोकमें कलियुगके भगवदवतारकी अकृष्ण कान्ति अर्थात् गौर-कान्तिका स्पष्ट उल्लेख है। अतः श्रीमद्भागवतसे यह भी प्रमाणित है कि वर्तमान् कलिमें स्वयं-भगवान् गौर कांतियुक्त होकर अवतीर्ण होते हैं



और संकीर्त्तन यज्ञ द्वारा उनकी बुद्धिमान् लोग अर्चना करते हैं।

उपपुराणमें भी कहा गया है—

अहमेव क्वचिद् ब्रह्मन् संन्यासाश्रममाश्रितः।
हरिभक्तिं ग्राहयामि कलौ पापहतान्नरान्॥
—श्रीचै० च० १।३।१५ श्लोक

भगवान् श्रीकृष्णने श्रीवेदव्यासजीसे कहा—हे वेदव्यास! किसी विशिष्ट कलियुगमें मैं स्वयं ही संन्यास-आश्रमको ग्रहणकर पापसे नष्ट-बुद्धि मनुष्योंको हरिभक्ति ग्रहण कराता हूं, अर्थात् हरिभक्तिका स्वयं-आचरण कर जगत्को हरिभक्तिकी शिक्षा देता हूं। हरिभक्तिका स्वयं आचरण या युगधर्म श्रीनामसंकीर्त्तनका स्वयं आचरण कर श्रीमहाप्रभु गौरांगने कलिहत जीव-जगत्को भक्तिका दान दिया है—यह सब उनके चरित्रोंसे विश्व-विदित है।

**श्रुतियोंमें —**

श्रुतियोंमें भी पीतवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीगौरांगका उल्लेख है। मुण्डक-श्रुतिका कथन है—

**यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।**
**तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥**
मुण्डक श्रुति—३-१-३

जब कोई व्यक्ति कर्त्ता, ईश्वर, ब्रह्मयोनि रुक्मवर्ण पुरुषके दर्शन करता है, तो वह पुण्य-पापसे धुलकर निरंजन हो जाता है, विद्वान् हो जाता है तथा परम साम्यको प्राप्त करता है।

'रुक्म' – शब्दका अर्थ है सुवर्ण या सोना। रुक्मवर्णका अर्थ है सुवर्णवर्ण अर्थात् सोने जैसा पीतवर्ण। श्रुतिका कथन है वह रुक्मवर्ण अर्थात् पीतवर्ण पुरुष कर्त्ता है, ईश्वर है तथा ब्रह्मयोनि है। ब्रह्मयोनि अर्थात् ब्रह्मका अधिष्ठान है। श्रीमद्गीतामें (१४।२७) भगवान् श्रीकृष्ण-ने कहा है–'ब्रह्मणो प्रतिष्ठाहम्'। अतः यह पीतवर्ण पुरुष स्वयं-भगवान् कृष्ण हैं, यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णका श्याम वर्ण है, और श्रुति पीतवर्णको भी ब्रह्मयोनि कहती है, तो क्या दो स्वयं-भगवान् हैं? अथवा ब्रह्मकी दो योनियां हैं?

स्वयं-भगवान् दो नहीं हो सकते—'एकमेवाद्वितीयम्'–परब्रह्म स्वयं-भगवान् अद्वय-तत्त्व है। अतः स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण तथा स्वयं-भगवान् पीतवर्ण श्रीगौरांग अभिन्न हैं, दो नहीं।

रुक्मवर्ण स्वयं-भगवान्के दर्शनोंका फल जो श्रुतिने वर्णन किया है, वह पूर्णतया श्रीगौरांगमें फलितार्थ होता है। श्रीगौरांगके दर्शनकर असंख्य व्यक्ति पापरहित हो गये। कर्म एवं मायाके कलंकसे धुलकर निरंजन-निर्मल हो गये। सार्वभौम वासुदेव, श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती, श्रीकेशवभट्ट काश्मीरी, रायरामानन्द आदि अनेक मायावादी अथवा अवास्तव विद्याभिमानी

वास्तव विद्वान् बन गये अर्थात् परा-विद्या-कृष्णभक्तिको प्राप्तकर कृतार्थ हो गये—इसके साक्षी हैं इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठ।

श्रुतिने अन्तमें कहा—पीतवर्ण पुरुषका दर्शन करने वाला व्यक्ति परम साम्यको प्राप्त करता है।

तो क्या दर्शनकर्त्ता पीतवर्णका हो जाता है ? —ऐसा नहीं, क्योंकि दर्शनकर्त्ता जीव कभी ब्रह्मयोनि या स्वयं-भगवान् नहीं हो सकता। यहां साम्यका अर्थ है उनके समान गुणवान् या प्रभावशाली हो जाता है। ऐसा हुआ भी है—जिसने श्रीगौरांग प्रभुके दर्शन किए उसमें प्रेमप्रदानकी शक्ति सञ्चारित हो गई। उसने फिर असंख्य जीवोंको भक्तिशाली, प्रेमोन्मत्त कर दिया।

दक्षिण यात्राका प्रसंग है—श्रीगौरांगप्रभु 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते हुए प्रेमोन्मत्त दशामें जा रहे थे; उनके दर्शन करते ही सब दर्शनकर्त्ता कृष्ण-कृष्ण कहकर प्रेमोन्मत्त हो उठे। प्रभुके श्रीअंगके स्पर्श को पाकर उनमें प्रभुके समान शक्ति सञ्चारित हो जाती थी। दर्शनकर्त्ता कोई व्यक्ति प्रेमोन्मत्त होकर जब अपने गांवमें जाता तो उसके दर्शन करनेवाले सब व्यक्ति भी कृष्णनाम उच्चारणकर नाचने-गाने लगते। यहां तक कि उस ग्रामका कोई व्यक्ति जब किसी दूसरे ग्राममें जाता, तो उसका दर्शनकर वहांके भी सब व्यक्ति प्रेमोन्मत्त होकर 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर प्रेमविभोर हो उठते—

'कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे'।
एई श्लोक पढ़ि पथे चले गौर हरि।
लोक देखि पथे कहे—बोल 'हरि-हरि'॥
सेई लोक प्रेमे मत्त बोले 'हरि-कृष्ण'।
प्रभुर पाछे सङ्गे जाय दर्शने सतृष्ण॥
कथोदूरे बहि प्रभु तारे आलिंगया।
विदाय करेन तारे शक्ति संचारिया॥
सेई जन निज ग्रामे करिया गमन।
'कृष्ण' बोले हासे कान्दे नाचे अनुक्षण॥
जारे देखे तारे कहे, कह कृष्णनाम।
एइमत वैष्णव कैल सब निज ग्राम॥
ग्रामान्तर हैते दैवे आइसे जत जन।
ताहार दर्शन कृपाय हय तार सम॥
सेई जाई निज ग्राम वैष्णव करय।
अन्य-ग्रामी आसि तारे देखि वैष्णव हय॥
सेइ याइ आर ग्रामे करे उपदेश।
एइमत वैष्णव हैल सब दक्षिण देश॥

श्रीचैतन्यचरितामृत २।७।९४-१०१





इस प्रकार अनेकों उल्लेख चैतन्य-चरित्र ग्रन्थोंमें वर्णित हैं कि पीतवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीगौरांगके दर्शनकर दर्शनकर्त्ताओंने उनकी साम्यता-को प्राप्त किया। इस प्रकार मुण्डक श्रुतिमें श्रीगौरांगका स्पष्ट उल्लेख है।

**मैत्रायणी-श्रुति भी रुक्मवर्ण स्वयं-भगवान्का स्पष्ट परिचय देती है—**

**यदा पश्यन् पश्यति रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।**
**तदा विद्वान् पुण्यपापे विहाय परेऽव्यये सर्वमेकीकरोत्येवं ह्याह॥**

मैत्रायणी ॥५।१८॥

ध्यानपूर्वक देखा जाये तो मुण्डक श्रुति तथा मैत्रायणी-श्रुतिके वचन प्राय एकसे है एवं एक ही अर्थका निरूपण कर रहे हैं—केवल अन्तिम पदमें पार्थक्य है–वह है—**'परेऽव्यये सर्वमेकी करोत्येवं ह्याह'**। —इसका अर्थ है—इसप्रकार अव्यय परब्रह्म सबका एकीकरण कर देता है—अभिन्न या अद्वय कर देता है। किन्तु परब्रह्म सबका एकीकरण करता है–इसका तात्पर्य 'परब्रह्म अपनेमें मिलाकर सबको एक कर देता है'--शास्त्र-संगत नहीं है। श्रुति-स्मृति-ब्रह्मसूत्रोंके वचनानुसार जीव कभी भी परब्रह्म नहीं हो सकता। मुक्तावस्थामें भी उसका नित्य पृथक् अस्तित्व रहता है। निर्विशेष या अद्वैतवादमें एकीकरणका सिद्धान्त केवल मौखिक कल्पनाधार पर यदि स्वीकार भी कर लिया जाये, किन्तु रुक्मवर्ग स्वयं-भगवान्के दर्शनकर्त्ताओं-के पक्षमें ऐसा एकीकरण नितान्त असम्भव है। अतः इस वाक्यका एकमात्र अर्थ है कि रुक्मवर्ण परब्रह्म प्रियरूपमें समस्त जीवोंका एकीकरण करता है, अर्थात् अव्यय पर-ब्रह्म प्रियता सबका एकीकरण करता है। समस्त जीव परब्रह्मके प्रियरूपमें एक हैं। सब प्रेमके अधिकारी हैं—रुक्मवर्ण स्वयं भगवान्का दर्शनकर्त्ता ऐसा अनुभव करता है। अथवा–वह दर्शनकर्त्ता जैसे स्वयं परब्रह्ममें प्रेम लाभ करता है, उसके दर्शनोंसे और भी सब उसके समान प्रेम लाभ करते हैं।

इस प्रकार दोनों श्रुतियां रुक्मवर्ण–अर्थात् पीतवर्ण श्रीगौरांगकी स्वयं-भगवत्ताका प्रतिपादन करती हैं।

**महाभारतमें—**

महाभारतके दानधर्ममें वर्णित श्रीविष्णु-सहस्रनाम-स्तोत्रमें महाप्रभु श्रीगौरांगके सम्बन्धमें आठ नामोंका स्पष्ट उल्लेख है—

**सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनांगदी।**
**संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठाशान्ति परायणः॥**

श्रीगौरांग सुवर्ण अर्थात् दो सुन्दरवर्ण युक्त 'कृष्ण -नामका वर्णन करते हैं, जिससे इनका नाम 'सुवर्णवर्ण' है। इनके अङ्ग सुवर्णकी भांति उज्ज्वल पीत-वर्णके होनेसे इनका नाम 'हेमाङ्ग' है। श्रीगौरांगप्रभुके शरीरकी ऊंचाई तथा चौड़ाई अर्थात् पैरके तलवेसे मस्तकके शेषतक और दोनों हाथ फैलानेपर एक हाथकी मध्यमा अंगुलीसे लेकर दूसरे हाथकी मध्यमा

अंगुली तक वे अपने हाथोंकी मापसे चार हाथके हैं, अर्थात् वे न्यग्रोधमण्डल हैं। यह स्वयं-भगवान्का ही लक्षण है। उनके अङ्ग साधारण लोगोंसे अति श्रेष्ठ थे, इसलिए उनका एक नाम 'वराङ्ग' कहा गया है। श्रीमहाप्रभु जब संकीर्त्तनमें नृत्य करते तो चन्दनको अपने हाथोंमें कंकणके आकारमें लेप करते और भुजाओंमें अङ्गदके रूपमें। अतः उन्हें **'चन्दनांगदी'** कहा गया है। —ये चारों नाम पीतवर्ण स्वयं-भगवान् अर्थात् श्रीमहाप्रभु गौरांगकी आदि-लीलासे सम्बन्धित हैं।

श्रीगौरांगने नवयौवनमें संन्यास ग्रहण किया, अतः उन्हें 'संन्यासकृत्' या संन्यासी नामसे अभिहित किया गया है। वे भगवन्निष्ठ-बुद्धि थे, इसलिये उन्हें 'शमः' और अचञ्चल-चित्त होनेसे 'शान्त' कहा गया है। कृष्णभक्तिमें निष्ठा तथा निवृत्ति-परायण होनेसे उन्हें 'निष्ठा-शान्ति परायण' नाम दिया गया है।

ये चारों नाम श्रीमहाप्रभु गौरांगकी अन्त्य-लीलासे सम्बन्ध रखते हैं। आदिलीला सम्बन्धित चार नाम विष्णुसहस्रनामके ९२ श्लोकके हैं तथा अन्त्य-लीलाके चार नाम ७५वें श्लोकमें वर्णित हैं। ये आठों नाम अन्य किसी भी भगवदवतार या भगवत्स्वरूपमें प्रयोज्य नहीं हैं। अतः महाभारत द्वारा श्रीकृष्णके पीतावतार—श्रीगौरांगरूपमें अवतीर्ण होनेका स्पष्ट निरूपण किया गया है।

**पीतवर्ण स्वयं-भगवान्का असाधारण महिमा-वैशिष्ट्य—**

मुण्डक तथा मैत्रायणी—दोनों श्रुतियोंमें पीतवर्ण स्वयं-भगवान्—श्रीगौरांगके दर्शनका जो फल वर्णन किया गया है, उससे उनकी असाधारण महिमा प्रकाशित होती है, यहां तक कि श्यामवर्ण स्वयं-भगवान्से भी उनकी कई विशेषताएं प्रमाणित होती हैं—

**१—दर्शनमात्रसे असुरत्व-विनाश**—श्रुतियोंने कहा है कि रुक्मवर्ण स्वयं-भगवान्के दर्शन मात्रसे दर्शनकर्त्ताके पाप-पुण्यरूप समस्त बन्धनजनक कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं। उत्कट पापोंका फल है असुरत्व। अतः दर्शनमात्रसे वह असुरत्व नष्ट हो जाता है।

किन्तु श्यामवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनमात्रसे पूतना, बकासुर, अघासुर, कंसादि किसीका भी असुरत्व नष्ट नहीं हुआ। भगवान् श्रीकृष्णको उन सबका वध ही करना पड़ा। मरनेके बाद उनका असुरत्व नष्ट हुआ और वे मुक्त हुए।

**२—असुरत्व-विनाश, न कि असुर-प्राण-विनाश**—श्रुतिने रुक्मवर्ण पुरुषके दर्शन मात्रसे असुरत्वका विनाश वर्णन किया है।

किन्तु श्यामवर्ण स्वयं-भगवान्ने समस्त असुरोंके प्राणोंका नाश किया, उन्हें सायुज्य मुक्ति तो दे दी, किन्तु प्रेम-भक्तिका दान नहीं किया। पीतवर्ण स्वयं भगवान्के दर्शनसे द्रष्टाके प्राण नष्ट नहीं हुए, वह विद्वान् अर्थात् प्रेमभक्तिवान् हो गया, यह दूसरी असाधारण विशेषता है रुक्मवर्ण स्वयं-भगवान् की।





**३—परम साम्यत्व-दान**—श्यामवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने जिन्हें प्रेम-दान किया, उनके दर्शन करनेसे दूसरोंको भी प्रेम प्राप्त हुआ हो, ऐसा कोई प्रमाण शास्त्रमें नहीं दीखता। किन्तु रुक्मवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीगौरांगके दर्शन मात्रसे जिन्होंने प्रेम प्राप्त किया, उन प्रेम-प्राप्त व्यक्तियोंके दर्शनसे और भी अनेकोंने प्रेम लाभ किया।

**४—निर्विचार प्रेमदान**—श्यामवर्ण स्वयं-भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन प्रेम-दान विशेष नहीं है। जब तक जीवमें मुक्ति-भुक्तिकी वासना रहती है, जब तक माया द्वारा जीवकी चित्तवृति भगवद्-बहिर्मुख रहती है, साधन-भजन करनेपर भी ऐसे जीवको श्रीकृष्ण कभी प्रेम प्रदान नहीं करते। श्रीकृष्ण प्रेम-प्रदान करनेसे पहले खूब यह विचार करते हैं कि साधक केवल अहैतुकी सेवा चाहता है या और कुछ ? यदि साधक और कुछ चाहता है तो वे उसे भोग-मोक्ष पर्यन्त दे देते हैं, किन्तु प्रेमभक्ति नहीं देते—

**कृष्ण यदि छूटे भक्ते भुक्ति-मुक्ति दिया।**
**कभु प्रेमभक्ति ना देन, राखेन लुकाईया॥**

श्रीचैतन्यचरितामृत १-८-१६

किन्तु पीतवर्ण भगवान्‌के दर्शन मात्रसे कर्म-बन्धनकी निवृत्ति हो जाती है–ऐसा श्रुतियोंका स्पष्ट उद्‌घोष है। द्रष्टा विद्वान् या प्रेमभक्तिवान् भी हो जाता है। उनकी भुक्ति-मुक्तिवासना दर्शन मात्रसे दूर हो जाती है और वह तत्क्षण प्रेम प्राप्त करता है। पीतवर्ण स्वयं भगवान् कभी ऐसा विचार नहीं करते कि द्रष्टामें भुक्ति-मुक्ति वासना है कि नहीं, उसने साधन-भजन द्वारा चित्तको निर्मल किया है कि नहीं। उनके दर्शन मात्रसे द्रष्टामें प्रेमका आविर्भाव हुआ मनुष्योंकी क्या बात ? हिंस्रक पशुओंने जब झारिखण्डमें रुक्मवर्ण स्वयं भगवान् श्रीगौरांगके दर्शन किए तो वे प्रेमसे नाच उठे। व्याघ्र और हरिण परस्पर आलिंगन कर प्रेमविभोर हो गए --

**प्रभु कहे–'कृष्ण कृष्ण' व्याघ्र उठिल।**
**कृष्ण-कृष्ण कहि व्याघ्र नाचिते लागिल॥**
**कृष्ण-कृष्ण कह करि प्रभु जवे बैल।**
**कृष्ण कहि व्याघ्र मृग नाचिते लागिल॥**
**व्याघ्र-मृग अन्योन्ये करे आलिंगन।**
**मुखे मुख दिया करे अन्योन्ये चुम्बन॥**

इस प्रकार पीतवर्ण स्वयं-भगवान् श्रीगौरांगकी श्रुति वर्णित प्रेमदान विषयक असाधारण महिमाका अनेकोंने प्रत्यक्ष दर्शन किया। अनेक विषयोंमें रुक्मवर्ण स्वयं-भगवान्‌के लीला विकाशमें श्यामवर्ण स्वयं भगवान्‌से असाधारण वैशिष्ट्य है।

प्रत्यक्ष-दर्शियोंकी दृष्टिमें—

श्रुतियोंमें जिन्हें रुक्मवर्ण एवं ब्रह्मयोनि कहा गया है, श्रीभागवतमें जिन्हें पीतवर्ण तथा महाभारतमें जिन्हें सुवर्णवर्ण, हेमांग कहकर वर्णन किया गया है, वे एकमात्र स्वयं भगवान् श्रीगौरांग महाप्रभु हो हैं।

श्रीमहाप्रभुमें शारीरिक लक्षण भी ऐसे विद्यमान् थे, जिससे उनमें स्वयं-भगवत्ता प्रमाणित होती है। श्रीभगवान् ब्रह्माण्डमें द्विभुज-शरीरसे अवतीर्ण होते हैं। मनुष्य जैसी आकृति धारण करते हैं, फिर भी उनमें कुछ ऐसे शारीरिक-लक्षण रहते हैं, जिनसे उनकी साधारण मनुष्यसे विलक्षणता स्पष्ट देखी जा सकती है—

साधारण मनुष्य ही नहीं, ब्रह्मा पर्यन्त सब अपने हाथोंकी मापसे साढ़े तीन हाथ लम्बे-चौड़े होते हैं, किन्तु श्रीभगवान् अपने हाथोंकी मापसे चार या साढ़े चार हाथ लम्बे-चौड़े होते हैं। अतः उनको 'न्यग्रोधपरिमण्डल-तनु' कहा जाता है। —श्रीगौरांग भी न्यग्रोधपरिमण्डल-तनु थे। नगर संकीर्त्तनके समय असंख्य लोगोंकी भीड़में और श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमें दर्शनोंकी भीड़में श्रीगौरांग सबसे ऊंचे अर्थात् लगभग २१ इंच ऊंचे दीखते थे। उनके पद-चिह्न भी शरीरके अनुपातसे साधारण मनुष्योंके पदचिह्नोंसे बहुत बड़े थे, जिनका दर्शन अब भी पुरीमें श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें हो सकता है। श्रीमहाप्रभुकी पादुकाएं गम्भीरामठ, पुरीमें दर्शनीय हैं।

सामुद्रिक शास्त्रमें महापुरुषोंके जो बत्तीस लक्षण वर्णित हैं, वे सब श्रीगौरांग महाप्रभुके शरीरमें प्रत्यक्ष दीखते थे। ( श्रीचैतन्यचरितामृत १-१४-३ द्रष्टव्य है )। इनके चरणोंमें-जौ, छाता, दण्ड, कमल, पर्वत, रथ, गदा, शक्ति, अंकुश, वज्र, वेदी, कुण्डल, चार स्वस्तिक एवं अष्टकोण, शंख चक्र, व्योम, धनुष आदि ३२ चिह्न थे। और करकमलोंमें परमायु-रेखा, सौभाग्य रेखा, भोग-रेखा, पाँच कमल, चक्र, वज्र, कमण्डलु, ध्वजा, चामर, अंकुश आदि ४४ चिह्न थे—जो उनके समकालीन भक्तोंने प्रत्यक्ष दर्शन किये।※

अन्यान्य समस्त भगवत् स्वरूप स्वयं भगवान्‌में अन्तर्भुक्त रहते हैं—यह बात सर्वशास्त्र प्रतिपादित है। महाप्रभु-श्रीगौरांगमें अनेक भगवत् स्वरूपोंके दर्शन अनेक भाग्यवानोंने किये—उनके चरित्रग्रंथ, जिनकी रचना उनके समकालीन विद्वद् भक्तोंने की, इस बातके साक्षी हैं।

तैर्थिक ब्राह्मणको श्रीगौरांगने उसके इष्ट श्रीबालगोपालके दर्शन कराये। दूर कमरेमें बन्दकर दिये जानेपर भी श्रीगौरांगने रसोईमें पहुंचकर उसके नैवेद्यको ग्रहण किया। उस समय आप अभी दिगम्बर-शिशु ही थे।



सात प्रहर-व्यापी महाप्रकाश-लीलामें माता शचीको श्रीगौरांगने अपने श्रीकृष्णस्वरूपके दर्शन कराए। श्रीवनमाली-भिक्षुक ब्राह्मणने पीताम्बरधारी श्यामसुन्दररूपके दर्शन किये, जब श्रीगौरांग उसके बालकके साथ खेल रहे थे। श्रीमुरारिगुप्तको महाप्रभुने श्रीजानकी एवं श्रीलक्ष्मणजी सहित

※श्रीभगवत् पद-करयुगल चिह्न (सचित्र) पुस्तिका द्रष्टव्य है।



श्रीरामरूपमें दर्शन दिये। श्रीमुरारिके घरमें जाकर श्रीवराहरूपमें प्रभुने दर्शन दिये। श्रीवासको श्रीनृसिंह रूपमें, श्रीवासके घर सब भक्तोंको श्री-बलरामरूपमें दर्शन दिये। एक शिवभक्तको श्रीशिवरूपमें, जगाईको चतुर्भुज-शंख-चक्र-गदा-पद्मधर–विष्णुरूपमें दर्शन दिये; ऐसे ही श्रीवास मन्दिरमें एक-बार सबने श्रीगौरांगके श्रीनारायणरूपमें दर्शन किये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य-को, श्रीकाशीमिश्रको चतुर्भुजरूपमें दर्शन दिये। श्रीचन्द्रशेखर आचार्यके घर श्रीगौरांगमें सबने श्रीलक्ष्मीजीके दर्शन किये, किसीने श्रीजानकीके, किसीने श्रीपार्वतीके उस समय दर्शन किये। श्रीकविराज कृष्णदासने इस लीलाका वर्णन करते हुए लिखा है प्रभुने श्रीरुक्मिणी, दुर्गा, लक्ष्मी रूपमें भक्तोंको दर्शन देकर अपना स्तन पान कराया। इस प्रकार समय-समयपर कभी-मत्स्य, कभी कूर्म, कभी वामनादि रूपोंमें भक्तोंने महाप्रभु श्रीगौरांगके दर्शन किये।

इन समस्त लीलाओंका विषद् वर्णन मिलता है, श्रीमुरारिगुप्त-कड़चा, श्रीचैतन्यचरितामृत-महाकाव्य, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्य-भागवत, श्रीचैतन्यमंगल आदि सद्ग्रन्थोंमें। लेख-विस्तारके भयसे इन लीलाओंका यहां वर्णन नहीं किया जा रहा है।

सारांश यह है कि पीतवर्ण–श्रीगौरांग स्वयं-भगवान् हैं, तभी तो अन्यान्य समस्त भगवत्स्वरूपोंके प्रत्यक्ष दर्शन तत्कालीन भक्तोंने इनमें किये।

### परतत्त्व-स्वरूप श्रीगौरांग

**उपनिषद्-प्रतिपाद्य ब्रह्म सुअङ्ग-कान्तिस्वरूप है।**
**परमात्म-अन्तर्यामी तुम्हरौ अंश-विभव अनूप है॥**
**पूर्ण षड्-ऐश्वर्ययुत श्रीपति मूर्त्ति-विलास है।**
**हे गौरसुन्दर ! कैसे वर्णहुं तत्त्व-पर रस-रासि है॥**

# श्रीगौरांगका ईश्वर-भाव



जो ईश्वरतत्त्व है, उसके आचरणमें ईश्वर-भाव या ऐश्वर्यका विकास होना स्वाभाविक है। नर-लीलामें श्रीभगवान् जब ब्रह्माण्डमें अवतीर्ण होते हैं, तब उनकी लीलाओंमें ऐश्वर्यका विकास स्वाभाविक होता है। कभी तो वह ऐश्वर्य-विकास देदीप्यमान होकर उजागर होता है और कभी वह नर-वत् आचरणके पर्देमें छिपा रहता है।

श्रीगौरांग महाप्रभुमें समस्त भगवत्-स्वरूपोंका भक्तोंने स्पष्ट दर्शन किया और उनके महा ऐश्वर्यको देखा, वे उनके देदीप्यमान ऐश्वर्य विकासके साक्षी हैं। नर-लीलावत् आचरणोंमें भी उन्होंने जो अनेक चेष्टाएं प्रकटित कीं; उनमें चाहे नर-चेष्टाओंका विशेष भावसे दर्शन होता है, किन्तु उनमें भी समय-समयपर उनका ईश्वर-भाव प्रच्छन्न रूपसे झलकता है—ये सब प्रसंग महाप्रभुके चरित-ग्रन्थोंमें पठनीय हैं—

महाप्रभु-श्रीगौरांगमें ईश्वर-भावके सम्बन्धमें एक प्रश्न उठता है, वह यह है कि श्रीगौरसुन्दर हैं-'रसराज महाभाव दुई एकरूप'-अर्थात् निखिल-रसामृत वारिधि शृङ्गार रसराज मूर्तिधर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधा—इन दोनोंका मिलित एक स्वरूप।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण नर-लील हैं एवं नर-अभिमान-विशिष्ट हैं। 'वे ईश्वर हैं, वे स्वयं-भगवान् हैं'-ऐसा श्रीकृष्णने ब्रजलीलामें कभी नहीं सोचा या जाना और श्रीराधाजी भी ब्रजमें नर-अभिमान-विशिष्टा हैं। इसलिये श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर श्रीराधाजी तीव्र विरह-आर्तिमें अधीर हो उठतीं तो उनकी सखियां उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहतीं—राधे? तुम धैर्य धारण करो। श्रीकृष्ण कह गये थे कि वे मथुरासे शीघ्र व्रजमें लौट आवेंगे, फिर वे बड़े कृपालु हैं, अतः वे अवश्य यहां आयेंगे।

श्रीराधाजी कहतीं—सखि! श्रीकृष्ण ब्रजमें लौट आ सकते हैं किन्तु जब वे आयेंगे तो क्या मैं उस समय जीवित हूंगी, जीवित रहनेपर क्या मुझमें उनकी प्रीतिविधान की योग्यता रह जायेगी?—

कृष्ण कृपापारावार, कभु करिवेन अङ्गीकार,
सखि! तोर ए व्यर्थ वचन।
जीवेर जीवन चंचल, येन पद्मपत्रेर जल
तत् दिन जीवे कोन जन?





शत वत्सर पर्यन्त, जीवेर जीवन अन्त,
एइ वाक्य कहे न विचारि।
नारी यौवन धन, यारे कृष्ण करे मन,
से यौवन दिन दुई चारि॥

श्रीचैतन्यचरितामृत, २।२।२२-२३

इससे स्पष्ट है कि श्रीराधाजी भी अपनेको एक साधारण नारी ही जानती थीं। चाहे स्वरूपत: वे स्वरूपशक्तिका मूर्तविग्रह हैं, नित्यसिद्ध परिकर एवं नित्य-किशोरी हैं।

नरलील एवं नर-अभिमान-विशिष्ट श्रीकृष्ण एवं नर-अभिमानवती श्रीराधा—इन दोनोंका मिलित स्वरूप श्रीगौरसुन्दर भी होगा नरलील तथा नर-अभिमान विशिष्ट। उनमें ईश्वर-भाव कैसे प्रकटित हो सकता है ? उनमें ऐश्वर्य-प्रकाश कैसे देखा जा सकता है ?

इसका उत्तर यह है—श्रुति-स्मृति निरूपण करती हैं कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण स्वरूपत: नरवपु हैं, नरलील तथा नर-अभिमान विशिष्ट हैं। उनमें ऐश्वर्य है, यह वे न जानें तो क्या ? जब वे परमेश्वर स्वयं भगवान् हैं, तब उनका ऐश्वर्य हर समय उनमें रहेगा ही एवं वह ऐश्वर्य उनकी स्वरूपशक्तिकी वृत्ति होनेके कारण सुयोग उपस्थित होनेपर उनकी सेवा करेगा ही। लीलारसकी पुष्टिके लिये, किंवा भक्तचित्त-विनोदन करनेके लिये। उनकी इच्छा होनेपर; उस इच्छाको पूर्ण करनेके लिये यदि ऐश्वर्यके प्रकटित होनेका प्रयोजन है, तो उनकी ऐश्वर्य-शक्ति या लीलाशक्ति उनके ऐश्वर्यको प्रकटित करती ही है। रासलीलामें इस प्रकारका श्रीकृष्ण-ऐश्वर्य प्रकटित हुआ, किन्तु विशेषता यह है कि ऐश्वर्यके प्रकट-कालमें भी उनका नर-लीलत्व तथा नर-अभिमान अक्षुण्ण ही रहा। श्रीकृष्णका सर्वज्ञत्व उनके ऐश्वर्यके अन्तर्भुक्त है। उनका सर्वज्ञत्व प्रकटित होता है, किन्तु वे उसे नहीं जानते।

---

**'सखि ! श्रीकृष्ण व्रजमें लौट आ सकते हैं, किन्तु जब वे आयेंगे तो क्या मैं उस समय जीवित हूंगी ? जीवित रहनेपर क्या मुझमें उनकी प्रीति विधान की योग्यता रह जायेगी' ?**

---

अघासुर मुँह फाड़े हुए था समस्त गोप-बालकोंको निगल जानेके लिये। गोपबालकोंने समझा पर्वतकी गुफा ही सर्पाकार लग रही है, किन्तु श्रीकृष्ण जान गये--यह पर्वत नहीं, अघासुर सर्प ही मुँह फाड़े हुए है। इसी प्रकार ब्रह्म-मोहन लीलामें भी सर्वज्ञत्व शक्तिके प्रभावसे श्रीकृष्ण ब्रह्माजीके अभिप्रायको जान गए थे। इन सब लीलाओंमें श्रीकृष्णका नर-अभिमान अक्षुण्ण ही रहा। यह सब कुछ वे कैसे जान गये, वे यह नहीं जान सके, किन्तु वे सब यह जान रहे थे।

इसी प्रकार श्रीगौरसुन्दर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, नरलील हैं तथा नर-अभिमान

विशिष्ट हैं, उनमें ऐश्वर्य है, यह न जाननेपर भी ऐश्वर्य उनमें विद्यमान है एवं प्रयोजन उपस्थित होनेपर वह अपने-आप प्रकटित हो उठता है। श्रीमुरारिगुप्तने अपनी कड़चामें लिखा है—

क्वचिदीश्वरभावेन भृत्येभ्यः प्रददौ वरान्।
—एवं नानाविधाकारै—र्नृत्यान् लोकानशिक्षयत्॥
—नानावतारानुकृतिं वितन्वन् रेमे नृलोकाननुशिक्षयंश्च॥
कड़चा, २।४।४, १।१६।१३

—कभी तो श्रीगौरांग ईश्वरावेशमें सेवकोंको अनेक प्रकारके वर प्रदान करते थे। इसप्रकार अनेक प्रकारके आकार प्रकटित कर नृत्यकरके उन्होंने लोक-शिक्षा दी। कभी लोक-शिक्षाके लिये नानाविध अवतारोंका रूप धारणकर विहार किया।

किसीके प्रति कृपा प्रकाश करनेके लिये जब श्रीमहाप्रभुकी इच्छा होती और किसी प्रकारका ऐश्वर्य प्रकट करनेमें ही उस कृपाके प्राप्त करानेकी वे सम्भावना देखते तो उनकी इच्छा-शक्तिके अनुरूप उनकी ऐश्वर्य शक्ति उस ऐश्वर्यको प्रकाशित कर देती। श्रीमुरारिगुप्त तथा श्रीवासपण्डितपर कृपा प्रकाश करनेकी इच्छा जब श्रीगौरांगमें उदित हुई तो उनकी ऐश्वर्य शक्तिने उन्हें श्रीगौरांगमें उनके उपास्य स्वरूपों—श्रीराम एवं श्रीनारायणके दर्शन करा दिये। जब श्रीअद्वैताचार्यने विश्वरूप देखनेकी इच्छा प्रकट की तो उन्हें ऐश्वर्य शक्तिने श्रीगौरांगमें विश्वरूपका दर्शन करा दिया। अतः श्रीमहाप्रभुकी इच्छा मात्र होनेपर उनकी लीला-शक्ति उनके अनुसन्धान विना या उनके जाने विना प्रयोजनीय ईश्वर ऐश्वर्यको प्रकटकर देती है—

लीलावेशे नाहि प्रभु निजानुसन्धान।
इच्छा जानि लीला शक्ति करे समाधान॥
श्रीचैतन्यचरितामृत २।१३।६४

नीलाचलमें रहते हुए श्रीशिवानन्दके घर आविर्भूत होकर श्रीमहाप्रभुका भोजन करना, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके नृत्यमें उनका आविर्भूत होकर नृत्य-दर्शन करना, श्रीवासके कीर्त्तनमें उपस्थिति, शचीमाताके घर आविर्भूत होकर भोजन करना—इत्यादि सब स्थलोंपर उनकी इच्छासे ही उनकी लीला शक्ति या ऐश्वर्य-शक्तिसे उनका ईश्वरभाव प्रकटित हुआ।

इसी प्रकार दूरसे ही श्रीमहाप्रभुके दर्शनमात्रसे दर्शकोंका पूर्वसंचित पाप-पुण्यरूप सब कर्मफल नष्ट हो जाता था और उन्हें कृष्णप्रेमकी-प्राप्ति हो जाती थी। झारिखण्ड पथसे श्रीवृन्दावन जाते समय व्याघ्र-हाथी आदि हिंस्रक पशुओंने जो कृष्णप्रेमकी प्राप्ति की—वे सब श्रीगौरांगके ईश्वर-भावके परिचायक हैं। उनके ऐश्वर्यका ही प्रकाश है। किन्तु इस प्रकाशकी





इच्छा श्रीमहाप्रभुमें सर्वत्र उदित न होती थी, उनकी स्वतन्त्र करुणा ही इस ईश्वरभावको प्रकटित कर सबको कृतार्थ करती थी।

अतएव श्रीगौरसुन्दर नरलील एवं नर-अभिमान विशिष्ट स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण तथा नर-अभिमान विशिष्टा श्रीराधाजीके मिलित-स्वरूप होनेपर भी उनमें ईश्वरभाव अथवा ऐश्वर्य-प्रकाश असम्भव नहीं है।

## जय गौरांग हरे

—पूज्यपाद श्रीरामेश्वरदासजी, रामायणी

हेम वरन तन सुन्दर, धृत पीताम्बर ए।
कलिपावन अवतार जय गौराङ्ग हरे ॥ १ ॥
हरि रस जस विस्तारक जगदुद्धारक ए।
अतिशय करुणागार जय गौराङ्ग हरे ॥ २ ॥
द्विभुज चतुर्भुज षड्भुज अष्ट महाभुज ए।
धारे रूप अपार जय गौराङ्ग हरे ॥ ३ ॥
कबहुँ राम अरु कृष्ण कबहुँ नर-केहरि ए।
प्रगटे भाव उदार जय गौराङ्ग हरे ॥ ४ ॥
नामामृत रसमत्त रहत प्रतिपल छिन ए।
श्रीहरिबोल प्रचार जय गौराङ्ग हरे ॥ ५ ॥
भक्ति चिरात अर्नापित किय जगदर्पित ए।
उज्ज्वल रस विस्तार जय गौराङ्ग हरे ॥ ६ ॥
जीव दया रुचिनाम दासदासंतन ए।
उपदेशन को सार जय गौराङ्ग हरे ॥ ७ ॥
धन्य धन्य मूर्धन्य महाप्रभु चैतन्य ए।
देहु प्रेमकर दान जय गौराङ्ग हरे ॥ ८ ॥
कह रामेश्वरदास आस हरिगौर की ए।
लीजै मोहिं उबार जय गौराङ्ग हरे ॥ ९ ॥

# श्रीगौरांगका भक्तभाव



भक्त अपनेको श्रीकृष्णका दास ही जानते-मानते हैं। श्रीगौरांगदेवमें भी समय-समयपर यह भक्तभाव प्रकाशित हो उठता था। भक्तभाव श्रीगौरांग प्रभुका स्वरूपगत भाव है।

श्रीराधिकादि व्रजगोपीवृन्द भी अपनेको श्रीकृष्णकी अशुल्कदासिका मानती हैं—

शरदुदाशये साधुजातसत् सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः॥
श्रीभागवत, १०।३१।२

—हमारे प्रेमपूर्ण हृदयके स्वामी! हम आपकी विना मोलकी दासियां हैं। आप शरत्कालीन सरोवरमें सुन्दरसे सुन्दर कमलोंकी कर्णिकाके सौन्दर्यको हरण करनेवाले नेत्रोंसे हमें घायल कर चुके हैं। हमारे मनोरथ पूर्णकारी प्राणेश्वर! क्या नेत्रोंसे मारना वध नहीं है? क्या अस्त्रोंसे हत्या करना ही वध है?

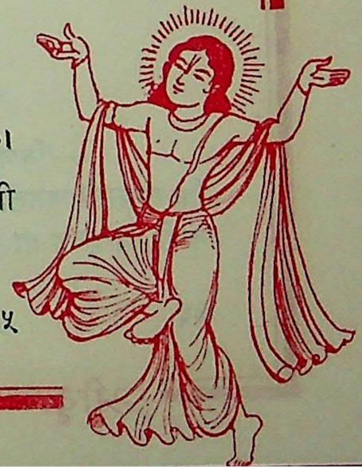
इसी प्रकार राधा-भावाविष्ट श्रीमहाप्रभु भी जो अपनेको कृष्णदास—भक्त मानें तो यह अस्वाभाविक नहीं, इनके स्वरूपतत्त्वका विरोधी भी नहीं।

अखण्ड प्रेम भण्डारकी मालकिन हैं एकमात्र महाभावस्वरूपा श्रीराधाजी। उनके भाव एवं द्युतिको लेकर श्रीकृष्ण गौरकृष्णरूपसें अवतीर्ण हुए हैं। अतः ये भी अखण्ड-प्रेमके भण्डारके अधिकारी हैं। इसलिये भी इनमें भक्तभाव विद्यमान है और यह इनका स्वरूपगत भाव है।

भक्तिका स्वरूपगत धर्म है कि जिसमें वह आविर्भूत होती है, वह अपनेको अति दीन-हीन मानने लगता है-क्योंकि भक्ति दैन्यकी जननी है। प्रेम-भक्तिका यह स्वभाव है कि जिसको प्रेमका सम्बन्ध या स्पर्श प्राप्त होता है, वह मानता है, मुझमें तो कृष्णप्रेमकी गन्ध मात्र भी नहीं है—

प्रेमेर स्वभाव एइ, यांहा प्रेमेर सम्बन्ध।
से-इ माने, कृष्णे मोर नाहि प्रेमगन्ध॥
श्रीचैतन्यचरितामृत, ३।२२६०।

दूसरोंकी बात रहने दीजिये, अखण्ड प्रेमभण्डारकी स्वामिनी श्रीराधाजी भी कहती हैं—





दूरे शुद्ध प्रेमगन्ध, कपटप्रेमेर बन्ध,
सेहो मोर नाहि कृष्ण पाय ॥

—'शुद्ध प्रेमकी गन्ध दूर रही, कपट-पूर्ण प्रेमका सम्बन्ध भी तो मेरा श्रीकृष्णचरणोंमें नहीं है।'

श्रीमहाप्रभु गौरांगमें एक तो नर-अभिमान हैं, फिर ये हैं अखण्ड प्रेम-भण्डारके स्वामी, इनमें दैन्यका पूर्णतम विकाश होना युक्त ही है। वस्तुतः स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण होते हुए भी, यदि कोई इन्हें श्रीकृष्ण या भगवान् कहता तो ये असंतुष्ट हो उठते, जीवमें ईश्वर-बुद्धिको अपराधजनक कहकर रुष्ट हो जाते। प्रसंगवश देखिये दो-चार उदाहरण—

श्रीमहाप्रभु जब श्रीवृन्दावनमें पधारे, तो इनका दर्शन करने एक दिन अनेक भक्त जुड़ गये। वे बोले—

लोक कहे, संन्यासी तुमि जङ्गम नारायण।
वृन्दावने हैले तुमि कृष्ण अवतार।
तोमा देखि सर्वलोक हइल निस्तार॥
श्रीचैतन्य चरि० २।१८।१०२-३

**'शुद्ध प्रेमकी गन्ध दूर रही, कपटपूर्ण प्रेमका सम्बन्ध भी तो मेरा श्रीकृष्ण-चरणोंमें नहीं है।'**

वृन्दावनवासी बोले—आप संन्यासी हो, चलती-फिरती श्रीनारायणमूर्त्ति हो। वृन्दावनमें तो इस समय आप श्रीकृष्णका अवतार हो। आपके दर्शन करके हम सब लोगोंका निस्तार हो जायेगा।'

श्रीमहाप्रभुने कहा—

प्रभु कहे—विष्णु-विष्णु, इहा ना कहिय।
जीवाधमे कृष्णज्ञान कभु ना करिय॥
संन्यासी चित्कण जीव किरणकण सम।
षड़ैश्वर्यपूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम।
जीव आर ईश्वरतत्त्व कभु नहे सम।
जलदग्निराशि यैछे स्फुलिंगेर कण॥
श्रीचैतन्य चरि० २।१८।१०४-६

—'विष्णु-विष्णु', ऐसा कभी नहीं कहना, ऐसा सुनने-कहनेमें भी अपराध होता है कि संन्यासी चलती-फिरती नारायण-मूर्ति है। एक जीवमें, जो ईश्वरकी तुलनामें अधम है, कभी श्रीकृष्ण या श्रीनारायणकी बुद्धि मत करना। संन्यासी हो या कोई भी जीव, वह

तो श्रीभगवान्‌के चित्‌कणका एक क्षुद्र अंश है और षड़ैश्वर्यपूर्ण श्रीभगवान् तो सूर्यके समान हैं। जीवतत्त्व एवं कृष्णतत्त्व कभी समान नहीं हो सकते, जैसे ज्वलन्त अग्निराशि और एक क्षुद्र चिंगारी।

यहां महाप्रभु श्रीगौरांगने अपनेको एक जीव-भक्त बताया है।

राजा प्रतापरुद्रको दर्शन देनेकी प्रार्थनापर राय रामानन्दसे श्रीप्रभुने कहा—

प्रभु कहे, रामानन्द कह विचारिया।
राजारे मिलिते जुयाय संन्यासी हइया॥
तखन रामानन्द कहे—तुमि ईश्वर स्वतन्त्र।
कारे तोमार भय, तुमि कहे परतन्त्र॥
प्रभु कहे, आमि मनुष्य, आश्रमे संन्यासी।
कायमनोवाक्ये व्यवहारे भय वासि॥

श्रीचैतन्य चरि० २।१२।४४-४७

श्रीमहाप्रभुने कहा—रामानन्द विचारकर कुछ बोलिये, संन्यासीके लिये राजाको मिलना संगत है क्या ? —राजाको मिलनेसे संन्यासीके लोक-परलोक दोनों नाश हो जाते हैं। तब रामानन्दने कहा-आप तो ईश्वर हैं, परम स्वतन्त्र हो। आपको किसका भय है ? परतन्त्र नहीं हैं आप किसीके। श्रीमहाप्रभुने कहा—मैं मनुष्य हूं (ईश्वर नहीं), मैंने संन्यास आश्रम ग्रहण किया है, इसलिये शरीरसे, मनसे तथा वचनसे भी कोई ऐसा आश्रम-विरुद्ध आचरण करनेसे मैं डरता हूं।

यहां श्रीमहाप्रभुने अपनेको संन्यासी-मनुष्य कहकर परिचय दिया है। चाहे श्रीराय-रामानन्द प्रभुके श्रीश्रीराधाकृष्ण-मिलित स्वरूपके प्रत्यक्ष दर्शन कर चुके थे, तो भी प्रभुने अपनेको ईश्वर न कहकर एक संन्यासी—भक्त ही कहा।

वाराणसीमें श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीने श्रीमहाप्रभुको श्रीनारायणरूपमें देखा और इनकी भगवत्ताको प्रकाशित करने लगे। श्रीमहाप्रभुने कहा—

प्रभु कहे-'विष्णु बिष्णु' आमि क्षुद्र जीव हीन।
जीवे विष्णु मानि, एइ अपराध चिह्न॥
जीवे विष्णु बुद्धि दूरे, येई ब्रह्म-रुद्र सम।
नारायणे माने, तार पाषण्डीते गणन॥

श्रीचै० चरि० २।२५।६६-६७

श्रीमहाप्रभुने कहा—'विष्णु-विष्णु', मैं तो एक क्षुद्र जीव हूं। जीवको विष्णु मानना-यही तो अपराध है। जीवको विष्णु या उनके समान मानना तो दूर रहा, जो व्यक्ति ब्रह्म और शिवको श्रीनारायण-विष्णुके





समान मानता है, उसकी पाषण्डियोंमें गणना है।

इस प्रकारके अनेक उदाहरण हैं जहां श्रीमन्महाप्रभुने अपने भक्त-भावको प्रकाशित किया है। ये अपनेको कृष्ण-नामप्रेम गन्धहीन भी कह-कहकर क्रन्दन करने लगते और श्रीकृष्णसे उनकी भक्तिकी प्रार्थना करते। श्रीमहाप्रभुकी श्रीमुखोक्ति तो यह है—

**न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।**
**मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्ति-रहैतुकी त्वयि ॥**

शिक्षाष्टक, ४

—हे जगदीश ! मैं आपसे धन नहीं मांगता, जन नहीं मांगता, सालंकार सुन्दरी कविता भी नहीं चाहता, एकमात्र मेरी यह प्रार्थना है कि आप ईश्वरमें मेरी जन्म-जन्ममें अहैतुकी भक्ति हो ॥

श्रीमहाप्रभु अखण्डप्रेम-भण्डारके अधीश्वर होकर भी भक्तिके दैन्यवश कृष्णप्रेमाभक्ति-की याचनाकर भक्तस्वरूपको प्रकाशित करते थे। इस भक्तभावसे श्रीमन्महाप्रभुने जीव-जगत्को आनुषंगिक भावसे कृष्णदास्यकी ही शिक्षा प्रदान की है।

---

## दासदासानुदासः

**नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो**
**नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।**
**किन्तु प्रोद्यन्निखिल – परमानन्द – पूर्णामृताब्धे**
**गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दास – दासानुदासः ॥**

**—'मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं और न शूद्र हूं, मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी भी नहीं हूं। किन्तु मैं प्रकृष्टरूपसे प्रकटित निखिल-परमानन्दसे परिपूर्ण अमृत समुद्रके तुल्य गोपीरमण श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके दासोंके दासोंका दास मात्र हूं ॥'**

---

# श्रीगौरांगका गोपीभाव



गोपी-शब्दसे श्रीकृष्णकान्ता-व्रजगोपीगण ही अभिप्रेत हैं। गोपी-शब्द व्रजगोपियोंके लिये ही एकमात्र प्रयुक्त होता है। भाव-शब्दका अर्थ है श्रीकृष्ण विषयक प्रेम। अतः 'गोपीभाव' कहनेसे कृष्णकान्ता व्रजगोपियोंका जो कृष्णविषयक प्रेम है, वही समझना चाहिये। व्रजगोपियोंके प्रेमका नाम है 'महाभाव'। यह महाभाव वैकुण्ठकी लक्ष्मियोंमें नहीं है, यहां तक कि द्वारकाकी कृष्णकान्ता महिषियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। एकमात्र यह महाभाव व्रजगोपियोंमें विद्यमान है।

महाभावकी भी कई वैचित्रियां या स्तर हैं—रूढ़ महाभाव, अधिरूढ़ महाभाव, मादन तथा मोहन। श्रीकृष्ण-विरह अवस्थामें मादन ही मोहनरूप धारणकर लेता है। ये सब स्तर समस्त व्रजगोपियोंमें विद्यमान हों, ऐसी भी बात नहीं है।

मादन-महाभाब केवल श्रीराधिकाजीमें है, और किसी गोपीमें नहीं। मोहन केवल श्रीराधिकाजीकी यूथकी गोपियोंमें रहता है, और किसी गोपीमें नहीं। मोहन भी केवल श्रीराधिकाजीमें रहता है, उनकी यूथकी भी किसी गोपीमें नहीं रहता।

समस्त गोपियोंमें महाभाव तथा महाभावकी वैचित्री रहते हुए भी रसवैचित्री सम्पादनके लिये तथा रसपुष्टिके लिये लीला-शक्तिके प्रभावसे गोपियोंमें पक्ष-भेद भी हैं–स्वपक्ष, सुहृत्पक्ष, विपक्ष या प्रतिपक्ष, एवं तटस्थपक्ष।

भिन्न-भिन्न पक्षमें रहनेवाली गोपियोंके भिन्न-भिन्न यूथ हैं। उनमें जो प्रधाना है, उसे 'यूथेश्वरी' कहा जाता है। प्रत्येक यूथेश्वरीकी सखियां हैं, और सेविका–किंकरी हैं, जिन्हें 'मञ्जरी' कहा जाता है। इसप्रकार प्रत्येक यूथमें सखी, मञ्जरी आदिरूपमें असंख्य गोपियां हैं, उन सबका ही भाव समजातीय है।

श्रीराधिकाजी समस्त गोपियोंमें सर्वविध श्रेष्ठा हैं—वैसे तो श्रीचन्द्रावली भी अन्यान्य गोपियोंसे श्रेष्ठा हैं, किन्तु श्रीचन्द्रावली तथा श्रीराधाजीमें श्रीराधाजी ही सर्वतोभावसे श्रेष्ठा हैं। वह महाभावस्वरूपा तथा गुणोंमें सर्व वरीयसी हैं –

**तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वाधिका।**
**महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी॥**

श्रीउज्ज्वलनीलमणि, राधा–२॥





गोपी-भावके अति संक्षिप्त परिचय निरूपणके बाद हम यह देखेंगे कि श्रीमहाप्रभु-गौरांगमें कैसे और कितना गोपीभावका विकाश था—

जैसा कि ऊपर कह आये हैं—गोपीभावसे श्रीराधाभाव, श्रीराधा-किंकरी या मञ्जरी-भाव तथा अन्यान्य गोपियोंका भाव—ये सब भाव अभिप्रेत हैं—

सर्वप्रथम महाप्रभुमें अन्यान्य गोपियोंके भावके प्रकटनका उदाहरण देखिये—

शारदीय महारास रजनीमें भगवान् श्रीश्यामसुन्दरकी वंशीध्वनि सुनकर व्रजगोपियां जब उनके पास आईं, तो परिहासपटु रसिकशेखर श्रीकृष्णने रसपुष्टिके लिये परिहास करते हुए कहा—'स्वागतं भो महाभागाः'— महाभागाओ ! आपका स्वागत है। 'फिर आपने उन्हें उपदेश देना आरम्भ किया—हे गोपीगण ! आप कुलवन्ती रमणियां हैं, अपने घरोंको लौट जाओ, पति-पुत्रादिकी सेवा ही कुलवती नारियोंका धर्म है।' इसके उत्तरमें व्रजगोपियोंने कहा—कृष्ण ! तुमने वंशी बजाकर हमें घरसे बुलाया ही क्यों ? त्रिभुवनमें कहीं ऐसी भी कोई रमणी है, जो तुम्हारी वंशी ध्वनि सुनकर कुलधर्ममें रह सके ? रमणियोंकी क्या बात, कोई पुरुष, गो-पक्षी-वृक्ष तथा जन्तु भी ऐसा नहीं जो तुम्हारी वंशीध्वनि सुनकर तुम्हारी ओर खिंचा न आवे, और फिर तुम्हारे इस त्रिभुवन-सौभाग्य-स्वरूप रूपको देखकर मोहित-पुलकित न हो उठे।

**कृष्ण ! तुमने वंशी बजाकर हमें घरसे बुलाया ही क्यों ? त्रिभुवनमें कहीं ऐसी भी कोई रमणी है, जो तुम्हारी वंशी-ध्वनि सुनकर कुलधर्ममें रह सके ? रमणियोंकी क्या बात, कोई पुरुष, गो-पक्षी-वृक्ष तथा जन्तु भी ऐसा नहीं, जो तुम्हारी वंशीध्वनि सुनकर तुम्हारी ओर खिंचा न आवे....**

ठीक यही भाव श्रीमन्महाप्रभुमें एकदिन तब उदित हो उठा, जब नीलाचलमें उन्होंने श्रीस्वरूपदामोदरसे 'कस्त्र्यङ्ग ते कलपदामृतवेणुगीतं'–आदि श्रीभागवतीय (१०।२९।४०) श्लोकको कर्ण पिपासासे आतुर होनेपर सुना। सुनते ही इस श्लोकको श्रीमहाप्रभु उन गोपियों-के भावमें आविष्ट हो गये। आविष्ट क्या हुए, उन्हींके यूथमें ही मानों जा खड़े हुए और रुष्ट होकर श्रीकृष्णके प्रति इस प्रकार प्रलाप करने लगे—

नागर ! कह तुमि करिया निश्चय।
एइ त्रिजगत भरि, आछे यत योग्यनारी,
तोमार वेणु काँहा ना आकर्षय ?॥
कैला यत वेणु ध्वनि, सिद्ध मन्त्रादि योगिनी
दूती हैया मोहे नारी मन।
महोत्कण्ठा वाढ़ाइया, आर्यपथ छाड़ाइया,

आनि तोमाय करे समर्पण ॥
धर्म छाड़ाय वेणु द्वारे, हाने कटाक्ष कामशरे,
लज्जा-भय सकल छाड़ाय।
एबे आमाय करि रोष, कहि पतित्याग दोष,
धार्मिक हञा धर्म शिखाय ॥
अन्य कथा अन्य मन, बाहिरे अन्य आचरण,
एइ सब शठ-परिपाटी।
तुमि जान परिहास, हय नारीर सर्वनाश,
छाड़ एइ सब कुटिनाटी ॥
वेणुनाद अमृत घोले, अमृतसमान मिठा वोले,
अमृत समान भूषण शिञ्जित।
तिन अमृते हरे काण, हरे मन हरे प्राण,
केमने नारी धरिवेक चित ॥

श्रीचै० चरि० ३।१७।३३-३६

—नागर ! तुम मनमें थोड़ा विचार करके तो कहो कि त्रिभुवनमें जितनी योग्य (युवति) नारियां हैं, तुम्हारी वेणुध्वनि किसको आकर्षण नहीं करती ? तुम जितनी वेणुध्वनियां करते हो, वे सब सिद्ध-मन्त्र योगनियोंके समान हैं. वे दूतियां बनकर समस्त युवतियोंके मनको मोहित कर लेती हैं। वे तुम्हारी मिलनोत्कण्ठाको बढ़ाकर समस्त आर्य-पर्थ कुलधर्मका त्याग करा देती हैं और फिर उन्हें लाकर तुम्हारे समर्पण कर देती हैं।

कृष्ण ! तुमने वेणु-ध्वनि द्वारा हमारे सब धर्म छुड़ा दिये हैं, अपने कटाक्षरूप काम-वाणोंसे हमारे तन-मनको घायल कर दिया है। लज्जा, कुल-कानि और भयको भी तुमने छुड़ा दिया है। क्रोध भी हमपर तुम कर रहे हो, कि घर छोड़कर क्यों आई हो ? पति-परित्यागका दोष और लगा रहे हो ? तुम धार्मिक बनकर हमें धर्मका उपदेश करने लगे हो ? मुखसे कुछ कहते हो, मनमें तेरे कुछ और है और बाहरी आचरण कुछ और। कृष्ण ! ये सब तुम्हारी शठों जैसी चालाकियां हैं, अपने जान तुम परिहास कर रहे हो, हम युवतियोंका सर्व-नाश कर रहे हो, यह कूटनीति शोभा नहीं देती तुम्हें; छोड़ दो यह सब प्राण-वन्धो ! —गोपीभावावेशमें रोषभरे वचन कह रहे थे श्रीगौरांग।

नागर ! तुम्हारे वेणुनादमें अमृत घुला हुआ है। अमृतके समान मीठे हैं तुम्हारे वचन, तुम्हारे अलंकार-नूपुरोंकी झंकार अमृतके समान मधुर है; हाय ! ये तीनों मिलकर मेरे कानों, मन एवं प्राणोंका हरण कर रहे हैं, कहो, ऐसी युवती (मैं) कैसे धैर्य धारण करे ?

रासस्थलीसे श्रीराधाजीको लेकर श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। समस्त ब्रजगोपीगण अति व्याकुल हो उठीं और ढूण्ढने लगीं श्रीश्रीराधाकृष्ण-को। एक-एक वृक्ष-लतासे उनका पता पूछने लगीं। उन कृष्णान्वेषण-





भावमयी गोपियोंके भावमें श्रीमन्महाप्रभु एक दिन रातके समय आविष्ट हो उठे। समुद्रकी ओर चल दिये—सामने एक पुष्प-उद्यानको देख उसमें घुसे और जाना कि वे श्रीवृन्दावनमें हैं और रास-स्थलीमें प्राण-प्रीतम अन्तर्धान हो गये हैं। श्रीस्वरूपदामोदर आदि अन्तरंग भक्त आपके पीछे-पीछे चल रहे थे। श्रीमद्भागवतीय श्लोक (१०।३०।९) 'चूत-प्रियाल-पनसासन'—का उच्चारण करते ही श्रीमहाप्रभु उसी भावमें आविष्ट हो श्रीकृष्णान्वेषणके लिये एक-एक वृक्षके पास जाकर पूछने लगे—

आम्र पनस प्रियाल जम्बु कोविदार।
तीर्थवासी सभे कर पर—उपकार॥
कृष्ण तोमार इहाँ आइला पाइले दर्शन।
कृष्णेर उद्देश्य कहि राखह जीवन॥

श्रीचै० चरि० ३।१५।३०-३१

हे आम ! हे पनस ! हे प्रियाल ! हे जम्बु ! हे कोविदार ! तुम सब इस जमुनाके किनारे रहनेवाले तीर्थवासी हो, और सदा परोपकार करनेवाले हो। श्रीकृष्ण तुम्हारे पास आये थे क्या ? देखा है तुमने उन्हें ? उनका पता बताकर मेरे प्राणोंकी रक्षा करो।

---

**मुखसे कुछ कहते हो, मनमें तेरे कुछ और है, और बाहरी आचरण और। कृष्ण ! ये सब तुम्हारी शठों जैसी चालाकियां हैं। अपने जान तुम परिहास कर रहे हो, हम युवतियोंका सर्वनाश कर रहे हो, यह कूटनीति शोभा नहीं देती तुम्हें। छोड़ दो यह सब-प्राणबन्धो !**

---

कुछ उत्तर न मिला, सोचने लगे श्रीप्रभु—क्यों बतायेंगे ये, पुरुष जाति हैं न सब; सोचा कि ये लताएं तो मेरी सखियोंके समान हैं--ये अवश्य मेरी वेदनाको जानेंगी, इनसे पूछूँ, अवश्य उनका पता बतायेंगी। तुलसी-मालती आदि लताओंके सामने आ खड़े हुए विरह-कातर श्रीगौरांग; पूछने लगे—

तुलसि मालति यूथि माधवि मल्लिके।
तोमार प्रिय कृष्ण आइला तोमार अन्तिके॥
तुमि सब हओ आमार सखीर समान।
कृष्णोद्देश कहि सभे राखह पराण॥

श्रीचै० चरि० ३।१५।३५-३६

हे तुलसि ! हे मालति ! हे जूहिके ! हे माधवि ! हे मल्लिके ! तुम्हारे प्यारे श्रीकृष्ण तुम्हारे पास तो अवश्य आये होंगे। तुम मेरी सखी समान हो। उस श्रीकृष्णसे मिलाकर मुझे जीवन दान दो।

अहो ! तुम क्यों बोलो गी ? डर लगता है तुम्हें उनसे, दासी हो न उनकी ।

इसप्रकार कृष्णान्वेषण-परायणा गोपियोके भावमें श्रीमहाप्रभुका आवेश रोमांचकारी है-(देखिये श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य खण्डमें)। श्रीमन्महाप्रभुकी अन्त्य-लीलाका अध्ययन करनेसे श्रीमहाप्रभुके गोपीभावकी वैचित्रीका अद्‌भुत आस्वादन मिलता है। कभी मञ्जरी-भाव तो कभी सखी-भाव, और कभी वे राधा-भावका प्रकटन कर दिव्योन्मादमें प्रलाप करने लगते थे। उद्‌घूर्णा भावमयी श्रीराधाजी जैसे कभी अपनेको भूल जाती थीं तथा अपनेको कोई और गोपी जानने लगती थीं, और कभी दूसरी गोपीको ही राधा जानकर प्रलाप-करती थीं—वही भावदशा श्रीमन्महाप्रभुमें प्रकाशित हो उठती थी। अपनेको वे विल्कुल भूल जाते।

श्रीराधा-भाव तो आपमें प्राय प्रकट रहता था नीलाचल-वासके अन्तिम दिनोंमें। अनेक महत्‌पुरुषोंने ऐसे भावाविष्ट श्रीगौरांगके दर्शनकर जीवन कृतार्थ किया। इसलिये श्रीकविराज गोस्वामीने जगह-जगह पर लिखा है—

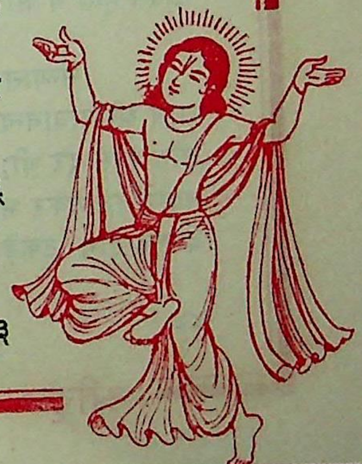
गोपीभाव जाते प्रभु करियाछे एकान्त।
व्रजेन्द्रनन्दने माने आपनार कान्त॥
राधिकार भावे प्रभुर सदा अभिमान।
सेई भावे आपनाके हय राधा ज्ञान॥

श्रीव्रजगोपीगण जैसे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको अपना प्राणवल्लभ मानती थीं, उसी गोपीभावको अनन्यतासे अङ्गीकार करनेसे श्रीमहाप्रभु श्रीकृष्णको अपना प्राणवल्लभ स्वामी ही मानते थे। श्रीराधाभावमें सदा वे भावित रहते और अपनेको सदा राधा ही जानते थे।

हा हा सखि ! कि करि उपाय ?

काहा करों काहां जाऊं, काहां गेले कृष्ण पाऊं
कृष्ण विनु प्राण मोर जाय॥
मन मोर वाम दीन, जल बिनु जेन मीन
कृष्ण बिनु क्षणे मरि जाय।
हा हा कृष्ण प्राणधन, हा हा पद्मलोचन,
हा हा दिव्यसद्‌गुणसागर।
हा हा श्याम सुन्दर, हा हा पीताम्बर-धर
हा हा रासविलास-नागर॥

श्रीचैतन्य चरितामृत, ३।१७।४६-५६





# श्रीगौरांगमें राधाका सूद्दीप्त–भावोदय



श्रीगौरांग स्वरूपत: हैं राधाभाव-कान्तिसे सुवलित श्रीकृष्ण। अत: उनमें राधाभावका तो हर समय आवेश है। श्रीमहाप्रभुमें अनेक प्रकारकी गोपियोंका भाव तथा मञ्जरीभाव भी उनकी आवेशावस्थामें प्रस्फुट हो उठता था। गोपी-भाव तथा मञ्जरी–भाव दोनों राधाभाव पर ही प्रतिष्ठित थे। अत: उक्त भावोंके विकाशमें राधाभावका उजागर रूपसे विकाश प्रस्फुटित नहीं समझा जाता।

श्रीराधाजीमें कृष्णप्रेमकी मादन एवं मोहन स्तरोंका जो विकाश है, वह उनकी निजी सम्पत्ति है। समस्त गोपीगण महाभाव स्वरूपिणी होते हुए भी उनमें मादन तथा मोहन-की अभिव्यक्ति नहीं है। वे एकमात्र श्रीराधाजीमें अभिव्यक्त होते हैं।

मादन तथा मोहन महाभावका-प्रकाश श्रीगौरांगमें अभिव्यक्त होता था, इसलिए उनमें राधाभावका भी उदय होता था—इसमें कुछ सन्देह नहीं रह जाता। किन्तु मादनकी अभिव्यक्ति होती है श्रीराधाजीमें श्रीकृष्ण-मिलनके समय। उस मिलनमें जो अनिर्वचनीय एवं अतुलनीय आनन्द उमड़ता है, उसके अनुभाव या चिह्न सूद्दीप्त सात्त्विकादि विकारोंकी भांति किंवा भ्रममय चेष्टा और प्रलापमय वाक्योंकी भांति होते हैं, जो सर्व-साधारणकी उपलब्धि-का विषय नहीं हैं। मोहन-भावका उदय श्रीकृष्ण-विरहमें हुआ करता है। उस कृष्णविरहात्मक मोहन-महाभावमें जो सूद्दीप्त सात्त्विकादि विकार तथा दिव्योन्माद-वश जो भ्रममय चेष्टाए और प्रलापादि वाक्य सामने आते हैं, उन्हें सर्वसाधारण परिष्कार भावसे देख-समझ सकता है। वे समस्त एकमात्र राधाभावावेशके ही सूचक हैं।

श्रीगौरांग महाप्रभुमें मोहन-महाभावजनित वे समस्त सूद्दीप्त-सात्विकादि विकार उदित होते थे और तज्जनित दिव्योन्माद भी हुआ करता था।

संन्यास ग्रहणके बाद शांतिपुरसे जब श्रीप्रभु जगन्नाथपुरी की ओर चले, तो उनके साथ श्रीनित्यानन्द, मुकुन्ददत्त, जगदानन्द पण्डित और दामोदर पण्डित भी थे। पुरी अभी तीन कोस दूर थी; कमलपुरमें प्रभुने अपना दण्ड श्रीनित्यानन्दप्रभुके हाथोंमें दिया और भार्गी नदीमें स्नानकर भक्तोंके साथ कपोतेश्वर शिवके दर्शनोंको गये। इधर श्रीनित्यानन्द प्रभुने दण्डके तीन टुकड़े कर नदीमें डाल दिये। कपोतेश्वर दर्शनके बाद जब प्रभुने श्रीजगन्नाथ

मन्दिरका चूड़ा-चक्र देखा तो प्रेमाविष्ट हो उठे और बाह्यज्ञान-शून्य हो गये। सब साथी भी प्रेमाविष्ट होकर नृत्य-कीर्त्तन करते-करते महाप्रभुके पीछे जा रहे थे। श्रीमहाप्रभु कभी हंसते, कभी रोते, कभी गर्जनापूर्वक हुङ्कार कर रहे थे। इस प्रकार तीन कोस चलते-चलते जब पुरीके अति निकट आठार-नाला पर पहुंचे, तब प्रभुको थोड़ा बाह्यज्ञान हुआ। प्रभुने श्रीनित्यानन्दसे अपना दण्ड मांगा। उन्होंने कहा – प्रभो! वह दण्ड टूट गया था, जाने कहां गिर पड़ा। श्रीमहाप्रभु कुछ क्रोधित हो बोले 'नीलाचल लाकर आपने मेरा अच्छा हित किया है, एक मात्र धन दण्ड ही तो था, उसे भी नष्टकर दिया? मैं अब आपके साथ नहीं जाऊंगा। आप जाओ सब आगे, अथवा मैं आगे जाता हूं। मेरे साथ कोई भी नहीं चलेगा।' श्रीमुकुन्ददत्तने कहा— प्रभो! आप आगे जाओ, हम पीछे आते रहेंगे।

---

**यह 'प्रलय' नामका सूद्दीप्त सात्त्विक विकार है जो केवल श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध परिकरोंमें ही प्रकाशित होता है। जिसका अधिरूढ़ भाव होता है उसमें यह प्रलय...............**

---

श्रीमहाप्रभु द्रुतिगतिसे अकेले चल दिये प्रेमाविष्ट होकर श्रीजगन्नाथ मन्दिर की ओर। श्रीजगन्नाथ-दर्शन करते ही प्रभु तो अस्थिर हो उठे और श्रीजगन्नाथको आलिंगन करनेके लिये दौड़ पड़े। किन्तु गिर पड़े बेसुध होकर मन्दिरमें। श्रीवासुदेव सार्वभौम, जो उड़ीसा नरेश प्रतापरुद्रके राज-पण्डित थे और वेद-वेदान्त सर्वशास्त्र-निष्णात अद्वितीय विद्वान थे, वहां खड़े थे। अपने सेवकों द्वारा महाप्रभुको उसी अचेतन अवस्थामें वे उठवाकर अपने निवास-स्थानपर ले आये। श्रीमहाप्रभुके अद्‌भुत सौन्दर्य तथा प्रेमविकारोंको देखकर चमत्कृत हो उठे और चिन्तित भी। उन्होंने थोड़ी सी रुई मंगाकर प्रभुकी नासिकाके आगे रखी। उसके किञ्चित हिलनेपर वे कुछ आश्वस्त हुए कि प्राण तो चल रहे हैं। वे सोचने लगे—

वसि भट्टाचार्य मने करेन विचार।
एइ कृष्णमहाप्रेमेर सात्त्विक-विकार॥
सूद्दीप्त सात्त्विक एइ नाम ये प्रलय।
नित्यसिद्ध भक्ते से सूद्दीप्त भाव हय॥
अधिरूढ़ भाव जार तार ए-विकार।
मनुष्येर देहे देखि, बड़ चमत्कार॥

श्रीचै० चरि० २।६।१०-१२



श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य बैठ गये और मनमें विचार करने लगे कि ऐसी अवस्था तो श्रीकृष्णके महाप्रेम-जनित सात्त्विक विकारमें हुआ करती है। यह 'प्रलय' नामका सूद्दीप्त सात्त्विक विकार है जो केवल श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध परिकरोंमें ही प्रकाशित होता है। जिसका अधिरूढ़ भाव होता है, उसमें यह प्रलय-नामक सूद्दीप्त सात्त्विक विकार उदय हुआ करता है।—



मैं आज उसे इस संन्यासीमें देख रहा हूं। बड़ा आश्चर्य है! ऐसा सूद्दीप्त विकार तो केवल श्रीराधामें उदय हुआ करता है। थोड़ी देर बाद श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि सब भक्त प्रभुका अन्वेषण करते हुए श्रीसार्वभौमके घर महाप्रभुसे आ मिले। सबने उच्चस्वरमें कृष्ण-कीर्त्तन किया, तब कहीं श्रीगौरांग चेतन हुए और उठ बैठे। श्रीगोपीनाथ आचार्यने श्रीसार्वभौमको श्रीमहाप्रभुका परिचय दिया, वे पहले नवद्वीप रहते थे, महाप्रभुको जानते थे

ऐसे सूद्दीप्त-सात्त्विकके प्रकाशका और एक दृष्टान्त हमें मिलता है, जब श्रीमहाप्रभु रथयात्राके समय रथके आगे-आगे नृत्य करते हुए चल रहे थे। उस समय उनमें एक साथ आठों सात्त्विक भाव उदित हो उठे—

मांस व्रण सह रोमवृन्द पुलकित।
शिमुलीर वृक्ष येन कण्टके वेष्टित॥
एकेक – दन्तेर कम्प देख लागे भय।
लोके जाने, दन्त सब खसिया पड़य॥
सर्वांगे प्रस्वेद छुटे ताते रक्तोद्गम।
ज-ज ग-ग ज-ज ग-ग गद्गद् वचन॥
जलयन्त्र धारा येन बहे अश्रुजल।
आश-पाश लोक जत भिजिल सकल॥
देहकान्ति गौर कभु देखिये अरुण।
कभु कान्ति देखि येन मल्लिका पुष्पसम॥
कभु स्तब्ध कभु प्रभु भूमिते पड़य।
शुष्क काठ सम हस्त पद न चलय॥
कभु भूमि पड़े, कभु हय श्वासहीन।
जाहा देखि भक्तगणेर हय प्राण क्षीण॥
कभु नेत्र-नासा जल मुखे पड़े फेन।
अमृतेर धारा चन्द्र बिम्बे पड़े येन॥

श्रीचै० चरि० २।१३।८७

**पुलक** ऐसा कि रौंगटोंके साथ उनकी जड़ फफोलोंकी भांति फूल उठी, प्रभुका सारा शरीर शिमुलीके वृक्षकी भांति कांटे-कांटे दीखने लगा। **कम्पमें** उनका एक-एक दाँत ऐसा कट-कटाने लगा कि देखनेसे भय लगता था कि अभी सारे दाँत बाहर आ पड़ेंगे। **स्वेद** सब अङ्गोंसे पसीनाके साथ-साथ रक्त निकल रहा था। **गद्गद** विकारके कारण श्रीमहाप्रभु जगन्नाथ बोलनेमें ज-ज, ग-ग, ज-ज, ग-ग कहकर ही रह जाते—पूरा नाम जगन्नाथ बोल ही न पा रहे थे। उनका स्वर-भंग हो रहा था। **अश्रु** तो आंखोंसे पिचकारी की तरह छूट रहे थे, जिनके

आस-पासमें खड़े लोग भीग रहे थे। **विवरण** ऐसा कि उनके शरीरकी कान्ति कभी लाल और कभी मल्लिका पुष्पकी भांति बिल्कुल सफेद दीखने लगी। **स्तब्धमें** तो वे जड़वत् होकर बार-बार पृथ्वीपर गिर रहे थे। सूखी लकड़ीकी तरह उनके हाथ-पाँव हिलने-जुलने से रहित हो गये। **प्रलयमें** जब प्राय श्वासहीन होकर पृथ्वीपर गिरते तो भक्तोंके प्राण ही मानो निकल जाते। उनके नेत्रों-नासिकासे जल बहने लगा, मुंहसे झाग बह निकली, ऐसा प्रतीत होता मानो चन्द्रसे अमृत क्षुरित हो रहा हैं।

ये सब सूद्दीप्त-सात्त्विक विकार प्रभुमें एक-दो बार नहीं, प्रायः उदित हो उठते, जब वे श्रीराधाजीके भावमें आविष्ट हो कृष्णविरहमें अतीव व्याकुल होते। श्रीमहाप्रभुमें राधाभाव-का परिस्फुट-प्रकाश संगके अनेक साथियोंने देखा। श्रीमहाप्रभुकी इस सूद्दीप्त अवस्थाका श्रीगोस्वामिपादने अपने स्तवोंमें अनेक स्थानोंपर अद्भुत वर्णन किया है।

इसी प्रकार श्रीमहाप्रभुमें मोहन-महाभावावेशमें दिव्योन्मादमय उद्घूर्णा, चित्रजल्प आदि प्रकटित हो उठते। मथुरासे श्रीउद्धवजीको आया देखकर श्रीराधाजीमें दिव्योन्मादमय चित्रजल्पके दसों अंग प्रकटित हुए थे—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प (इनका विस्तृत वर्णन उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें अथवा श्रीचैतन्य चरितामृत २।२३।३९ की चैतन्यचरण-चुस्विनी टीकामें द्रष्टव्य है) राधाभावाष्टि श्रीमहाप्रभुमें भी चित्रजल्पके दसों अङ्गोंकी वैचित्री प्रकटित होती थी—

---

**पुलक—ऐसा कि रोंगटोंके साथ उनकी जड़ फफोलोंकी भांति फूल उठी, प्रभुका सारा शरीर शिमुलीके वृक्षकी भांति कांटे-कांटे दीखने लगा। स्वेद—सब अंगोंसे पसीनेके साथ-साथ रक्त निकल रहा था। गद्गद – विकारके कारण श्रीमहा-प्रभु जगन्नाथ बोलने में ज-ज, ग-ग, ज-ज, ग-ग, कह-कर हो रह जाते.......................... ...।**

---

श्रीकृष्ण दर्शनके लिये उत्कण्ठावती विरहार्ता श्रीराधाके भावमें आविष्ट होकर एकदिन श्रीमहाप्रभु जगन्नाथजीके दर्शन करने गये। सिंहद्वार पर खड़े द्वारपालने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। श्रीमहाप्रभुने उसका हाथ पकड़कर कहा—कहां हैं मेरे प्राणनाथ कृष्ण ? दिखाओ-दिखाओ सखि ! मुझे मेरे श्रीकृष्णको—

काहाँ कृष्ण मोर प्राणनाथ।
मोरे कृष्ण देखाओ, बलि धरे तार हाथ ॥
श्रीचै० चरि० ३।१६।७५



श्रीमहाप्रभु इस भावमें आविष्ट हो श्रीजगन्नाथको वंशीधारी श्रीनन्दनन्दन रूपमें प्रत्यक्ष देखते थे। उनके अधर-सुधारस पान करनेके लिये कभी-कभी व्याकुल हो उठते। श्रीकृष्णके पाँचगुणों (शब्द, रूपादि) में



श्रीराधाजीकी पांचों इन्द्रियां आकृष्ट हो उठती थीं और वे दिव्योन्मादमें चित्रजल्पादि करने लगती थीं। श्रीमहाप्रभुजीमें उन समस्त आकृष्ट दशाओंका भाव उदित हो उठता और वे श्रीराधाजीकी भांति दिव्योन्मादमय प्रलाप करने लगते थे। दिव्योन्मादमें ही प्रभु गम्भीराकी दीवारोंपर अपना मुख घर्षण करते, कभी कूर्माकार हो जाते, कभी दीर्घाकृति हो जाते। इसी भावावेशमें श्रीमहाप्रभु समुद्रमें कूद पड़े और घंटों तरंगोंमें डूबते-उतरते रहे। माहीगीरके जालमें फंसकर उसके खींचने पर बाहर आये। अद्भुत अलौकिक चमत्कारी लीलाएं हैं श्रीमन्महाप्रभुकी, जिनमें उनका राधाभाव, व्रजलीलाकी अपेक्षा भी अति उन्नतरूपमें प्रकटित हुआ है। श्रीराधाभावाविष्ट श्रीमहाप्रभुकी श्रीमुखोक्ति तो है यह—

**आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।**
**यथा तथा वा विदधातु लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥**

हे सखि ! श्रीकृष्ण मुझ चरणदासीको आलिंगन कर आत्मसात करें, अथवा दर्शन तक न देकर मुझे मृत्यु तुल्य पीड़ा ही दें, अथवा वह लम्पट जहां-तहां चाहें विहार ही करें, किन्तु मेरे प्राणनाथ वही ही हैं, और कोई दूसरा नहीं ॥

## सखि हे ! सुन मोर दुखेर कारण

**मोर पञ्चेन्द्रियगण, महालम्पट दस्युगण,**
**सभे हरे परधन ॥**
**एक अश्व एक क्षणे, पाँच पाँच दिगे टाने,**
**एक मन कोन दिगे जाये ?**
**एक काले सभे टाने, गेल घोड़ार पराणे,**
**एइ दुख सहन ना जाये ॥**
**इन्द्रिये ना करि रोष, इहा सभार काहा दोष,**
**कृष्णरूपादि महा आकर्षण।**
**रूपादि पाँच पाँचे टाने, गेल पांचेर पराणे,**
**मोर देहे ना रहे जीवन ॥**

# रसराज-महाभावस्वरूप श्रीश्रीगौरसुन्दर

पूज्यपाद बाबा श्रीकिशोरीदासजी महाराज



व्रजलीलामें श्रीराधाजी जिस प्रकार श्रीकृष्ण-माधुर्यका आस्वादन करती हैं, ठीक उसी प्रकार स्वीय-माधुर्यको पूर्णतमरूपसे आस्वादन करनेकी वलवती एवं क्रमशः वृद्धिशीला लालसा श्रीकृष्णमें जाग उठी। माधुर्य-आस्वादनका एक मात्र उपाय है प्रेम—आश्रय-जातीय प्रेम। जिनमें कृष्णविषयक-प्रेमका पूर्णतम विकाश है, केवल मात्र वे ही श्रीकृष्णका माधुर्य पूर्णतमरूपसे आस्वादन कर सकते हैं।

प्रेमके पूर्णतम विकाशका नाम है मादन या मादनाख्य-महाभाव। यह मादनाख्य-महाभाव केवल श्रीराधिकाजीमें है, और किसीमें ही नहीं। अखिल-रसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण इस मादनाख्य-महाभावके केवल मात्र विषय हैं, आश्रय नहीं। अतएव निज माधुर्यको पूर्णतमरूपसे आस्वादन करनेकी वाञ्छाको परिपूर्ण करनेके लिये श्रीकृष्णकी श्रीराधाजीके उस मादनाख्य-महाभावके आश्रय होनेकी उत्कट लालसा है। उस लालसा-पूर्त्तिके लिये मादनाख्य-महाभावके आश्रय होनेके निमित्त ही श्रीकृष्णको श्रीराधिकाजीके साथ निविड़तमरूपसे मिलित होना पड़ा, जैसा कि श्रीस्वरूपदामोदरजीने अपनी कड़चामें लिखा है—

**चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयञ्चैक्यमाप्तं।**
**राधा-भाव-द्युति सुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥**

—कलियुगमें वे श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण दोनों एकताको प्राप्त होकर श्रीचैतन्य-नामसे प्रकट हुए हैं, राधा-भाव-द्युति-सुवलित श्रीकृष्णस्वरूप—श्रीचैतन्यको मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीराधा और श्रीकृष्ण, ये दोनों मिलकर हो गये—**'रसराज महा-भाव-दुइ एक रूप।'** श्रीराधारानीके प्रत्येक गौर-अङ्गके द्वारा श्रीकृष्णका प्रति श्याम-अङ्ग निविड़तम भावसे आलिंगित होनेसे श्यामसुन्दर हो गये गौरसुन्दर। श्रीपादजीव गोस्वामीने श्रीचैतन्यको **'अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं'**—'भीतर कृष्ण और बाहर गौर' कहकर वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत (११।५।३२) में कलियुगके उपास्यका निरूपण करते हुए श्रीकरभाजन योगेश्वरने **'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्'**—श्रीकृष्णका निरन्तर-वर्णन करनेवाले





तथा अकृष्ण अर्थात् पीत कान्तियुक्त' इन्हीं श्रीगौरसुन्दरको कलिके उपास्य-रूपमें निरूपण किया है।

यही है श्रीगौरसुन्दर-स्वरूप, श्रीराधारानीका मादनाख्य-महाभाव ही इस श्रीगौरसुन्दरका स्वरूपगत भाव है अर्थात् श्रीगौरसुन्दरस्वरूप मादनाख्य-महाभावका आश्रय है। उस मादनाख्य-महाभावके विकाशसे इनके स्वरूपका पूर्ण विकाश है। मादन-भावका विकाश होता है मिलनमें, श्रीकृष्ण-के साथ श्रीराधारानीके मिलनमें। यह मिलन जितना निबिड़ होता है, मादनका उच्छ्वास भी उतना हो आधिक्य धारण करता है। श्रीगौरसुन्दर-स्वरूपमें श्रीश्रीराधा-कृष्णका निबिड़तम मिलन है, अतः इनमें मादनका उच्छ्वास भी सर्वातिशायी है।

प्रेम-विलास-विवर्तमें ही श्रीराधाजीके साथ श्रीकृष्णका निबिड़तम मिलन है, इसलिये मादनाख्य-महाभावका भी चरमतम विकाश है। अतएव श्रीमती राधिकाके प्रेमविलास-विवर्त-भावमें जब श्रीगौरसुन्दर आविष्ट होते हैं, तब इनमें भी मादनका पूर्णतम विकाश लक्षित होता है और इन्हें प्रेमविलास-विवर्तका मूर्त्तविग्रह कहा जाता है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीलाके द्वितीय परिच्छेदमें तथा अन्त्यलीलाके पांचवे परिच्छेदमें श्रीमन्महाप्रभुकी कृष्णविरह-जनित अनेक प्रलापोक्तियां दीखती हैं, जो प्रायः सबही दिव्योन्माद जनित प्रलाप है। और कृष्णविरह-क्लिष्टा श्रीराधिका-भावावेशमें प्रभुके श्रीमुखसे वह प्रलाप उत्सारित हुआ है। किन्तु श्रीमहाप्रभुके इस प्रकारके विप्रलम्भ-विग्रहको उनका स्वरूप-विग्रह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जैसे पहले कहा जा चुका है कि श्रीश्रीराधाकृष्णके नित्य निबिड़तम मिलित-विग्रह हैं श्रीगौरसुन्दर और मादनाख्य-महाभाव ही श्रीगौरसुन्दरका स्वरूपगत भाव है।

विरह-अवस्थामें मादनाख्य-महाभावका विकाश नहीं होता। विरहमें मोहनाख्य-महाभावका ही विकाश होता है।* अतः विरहात्मक मोहनाख्य-महाभाव श्रीगौरसुन्दरका स्वरूपगत मुख्य भाव नहीं है। मोदन-भावमें विरह-वश मोहन-महाभाव अवश्य अभिव्यक्त होता है। किन्तु मादन-भाव स्वयं-प्रेम होनेके कारण मोदन-भाव उसके अन्तर्भुक्त ही माना गया है तथापि मोदन और मादन एक नहीं हैं। मादनाख्य-महाभावमें मोदनकी अपेक्षा प्रेमका एक

*अधिरूढ़ महाभावके दो भेद हैं—मोदन तथा मादन। अधिरूढ़ भावमें श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा दोनोंमें जब सब उद्दीप्त सात्त्विकभाव सौष्ठव धारण करते हैं, तब उसे 'मोदन' कहते हैं। श्रीकृष्णविरह-अवस्थामें मोदनको 'मोहन' कहते हैं। इसमें भी विरह-जनित वैवश्य-वश सात्त्विक भाव सूद्दीप्त हो उठते हैं। ह्लादिनी-सारभूत प्रेम जब सर्वभावोद्गमोल्लासी हो, तब उसे 'मादन' कहते हैं। मादन का अनिर्वचनीय विचित्र प्रभाव श्रीराधाजीमें श्रीकृष्णमिलन-में ही एकमात्र उदित होता है।

अनिर्वचनीय सर्वातिशायी विकाश है। मादनाख्य महाभाव सर्व भावोद्गमोल्लासी है, मोदन किन्तु ऐसा नहीं है। मोहन महाभावमें भी वह बात नहीं है। अतएव मोहनभाव-सम्भूत दिव्योन्मादके विग्रहको मादन-सम्भूत प्रेमविलास-विवर्तके विग्रहके साथ अभिन्न कहना-मानना संगत नहीं है।

मादनाख्य-महाभाववती श्रीराधाजीमें श्रीकृष्णविरह-अवस्थामें मोहन-भाव उच्छ्व-सित होनेपर ही दिव्योन्माद और उससे प्रलापादिका अभ्युदय होता है, किन्तु उस समय उनमें मादन-महाभाव स्तम्भित अथवा प्रच्छन्न अवस्थामें रहता है, क्योंकि एकमात्र मिलन-अवस्थामें ही मादन-महाभावका उल्लास होता है।

'रसराज महाभाव दुई एक रूप' श्रीगौरसुन्दर भी जब श्रीराधिकाके मोहनाख्य भावमें आविष्ट होते हैं, तब भी उनमें उनका स्वरूपगत मुख्य भाव मादनाख्य-महाभाव रहता ही है, किन्तु स्तम्भित होकर। विरहात्मक मोहनाख्य-महाभाव जैसे मादनाख्य-महाभाववती श्रीराधा-का स्वरूपगत सर्वप्रधान भाव नहीं, उसी प्रकार राधाभावाविष्ट श्रीगौरसुन्दरका भी वह स्वरूपगत सर्वप्रधान भाव नहीं है।

श्रीचैतन्यचरितामृत अष्टम परिच्छेद (१५२-१५३ पयारों) में रायरामानन्दने जो प्रेम-विलास-विवर्त-द्योतक गीत वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

पहिलहि राग नयनभङ्ग भेल।
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल॥
ना सो रमण ना हाम रमणी।
दुहं मन मनोभाव पेषल जानि॥

इस अंशमें जो प्रेमविलास-विवर्त सूचित हुआ है, वह मिलनमें ही सम्भव है। इसी पदके (पयार-१५६) 'अब सोइ विराग'—अंशमें श्रीकृष्णसे श्रीराधाका विरह वर्णित हुआ है, किन्तु इसमें प्रेम-विलास-विवर्त सूचित नहीं होता। प्रेम-विलास-विवर्तमें ही राधाप्रेम-महिमाकी एक अपूर्व वैचित्री है। पराकाष्ठा है, विरहमें नहीं, तथापि विरह भी प्रेम-महिमाकी

श्रीश्रीराधाकृष्णके नित्य-मिलित स्वरूप हैं, प्रश्न उठता है कि जब श्रीगौरसुन्दर तब उनमें विरह-भावका उदय क्यों होता है?

इसका उत्तर यह है कि ऐसा होना असम्भव नहीं है। प्रेम-वैचित्य-के उदयमें श्रीकृष्णके अङ्कमें स्थिता श्रीराधामें भी विरह-भावका उदय होता है। श्रीगौरसुन्दररूपमें श्रीकृष्ण राधाप्रेमकी महिमाको अनुभव करनेके लिये प्रकट हुए हैं। दिव्योन्मादमें प्रेमकी जो महिमा अभिव्यक्त होती है, यदि उसका वे आस्वादन न करें तो उनकी राधाप्रेम-महिमाको जाननेकी वाञ्छा इस अंशमें अपूर्ण ही रह जायेगी। व्रजलीलामें श्रीकृष्णकी तीन-वासनाओंमें एक वासना यही थी कि राधाप्रेमकी महिमा कैसी है—





'श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वा'

—श्रीचै० चरि० १।१।६ श्लोक

इस वासनाकी पूर्त्ति श्रीगौरसुन्दरने नानविध भावोंसे की। जिनका दिग्दर्शन हम यहां कराते हैं—

१—एक दिन महाप्रभु करियाछेन शयन।
कृष्ण रासलीला करे, देखेन स्वपन॥
त्रिभङ्ग – सुन्दर देह मुरली – बदन।
पीताम्बर वनमाला मदन-मोहन॥
मण्डली बान्धे गोपीगण करेन नर्त्तन।
मध्ये राधासह नाचे व्रजेन्द्रनन्दन॥

श्रीचै० चरि० ३।१४।१५-१७

एक दिन स्वप्नमें श्रीरासलीलामें त्रिभङ्ग सुन्दर मदनमोहन स्वरूपके दर्शनकर श्रीमहाप्रभुने कृष्ण-माधुर्यकी एक प्रकारकी वैचित्रीका आस्वादन किया।

२—एकदिन करे प्रभु जगन्नाथ दरशन।
जगन्नाथे देखें साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन॥
एकबारे स्फुरे प्रभुर कृष्णेर पञ्चगुण।
पञ्चगुणे करे पञ्चेन्द्रिय आकर्षण।
एक मन पञ्चदिके पञ्चगुणे टाने॥
टानाटानि प्रभुर मन हैल अगेयाने॥

श्रीचै० च० ३।१५।६-८

एक दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीजगन्नाथजीके साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णरूपमें दर्शन किये। श्रीकृष्णके रूप-रसादि पांचों गुण उन्हें एक साथ स्फुरित हो उठे और प्रभुकी पांचों इन्द्रियोंको अपनी-अपनी ओर खीचने लगे। मन तो था एक, इस खींचातानीमें उनका मन अचेतन हो गया। इस प्रकार श्रीकृष्णमाधुर्यकी एक दूसरी वैचित्रीका आस्वादन किया श्रीगौरसुन्दरने।

३—और एक दिन श्रीजगन्नाथजीके गोपाल-वल्लभ-भोगका प्रसाद थोड़ा सा श्रीमहाप्रभुने मुखमें डाला, डालते ही क्या हुआ ? कि

कोटि अमृत-स्वादु पाञा प्रभुर चमत्कार।
सर्वाङ्गे पुलक, नेत्रे बहे अश्रुधार॥
एइ द्रव्ये एत स्वादु काहां हैते आइल ?
कृष्णेर अधरामृत इहां सञ्चारिल॥

एई बुद्धये महाप्रभुर प्रेमावेश हैल।
जगन्नाथेर सेबक देखि संवरण कैल॥
सुकृति लभ्य फेलालव बोले बार-बार।
ईश्वर सेवक पुछे, प्रभु ! कि अर्थ इहार॥
श्रीचै० च० ३।१६।८६-८९

कोटि-कोटि अमृतका स्वाद उसमें श्रीमहाप्रभुने अनुभव किया। जैसे उन्होंने कृष्ण अधरामृतका पान किया हो। पुलक-अश्रु आदि सात्त्विक विकारोंमें घिर कर प्रभु बार-बार कह रहे थे—मुझे सुकृतिजनोंको प्राप्त होनेवाला कृष्ण-अधरामृत प्राप्त हो गया। ऐसा कहते-कहते प्रभु बेसुध हो गये, फिर जैसे-तैसे पुजारीने उन्हें सम्भाला। इस प्रकार आपने श्रीकृष्ण-अधरामृतका माधुर्य आस्वादन किया।

४—एक दिन श्रीमहाप्रभु श्रीकृष्णकी रासलीलाके अन्तमें वर्णित जल-केलिका श्लोक गान करते-करते समुद्रको यमुना जानकर उसमें कूद पड़े। समुद्रमें डूबते-उतरते बहुत दूर तक बहते चले गये। अन्तमें जब श्रीस्वरूपादि भक्तोंने श्रीमहाप्रभुको अर्द्ध-बाह्य दशामें जाकर प्राप्त किया तो प्रभु कहने लगे—

कालिन्दी देखिया आमि गेलाङ वृन्दावन।
देखि, जल-क्रीड़ा करे व्रजेन्द्रनन्दन॥
राधिकादि गोपीगण संगे एकत्र मेलि।
यमुना जले महारङ्गे करे केलि॥
तीरे रहि देखि आमि सखीगण सङ्गे।
एक सखी सखीगणे देखाय से रङ्गे॥
श्रीचै० च० ३।१८।७७-७९

इस प्रकार श्रीमहाप्रभुने रासके अन्तमें जलकेलिके दर्शनकर श्रीकृष्णके माधुर्यकी एक और वैचित्रीका आस्वादन किया।

सारांश यह है कि श्रीगौरसुन्दरने अशेष-विशेष रूपसे कृष्ण-माधुर्यका आस्वादन किया है। कृष्ण-माधुर्य कहनेसे केवल रूप-माधुर्य ही नहीं, श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण तथा लीला आदिके समस्त प्रकारकी माधुर्य वैचित्री जाननी चाहिये। श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण-लीला आदिक समस्त का श्रीराधाजी जिस प्रकार आस्वादन करती हैं, उन्हीं समस्तका उसी भावसे आस्वादन करनेकी बलवती लालसा व्रजलीलामें श्रीश्यामसुन्दरकी जाग उठी थी। श्रीश्रीराधाकृष्ण-मिलित विग्रहरूपमें श्रीश्रीगौरसुन्दरने वह समस्त आस्वादन किया। उन समस्तका वर्णन क्षुद्रमति जीवके पक्षमें नितान्त असम्भव है। श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतादि ग्रन्थोंका अध्ययन आवश्यक है।

श्रीराधाके समान श्रीकृष्णमाधुर्यका आस्वादन श्रीराधाके मादनाख्य-महाभावकी सहायतासे श्रीगौरसुन्दर करते हैं और इसी





आस्वादनके व्यपदेशसे स्वीय–माधुर्यके स्वरूपको अनुभव करते हैं तथा श्रीराधाजी उस माधुर्य-आस्वादनमें जैसा सुख प्राप्त करती हैं, उस सुखसे भी पूर्णतः अवगत होते हैं। इस प्रकार **'अनयैवास्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः। सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वा'**—श्रीराधाजी अपने-प्रेमके द्वारा मेरे जिस अद्भुत माधुर्यका आस्वादन करती हैं, वह मेरा माधुर्य कैसा है ? तथा उस मेरे माधुर्यके आस्वादनसे श्रीराधा जिस सुखका अनुभव करती हैं; वह सुख कैसा है ?—इन दोनों वासनाओंको श्रीगौरसुन्दररूपमें पूर्ण किया और अब भी वह आस्वादन नित्य कर रहे हैं। श्रीराधाजी जैसे मादन-घन-विग्रहा हैं, उसी प्रकार इस आस्वादनमें 'रसराज-महाभाव दुई एक रूप'–श्रीगौरसुन्दर भी मादनघन-विग्रह हैं। इस आस्वादनमें ही श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके निज-स्वरूपका परिचय मिलता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है श्रीगौराङ्गप्रभुने दूर रहकर ही श्रीरासलीला, जल-केलि आदिके दर्शन किये थे; दूर रहकर दर्शन करते समय श्रीमहाप्रभु अन्य गोपी-भावमें आविष्ट थे, यह स्पष्ट है। किन्तु उस समय भी श्रीमहाप्रभुमें मादनाख्य-महाभाव विद्यमान था, क्योंकि मादन-महाभाव तो उनका स्वरूपगत भाव है। इसी प्रकार स्वप्नमें उन्होंने श्रीकृष्णकी रासलीलाका जो दर्शन किया और श्रीश्रीराधाकृष्णके चारों ओर गोपियोंको मण्डलाकारमें नृत्य करते देखा, इससे भी ज्ञात होता है कि श्रीमहाप्रभुने उस समय अपनेको श्रीराधारूपमें श्रीकृष्णके साथ रास करते नहीं देखा, यदि वे अपनेको राधा समझते तो वे श्रीश्रीराधाकृष्णको अपनेसे अलग न देखते। यहां श्रीगौरसुन्दर दर्शकरूपसे श्रीरासलीलाका दर्शन कर रहे थे।

ध्यातव्य है कि सर्वतोभावसे श्रीकृष्णकी प्रीति विधान करनेका स्वभाव ही श्रीराधा-भाव है—

आकार-स्वभाव भेदे व्रजदेवीगण।  
काय–व्यूह रूप तांर रसेर कारण॥  
बहु कान्ता विना नहे रसेर उल्लास।  
लीलार सहाय लागि बहुत-प्रकाश॥

श्रीचै० च० १।४।६८-६९

श्रीललितादि व्रजदेवीगण आकार और स्वभावके भेदसे रसकी पुष्टिके निमित्त श्रीराधाजीकी कायव्यूहरूपा हैं या आविर्भाव-विशेष हैं। अनेक कान्ताओंके विना रसमें उल्लास उत्पन्न नहीं होता, इसलिये श्रीराधाजी श्रृङ्गाररसात्मिका लीलाकी अनुकूलता करनेके लिये अनेक कान्ताओंके रूपमें आत्मप्रकट करती हैं।

श्रीराधा कृष्णप्रेमकी कल्पलता स्वरूपा हैं; श्रीललितादि सखीगण उस लताकी शाखा-पुष्प और पत्रके तुल्य हैं—

राधास्वरूप कृष्ण प्रेमकल्प—लता।
सखीगण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता ॥
श्रीचै० च० २।८।१६६

शाखा-पुष्प-पत्तोंके साथ जैसे लताके स्वरूपकी पूर्णता है, उसी प्रकार सखी-मञ्जरी आदिके सब भावोंके साथ ही श्रीराधाजीके भावकी पूर्णता है। श्रीराधाजी स्वयंरूपसे जैसे श्रीकृष्णकी प्रीति विधान करती हैं, इसी प्रकार सखी-मञ्जरी आदिकके अनेक स्वरूपोंसे भी वह रसिकशेखर श्रीकृष्णकी प्रीति विधान करती रहती हैं। अतएव सखी-मञ्जरी आदिकोंके भाव श्रीराधाभावके ही अन्तर्भुक्त हैं, वे स्वतन्त्र-भाव नहीं हैं। श्रीराधाजी जिन-जिन भावोंसे प्राण-नाथ श्रीकृष्णको सुखी करनेकी चेष्टा करती हैं, श्रीमन्महाप्रभु भी ठीक उन्हीं–उन्हीं भावोंसे उनके श्रीव्रजेन्द्रनन्दन स्वरूपकी प्रीति विधान करके निज-माधुर्यका आस्वादन करते हैं। अतएव श्रीराधाभावमें जैसे सखी-मञ्जरी-भाव अन्तर्भुक्त हैं, उसी प्रकार राधाभाव-द्युति-सुवलित श्रीमन्महाप्रभुमें स्वयं राधा-भाव तथा सखी-मञ्जरी भाव भी विद्यमान हैं। इसलिये श्रीगौर-सुन्दर कभी श्रीराधाके स्वयंरूप-भावमें और कभी श्रीराधाके कायव्यूहरूपा सखी-मञ्जरीके भावोंमें आविष्ट होकर उनकी व्रजलीला-माधुरीका आस्वादन करते हैं।

श्रीराधा और सखियोंके साथ श्रीकृष्ण रासलीला कर रहे थे, तब सेवा-परायणा मञ्जरीरूपमें श्रीमहाप्रभु दूर खड़े होकर उस लीलाका दर्शन कर रहे थे। अतः रासलीलाके स्वप्नमें श्रीमहाप्रभु मञ्जरी-भावमें आविष्ट थे—**'देखि प्रभु सेइ रसे आविष्ट हइल'** ॥

श्रीराधा-व्यतीत अन्य किसी गोपीके भावमें प्रभुके आवेशमें अन्य गोपी-भावसे अपूर्व वैशिष्ट्य यह है कि अन्य गोपियोंमें तो रहता है महाभाव, किन्तु श्रीमहाप्रभुमें रहता है श्रीराधाका मादनाख्य-महाभाव, जो श्रीराधाको छोड़कर अन्य किसी भी गोपीमें नहीं रहता। उस मादनाख्य-महाभावके आश्रयभूत श्रीकृष्ण ही हैं श्रीमहाप्रभु। अतः अन्य गोपीके भावमें आविष्ट-अवस्थामें भी श्रीराधाके तुल्य वे श्रीकृष्णके असमोर्ध्व माधुर्यका पूर्णतम आस्वादन तथा उससे पूर्णतम आनन्दका भी अनुभव करते हैं। इस प्रकार श्रीराधाके संगमें विलसित, श्रीकृष्णके मदनमोहनरूपका आस्वादन भी श्रीगौराङ्ग सुन्दरके पक्षमें सुन्दर रूपमें सम्भव होता है।

एक बात और भी विवेचनीय है—मोहन-भावके अभ्युदयमें दिव्योन्माद उदित होता है। वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजीमें यह मोहन-भाव प्रकाशित होता है—

'प्रायो वृन्दावनेश्वर्यां मोहनोऽयमुदञ्चति।
दिव्योन्मादादयोऽप्यन्ये विद्वद्भिरनुकीर्त्तिताः ॥'
उज्ज्वलनीलमणि, स्थायी–१३२

'वृन्दावनेश्वरी श्रीराधामें यह मोहन-भाव प्रायशः बार-बार उदित हुआ करता है।' उसमें दिव्योन्मादादि अनेक-अनेक अनुभावोंकी बात पण्डितजन कहते हैं।





अतएव दिव्योन्मादके भावमें आविष्ट श्रीगौरसुन्दरमें भी राधा-भावका ही आवेश रहता है, जो श्रीगौरसुन्दरका स्वरूपगत है। किन्तु स्वरूपगत भावावेश होनेपर भी यह श्रीगौरसुन्दरके स्वरूपगत मुख्यभाव—मादनाख्य-महाभावका आवेश नहीं है, वह है केवल महाप्रभुके स्वरूपगत राधाभावकी एक वैचित्री-मात्र।

दिव्योन्मादमें अत्यन्त यन्त्रणा रहनेपर भी एक अनिर्वचनीय रसमाधुर्य भी है—

**बाह्ये विषज्वाला हय, भितरे आनन्दमय, कृष्णप्रेमार-अद्भुत चरित॥**
श्रीचै० च० २।२।४४

**पीड़ाभिर्नवकालकूट-कटुता-गर्वस्व — निर्वासनो**
**निःस्यन्देन मुदां सुधामधुरिमाहङ्कार-सङ्कोचनः।**
**प्रेमा सुन्दरि! नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे**
**ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः॥**
—श्रीविदग्धमाधव नाटक–२।३०

हे सुन्दरि! श्रीनन्दनन्दनका प्रेम जिसके हृदयमें उदित होता है, उस प्रेमकी पीड़ा तथा मधुरताको वही व्यक्ति ही ठीक-ठीक जान सकता है। उस प्रेममें ऐसी पीड़ा है कि नवीन सर्पकी विषकी तीव्रताके अहंकारको वह चूर-चूर कर देती है, और जब उस प्रेमकी आनन्दधारा प्रवाहित होती है, तब वह अमृतके माधुर्य-गर्वको भी संकुचित कर देती है।

अतः श्रीराधाके दिव्योन्माद भावावेशमें भी श्रीमहाप्रभु कृष्णमाधुर्यकी एक अद्भुत वैचित्रीका आस्वादन करते हैं। माधुर्यका आस्वादन केवल मिलनमें ही नहीं, विरहमें भी होता है। अतः राधाप्रेम-महिमा जाननेके लिये भी दिव्योन्मादकी प्रयोजनीयता है। राधाप्रेमकी एक वैचित्री प्रकाशित होती है श्रीकृष्ण-माधुर्य आस्वादनमें। श्रीरासलीला, जलकेलि आदिके स्फुरणसे वही वैचित्री प्रकाशित हुई है। प्रेम-विलास-विवर्तमें भी वही प्रकट होती है। श्रीराधा-प्रेम अपने आश्रयमें किस प्रकारका प्रभाव विस्तार करता है, यह बात दिव्योन्मादसे ही जानी जा सकती है। अतः दिव्योन्मादसे श्रीगौरसुन्दरकी कृष्ण-माधुर्य आस्वादनकी एक वाञ्छाकी पूर्त्ति तथा राधाप्रेम-महिमाके अनुभव करनेकी वाञ्छा-पूर्त्तिकी अनुकूलता ही सिद्ध होती है।



श्रीमहाप्रभुकी इस बातको सुनते ही भट्टाचार्य तथा पाठ सुनने वाले सभी विद्यार्थियोंके कान खड़े हो गये। वे सब आश्चर्यकी दृष्टिसे महाप्रभुके मुखकी ओर देखने लगे। भट्टाचार्यने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—आप यह कैसी बात कर रहे हैं? श्रुतिका मुख्य प्रतिपाद्य विषय निर्गुण निराकर अद्वितीय ब्रह्मकी सिद्धि करना ही है। शांकर-भाष्यमें उसी नाम-रूपसे रहित अद्वितीय ब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है।

महाप्रभुने धीरेसे कहा—मुझे निर्गुण-निराकाररूपका वर्णन स्वीकार है। मैं यह कब कहता हूं कि श्रुतियोंमें निराकार ब्रह्मका वर्णन है ही नहीं। किन्तु भाष्यकारने सगुण-साकाररूपको जो एकदम गौण और उपेक्षणीय ठहरा दिया है, उसे मैं नहीं मानता। भगवान्‌के तो सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार दोनों ही रूप मुख्य एवं आदरणीय हैं। श्रुतिमें जहां सर्व-व्यापी निर्गुण-निराकार रूपका वर्णन है, वहां प्रत्यक्ष रीतिसे भगवान्‌के सगुण-साकार रूपका भी वर्णन है, तथा उनकी दिव्यलीला और कर्मोंका भी वर्णन है। उन्हें गौण कहकर छोड़ देना केवल बुद्धि-वैलक्षण्यका ही द्योतक है। मेरी समझमें तो भगवान् भाष्यकारने केवल बुद्धिको तीक्ष्ण करनेके अभिप्रायसे ही ऐसी व्याख्या की होगी। जो केवल मस्तिष्क प्रधान हैं, उनके लिये विचारकी पराकाष्ठा की गयी होगी। सचमुच भाष्यकारने अपनी प्रत्युत्पन्न मतिका बड़ा ही अद्भुत परिचय दिया है। जो विचारको ही प्रधान मानते हैं, वे इससे अधिक और विचार कर ही नहीं सकते, किन्तु हृदय-प्रधान सरस भावुक भक्तोंको इस खींचातानीकी व्याख्यासे कभी सन्तोष नहीं होने का।

देखिये न! श्वेताश्वतर उपनिषत् (३।१९) का वचन—

**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता**
**पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।**
**स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता**
**तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥**

—उस ब्रह्मके प्राकृतिक हाथ-पैर नहीं हैं, किन्तु वह ग्रहण करता और जोरोंसे चलता है। नेत्र न रहने पर भी देखता है। कानोंके विना भी शब्दोंको सुनता है। वह सम्पूर्ण जानने योग्य विषयोंको भली भांति जानता है, किन्तु उसे कोई नहीं जानता। उसे ही आदि महान् पुरुष कहते हैं।

महाशय! कितने स्पष्ट रूपसे श्रीभगवान्‌के सगुण-साकार रूपका वर्णन किया है श्रुतियोंने, उसे कैसे केवल निर्गुण-निराकार मान लिया जाय?

सार्वभौमने कहा—भाई! यह अपने घरकी बात थोड़े ही है? भगवान् व्यासदेवजीके अभिप्रायको ही भाष्यकारने स्पष्ट किया है, उन्होंने अपनी तरफसे कुछ थोड़े कहा है?

कुछ मुस्कराते हुए महाप्रभुने कहा—आपके सामने अधिक बोलना तो धृष्टता होगी, किन्तु प्रसंगवश कहना ही पड़ता है। भगवान् व्यासदेवके





अभिप्रायको भाष्यकारने ठीक-ठीक व्यक्त किया है, इसे हम कैसे मान सकते हैं ? फिर अन्यान्य भाष्यकारोंने ब्रह्म सूत्रोंकी व्याख्या श्रीशंकराचार्यके मतके सर्वथा प्रतिकूल की है। किसको ठीक माना जाये ? आप जरा सोचिये, जिन्होंने छः शास्त्र और अठारह पुराण तथा पञ्चम वेद महाभारत-को रचकर भी शांति प्राप्त नहीं की और पूर्ण शांति लाभ करनेके लिये ही जिन्होंने सभी वेद-शास्त्रोंका सार संग्रह करके श्रीमद्भागवतको आविर्भूत किया और फिर अनन्त शांति प्राप्त की, वे ही भगवान् व्यासदेव श्रीमद्भाग-वतमें क्या कहते हैं—

**अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।**
**यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ।।**
(१०-१४-३२)

अर्थात् 'व्रजमें रहने वाले नन्द आदि ग्वालबालोंके भाग्यकी सराहना कौन कर सकता है, जिनके मित्र परम आनन्द स्वरूप साक्षात् सनातन पूर्ण ब्रह्म हैं।' –इस प्रकारके उद्गारोंको व्यक्त करने वाले व्यासदेव कभी यह आग्रह कर सकते हैं कि ब्रह्मका निर्गुण-निराकार रूप ही यथार्थ है ? ऐसा कभी नहीं माना जा सकता।

कुछ निरुत्तरसे होकर सार्वभौमने क्षणभर सोचकर कहा, तब तो भगवान् शंकरके सारे सिद्धान्तका खण्डन हो जाता है। उन्होंने तो अपने सभी ग्रन्थोंमें निर्विशेष ब्रह्मका ही प्रतिपादन किया है और इस नाम-रूपात्मक दृश्य जगत्को मिथ्या बताकर अपने-आपको ही ब्रह्म माननेको कहा है।

श्रीमहाप्रभुने कहा—कितना बुद्धिका चमत्कार है ! भगवान् शंकरने अद्वैत-सिद्धान्त-का प्रतिपादन करके सचमुच विचारोंका अन्त ही करके दिखा दिया है। तर्कशक्ति और विचार-शक्तिको पराकाष्ठापर पहुँचा दिया है। जीव ही ब्रह्म है, यह उनके मस्तिष्कके सर्वोच्च विचारों-का सर्वोत्कृष्ट एक भाव हीं है। उनके हृदयसे तो पूछिये यथार्थ बात क्या है ? जो आयुभर 'अहं ब्रह्मास्मि', मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं–इस सिद्धान्तका प्रचार करते हुए अभेदभावका प्रचार करते रहे, उन्हींके मुखसे एकान्तमें गंगाके तीर पर अश्रु बहाते हुए जो उद्गार आप-से-आप ही निकल पड़े हैं, उनकी ओर भी तो ध्यान दीजिये। देखिये, वे कितने करुणस्वरसे अश्रु बहाते हुए गद्गद कण्ठसे प्रभुके सम्मुख प्रार्थना कर रहे हैं—

**सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।**
**सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ।।**
--(भ० शङ्कराचार्य)

'हे नाथ ! चाहे तुममें और जगत्में भेद न हो तो भी मेरे स्वामी ! मैं तुम्हारा हूं, तुम मेरे नहीं हो। यद्यपि समुद्र तथा तरङ्गोंमें भेद नहीं है, तो भी लोग 'समुद्रकी तरङ्ग' ऐसा ही कहते हैं, 'तरङ्गका समुद्र ऐसा कोई नहीं कहता।'

—यह उन महापुरुषका वाक्य है, जो जगत्‌को त्रिकालमें भी कुछ नहीं मानते। जिनकी दृष्टिमें मैं–मेरा तथा जन्म-मृत्यु सब कोरी कल्पना ही है, किन्तु ये बातें उनकी मस्तिष्क-की थीं। उनके सरस और निष्कपट शुद्ध हृदयके उद्‌गार हैं ये, जो उन्होंने उक्त श्लोकमें व्यक्त किये हैं।

श्रीमहाप्रभुने फिर श्रीभागवत (१।७।१०) का एक श्लोक पढ़ा—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥

सार्वभौमने अपनी झेंप मिटानेके लिये कहा—हाँ, हाँ, इस श्लोकका आप क्या अर्थ करते हैं, हमें तो सुनाइये।

प्रभुने अत्यन्त दीनताके साथ कहा—भला, मैं आपके सामने श्लोककी व्याख्या करने योग्य हूं? यह काम आपका ही है। आपही इसकी व्याख्या सुनाइये, जहां मेरी समझ न आवेगी वहां पूछ लूंगा।

अब तक तो सार्वभौम कुछ उत्तर देनेमें असमर्थ थे। उन्हें अपने पाण्डित्य प्रदर्शन करनेका कुछ अवसर प्राप्त हुआ। अब उन्होंने अनेक शंकाएं उठाते हुए, शास्त्र प्रमाण देते हुए उक्त श्लोकके नौ प्रकारके पृथक् पृथक् अर्थ कह सुनाये। फिर अपने पाण्डित्यकी प्रशंसा सुननेकी उत्सुकता से वे प्रभुके मुखकी ओर निहारने लगे।

महाप्रभुने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—धन्य हैं, आपके पाण्डित्यकी मैंने जैसी प्रशंसा सुनी थी, उसका परिचय मैंने यहां आकर प्रत्यक्ष ही पा लिया। आप इतनी सरलतासे नौ प्रकारके अर्थोंको विना खींचातानीके सरलता पूर्वक कह सके। किन्तु इन नौ अर्थोंके अतिरिक्त और भी तो कई प्रकारसे इस श्लोकके अर्थ हैं।

अत्यन्त ही आश्चर्य प्रकट करते हुए सम्भ्रमके साथ भट्टाचार्य सार्वभौम कहने लगे—क्या कहा, मेरे अर्थोंके अलावा और भी इसके अर्थ हो सकते हैं? सुनाओ, देखें तो।

महाप्रभुने विनीत स्वरमें उक्त श्लोकके और अठारह पृथक् पृथक् अर्थ करके सुना दिये (श्रीसनातन गोस्वामीको महाप्रभुने ६१ अर्थ इसी एक श्लोकके सुनाये थे।) महाप्रभुके मुखसे इस प्रकारकी पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या सुनकर भट्टाचार्यके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वे अपने-आपको भूल गये, अवाक् होकर एकटक प्रभुके मुखपर देखते ही रह गये। अब उन्हें प्रभुकी महिमाका पता चला और उनके हृदयमें भक्ति आविर्भूत हो उठी। वे अपने पद, मान, प्रतिष्ठा और सम्मान आदिके अभिमानको भुलाकर एक छोटे बालककी भांति सरलता-पूर्वक श्रीमहाप्रभुके चरण-कमलोंमें गिर पड़े और रोते-रोते 'पाहिमाम्' 'रक्षमाम्' कहकर स्तुति करने लगे—





**संसारकूपे पतितो ह्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयातिसक्तः।**
**करावलम्बं मम देहि नाथ ! गोविन्द दामोदर माधवेति ।।**

उसी समय श्रीमहाप्रभुने उन्हें अपने षड़भुजरूपके दर्शन कराये। उन दर्शनोंसे उनके सभी पुराने पाप क्षय हो गये और वे घोर तार्किक पण्डितसे आज परम भागवत वैष्णव बन गये।

प्रभुने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाकर आलिंगन किया। प्रभुका आलिंगन पाते ही वे फिर मूर्छित होकर गिर पड़े। बहुत देर तक यह करुणापूर्ण दृश्य ज्यों का त्यों बना रहा। सभी विद्यार्थी महान् आश्चर्य और कुतूहलके सहित इस दृश्यको देखते रहे। अन्तमें सबने श्रीमहाप्रभुके चरणकमलोंमें आत्मसमर्पण कर दिया।

## श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य विरचितम् श्रीश्रीगौराष्टकम्

**मलय-सुवासित भूषित गात्रम्, मूर्त्तिमनोहर विश्व पवित्रम्।**
**पदनख राजित लज्जित चन्द्रे, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।१।।**
**स्वगात्र पुलक-जल लोचन पूर्णम्, जीवदयामय ताप विदीर्णम्।**
**संख्या जल्पति नाम सहस्रे शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।२।।**
**हुङ्कृत तर्जन गर्जन रङ्गे, चञ्चल कलियुग पाप सशङ्के।**
**पदरज ताड़ित दुष्ट समस्ते, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।३।।**
**सिंह गमन जिति ताण्डव लीला, दीन दयामय तारण-शीला।**
**अज-भव वन्दित पदनख चन्द्रे, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।४।।**
**गौराङ्गावृत मालति माले, मेरु विलम्बित गङ्गाधारे।**
**मन्द मधुर हास भाव मुखचन्द्रे, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।५।।**
**फल्गु विराजित चन्दन भाल, कुङ्कुम राजित देह विशाल।**
**उमापति सेवित पदनख चन्द्रे, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।६।।**
**भक्तिपराधीन शान्तक वेश, गमन सुनर्तक भोग विशेष।**
**माला विराजित देह समस्ते, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।७।।**
**भोग-विरक्तिक संन्यासी वेश, शिखा मोचन लोक प्रवेश।**
**भक्ति-विरक्तिक प्रवर्त्तक चित्त, शुद्धकनक जय गौर नमस्ते ।।८।।**

# महाप्रभु-श्रीगौरांग एवं सार्वभौम भट्टाचार्य

—सन्तप्रवर **श्रीप्रभुदत्तजी** महाराज ब्रह्मचारी



श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उड़ीसाधीश श्रीप्रतापरुद्रके राज-पण्डित थे। वेद-वेदान्त षड्दर्शनादि सर्व-शास्त्र-निष्णात परम विद्वान थे और अद्वैतपथके जाने-माने आचार्य थे। उनके बहनोई थे श्रीगोपीनाथाचार्य, जो पहले तो नवद्वीप रहते थे फिर पुरीमें आकर रहने लगे थे। श्रीजगन्नाथ मन्दिरकी सब व्यवस्था राजाने उनके हाथ सौंप रखी थी।

श्रीगौरांग महाप्रभु संन्यास लेकर नीलाचल—पुरीमें पधारे। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते ही प्रेमावेशमें अचेतन होकर मन्दिरमें गिर पड़े—ऐसा सूद्दीप्त सात्त्विक प्रबल-विकार उनमें उदित हुआ कि श्रीसार्वभौम, जो वहां उस समय दर्शनकर रहे थे, महाप्रभुकी मृतप्राय दशा देखकर चमत्कृत और चिन्तित हो उठे। श्रीसार्वभौम अपने सेवकों द्वारा अचेतन-श्रीमहाप्रभुको अपने घर ले आये। श्रीमहाप्रभुके साथी—श्रीनित्यानन्द-मुकुन्दादि भी प्रभुके पीछे-पीछे सार्वभौमके घर आ पहुंचे। सबने मिलकर उच्च कृष्ण-संकीर्त्तन किया, तब महाप्रभुको चेतना आई। सब भक्तोंके साथ श्रीमहाप्रभुको लेकर श्रीगोपीनाथने एकान्त स्थान पर आवास दिया और प्रसादादिकी व्यवस्था कर दी।

एक दिन श्रीगोपीनाथाचार्य जगन्नाथ दर्शनकर श्रीमुकुन्ददत्तके साथ सार्वभौम भट्टाचार्यके घर आये। सार्वभौम भट्टाचार्यने अपने बहनोईका यथोचित सत्कार किया और मुकुन्ददत्तके सहित उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। आचार्यके बैठ जानेपर इधर-उधरकी बातें होती रहीं; अन्तमें महाप्रभुजीका प्रसङ्ग छिड़ गया।

**सार्वभौमने पूछा**—इन निमाई पण्डितने किनसे संन्यास लिया है और इनका संन्यासाश्रमका नाम क्या है ?

**गोपीनाथाचार्यने कहा**—इनका नाम है 'श्रीकृष्णचैतन्य'। कोटायाके समीप जो श्रीकेशव भारती महाराज रहते हैं, वे ही महाभाग संन्यासी-चूड़ामणि महापुरुष इनके संन्यासाश्रमके गुरु हैं।

सार्वभौम समझ गये कि केशवभारती कोई विद्वान और नामी संन्यासी तो हैं नहीं, ऐसे ही साधारण संन्यासी होंगे। दण्डी संन्यासियोंमें भारतियोंको कुछ हेय समझा जाता है। तब सार्वभौम गोपीनाथ-आचार्यसे कुछ मुँह सिकोड़कर कहने लगे—





नाम तो बड़ा सुन्दर है, रूप-लावण्य भी इनका अद्वितीय है। कुछ शास्त्रज्ञ भी मालूम पड़ते हैं। उच्च ब्राह्मण कुलमें इनका जन्म हुआ है, फिर इन्होंने इस प्रकार हेय-सम्प्रदाय वाले संन्यासीसे दीक्षा क्यों ली ? मालूम होता है, विना सोचे-समझे आवेशमें आकर इन्होंने मूड़ मुँड़ा लिया है। यदि आप सब लोगोंकी इच्छा हो, तो हम किसी योग्य प्रतिष्ठित दण्डी स्वामीको बुलाकर फिरसे इनका संस्कार करा दें ?

**गोपीनाथाचार्यने कहा**—आपकी बुद्धि तो निरन्तर शास्त्रोंमें शंका करते-करते शंकित-सी बन गई है। आपकी दृष्टिमें घट-पट आदि बाह्य वस्तुओंके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। ये साक्षात् भगवान् हैं, इन्हें बाह्य उपकरणोंकी क्या अपेक्षा ? ये तो स्वयं सिद्ध त्यागी, संन्यासी, वैरागी और प्रेमी हैं, इन्हें आपकी सिफारिशोंकी आवश्यकता न पड़ेगी।

**सार्वभौमने कहा**—आपकी ये भावुकताकी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। हम तो उन बेचारोंकी हितकी बात कह रहे हैं। अभी उनकी नई अवस्था है। सँसारी सुखोंसे अभी एकदम वञ्चितसे ही रहे हैं, ऐसी अवस्थामें ये संन्यास-धर्मके कठोर नियमोंका पालन कैसे कर सकेंगे ?

**आचार्यने कहा**—ये नियमोंके भी नियामक हैं। इनका संन्यास ही क्या ? लोक-शिक्षाके निमित्त इन्होंने ऐसा किया है।

**सार्वभौमने हंसते हुए कहा**—यह खूब रही, युवावस्थामें इन्हें लोक-शिक्षाकी खूब सूझी। महाराज ! आप कहीं लोक-शिक्षाके निमित्त ऐसा मत कर डालना।

**आचार्यने कहा**—लोक-शिक्षा मनुष्य कर ही क्या सकता है ? यह तो भगवान्‌का ही कार्य है और वे ही विविध वेश धारण करके लोक-शिक्षणका कार्य किया करते हैं।

**सार्वभौमने( जोरसे हंसते हुए ) कहा**—बाबा ! दया करो, उस बेचारे संन्यासीको आकाशपर मत चढ़ाओ। आपकी दृष्टिमें ये ईश्वर हैं ?

**आचार्यने आवेशमें आकर कहा**—हाँ ईश्वर हैं, ईश्वर हैं, ईश्वर हैं। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं, ये साधारण जीव नहीं हैं।

सार्वभौमने फिर भी अनेक बातें कहकर श्रीआचार्यका मजाक उड़ाया और अन्तमें कहा—जीजा जी ! यह सब अपनी-अपनी भावना है। ठीक है जो आप मानें, किन्तु आप अपनी भावनाके अनुसार माननेके लिये किसीको मजबूर नहीं कर सकते। आपकी इस युवक संन्यासी-में भगवान् या परब्रह्मकी भावना है, ठीक है, हम तो उन्हें एक साधारण संन्यासी ही समझते हैं। वैसे वे बड़े सरल हैं, भगवान्‌की उनके ऊपर कृपा है। इस अल्पावस्थामें भगवान्‌के पाद-पद्मोंमें इतना अनुराग, ऐसा अलौकिक त्याग, इतना अद्भुत वैराग्य सब साधुओंमें नहीं मिलने-

का। किन्तु उन्हें आपकी तरह ईश्वर मानकर लोगोंमें उनके अवतारपनेका प्रचार करें, यह हमारी शक्तिके बाहरकी बात है।

आचार्यने कुछ दृढ़ताके स्वरमें कहा—अच्छी बात है, देख लिया जायेगा, कब तक आपके ये भाव रहते हैं ? भट्टाचार्य ! आप ही कुछ दिन पीछे इनके अवतारपने की नहीं, इनके स्वयं भगवान् होनेकी बात सर्वत्र प्रचार करोगे।

इतना कहकर गोपीनाथाचार्य मुकुन्ददत्तको साथ ले वहांसे उठकर चल दिये। उन्होंने श्रीमहाप्रभुके निकट आकर सब बात कह सुनाई और बोले, प्रभो ! मुझे और कोई दुख नहीं, दुख यह है कि सार्वभौम अपने आदमी होकर भी ऐसे विचार रखते हैं। प्रभो ! उनके ऊपर कृपा होनी चाहिये। उनके जीवनमेंसे नीरसताको निकालकर सरसताका सञ्चार कीजिये, यही मेरी विनीत प्रार्थना है आपके श्रीचरणोंमें।

श्रीमहाप्रभुने कुछ संकोचके साथ अपनी दीनता दिखाते हुए कहा–आचार्य महाशय ! यह आप कैसी भूली-भूली बातें कर रहे हैं ? सार्वभौम तो हमारे पूज्य हैं, मान्य हैं। मैं उन्हींकी चरण-छायामें तो यहां पड़ा हूं। वे मेरे लिये जो भी कुछ सोचेंगे, उसीमें मेरा कल्याण होगा। वे सबके हितचिन्तक तथा आचार्य हैं।

सार्वभौम भट्टाचार्य विद्वान् थे, पण्डित थे, शास्त्रज्ञ थे और वर्णाश्रमधर्ममें श्रद्धा रखते थे। शास्त्रोक्त वैदिक कर्मोंको भी वे यथाशक्ति करते थे और घर पर आये साधु-अभ्यागतोंका प्रेमपूर्वक सत्कार करते थे। वे अन्दर ही अन्दर भगवत्कृपाके लिये छटपटाते भी थे। अतः वे भगवत्-कृपाके सर्वथा योग्य थे। उन्हें साधु-समागम मिलना ही चाहिये था। इसीलिये मानो सार्वभौमका ही उद्धार करनेके निमित्त महाप्रभु वृन्दावन न जाकर पुरी पधारे और सबसे पहले सार्वभौमके घरको ही अपनी पद-धूलीसे परम पावन बनाया। उन भक्ताग्रगण्य सार्वभौम महाशयके चरणोंमें हमारे कोटि-कोटि नमस्कार हैं।

एक दिन सार्वभौमकी प्रार्थनापर श्रीमहाप्रभु उनके घर भिक्षा करने पधारे। उन्होंने प्रभुका संन्यासी-योग्य उचित सत्कार किया और वात्सल्य-भाव प्रकट करते हुए अत्यन्त स्नेहके साथ कहा—

स्वामीजी ! हमारी एक प्रार्थना है, अभी आपकी अवस्था बहुत कम है, इस अवस्थाका वैराग्य स्थायी नहीं होता। अतः इस वैराग्य एवं संन्यास-धर्मको स्थायी बनानेके लिये आपको वेदान्त-दर्शनका श्रवण करना चाहिये। उससे मनसे बुरे विचार हट जाते हैं एवं आत्मशुद्धिकी इच्छासे मन शुभकर्मोंमें लगा रहता है। आप हमारी पाठशालामें आकर वेदान्त-सूत्रोंकी व्याख्या सुना करें–यही संन्यासियोंका परमधर्म भी है।

श्रीमहाप्रभुने अति विनीत-भावसे कहा—यह मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे आचार्य स्वयं ही मेरे कल्याणकी बात सोच रहे हैं। मेरी भी इच्छा





थी कि आपके चरणोंमें बैठकर कुछ उपदेश ग्रहण करूं, किन्तु संकोचवश अपने मनोभावको व्यक्त न कर सका। मैं अवश्य कलसे वेदान्त-सूत्रोंकी व्याख्या आपके पास आकर सुना करूंगा।

योग्य छात्रको पाकर किस गुरुको प्रसन्नता नहीं होती ? सार्वभौम अति प्रसन्न हुए। दूसरे दिनसे आकर श्रीमहाप्रभु उनसे वेदान्त-सूत्रोंकी व्याख्या सुनने लगे। सार्वभौम बड़े उत्साहके साथ शांकरभाष्य सुनाते, पढ़ाते-पढ़ाते आनन्दके कारण उनका चेहरा दमकने लगता और वे अपना सम्पूर्ण पाण्डित्य प्रदर्शित करते पाठ पढ़ानेमें।

श्रीमहाप्रभु चुपचाप एकाग्र दृष्टिसे अधोमुख किये पाठ सुनते रहते। बीचमें एक भी शब्द न बोलते। इस प्रकार लगातार सात दिन तक पाठ सुनते रहे। जब भट्टाचार्यने देखा, ये तो कुछ बोलते ही नहीं, पता नहीं इनकी समझमें यह व्याख्या आती भी है कि नहीं। विषय बहुत गूढ़ है, हो सकता है उसे ये न समझ पा रहे हों।

सार्वभौमने पूछा—स्वामी जी ! आप तो चुपचाप बैठकर पाठ सुनते ही रहते हैं, पाठ अच्छा हुआ या बुरा—यह सब आप कुछ नहीं बताते।

महाप्रभुने विनीत-भावसे कहा—आपने मुझे पाठ सुननेकी ही तो आज्ञा दी थी, इसलिये आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करके पाठ सुना करता हूं।

सार्वभौमने हंसकर कहा सुननेके यह मानी थोड़े हैं कि पत्थरकी मूर्त्तिकी भांति मूक बनकर सुनते ही रहना। जहां जो बात समझनेमें न आवे, उसे फिरसे पूछना चाहिये। कोई शंका हो तो उसे पूछकर उसका समाधान करा लेना चाहिये। पाठ सुननेके मानी हैं उस विषयमें निशंक हो जाना। पाठका विषय इस प्रकार हृदयंगम हो जाये कि फिर कोई शंका न उठ सके। कहिये; आपकी समझमें तो सब कुछ आता है न ?

कुछ लज्जित-भावसे महाप्रभुने कहा—भला, मैं मूर्ख इस गहन विषयको समझ ही क्या सकता हूं, और थोड़ा बहुत समझ भी लूं तो आपके सामने शंका करनेका साहस कैसे कर सकता हूं ?

सरलताके साथ भट्टाचार्यने कहा—यह बात नहीं, जो समझमें न आवे उसे पूछना चाहिये, संकोच करनेसे कैसे काम चलेगा ?

महाप्रभुने कुछ लज्जाके कारण सिकुड़ते हुए धीरेसे कहा—भगवान् व्यासदेवके सरल सूत्रोंका शब्दार्थ तो बड़ी सुगमतासे मेरी समझमें आ जाता है, किन्तु भाष्य सुनते ही सारा मामला गड़बड़ हो जाता है। ऐसा लगता है, भगवान् भाष्यकारने अपने एकदेशीय अर्थके शब्दोंकी खूब खींचतान की है और जो अर्थ सूत्रमें लक्षित नहीं होता, उसकी जबरदस्ती ऊपरसे आवृति की गयी है।

# श्रीगौरांगका 'महाप्रभुत्व'

डॉ० कृष्णविहारि शास्त्री,

भूतपूर्व प्रधानाचार्य आनन्दमयी मां संस्कृत-विद्यालय



श्रीश्रीगौरांग श्रीकृष्णचैतन्यदेव 'महाप्रभु' नामसे विश्व-विख्यात् हैं। महाप्रभु-शब्द-का अर्थ है–**'महतां प्रभुः महाप्रभुः'**, अथवा **'महाञ्चासौ प्रभुः महाप्रभुः।'**–अर्थात् जो महान्‌जनों-का प्रभु (स्वामी) है, वह है महाप्रभु; अथवा जो महान् भी है और प्रभु भी या समस्त प्रभुओंमें भी जो महान् है, वह है 'महाप्रभु।'

महाप्रभु-शब्द विष्णु-राम-कृष्ण-शिवादि विभिन्न सहस्रनामोंके अन्तर्गत प्रयुक्त हुआ है, संकट-मोचनादि स्तोत्रोंमें श्रीहनुमानजीके लिये भी महाप्रभु-शब्दका प्रयोग मिलता है। इस प्रकार विशेष स्थलोंपर इस शब्दका प्रयोग देखा गया है, परन्तु पूर्वकालमें किसी अन्य विशेषके लिये नहीं।

सामान्यतः श्रीभगवान् और फिर विशिष्ट व्यक्तियोंके लिये प्रभु-शब्दका प्रयोग चलता है। श्रद्धास्पद तथा पूज्य-विशिष्टजनोंमें महा-शब्दका प्रयोग आत्मा और राजदि शब्दोंके साथ प्रचलित है, यथा—विरक्त सन्तोंको, अपने गुरुदेवको महात्मा, महाराज एवं महाशय आदि शब्दोंके साथ अभिहित किया जाता है। श्रीशिवजीके लिये 'महादेव' शब्द प्रयुक्त होता है, किन्तु महाप्रभु नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाप्रभु-शब्द श्रीकृष्णचैतन्यमें ही रूढ़ है, आजसे नहीं, उनके आविर्भाव कालके थोड़े ही दिनों बाद सब इनको 'महाप्रभु' नामसे पुकारने लगे थे और आज भी 'महाप्रभु'–मात्र कहनेसे श्रीकृष्णचैतन्य गौरांग ही समझे जाते हैं। और तो क्या, महाप्रभु-शब्द श्रीभगवान्‌के अन्य किसी अवतारमें भी रूढ़ नहीं हुआ। यद्यपि श्रीपादवल्लभाचार्य तथा श्रीपाद हित हरिवंश गोस्वामी आदि आचार्योंको अब इस शब्दके साथ संयुक्त किया जाने लगा है, परन्तु उनकी यह उपाधि अपनी-अपनी सम्प्रदाय तक ही सीमित है। सामान्यतः आचार्य, गोस्वामी प्रभृति उपाधियां ही उनके साथ प्रयुक्त होती हैं और प्रचलित हैं। किन्तु श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीगौरांग आदि नामोंके साथ सम्प्रदाय-व्यतिरिक्त सुविज्ञ व्यक्तियोंमें महाप्रभु-शब्द इनका पर्यायवाची ही बना हुआ है।





इनके इस नाममें एक विशेष हेतु यह है कि तत्कालीन गौड़ीय वैष्णवोंमें वयस, विद्या तथा भक्ति आदिमें वृद्ध श्रीअद्वैताचार्यजीको सभी 'प्रभु' शब्दसे सम्बोधित करते थे। श्रीमन्नित्यानन्दजी भी अपने वैशिष्टचके कारण 'प्रभु' कहलाये जाते थे। इन दोनोंके भी विशेष समादरणीय होनेके कारण श्रीनिमाई पण्डित या श्रीगौरांग 'महाप्रभु' के वाच्य बन गये। सामान्यमें विशिष्ट व्यक्ति ही 'महा'-पदसे अभिहित हुआ करता हैं, यथा अनन्त जीवात्माओंमें कोई महात्मा, और राजाओंमें कोई महाराजा, इत्यादि।

सामान्यतः जो भी प्रभावशाली हो, वही प्रभु है, जैसे राजा, स्वामी, आचार्य, महात्मा प्रभृतिको भी 'प्रभु'-शब्दसे सम्बोधित किया जाता है, परन्तु यह प्रयोग औपचारिक ही समझना चाहिये, जैसे 'भगवन्'–सम्बोधन। वस्तुतः षडैश्वर्य–सम्पन्न श्रीकृष्ण ही भगवान्–शब्दसे सम्बोध्य हैं। इसी प्रकार 'प्रभु'–शब्द भी सर्वाधिक प्रभावशाली श्रीभगवान्‌का ही वाचक है, स्तुतियोंमें यह स्पष्ट लक्षित होता है। श्रीभगवान् जहां कहीं भी प्रकट तथा अवतरित होते हैं सर्वत्र ही अपने प्रभावके कारण वे प्रभु हैं। नरपुंगव श्रीराम-कृष्णस्वरूपमें तो प्रभु हैं ही, परन्तु उनको भी महाप्रभु नहीं कहा गया। श्रीचैतन्यदेवको ही महाप्रभुका पद क्यों प्राप्त हुआ, इसी पर कुछ विचार किया जाता है—

**महतां प्रभुः महाप्रभुः**

पहले इसपर विचार करते हैं श्रीभगवान्‌के जितने भी प्राकटच तथा अवतार हुए हैं वे व्यष्टि अथवा समष्टिजनकी आर्त्ति या उनकी किसी निजी कामनाको लेकर पुकार या तप आदि करनेपर हुए हैं। परन्तु श्रीगौरांग-अवतार किसी व्यक्ति या समाजकी स्वार्थमयी पुकार पर नहीं हुआ। समस्त जीवोंकी दुर्दशा न सहनकर श्रीअद्वैतप्रभुकी करुणाभरी पुकार पर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने श्रीगौरांगरूपमें अवतार लिया।

कोई भी भगवत्-स्वरूप उसके परिकरके वैशिष्टचसे ही वैशिष्टचको प्राप्त करता है। भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें सुबल-श्रीदामादि सखाओं, नन्द-यशोदाः पिता-माता, श्रीराधा ललितादि कान्ता-परिकरोंके साथ सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रसके सर्वातिशायी वैशिष्टचको प्राप्त हैं। किन्तु मथुरा-द्वारकामें उद्धव-अर्जुन, वसुदेव-देवकी तथा रुक्मिणी-सत्यभामादि परि-करोंके साथ वे व्रजके रस-वैशिष्टचको प्राप्त नहीं हैं—इस रहस्यको सभी विज्ञ रसिक-महानुभाव जानते ही हैं।

श्रीभगवान्‌के जितने भी अवतार शास्त्रोंमें देखे जाते हैं, उनमें प्रायः उनके परिकर स्वार्थ सम्बन्धयुक्त दिखाई पड़ते हैं। जहाँ तक माता-पिताका सम्बन्ध है, वह तो सामान्य लोकमें भी निस्वार्थ स्नेहका हेतु माना गया है। श्रीरामावतारमें सुग्रीव-विभीषणादिसे लेकर सखा तथा दासवर्गमें सभी स्वार्थी परिलक्षित होते हैं। श्रीहनुमानजी इसका अपवाद हैं। व्रजपरिकरोंको छोड़कर श्रीकृष्णावतारमें भी यादव और पाण्डव क्या स्वार्थ-रहित कहे जा सकते हैं ? कदापि नहीं। सभी तो श्रीभगवान्‌से विजय-विभूति आदि पानेके इच्छुक हैं।

मुनिगण भी मुक्तिकामी हैं, सर्वथा कामना-हीन कुछ हैं अवश्य, परन्तु नगण्य। अपने प्रभु श्रीभगवान्–रामके लिये सर्वस्व त्यागी भरतादिके सिवाय और कोई विशेष नहीं है।

परन्तु श्रीगौरसुन्दर-प्रभुके परिकरोंमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसमें धन-पुत्रादि, विजय-विभूति आदिकमें से किसी कामनाका लेश भी देखा जा सके, जैसाकि ठाकुर श्रीवृन्दावन दासने श्रीचैतन्य भागवतमें कहा है—

धन नाहि जन नाहि नाहिक पाण्डित्य।
के चिनिवे एइ सब चैतन्येर भृत्य॥
श्रीचैतन्य भागवत २।६।२३३

देखिये कुछ एक उदाहरण—

एक दिन श्रीमहाप्रभु अपने महाप्रकाशमय ईश्वर–स्वरूपसे श्रीवासगृहमें ठाकुर-सिंहासनपर विराजमान थे। उपस्थित भक्तोंके जीवनमें घटित रहस्यमयी घटनाएँ तथा उनमें अलक्षित रूपसे किये गए अपने द्वारा चमत्कारको भी वे बता रहे थे। अनुपस्थित भक्तोंको भी बुला-बुलाकर उनको घटना-चमत्कारका स्मरण करा रहे थे। फिर उन्होंने एक-एकसे वरदान माँगने को कहा—

प्रभु बोले 'श्रीधर! वाछिया माग वर। अष्टसिद्धि दिव आजि तोमार गोचर॥'
श्रीधर बोलेन 'प्रभु! आरो भाण्डाइबा। निश्चिन्त्ये थाकह तुमि, आर ना पारिवा॥
प्रभु बोले 'दरशन मोर व्यर्थ नहे। अवश्य पाईवा वर, जेइ चित्ते लये॥
'माग माग' पुनः पुन बोले विश्वम्भर। श्रीधर बोलये 'प्रभु! देह एइ वर॥
जे ब्राह्मण काढ़िलेन मारे खोला पात। से ब्राह्मण हओ मोर जन्मे जन्मे नाथ॥
जे ब्राह्मण मोर संगे करिल कन्दल। मोर प्रभु हओ तांर चरण युगल॥
श्रीचै० भा० २।६।२२०-२२५

साग-विक्रेता श्रीधरको अपने पास श्रीगौरांगने बुलाया और कहा, श्रीधर! अपना मनोवाञ्छित वर मांगो। आज मैं सबके सामने तुम्हें आठों सिद्धियां भी देनेको तैयार हूं। श्रीधरने कहा, प्रभो! आप मेरी अब वञ्चना मत कीजिए। आप निश्चिन्त्य रहिये, मुझे आप अष्ट सिद्धि आदि वैभव दिखाकर ठग नहीं सकते। श्रीगौरांगने कहा—श्रीधर! मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता, अवश्य तुम्हें वर मांगना होगा, जो भी तुम्हारे चित्तमें हो। इस प्रकार श्रीविश्वम्भर बार-बार 'वर मांग-वर मांग' श्रीधरको कहने लगे। तब श्रीधरने कहा—'प्रभो! दीजिये यह वर; जिस ब्राह्मण (निमाई पण्डित)-ने मुझसे केलाके पत्ते जबरदस्ती छीने थे वही ब्राह्मण (अर्थात् आप) जन्म-जन्ममें मेरा स्वामी हो। जिस ब्राह्मणने मेरे साथ साग-पातके लिये झगड़ा किया था। उसी निमाई-पण्डितके युगल-चरण मेरे स्वामी हों।'—श्रीश्रीधरने प्रभुसे उनकी चरणसेवाको छोड़कर और कुछ भी नहीं मांगा।





फिर श्रीमहाप्रभुने श्रीहरिदासठाकुरसे वर मांगनेका अनुरोध किया। क्या मांगते हैं श्रीहरिदासजी ?—

कर-जोड़ करि बोले प्रभु हरिदास।
मुजि अल्प-भाग्य प्रभु ! करों बड़ आश ।।
तोमार चरण भजे, जे सकल दास।
तार आवशेष जेन हय मोर ग्रास ।।
सेइ से भोजन मोर हओ जन्म-जन्म।
सेई अवशेष मोर क्रिया कुल-धर्म ।।

वही, २।१०।८४-८६

श्रीहरिदासजीने हाथ जोड़कर कहा— प्रभो ! मैं तो अति मन्द-भाग्य हूं, बहुत बड़ी आशा रखता हूं आपसे। मुझे तो आप यह वर दोजिये—आपके चरणोंके जितने दास हैं, उनकी झूंठन ही मैं नित्य खाया करूं। भक्त-प्रसादी ही मेरा जन्म-जन्ममें भोजन हो। वही प्रसाद ही मेरी क्रिया-कर्म और कुल-धर्म हो।

श्रीअद्वैताचार्य प्रभुको जब श्रीगौरांगने वर मांगनेको कहा तो वे बोले—प्रभो ! मुझे तो आप यही वर दीजिए कि जितने भी मूर्ख (आपके तत्त्वको न जानने वाले) हैं, जो नीच (अधम-जाति) हैं तथा जो दरिद्र (भगवद्-भक्ति सम्पत्ति-हीन) हैं, उनपर आप अनुग्रह कीजिए-

अद्वैत बोलये प्रभु ! मोर एइ वर।
मूर्ख नीच दरिद्रेरे अनुग्रह कर ।।

वही, २।१०।१६७

इस प्रकार श्रीमहाप्रभु जिससे भी वर मांगनेको कहते, वे क्या-क्या मांगते, उसे भी सुनिये—

केहो बोले 'मोर बापे' असिवारे ना दे।
तार चित्त भाल हओ तोमार प्रसादे ।।
केहो बोले शिष्य-प्रति, केहो पुत्र प्रति।
केहो भार्या, केहो भृत्ये, यार यथा रति ।।
केहो बोले 'आमार हओक गुरुभक्ति।
एइमत वर मांगे, यार येन शक्ति ।।

कोई कहता-मेरा पिता मुझे आपके पास (संकीर्त्तनमें) नहीं आने देता, आप ऐसी कृपा कीजिए कि उसका चित्त निर्मल हो जाये। कोई अपने शिष्यके लिये, कोई अपने पुत्रके लिये, कोई पत्निके लिये, कोई अपने सेवकके लिये, जैसी जहां जिसकी प्रीति है, उसके लिये कृष्णभक्ति अथवा शुद्ध बुद्धिकी प्रार्थना करता। कोई गुरुमें अपनी भक्तिकी प्रार्थना करता। जितनी

जिसकी बुद्धि-शक्ति थी, वह श्रीमहाप्रभुसे वैसा वर मांगता और प्रभु भी उसे उसका वांछित वर प्रदान करते।

इस प्रकार महाप्रभुके समस्त चरित-ग्रन्थोंका अवलोकन करनेपर कहीं भी इनके परिकरोंमें क्षुद्र लौकिक कामना तो क्या, मुक्ति-कामी भी किसीको नहीं पाया जा सकता। दक्षिण यात्रामें सर्वांगमें गलित कुष्ठसे पीड़ित वासुदेव नामक एक व्यक्ति प्रभुसे मिला, श्रीमहाप्रभुने निःसंकोच भावसे उसका आलिंगन किया, जिससे उसकी पीव इनके सर्वांगमें लग गई और पश्चात् उसका कुष्ठ सर्वथा नष्ट कर उसे सर्वांग निरामय बना दिया। इतना पाकर वह कुष्ठी प्रसन्नताके स्थानपर अन्य-मनस्क ही हो गया कि कहीं मुझे देहाभिमान न हो जाये। 'हे विप्र ! तुम्हें देहाभिमान कभी न होगा', ऐसा महाप्रभुसे वरदान प्राप्त होनेपर ही उसे सन्तोष हुआ।

पुत्र-शोक लोकमें महान् दुःख माना गया है। एकदिन श्रीवासके घरमें श्रीमहाप्रभुका कीर्तन हो रहा था, उसी समय घरके भीतर श्रीवासका जो एक-मात्र पुत्र था, उसकी मृत्यु हो गई। भीतर स्त्रियाँ रोने लगीं। श्रीवास भीतर घरमें जाकर सबसे कहने लगे 'शान्त रहो' तुम्हारे रोनेको सुनकर कहीं महाप्रभुके संकीर्तनमें बाधा न पड़ जाये। यदि ऐसा हो गया तो मैं गङ्गामें डूब मरूँगा। मरते समय कृष्णनामके श्रवणसे जीव तर जाता है, यहां तो स्वयं भगवान्‌का संकीर्तन सुनते-सुनते यह मरा है, बड़ा सौभग्य है इसका।

श्रीवासुदेवदत्तने तो समस्त जीवोंके पापोंको लेकर अनन्त समय तक स्वयं नरक भोगनेकी प्रार्थना की थी—

जीवेर दुख देखि मोर हृदय विदरे। सब जीवेर पाप प्रभु ! देह मोर शिरे॥
जीवेर पाप लञा मुञि करों नरक भोग। सकल जीवेर प्रभु ! घुचाओ भवरोग॥
श्रीचै० चरि० २।१५।१६२-६३

किसीको भी देखिये महाप्रभुके सभी परिकर एक से एक महान् हैं। जिस धन, पुत्र, स्त्री, राज्य आदिके लिये तथा मुक्तिके लिये विश्व प्रभुकी आराधना करता है, इनके परिकर उन्हें सर्वथा त्यागना चाहते हैं तथा त्याग देते हैं। राजा प्रतापरुद्र कहते हैं—'यदि महाप्रभु कृपा न करेंगे तो मैं राज्य छोड़कर भिखारी बन जाऊँगा।' श्रीगदाधर पण्डित तथा श्रीस्वरूप दामोदर महाप्रभुके संन्यास लेनेपर स्वयं भी त्यागी बन गए। श्रीरूप-सनातन दोनों किस प्रकार यातनाओंको सहन करके भी मन्त्री-पद पर लात मार विरक्त हो गये? श्रीरघुनाथदासने तो उस समयकी बीस लाख वार्षिक आमदनी नवविवाहिता सुन्दर पत्नी आदिको तिलांजलि देकर इस प्रकार-का उत्कट वैराग्य धारण किया, —जो कहीं भी नहीं देखा-सुना गया। इस प्रकार महाप्रभुकी परिकर-महत्ता कहाँ तक कही जा सकती है? क्या ऐसे महान् पुरुष अन्य अवतारमें कहीं पढ़ने-सुननेमें आते हैं? अतः 'महतां प्रभुः'





अर्थात् महान्पुरुषोंके प्रभु होनेसे श्रीगौरसुन्दरको 'महाप्रभु' नामसे पुकारा गया है—अतः इनका महाप्रभुत्व है।

**महाञ्चासौ प्रभुः महाप्रभुः**

सर्वाधिक बृहद्तम ब्रह्म-शब्दके समान सर्वाधिक प्रभावशाली श्रीभगवान् ही प्रभु-शब्दके वाच्य हैं। इस रूपसे अब विचार करते हैं—

साधुजनोंकी रक्षा तथा दुष्टोंका विनाशकर धर्मसंस्थापन करनेके लिये प्रभुने—श्रीभगवान्ने असंख्य अवतार धारण किये। उनमें वेदादिशास्त्र तथा उनके सारभूत श्रीमद्भागवतमें निर्दिष्ट अपार एवं अगाध समुद्र भी जिनके एक रोमकूपको सर्वथा स्नान न करा सका, ऐसे प्रभावशाली वाराह-मीन प्रभृति अवतारोंमें भक्तिदानका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। नृसिंह-वामन-परशुरामादि तो अपने मुख्य प्रयोजन तक सीमित रहे। कपिल-दत्तात्रेयादि नरावतार भी सांख्य-योगादिके उपदेष्टा मात्र थे। अतः अन्य किसी अवतारमें जीवोंको भक्तिदानका प्रसंग ही नहीं उठता। एकमात्र श्रीराम-श्रीकृष्ण दो नरावतार ही ऐसे हैं जहाँ प्रभु नर-जातिको अपनी ओर आकृष्ट करने वाले हैं। परन्तु भक्ति देनेमें निज-जनके लिये भी उन्होंने उदारताका परिचय नहीं दिया।

काकभुशुण्डि जो श्रीरामके निज-जन ही थे, प्रत्येक रामावतारमें, वे अयोध्या जाते तथा बालरूपधारी राम उनके समीप पाँच वर्ष तक क्रीड़ा भी करते रहते थे। एकबार उनको भी मोह हो गया बाल-चरित्र देखकर। इष्टदेव श्रीरामने उन्हें अपना वैभव दिखाया और वे प्रभुके मुख द्वारा उनके उदरमें प्रविष्ट हो गये। वहाँ अनन्त ब्रह्माण्डोंका दर्शन तथा उनमें निवास भी करते रहे। अन्तमें जब पुनः बाहर आये तब श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न होकर काकभुशुण्डिसे वर मांगनेको बोले और उनके लिये सभी कुछ देनेको तैयार हो वरोंको गिनाने लगे, परन्तु आपने अपनी परमप्रिय भक्ति देनेके लिये कृपणता ही दिखाई—

**'काकभुसुण्डि मागु वर अति प्रसन्न मोहि जानि।**
**अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥**
**ज्ञान विवेक बिरति बिग्याना।**
**मुनि दुर्लभ गुन जे जग माना॥**
**आजु देउँ सब संसय नाहीं।**
**मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥**
**प्रभु कह देन सकल सुख सही।**
**भगति आपनी देन न कही॥'**

श्रीमानस, उ० का० दो० ८३

श्रीरामावतारमें श्रीभगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, भक्ति देनेपर कहीं मर्यादामें व्यतिक्रम न हो जाय, अतः उनके द्वारा भक्तिको छिपाना उचित कहा जा सकता है। तब सर्वथा लीला-वेशमें क्वचित् मर्यादा उल्लंघनकारी लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तो अवश्य भक्ति-दानमें उदार होने चाहिये थे; परन्तु वे प्रभु भी स्वभक्तिको गुप्त ही रखते हैं, यथा—

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।
अस्त्वेवमंग भगवान् भजतां मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्॥

—श्रीमद्भागवत, ५-६-१८

—श्रीशुकदेवजी कहते हैं, हे राजन्! भगवान् मुकुन्द आपके तथा यादवोंके पति, गुरु, उपास्य, प्रिय, स्वामी और कभी सेवक भी बने हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण अपने भजन करने वालोंको मुक्ति दे देते हैं, परन्तु कभी भक्ति नहीं देते।

इस प्रकार कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं प्रभु अपने सभी स्वरूपोंमें भक्तिको निज परिकरों तक छुपाते रहे हैं। परन्तु इस श्रीगौरांग स्वरूपमें आप उपदेश, स्पर्श, दृष्टि आदिके द्वारा समस्त आपामर-जीवों तक भक्ति लुटाते हैं। संसारानलमें जलते हुए जीवोंको परमानन्द प्रदायी भक्तिरससे आप्लावित करनेके लिये ही ये श्रीगौरांग महाप्रभु संन्यास, देश-विदेश-भ्रमण, श्रीविष्णुप्रियाको कठिन तपस्या-प्रेरणा, श्रीनित्यानन्दका गृहस्थ-प्रवेशकरण तथा श्रीरूप-सनातनादि शिष्योंको व्रज भेजकर आचरण-ग्रन्थ निर्माणादि द्वारा तत्कालीन ही नहीं, भावी जीवोंके लिये भी भक्ति लुटानेके साधन जुटाते हैं।

अतः इस स्वरूपमें प्रभुकी महनीयता देख-विचारकर इन्हें 'महाप्रभु' कहना सर्वथा उचित ही है।

कोई अधिकारी है या नहीं, महाप्रभु ऐसा न सोच सभीको वह भक्ति लुटाते हैं। यह तो हुई एक सामान्य भक्तिकी चर्चा, परन्तु व्रजजनोंकी, जो इससे भी अनन्त गुणित उत्कृष्ट प्रेमाभक्ति है तथा उसमें भी जो उज्ज्वल रसात्मिका प्रेमाभक्ति है, उस परम रसात्मिका प्रेमा-भक्तिको अपने जनोंको प्रदान करते हैं तथा आगामी जीवोंके लिये उसका साधन-मार्ग प्रशस्त करते हैं यही लीला-वैशिष्टच कहिये या करुणा-वैशिष्टच। श्रीगौरांगकी महनीयताका या महाप्रभुत्वका प्रधान कारण है।

श्रीमहाप्रभु-गौरसुन्दरकी महत्ताका एक और उदाहरण देखिये—श्रीभगवान् जो भी स्वरूप लोकमें प्रकट करते हैं, उसी स्वरूपका ही सभीको आदिसे-अन्त तक दर्शन कराते हैं। केवल श्रीकृष्णावतारमें उन्होंने श्रीहनुमानजीको रामरूपमें दर्शन दिये। श्रीकृष्ण कईयोंको चतुर्भुजरूप तथा अर्जुनको विराट्‌रूपका दर्शन कराया। श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, उनमें समस्त भगवदवतारोंका सन्निवेश है, वे ऐसा कर सकते हैं। और किसी भगवत्स्वरूपने अपनेसे भिन्न कोई स्वरूप किसीको प्रत्यक्ष नहीं दिखाया।



परन्तु श्रीगौरांग महाप्रभुने जिस भक्तका जो इष्ट था, उसे उसी रूपमें प्रत्यक्ष, सबके सामने दर्शन दिये। श्रीवास तथा नृसिंहानन्दको उनके



इष्ट श्रीनृसिंहरूपमें दर्शन दिये। श्रीमुरारिगुप्तको उनके इष्ट सपरिकर श्रीरामरूपमें दर्शन दिये। इस प्रकार यज्ञ-वाराह, विराट, चतुर्भुज तथा षड्भुज, शिव-पार्वती, लक्ष्मी आदिकके रूपके दर्शन अपने भक्तोंको कराये। यहां तक कि अपनेमें मुरलीवदन श्रीकृष्णके दर्शन भी कराये, जिससे इनकी स्वयं-भगवत्ताके साथ-साथ समस्त प्रभुओं—भगवत् स्वरूपोंमें महीयता प्रतिपादित होती है। अतः ये महाप्रभु-पदके वाच्य है। विशेषतः रसराज-महाभावस्वरूपका परिचय देकर आस्वाद्य तथा आस्वादन रूपमें इन्होंने श्रुति-प्रतिपादित रस-स्वरूपका परिचय देकर महाप्रभु-शब्दको फलितार्थ किया है। अतः एकमात्र श्रीकृष्णचैतन्य भगवत् स्वरूप ही 'महाप्रभु' पदका वाच्य है।

## गौरकृष्ण नमामि ते

—श्रीश्यामदास

जयति श्रीचैतन्य सच्चिदानन्द नदियाचन्द हे!
जयति त्रिभुवन-ताप-त्रय दुख-द्वन्द्वहर सुखकन्द हे!
जयति श्रीव्रजचन्द श्रीशचीनन्द ह्वै कलि अवतरे।
जयति करुणागार भक्ताधार जन-भव भय हरे॥
निज प्रेम-भक्ति अभेद कहि जेंहि वेद नित्य सुगावहिं।
सोई तत्त्व-पर, द्वै देह धरि, श्रीराधिका-हरि भावहिं॥
पुनि एक तन ह्वै, प्रकट जो भए, चाखिने रस-भामिते।
श्रीराधिका-द्युति-भाव सुवलित गौरकृष्ण नमामि ते॥

# महाप्रभु श्रीगौरांग – श्रीभक्तमालमें

—पूज्य बाबा श्रीगणेशदासजी महाराज भक्तमाली



श्रीगुरुदेवकी कृपासे दिव्यदृष्टि प्राप्त श्रीनाभाजीने जब श्रीमन्महाप्रभुका ध्यान किया तो उन्हें इनकी प्रेमाभक्ति दशों दिशाओंमें व्याप्त दिखलाई पड़ी, सर्वत्र प्रेम-पुरुषोत्तम महाप्रभु ही आराध्य थे। पुनः प्रभुने जिस प्रेमाभक्तिका, जिस नाम सङ्कीर्तनका प्रचार प्रसार किया वह भी दिग् दिगन्तमें उन्हें व्याप्त दिखलाई पड़ा। तभी महाप्रभुजीने स्वयं नाभाजीको अपने स्वरूपका बोध कराया। फलस्वरूप यह दिव्य छप्पय छन्द प्रकट हुआ—

नित्यानन्द ( कृष्ण ) चैतन्यकी भक्ति दसों दिसि विस्तरी ॥
गौड़ देस पाखण्ड मेटि कियो भजन परायन।
करुनासिन्धु कृतज्ञ भये अगतिन गति दायन॥
दसधा रस आक्रान्त महत जन चरन उपासे।
नाम लेत निष्पाप दुरित तेहि नर के नासे॥
अवतार विदित पूरब मही उभै महन्त देही धरी।
नित्यानन्द ( कृष्ण ) चैतन्यकी भक्ति दसों दिसि विस्तरी॥

चार दिशायें, चार विदिशायें, ऊर्ध्व दिशाके सप्तलोक एवं अधोदिशाके सप्तलोकोंमें श्रीचैतन्यदेवके प्रेमका प्रकाश जगमगा रहा है, सर्वत्र लोग उसकी चर्चा समर्चा करते हैं और उससे प्रेरणा प्राप्तकर नाम-रूपके रसास्वादनमें तल्लीन हैं—श्रीनाभाजीने यह सब देखा।

अवतार-कालमें कलिकुचक्र, यवनातंक, धर्मपराङ्मुखता और वाममार्गके बाहुल्यसे सर्वत्र पाखण्डका प्राचुर्य था। असंख्य पशु बलिवेदीपर चढ़ा दिए जाते थे। हाथमें खड्ग लेकर स्वयं ब्राह्मण बलिदान करते थे। इन सभी पाखण्डोंको मिटाकर श्रीमहाप्रभुने सबको प्रेम प्रदान किया। भजनोन्मुख होकर लोगोंने अपना जीवन-जन्म सफल किया। इसमें हेतु है श्रीप्रभुकी करुणा। आप करुणाके तो अवतार ही हैं—'वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ।' इसीसे अगतिकोंको सद्गति प्रदान की। दूसरे अवतारोंमें दुष्टोंको मारकर उन्हें सद्गति दी और इस अवतारमें उनकी दुष्टताका सर्वथा विनाश कर उन्हें परम-भागवत बनाया। इस अवतारकी यह सबसे बड़ी विशेषता है।





एक पल भरके लिए भी प्रेममें मग्न होना करोड़ों वर्षोंकी योग-साधनासे बढ़कर है—'**प्रेमभक्ति एकहु पलक कोटि बरस को जोग। प्रेम भक्ति सब जोग है प्रेम भक्ति बिनु रोग**॥' श्रीप्रभु सर्वदा ही प्रेमरसके आवेशमें रहते। श्रीपादप्रकाशानन्द (प्रबोधानन्द सरस्वती) सार्वभौम वासुदेव भट्टाचार्य एवं राजा प्रतापरुद्र आदि अनेक महानुभाव महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंके उपासक हुये। आपके नाम की ऐसी महिमा है कि उसका उच्चारण करते ही गुप्त-प्रकट, उपपाप और महापाप नष्ट हो जाते हैं। महान्त रूपसे आपका प्राकट्य हुआ। यथा—'जीवे साक्षात् नाहिं गुरु चैत्य रूपे। शिक्षागुरु हय कृष्ण महान्त स्वरूपे॥' (चै० च०) अन्तर्यामी रूपका जीव साक्षात्कार नहीं कर सकता, अतः श्रीकृष्ण ही महान्त भक्त, श्रेष्ठ शिक्षा-गुरु रूपसे प्रकट हुये।

श्रीगौराङ्गदेवके अवतारका एक हेतु भक्तिरस-बोधिनी टीकाकार वैष्वण-रत्न श्रीप्रियादासजी लिखते हैं—

गोपिनके अनुराग आगे आप हारे श्याम,
जान्यौ यह लाल रङ्ग कैसे आवै तनमें।
ये तौ सब गौरतनी नख-शिख बनी ठनी,
खुल्यौ यौं सुरङ्ग अङ्ग अङ्ग रँगे बनमें॥
श्यामताई माँझ सो ललाई हू समाई जोई,
ताते मेरे जान फिरि आई यहै मनमें।
जसुमति सुत सोई शचीसुत गौर भये,
नये नये नेह चोज नाचैं निज गनमें॥

परमोत्कृष्ट व्रजगोपियोंके प्रेमके आगे भगवान् श्रीकृष्णने हार मान ली। 'न पारयेऽहम्, (भा० १०।३२।२२) वे कहते हैं-देवियो! यदि मैं अमर शरीरसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ और रहूँगा। इस प्रकार भगवान् अनुपम गोपीप्रेमपर रीझकर उसे अपने में ले आए। पर प्रेमकी लालिमा श्यामतामें ठीक प्रकारसे उभरी हुई नहीं दिखाई दी। जैसे कोई सम्राट विरक्तके सुखका अनुभव करना चाहे तो उस पदपर रहते हुए नहीं कर सकता है। उसे त्यागी विरक्त बनना पड़ेगा। उसी प्रकार भगवत्ताके साथ भक्तभावका आस्वादन नहीं हो सकता है। अतः श्यामसुन्दरने विचारा कि अब मैं गौर-कान्तिको धारण करूँ तब यह प्रेमरङ्ग मुझमें खिलेगा। तभी श्रीयशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र श्रीशचीनन्दन श्रीगौरचन्द्रके रूपमें प्रकट हुये और उन्होंने प्रेमके नये-नये अनोखे भावोंको प्रकट किया। प्रेम-भाव एवं ईश्वरताका वर्णन करते हैं—

आवै कभू प्रेम हेमपिण्डवत तन होत,
कभू सन्धि सन्धि छूटि अङ्ग बढ़ि जात है।
और एक न्यारी रीति आँसू पिचकारी मानो,
उभै लाल प्यारी भाव सागर समात है॥
ईशता बखान करी सो प्रमान याको काह,
जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है।
चतुर्भुज षड्भुज रूप लै दिखाय दियौ,
दियौ जो अनूप हित बात पात-पात है॥

विरहोन्मादसे प्रेमकी जैसी अवस्थायें श्रीमहाप्रभुके शरीरमें प्रकट हुईं अन्यत्र उनका श्रवण-दर्शन नहीं होता है। एक बार श्रीप्रभुके हाथ-पैर पेटके भीतर धँसे हुए थे, उनकी आकृति कच्छपाकार होगई थी। मुखसे निरन्तर फेन निकल रहा था, उनके अङ्ग पुलकित हो रहे थे, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। वे कूष्माण्ड फलकी भांति अचेतन श्रीजगन्नाथ-जीके सिंहपौरके समीप पड़े थे। वे बाहरसे जड़ किन्तु भीतर ही भीतर आनन्द विह्वल हो रहे थे। गायें श्रीअङ्गको सूँघ रही थीं, हटानेसे भी नहीं हट रही थीं। भक्तोंने उच्चस्वरसे कीर्तन किया, तब उन्हें चेतना आई और उनका शरीर पूर्ववत् हो गया। वे भी नाम सङ्कीर्तन करने लगे।

एकबार भक्तोंने देखा कि प्रभुका शरीर पाँच-छः हाथ लम्बा हो गया है। श्वासका आना-जाना बन्द है, हाथ-पाँव तीन-तीन हाथ लम्बे हो गये हैं। अस्थि-ग्रन्थियाँ भिन्न-भिन्न हो गई हैं। जोड़ोंमें केवल त्वचा दिखाई देती है। शरीरके जोड़ एक-एक बालिश्त हट गए हैं। अश्रुधारसे गरुड़स्तम्भके निकटका कुण्ड भर जाता था। महाप्रभुजी सदा राधा-भावमें मग्न रहते थे, कभी-कभी कृष्ण-भावका भी अनुसन्धान हो आता था।

प्रकाण्ड पण्डित महान् तार्किक सार्वभौमजी प्रभुको ईश्वर मानना नहीं चाहते थे। प्रभुपार्षदोंकी विनती पर चतुर्भुज रूप दिखानेपर सार्वभौमने कहा—श्रीजगदीशपुरीके सभी नर-नारी विष्णु और लक्ष्मीके रूप हैं। तब प्रभुने उन्हें षड्भुज रूपसे दर्शन दिया। शङ्ख, चक्र, गदा पद्म धनुष-बाण और मुरली धारी, राम-कृष्ण-विष्णु सभी भगवत्स्वरूपोंका एकत्र दर्शन कर सार्वभौमजी महाप्रभुके चरणोंमें पड़ गए। ईश्वरताका यह सबसे बड़ा प्रमाण है। प्रेम-प्रदाता-पतितपावन—

कृष्णचैतन्य नाम जगत प्रकट भयौ,
अति अभिराम लै महन्त देही धरी है।
जितौ गौड़देश भक्ति लेश हू न जानै कोई,
सोऊ प्रेम सागरमें बोरयौ कहि हरी है॥
भये सिर मौर एक एक जग तारिबे कों,
धारिबे कों कौन साखि पोथिनमें धरी है।





कोटि कोटि अजामिल बारि डारे दुष्टता पै,
ऐसे हू मगन किए भक्ति भूमि भरी है ॥

जीवोंको श्रीकृष्णनाम देकर उन्हें चैतन्य किया, अत: श्रीकृष्ण-चैतन्य नाम हुआ । जहाँ लोग भक्तिका नाम भी नहीं जानते थे ऐसे शुष्क गौड़देशको प्रेमसागरमें डुबा दिया श्रीमहाप्रभुजीने । आपका एक-एक कृपा-पात्र पार्षद जगत्को तारनेमें समर्थ हुआ । जैसे--श्रीपादरूप, सनातन गोस्वामी, गोस्वामी श्रीरघुनाथदासजी, श्रीपादगोपालभट्टजी, श्रीलोकनाथ गुसाई आदि। अजामिलजी पूर्वजन्मके तपस्वी थे, शापवश पतित हुए थे । किन्तु जगाई-माधाई उनसे भी बढ़कर पतित थे क्योंकि अनन्त जन्मोंसे पापचारमें रत थे, अपने दुष्कर्मोंसे पतित हुये थे । ऐसोंको पवित्र करके प्रभुने उन्हें प्रेमदान दिया । कहाँ तक कहें–सारी भूमिको महाप्रभुजीने भक्तिसे भर दिया । पञ्चशतीके पावन वर्षके अभिनन्दनमें श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोंमें बारम्बार शत-शत प्रणाम ।

## प्रेम-पुजारी गौरहरि.....

—श्रीरामजी लाल विजय 'प्रभाकर'

**प्रेमकी ज्योति जलाने वाले, गौरहरि जय गौरहरि ।**
**प्रेम-सुधा बरसाने वाले, गौरहरि जय गौरहरि ॥**
**फागुण शुक्ल पूनम नदियामें, धन्य घड़ी वह आई थी,**
**जगन्नाथ-शचिके घर प्रकटे, घर-घर बटी बधाई थी,**
**प्रेमको गंग बहाने वाले, गौरहरि जय गौरहरि ॥**
**जगाई-मधाईसे पापी तारे, हरिदास-दुख दूर किया,**
**कुष्ठी-कोढ़ी के दर जाकर, उठा गलेसे लगा लिया,**
**दुखियोंका दुख हरनेवाले, गौरहरि जय गौरहरि ॥**
**हरिनामका संबल लेकर, जन-जनका मन मोह लिया,**
**कृष्ण-प्रेमका इमरत देकर, जीव-जन्तुको अमर किया,**
**प्रेम-पीयूष पिलाने वाले, गौरहरि जय गौरहरि ॥**
**जनम-जनमका भूला भटका, कब तक और भुलावोगे,**
**दास 'प्रभाकर' शरण तिहारी, कब तक और रुलावोगे,**
**डूबती नैया खेनेवाले, गौरहरि जय गौरहरि ॥**

# महाप्रभु-श्रीगौरांग
# प्रेमविलास-विवर्त के मूर्त्त-विग्रह

डा० अवधबिहारी लाल कपूर
एम. ए., डी. फिल, यू. पी. ई. एस. (रि.)



श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुसार सम्भोगकी चरम अवस्था प्रेम-विलास-विवर्त ही है साध्य वस्तुकी परम अवधि।

गोदावरी तटपर रायरामानन्दसे मिलनके समय महाप्रभुने उनसे साध्य-साधन-तत्त्व-का निरूपण करनेको कहा। रामानन्दने चतुर्वर्गसे लेकर राधा-प्रेम तकके विभिन्न स्तरोंका क्रमशः वर्णन किया। महाप्रभु प्रत्येक स्तरके वर्णनके पश्चात् उनसे और आगेके स्तरकी बात कहनेका आग्रह करते रहे। परन्तु जब उन्होंने अपने ही एक गीतके द्वारा राधाके मादनाख्य महाभावकी चरम अवस्था प्रेम-विलास-विवर्तका इङ्गित किया, तब उन्होंने कहा— यही साध्य-वस्तुकी अवधि है, अर्थात् इससे आगे और कुछ कहने-सुनने को नहीं है। जो गीत उन्होंने सुनाया, उसकी प्रथम दो पंक्तियां, जो प्रेमविलास-विवर्तका इङ्गित करती हैं, इस प्रकार हैं—

पहिलहि राग नयनभङ्ग भेल। अनुदिन बाढ़ल अवधि न गेल ॥
ना सो रमण ना हाम रमणी। दुहुँ मन मनोभव पेषल जानि ॥

श्रीराधा कहती हैं—'नयन-भङ्ग, अर्थात् पलक पड़नेमें जितनी देर लगती है, उतनी देरमें (श्रीकृष्णसे) मेरा प्रथम राग हो गया। राग दिन-प्रति दिन निरवच्छिन्न भावसे बढ़ता गया। उसे कोई सीमा न मिली। रागके निरन्तर वर्धनशील प्रवाहने, एक दूसरेके विलास-सुख-को वर्धन करने की वर्धनशील वासनाने मानों दोनोंके मनको पीसकर एक कर दिया। परिणाम-स्वरूप न रमणको अपने रमणत्वका ज्ञान रहा, न रमणीको अपने रमणीत्वका।

प्रेम-विलासका अर्थ, जैसा हम पहले कह चुके हैं, काम-क्रीड़ा नहीं है। प्रेम और काममें उतना ही अन्तर है, जितना प्रकाश और अन्धकारमें। प्रेम निर्मल भास्कर है, काम निबिड़तम अन्धकार। प्रेम-विलास है जड़ सम्पर्क-रहित, मायामुक्त, चिद्घन-शरीरधारी, स्वसुख-वासना-रहित, नायक-





नायिकाओंका मधुर चेष्टाओं द्वारा एक-दूसरेको सुखी करनेके उद्देश्यसे तन-मनका एक दूसरे पर न्यौछावर कर देने जैसा उन्नत, उज्ज्वल, रसमय व्यापार। काम-क्रीड़ा है रक्त-मांस-मल-मूत्र दो जड़-शरीरधारी व्यक्तियों का अपनी जड़ेन्द्रियोंका दासत्व स्वीकार कर उनकी सेवाके हेतु एक दूसरेके शरीरका पशुओंके समान भोग करने जैसा कुत्सित व्यापार।

'विवर्त' शब्दका मुख्य अर्थ श्रीजीव गोस्वामीने किया है—'परिपाक'।[1] श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने इसका अर्थ किया है 'विपरीत'। साधारण रूपसे इसका अर्थ है 'भ्रम'। 'प्रेम-विलास-विवर्त' के सन्दर्भमें इन तीनों अर्थों की पूरी सार्थकता है, जैसा आगेकी व्याख्यासे स्पष्ट होगा।

व्रजसुन्दरियोंके श्रीकृष्णके साथ प्रेम-विलासकी विलक्षणता यह है कि इसकी कभी उपरति नहीं होती। दिन-प्रतिदिन विलासमें निरत रहने पर भी विलास-वासनाकी उपशान्ति होना तो दूर, यह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, जैसे तृष्णाशान्तिहीन कृष्णसुखैकतात्पर्यमय विलास ही उनके जीवनका व्रत हो—'दिनंदिनमप्युनुपरमणं रमणमतीव जीवनसमतामवाप'।[2] उपाशान्तिहीनताके कारण विलासके लिये उनकी उत्कण्ठामें भी निरन्तर वृद्धि होती जाती है। उत्कण्ठा जब गाढ़तम हो जाती है, तो श्रीकृष्ण द्वारा सम्यक्‌रूपसे आलिंगित होते हुए भी उन्हें लगता है कि श्रीकृष्ण उनसे न जाने कितनी दूर हैं। उनकी परमगाढ़ता प्राप्त उत्कण्ठा जैसे उनकी बाह्य वृत्तिको विलुप्त कर देती है और उनके सामने साक्षात् उपस्थित श्रीकृष्णकी अनुभूतिको स्वाप्निक अनुभूतिके रूपमें परिणत कर देती है। पिपासु व्यक्तिकी जिस प्रकार स्वप्नमें जलपान करनेसे प्यास नहीं बुझती, उसी प्रकार उत्कण्ठाकी चरम अवस्थाको प्राप्त व्रज-सुन्दरियोंकी श्रीकृष्ण-मिलनकी प्यास वास्तव मिलनमें भी प्रशमित नहीं होती—

**'यदपि परस्पर मिलनं हरिगोपीनां चिरान्न विच्छिन्नम्।**
**तदपि न तृष्णा शान्ता स्वाल्पिकपाने यथा पिपासुनाम्॥**[3]

व्रजगोपियोंकी प्रेम-विलासकी वासना एक पक्षीय नहीं है। यह अपने प्रभावसे श्रीकृष्णमें भी तदनुकूल वासना जगाकर उन्हें उनके साथ मिलन और विलासादिके लिये विवश करनेकी सामर्थ्य रखती है। श्रीकृष्ण 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते श्लोकके अनुसार अपने स्वभावसे भी गोपिकाओंकी वासनाके अनुकूल व्यवहार करनेको विवश हैं। गोपिकाओंमें जिस प्रकार श्रीकृष्णकी प्रेम-सेवा करनेकी वासना उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होती है, श्रीकृष्णमें उसी प्रकार उनकी प्रेम-सेवा ग्रहण करनेकी वासना उत्तरोत्तर वर्धित होती है। पर उनकी प्रेम-सेवा ग्रहण करनेमें श्रीकृष्णका भी अपना निजी स्वार्थ कुछ नहीं है। वे उनकी प्रेम-सेवा ग्रहण करते हैं

---

१. उ. नी. म. उद्दीपन-विभाव-प्रकरण, २२ श्लोककी टीका

२. गोपालचम्पू, पूरण ३३

३. गोपालचम्पू, पूरण ३३।४

उन्हींके सुखके लिये। वे जो कुछ भी करते हैं, वह उनके अपने सुखके लिये न होकर होता है केवल उनके भक्तोंके अपने सुखके लिये। यह बात उन्होंने स्वयं अपने मुखसे ही कही है— 'मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः' (पद्मपुराण)।

श्रीकृष्ण और व्रजगोपिकाओंकी एक-दूसरेके प्रति प्रेम-सेवा-वासनाकी उद्दामता तथा उनका एक-दूसरेके प्रति सहज, स्वाभाविक आत्म-समर्पण एक बड़े रहस्यकी बात है। श्रीकृष्णने अर्जुनको गीताका उपदेश करते समय कई 'गुह्य' उपदेश दिये थे। उनका शेष उपदेश था—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

इसे उन्होंने 'सर्वगुह्यतम' कहा था। अर्जुनके लिये तो सचमुच यही सर्वगुह्यतम उपदेश था। पर व्रजगोपियोंका स्तर अर्जुनके स्तरसे बहुत ऊँचा है। अर्जुनकी शरणागतिके मूलमें है श्रीकृष्णका आदेश और उनका यह आश्वासन कि शरणागत होनेपर वे उसे सब पापोंसे मुक्त कर देंगे। पर गोपियोंकी शरणागति न किसीके आदेश-उपदेशकी अपेक्षा रखती है, न किसी प्रकारके आश्वासन या प्रलोभन की। उनकी शरणागति उनके प्रेमका स्वाभाविक परिणाम है, उससे स्वतः–स्फूर्त है। गोपियां वेदधर्म, लोकधर्म, मान–मर्यादा, लोक-लज्जादिको तिलांजलि दे, विना किसी प्रकारका विचार-वितर्क किये, कृष्ण-प्रेमकी गंगामें बह जाती हैं कृष्णसे मिलनेके लिये, उनके शरणापन्न होनेके लिये। कृष्ण भी उनकी प्रेम-सेवाकी बलवती वासनासे आकर्षित हो वेदधर्म आदिका त्यागकर और उनके प्रेमके वशीभूत हो उनसे मिलनेके लिये उसी प्रकार स्वभावतः धावित होते हैं, जिस प्रकार भ्रमर कमलके सौरभसे आकर्षित हो उसकी ओर स्वभावतः धावित होता है।

व्रजगोपियोंमें श्रीकृष्णकी प्रेम-सेवा-वासनाका चरमतम विकास है मादनाख्य महाभाववती श्रीराधिकामें। इसलिये श्रीकृष्णके प्रेमाकर्षण और उनकी प्रेमवश्यताका चरमतम विकास भी है श्रीराधिकाके प्रेमके सन्दर्भमें ही। श्रीराधिकाकी सेवा-वासनाकी उद्दामता श्रीकृष्णमें भी तद्रूप उद्दामताको जन्म देती है। तब दोनों परस्परको सुखी करनेकी वासनाकी उद्दाम प्रेरणासे केलि-विलासमें जिस प्रकारकी प्रमत्तताको प्राप्त होते हैं उसमें वे अपनी सारी सुध-बुध खो बैठते हैं। उन्हें यह भी पता नहीं रहता कि उनमें कौन रमण है, कौन रमणी, कौन कान्त है, कौन कान्ता। वे अपने अस्तित्व तकको भूल जाते हैं। उन्हें ज्ञान रहता है केवलमात्र अपने केलि-विलासका। उनका चित्त निरन्तर वर्धनशील, उपरतिहीन विलास-वासनासे तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। उस विलासमात्रैक-तन्मयताके कारण उनके भेद-ज्ञानका सर्वथा लोप हो जाता है। जबतक चित्तका भेद-ज्ञान रहता है, तभी तक कान्त और कान्ताभाव वर्तमान रहता है। चित्तके भेद-ज्ञानके तिरोहित होनेके साथ ही कान्त-कान्ता-भेद-ज्ञान भी तिरोहित हो जाता है। शेष रहती है केवल विलास-सुखैक निबिड़तम तन्मयता।





इस तन्मयताको गाढ़तम बनानेमें सहायक होती हैं श्रीराधाके मादनाख्य महाभावकी कुछ विशेषताएं, जो इस प्रकार हैं—

(१) मादन है प्रेमका पूर्णरूप या स्वयं-प्रेम। रति, स्नेह, मान प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव हैं इसके अंश। मादनाख्य-महाभाववती श्रीराधा हैं अनन्त कान्ताभाव-वैचित्रीका मूर्तरूप—कान्ताभावका स्वयंरूप, अखिल-कान्ताभाव-विग्रह। अखिलरसामृतमूर्ति स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार अनन्त भगवत्-स्वरूपोंमें अनादिकालसे विराजमान हैं, उसी प्रकार श्रीराधिका उन भगवत्-स्वरूपोंको पृथक्-पृथक् रूपसे अनन्त कान्ता-रस-वैचित्री आस्वादन करानेके लिये लक्ष्मी-महिषी-व्रजदेवी आदि अनन्त कृष्ण-कान्ताओंके रूपमें अनादिकालसे विराजमान हैं। जिस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावके समय अनन्त रस-वैचित्रीके प्रकाश-स्वरूप अनन्त भगवत्-स्वरूप उनके भीतर आविर्भूत होते हैं, उसी प्रकार स्वयं प्रेमरूप मादनके उदय होनेपर समस्त प्रेम-वैचित्री और समस्त कान्ताभाव-वैचित्री एक साथ उल्लसित और तरंगायित होती हैं। परिणाम-स्वरूप विलास-सुखमें असाधारण तन्मयता जन्मती है।

(२) मादनका उदय होता है केवल सम्भोगमें। सम्भोगकी अशेष वैचित्री है, जैसे आलिंगन, चुम्बन, संलापन, वेशरचना, चित्रांकनादि। मादनमें किसी एक प्रकारके सम्भोगमें समस्त सम्भोग-वैचित्रीका एक साथ सुखानुभव होता है और सम्भोग-वैचित्रीके सुखानुभवके साथ नानाविध वियोग-जनित भावका भी अनुभव होता है।[1] सम्भोगमें वियोग और वियोगमें सम्भोगका अनुभव मादनकी एक अद्भुत विशेषता है। मिलनकी तीव्र उत्कण्ठा ही सम्भोगमें वियोगका अनुभव कराती है[2] और वियोगका अनुभव ही उत्कण्ठाका वर्धनकर सम्भोग-सुख-चमत्कारित्वकी नवनवायमानताको अक्षुण्ण बनाये रखता है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, जिससे विलाससुखचेष्टैकतन्मयता निबिड़से भी निबिड़तम होती जाती है।

(३) महाभावकी दो विशेषताएं हैं—उसकी स्वसम्वेद्यदशा और यावदाश्रयवृत्ति। अनुरागके उत्कर्षमें जब बलवती उत्कण्ठाके साथ श्रीकृष्ण-माधुर्यका अनुभव होता है, तब माधुर्यके आस्वादनाधिक्यके कारण आस्वादक इतना तन्मय हो जाता है कि उसे न अपनी स्मृति रहती है, न माधुर्यादिकी। स्मृति रहती है केवल आस्वादनकी। उसका अपना और आस्वाद्य वस्तुका ज्ञान लुप्त हो जाता है। आस्वादकके अभावमें आस्वादन स्वयं ही अनुभव

१. ऐसा स्फूर्त्तिमें होता हो या कायव्यूह द्वारा होता हो सो नहीं, श्रीकृष्ण द्वारा साक्षात्‌रूपसे श्रीराधा आलिंगन, चुम्बनादि असंख्य प्रकारकी सम्भोगात्मिका लीलाका आनन्द एकसाथ अनुभव करती हैं॥ उ. नी. म. स्थायि १६१॥

२. 'सहस्रधा संभोग काले सहस्रधा एव उत्कण्ठा इत्यद्भुतेव।' उ. नी. म. स्थायि १६० श्लोकको आनन्द चन्द्रिका टीका।

करता है, क्योंकि अनुराग संवित संयुवता ह्लादिनी शक्तिकी वृत्ति है, जो स्वयं संवेद्य है। 'ना सो रमण, ना हाम रमणो' भाव अनुरागकी इस स्वसम्वेद्य दशाका ही इंगित करता है। मादनाख्य महाभावकी दशामें, जो महाभावकी चरम सीमा है, अनुरागकी स्वसम्वेद्य दशा भी चरम सीमापर पहुँच जाती है।

अनुराग जब अपनी सीमापर पहुँचता है तो यावदाश्रय-वृत्तित्व लाभ करता है। अनुरागका आश्रय या भित्ति है प्रेमके विकास-क्रममें उसके पूर्व का स्तर—राग, रागकी भित्ति है प्रणय। प्रणयकी अवस्थामें नायक और नायिकामें विश्रम्भकी, अपने प्राण-देह-मनादिको एक माननेकी प्रवृत्ति जन्मती है। अतः मादनाख्य महाभावमें जो अनुरागकी चरम पराकाष्ठा है, प्राण-देह-मनादिके ऐक्य-मननकी भी चरम पराकाष्ठा होती है,[1] जिसका रामानन्दरायके गीतमें 'दुहुँ मन मनोभव पेषल जानि' वाक्य द्वारा इंगित किया गया है।

परन्तु प्रेम-विलास-विवर्तका देह-मन-प्राणादिका ऐक्य-मनन, या अभेद-ज्ञान ज्ञान-मार्गके साधकके अभेद-ज्ञान जैसा नहीं है। ज्ञान-मार्गकी मूल भित्ति ही है जीव और ब्रह्मका अभेद-ज्ञान। ज्ञान-मार्गका साधक यह मान कर चलता है कि जीव और ब्रह्म तत्वतः एक हैं, पर अज्ञानके कारण जीवको ब्रह्मसे अपने पृथक् अस्तित्वकी प्रतीति होती है। अज्ञानके दूर होजाने पर उसका भेद-ज्ञान उसी प्रकार मिट जाता है, जिस प्रकार घटके टूट जाने पर घटाकाश और महाकाशका भेद मिट जाता है। राधा और कृष्ण दोनोंमें कोई भी अज्ञानवृत ब्रह्म-रूप जीवके समान अनित्य नहीं है। दोनों नित्य हैं, दोनोंकी लीला भी नित्य है। लीला-रस आस्वादन करनेके लिये ही दोनों स्वरूपतः एक होते हुए भी अनादिकालसे दो रूपोंमें विद्यमान हैं—

राधा-कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥
(चै. च. १।४।८५)

प्रेम-विलास-विवर्तमें जो प्राण-मन-देहादिका ऐक्य होता है, वह केवल भावगत है, वस्तुगत नहीं। देह, मन और प्राणका पृथक् अस्तित्व बना रहता है, पर विलास-सुखैक-तन्मयताके कारण उनके ऐक्यका मननमात्र होता है। राधा-कृष्णके इस देह-मनादिके ऐक्यके मननको कविकर्णपूरने 'परैक्य' कहा है। 'परैक्य' शब्दका अर्थ है राधा-कृष्णके मनका प्रेमके प्रभावसे गलकर सर्वतोभावसे एक हो जाना, वैसे ही जैसे लाखके दो टुकड़े अग्निके प्रभावसे गलकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार मनके भेद मिट जानेपर ज्ञानका भेद भी मिट जाता है। दोनोंको अपने पृथक् अस्तित्वका ज्ञान नहीं रहता, यद्यपि पृथक् अस्तित्व बना रहता है। ज्ञान-



१. उज्ज्वलनीलमणि स्थायि, ७८ श्लोककी आनन्दचन्द्रिका और लोचन-रोचनी टीकाएं



मार्गके साधकमें सिद्धावस्था प्राप्त करनेपर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तीनोंक लोप हो जानेके कारण न तो ज्ञाताका पृथक् अस्तित्व रहता है, न किसी प्रकारका अनुभव होता है और न किसी प्रकारकी चेष्टा। पर प्रेम-विलास विवर्तमें राधा-कृष्णका पृथक् अस्तित्व रहता है, विलास-सुखैकतात्पर्यमयी अनुभूति रहती है और विलास-सम्बन्धी चेष्टा रहती है।

प्रेम-विलास-विवर्तमें राधा-कृष्णकी विलाससुखैक-तन्मयता ही है प्रेम-विलासकी परिपक्वता या चरमोत्कर्षावस्था। पर इसके परिणामस्वरूप दोनोंमें उस अवस्थाके दो वाह्य लक्षण भी प्रतिलक्षित होते हैं। वे हैं भ्रम और वैपरीत्य। तन्मयताके कारण भ्रम या आत्मविस्मृति घटती है और आत्मविस्मृतिकी अवस्थामें परस्परका सुख वर्धन करनेकी वर्धमान चरम उत्कण्ठाके कारण उनकी स्वाभाविक चेष्टाओंका अनजाने वैपरीत्य घटता है, अर्थात् कान्ताका भाव और आचरण कान्तमें और कान्तका भाव और आचरण कान्तामें सञ्चारित होता है, जैसे साधारण रूपसे कृष्ण बंशी बजाते हैं और राधा नृत्य करती हैं, पर विहार-वैपरीत्यमें राधा बंशी बजाती हैं, कृष्ण नृत्य करते हैं। नायक और नायिकामें विहार-वैपरीत्य बुद्धिपूर्वक भी हो सकता है, पर प्रेम-विवर्त विलासमें यह अबुद्धिपूर्वक होता है, क्योंकि उसमें रमणका रमणत्व रमणीमें और रमणीका रमणीत्व रमणमें आत्मविस्मृतिकी अवस्थामें अनजाने ही सञ्चारित होता है। इस तरह एक और प्रकारसे प्रेम-विवर्त-विलासमें 'ना सो रमण ना हाम रमणी' भावकी सार्थकता घटती है।

रायरामानन्दका गीत सुनते ही श्रीमन्महाप्रभुने उनका मुख अपने हाथसे ढक दिया। कविकर्णपूरने इसका कारण बताते हुए चैतन्य-चन्द्रोदय नाटकमें लिखा है कि महाप्रभु स्वयं हैं प्रेमविलास-विवर्तके मूर्त-विग्रह। रायरामानन्दके गीतमें प्रेम-विलास-विवर्तका इंगित है, पर इसके रहस्यका पूर्ण उद्घाटन नहीं है। यदि रायरामानन्द इस रहस्यका पूर्णरूपसे उद्घाटन करते, तो आनन्द-विवशताके कारण महाप्रभुका आत्मगोपन कठिन हो जाता। रामानन्द स्वयं उनके स्वरूपको जानकर भाव-विह्वल हो उठते और महाप्रभुका उनके मुखसे रागानुगाभक्तिके तथ्योंको जीवोंके कल्याणके लिये प्रकाशित करानेका उद्देश्य पूरा न होता।

महाप्रभुको प्रेम-विलास-विवर्तका मूर्त-विग्रह कहनेका कविकर्णपूरका आशय इस प्रकार है। महाप्रभुके स्वरूपमें राधाके स्वाधीन-भर्तृकात्वका और श्रीकृष्णके धीरललितत्वका पूर्ण विकास है। स्वाधीन भर्तृका नायिका वह है, जिसके कान्त उसके अधीन होकर सदा उसके निकट रहते हैं। धीरललित नायक वह है, जो रसिक होनेके कारण सर्वथा प्रेयसीके वशीभूत होता है। प्रेम-विवर्त-विलासमें श्रीराधा कृष्ण-मिलनकी बलवती उत्कण्ठाके कारण प्रेमसे विगलित हो श्रीकृष्णके प्रति अंगका अपने प्रति अंगसे आलिंगनकर उसे अपने प्रति अंगसे आच्छादित कर, पूर्ण रूपसे अपने अधीन कर लेती हैं—अपने रंगमें रंगकर श्यामसे गौर कर लेती हैं और कृष्ण भी इस प्रकार सम्यक्रूपसे उनकी वश्यता कर लेते हैं। यही श्रीमन्महाप्रभुका अपना स्वरूप है—अन्तःकृष्ण, बहिर्गौर। श्रीराधा जिस प्रकार अपने कृष्ण-प्रेमाम्बुधिमें उबाल

आनेके कारण प्रेमसे विगलित हो अपने देहसे श्रीकृष्णके देहको कवलित कर लेती हैं, उसी प्रकार अपने चित्तसे श्रीकृष्णके चित्तको भी कवलित कर लेती हैं। श्रीकृष्णका चित्त राधाके चित्तसे ऐक्य प्राप्तकर तद्रूप हो जाता है। राधाका चित्त आश्रय जातीय है, भक्तभावपूर्ण है। इसलिये श्रीकृष्णका चित्त भी आश्रयरूप हो जाता है। प्रेम-विलास-विवर्तमें विलाससुखैकतन्मयताके कारण उन्हें अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है और वे राधाके भावमें पूर्णरूपसे भावित हो जाते हैं। प्रेमपरिपाककी चरम अवस्थामें श्रीकृष्णसे आलिंगित होते हुए भी, जिस प्रकार राधा मिलनकी उद्दाम उत्कण्ठाके कारण विरहका अनुभव करती हैं, उसी प्रकार गौरांगरूपमें राधाभावसे भावित श्रीकृष्ण अपने ही श्रीकृष्ण स्वरूपके विरहका अनुभव करते हैं। नित्य निरवच्छिन्न मिलनमें भी विरहभावका चरम विकास उनको गम्भीरा-लीलामें स्पष्ट दीख पड़ता है।

## कृष्णप्रेमका-स्वरूप

- **कृष्णप्रेम** स्वरूपतः चित् वस्तु है, या ह्लादिनी-संविदांश-प्रधान शुद्ध-सत्त्वकी वृत्ति-विशेष है।
- **कृष्णप्रेम** श्रीकृष्णके भगवत्ता-ज्ञानको प्रच्छन्न कर देता है, या उनके ऐश्वर्य-अनुसन्धानको विलुप्त कर देता है।
- **कृष्णप्रेम** श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध परिकरोंमें अनादिकाल-से विद्यमान है।
- **कृष्णप्रेम** क्रमशः घनीभूत होकर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभावके स्तरों तक उन्नत होता है।
- **कृष्णप्रेम** की महाभाव स्तर मोदन तथा मादन दो नामोंमें अभिव्यक्त होती है।
- **मादनाख्य महाभाव** एक मात्र श्रीराधिकाजीमें अभिव्यक्त होता है, व्रजलीलामें स्वयं श्रीकृष्णमें भी नहीं।
- **मादनाख्य-महाभावमें** कृष्णमिलन-जनित समस्त आनन्द-वैचित्रीका एक साथ अनुभव-आस्वादन होता है।





# करुणावतार-श्रीगौरहरि

डॉ० अच्युतलाल भट्ट, गोस्वामी
भागवत-भूषण, एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच. डी., साहित्यरत्न



श्रीहरि परम कारुणिक हैं। यदि उनकी लीला निज-स्वरूपमें नित्य-गुप्त या अप्रकट ही रहे तो प्रपंचगत भक्तोंका कल्याण सम्भव नहीं हो सकता। अत: आप्तकाम होते हुए भी प्रकट एवं अप्रकट दोनों ही रूपोंमें उनकी क्रीड़ा-प्रवृत्ति होती है। ब्रह्मरूपेण सर्वाश्रय वे स्वरूप भूत नराकारताका आश्रय लेते हैं। आश्रय लेनेका तात्पर्य है उसे आदरका विषय बनाते हैं। यह नराकारता कोई अभिनव स्वीकृति नहीं है। भगवत्-स्वरूप तो नित्य ही नराकार है। यही कारण है कि वैकुण्ठ-दर्शन-प्रसंगमें सभी गोपोंने गोलोक-श्वेतद्वीपके अधिष्ठानरूपमें नराकार परब्रह्म श्रीकृष्णका ही दर्शन किया था। यही बात महाकालपुर यात्रा-प्रसंगमें भूमा-पुरुषके विषयमें कही जा सकती है, अस्तु।

आप्तकाम होते हुए भी उनकी विविध लीलाएं किसी अचिन्त्य अन्तरंग प्रयोजनसे स्वस्वरूपमें अवस्थित हैं—**यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः** ॥ श्रीमद्भागवत–१०।३३।१७॥ ये लीलाएं नित्यलीला-परिकरों द्वारा तो सदा आस्वाद्य हैं ही, परन्तु आनुषंगिकरूपसे कालत्रय सम्बन्धी प्राचीन-अर्वाचीन भक्तोंपर अनुग्रह करना भी उनका एक गौण प्रयोजन है। विशुद्ध सत्त्वका स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह स्वयं तो नित्य ज्ञानानन्दरूप है ही, स्वयं-प्रकाशिका वृत्तिद्वारा उस ज्ञानानन्दका ज्ञापक भी स्वयं ही बन जाता है। प्रचुर-प्रकाश सूर्य अपना ज्ञापक स्वयं ही तो होता है; सूर्यकी प्रथम रश्मिके प्रकाशके साथ ही अन्धकार-निवृत्ति होकर फलरूपमें प्रकाश एवं उष्माकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार भगवद्रूपा भक्ति द्वारा हृदरोगोंकी निवृत्ति पूर्वक प्रेमानन्दकी प्राप्ति कराना आनन्दमय—प्रचुरानन्द श्रीहरिकी विशुद्ध सत्त्वरूपा शक्तिका सहज स्वभाव है। श्रीभगवान्‌की आत्मारामतामें किसी भी प्रकारकी कोई बाधा नहीं आती। प्राय: सिद्ध आत्मकाम भी अनेकों अवसरोंपर अपनी परछाईं या मिट्टीके डेलोंसे खेलते हैं तथा कई अवसरोंपर श्रीशुकदेव, जड़-भरत, नवयोगेश्वर, दत्तात्रेयादि आत्मारामगण परीक्षित्, रहुगण, निमि, यदु प्रभृतिको उपदेश देते हुए दीखते हैं। तत्त्वत: विशुद्ध सत्त्वसे भावित होनेके कारण ही वे 'कृपालु' बनते हैं, अन्यथा उन्हें निग्रह-अनुग्रहसे क्या प्रयोजन ? अत: भक्त एवं भगवान् दोनोंमें ही आतमकामता होते हुए भी लीला एवं लीला द्वारा भक्तानुग्रहकी प्रवृत्ति उपयुक्त ही है। श्रीभगवान्‌की सर्वचित्ताकर्षिणी क्रीड़ाका श्रवण, तत्क्षण तत्परता—भगवद् आसक्ति; या प्रेम प्रदान करने वाला होता है। अत: श्रीशुकदेव मुनि कहते हैं—

**अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।**
**भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥**
—श्रीभ० ११।३३।३७

इससे स्पष्ट है कि श्रीभगवान्‌के सभी अवतार करुणाके ही विलास हैं। करुणाका जैसा प्रकाशन कृष्णावतारमें हुआ, वह सर्वज्ञात है। किन्तु श्रीगौरस्वरूपमें करुणाका असमोर्ध्व प्रकाशन प्राप्त होता है।

महाप्रभु श्रीगौरहरिके अवतारका परम अन्तरंग प्रयोजन स्वस्वरूपमें होने वाली अन्तरंग-लीलामें श्रीराधा-प्रेम-विवर्तका दर्शनकर श्रीकृष्णमें उत्पन्न राधाके समान प्रेमास्वादन करनेकी लालसाका संपूरण है। यहां एक और प्रयोजन है अनर्पित चरी भक्ति-श्रीका दान।

सभी शास्त्र सर्वदा भक्तिकी महिमा स्वीकार करते हैं। शास्त्राज्ञासे जीवोंकी भक्तिमें प्रवृत्ति होती है और इस प्रकार विधिमार्गसे भगवद् आराधन करनेपर जगद्वासियोंको श्रीभगवान् चार प्रकारकी मुक्ति—सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य एवं सामीप्य प्रदान करते हैं; अर्थात् ध्रुव, प्रह्लाद, गजेन्द्र तथा अजामिलादिकी भांति उन्हें अपनी सेवा प्रदान करते हैं; परन्तु विधि-मार्गमें ऐश्वर्य ज्ञान प्रधान रहता है, उससे भगवत् प्रेममें शैथिल्य आ जाता है। और जहां प्रेम-शिथिलता है, वहां उनकी प्रेम-वश्यताके दर्शन नहीं होते। अतः कृष्णस्वरूपमें जहां निज-परिकरोंके प्रेमका सम्वर्द्धन लीला-विहारके द्वारा होता है, वहां अधिकार-विचार सहित नलकूबर-मणिग्रीव, सुदर्शन, मुचकुन्द, बहुलाश्व, श्रुतदेव, सुदामा आदिको उत्तमा शुद्धा-भक्ति भी प्राप्त होती है। श्रीपाण्डव, श्रीवसुदेवादि यादवगणको संकुला अर्थात् ऐश्वर्य-ज्ञानमिश्रा-भक्ति श्रीभगवान् प्रदान करते हैं। परन्तु भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ प्रेमपात्र हैं एकमात्र व्रजगोपीवृन्द। व्रजकी भाव-भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साध्य है। पुर-लीलामें एकमात्र श्रीउद्धवको अपनी अन्तरंग सेवाके और दयितताके परम फलरूपमें उन्होंने व्रज भेजा यही अनुभव करानेके लिये कि व्रजगोपिकाओंकी आनुगत्यमयी सेवामें जो रसोत्कर्ष है, वह किसी अन्य स्थलमें अन्य परिकरमें सम्भव ही नहीं है। भावातिरेकमें दुस्त्यज्य-स्वजन-आर्यपथका त्याग जो अन्यत्र दुर्लभ है, वह रूढ़भावा इन व्रजसीमन्तनियोंकी सहज–विवश प्रवृत्ति है।

वस्तुतः कृष्णप्रेमको व्रज-सरणि ज्ञानी, मुक्त, भक्त तथा श्रुतियोंको भी विमृग्य है; परन्तु हा हन्त! अप्राप्त!! —किसीको भी वह व्रजवर्ती कृष्णप्रेम प्राप्त नहीं होता। जिसके आगे पारमेष्ठ्य-सुखसन्दोहकी चर्चा करना भो व्यर्थ है, क्योंकि वह तो भक्तिकी प्रथम भूमिका 'श्रवण'-साधनकी भी तुलना नहीं कर सकता—(श्रीभा० १०।४७।५८)—**'वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्त कथारसस्य ॥**



श्रीशुकदेवजीने कहा—व्रजगोपियोंके कृष्णविषयक महाभावकी सर्वोपरि-स्थिति संसारके भयसे डरे हुए मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु



बड़े-बड़े मुनियों, मुक्तपुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय है। हमें उसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, यदि भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चस्का नहीं लगा, तो अनेक महाकल्पों तक वार-वार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ ?

व्रजमें आनेपर ही उद्धवको अपने एवं व्रजगोपियोंके प्रेमका अता-पता चला—वे बोल उठे—कि कहां तो ये व्रजगोपिकाएं और कहां व्यभि-चार-दुष्ट हम ? अहो ! परमात्मा—परमप्रिय श्रीकृष्णमें इन गोपियोंका यह रूढ़ भाव ! श्रीउद्धवजीने जान लिया कि निश्चित-रूपसे श्रीकृष्णने मुझे यहां भेजकर जो महान् श्रेय मुझे प्राप्त कराया, वह उनकी कृपालु-सिहता ही है। वे एक अज्ञानीको भी अनुसेवन मात्रसे साक्षात् श्रेयः की प्राप्ति करा देते हैं। अमृतकी सुगन्ध मात्र रोगीके लिये क्या सर्व-कल्याणकारी नहीं होती ?—

**क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः**
**कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढ़भावः।**
**नन्दीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-**
**च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः॥**

श्रीभा० १०।४७।५९

सर्व पुरुषार्थ-शिरोमणि परमाभीष्टरूपा कृष्णसेवाको मथुरामें प्राप्त करके भी श्रीउद्धवजीको सन्तोष न हुआ और उस सेवाको भी साधन-भूमिकामें मानो रखते हुए उसके भी फलरूपमें मांगते हैं यह -

**'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्'**

—'अहा ! यदि मैं इस वृन्दावनमें कोई झाड़ी, लता अथवा कोई जड़ी-बूटी ही बन जाऊं, जिससे मुझे इन व्रजांगनाओंकी चरण-धूलि निरन्तर प्राप्त होती रहे।'

इस प्रकार सभी परिकरोंमें ब्रज-परिकरोंकी श्रेष्ठता है। व्रजपरिकरोंमें भी यदि तटस्थ-दृष्टि द्वारा विश्लेषण किया जाये तो गोपी-परिकरकी श्रेष्ठता है, फिर उसमें भी सर्व-सारातिसार मादनाख्य-महाभाव स्वरूपा श्रीराधिका-प्रेमके सर्वोत्कर्षने श्रीउद्धवजीके दीन-हृदयमें श्रीवृन्दावनमें मानव-जन्म प्राप्त करनेमें भी अपनी अयोग्यताका सन्देह उत्पन्न कर दिया। वे वार-वार व्रजगोपियोंके परम भाग्योंकी सराहना करते हुए उनकी चरणरजके एक-एक कणकी वन्दना करने लगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिदास-श्रेष्ठ श्रीउद्धवजी पर श्रीकृष्णने परम अनुग्रह कर व्रजवासियोंका सम्पर्क करा दिया, अत्यल्प-सेवा एवं व्रजमें जन्म लेकर व्रजपरिकरोंका आनुगत्य ग्रहण कराया और तद्रूप कृष्ण-सेवाकी अभिलाषा तो जागृत करा दी, परन्तु साक्षात् रागानुगा-सेवा उन्हें सुलभ नहीं करायी। अतः स्पष्ट है कि श्रीकृष्णरूपमें वे अपने भक्तोंको

प्राय: शुद्ध-प्रीति एवं किसी परम भाग्यवान् अन्तरंग जनको रागानुगा-प्रीतिकी अभिलाषा-मात्र ही प्रदान करते हैं। रागानुगा-सेवा देनेमें उन्हें सौ-सौ विचार करने पड़ते हैं, कोई अति उत्तम अधिकारीके लिये ही उसे प्रदान करते हैं। तथापि महा कारुणिक हैं वे। तुलसीदल एवं जल-चुलुकमात्रसे वे बिक्रीत होकर स्वयंको भक्तके हाथों बेच देते हैं; बेच दिया, किन्तु प्रेम उतना ही दे सके जितना उनके पास था या दे सकते थे। किन्तु जिस स्तरके प्रेमकी लालसा स्वयं उन्हें भी बेचैन कर रही थी, उसे वे सुविवेचक कृष्णरूपमें दे भी कैसे सकते थे ?

माधुर्य ही भगवत्ताका सार है। माधुर्यको प्रकाशित करने वाली वस्तु है प्रेम। जहां जितनी प्रेमकी अधिक सघनता या निविड़ता होती है, वहां उतना ही अधिक परिमाणमें माधुर्यका बिकाश होता है। विषय-जातीय प्रेमकी अपेक्षा आश्रय-जातीय प्रेममें सान्द्रता, सघनता तथा तीव्रता अधिक हुआ करती है। आश्रय-जातीय प्रेमका दान कोई प्रेमाश्रयी ही कर सकता है। निज माधुर्यास्वादनकी लालसाको परिपूर्ण करनेके लिये जब श्रीकृष्ण प्रेमाश्रयी श्रीराधाजी-के भाव-कान्तिसे सुवलित होकर श्रीगौरकृष्णमें प्रकट हुए तब उन्होंने स्वयं तो आश्रय-जातीय प्रेमके द्वारा निज माधुर्यास्वादनकी लालसा पूर्ण की ही, उस प्रेमसम्पत्तिके भण्डारकी चाबी उन्होंने करुणाके हाथ सौंप दी। करुणाके अधीन होकर तब श्रीगौरसुन्दर उस सुदुर्लभ वस्तुको तृण-पर्यन्तको भी दान करनेके लिये विकल हो उठे।

तत्त्वत: श्रीस्वामिनी राधाजीका यह स्वभाव है और कुछ ऐसा अतिशय करुणामय है कि वह जो कुछ अनुभव करती हैं, उसे अपनी सखी-मञ्जरियोंके सुखके लिये सदा वितरण करती रहती हैं—

**'काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्'।।**

श्रीभा० १०।२१।३

अत: इस उज्ज्वल प्रेमकी दाता हैं श्रीस्वामिनीजी, फिर श्रीकृष्णसे हैं भी अधिक करुणा-उदार। यही कारण है कि श्रीकृष्णरूपमें वे भक्तोंको केवल शुद्धा-भक्ति या रागानुगा-सेवाभिलाष ही दे पाते हैं, परन्तु जब श्रीराधाजीके महाभाव एवं कान्तिसे सुवलित होकर राधा-कृष्ण-मिलित श्रीगौरस्वरूपमें प्रकटित होते हैं, तो जीवमात्रको व्रजकी सुदुर्लभ चतुर्थभाव-भक्ति—दास्य, सख्य,-वात्सल्य एवं मधुर-भक्ति प्रदान करनेमें असंकुचित ही नहीं होते, अपितु अपनेको कृतार्थ भी मानते हैं। अत: श्रीगौरसुन्दरकी करुणाका अनिर्वचनीय वैशिष्ट्य है। उसका दर्शन श्रीकृष्णरूपमें नहीं दीखता।

एक बात और भी यहां विवेचनीय है कि श्रीराधास्वरूपमें निज प्रेम-प्रकाशनमें रस-मर्यादाका विचार रहता है। मधुररसकी सजातीय-भाव-वती सखियों तथा मैत्री-भावस्थ सख्य-परिकरके साथ तो मैत्री स्थापित कर वह राधा-प्रेम प्रकाशित हो जाता है, परन्तु वात्सल्य, दास्य, एवं शान्तरसके साथ उसका विरोध ही रहता है। फिर नायिकोचित लज्जा-संकोच उस गूढ़ प्रेमको सर्वत्र प्रकाशित भी नहीं होने देते। अत: उस उज्ज्वल रसमयी भक्ति





सम्पत्तिका दान व्रजलीलामें अत्यन्त उन्मुक्त-रूपसे न तो श्रीकृष्ण कर सकते हैं और न परमोदार करुणामयी श्रीस्वामिनी ही। व्रजमें लीला एवं रस-मर्यादामें ऐसा सम्भव न हो सका। परन्तु नवद्वीप-लीलामें राधा-कृष्णमिलित श्रीगौरस्वरूपमें उन्होंने उस उज्ज्वल प्रेमरसका स्वयं आस्वादन किया तथा निःसंकोच आपामर वितरण भी किया।

भक्तावेशावतार होते हुए भी श्रीमन्महाप्रभु गौरसुन्दर श्रीनारदादि-की तरह आवेशावतार नहीं हैं अपितु राधा-भाव-कान्ति सुवलित साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही गौरसुन्दररूपमें प्रकटित हुए हैं। इनके अवतारका मुख्य प्रयोजन है व्रजमें अपूर्ण रही तीन वाञ्छाओंकी पूर्त्ति अर्थात् राधा-प्रेम-की क्या महिमा है? राधाप्रेम द्वारा आस्वादित होनेवाला मेरा माधुर्य कैसा है, तथा उस माधुर्यके आस्वादनसे श्रीराधाजीको कैसा सुख प्राप्त होता है— इन तीनों वासनाओंकी पूर्त्तिके लिये स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण कृष्णप्रेमके आश्रयी बने अर्थात् उन्होंने राधा-भावको अंगीकार किया। श्रीराधा महाभाव स्वरूपिणी है। महाभावकी मूर्त्तविग्रहा हैं। उनका भाव-अंगीकार करनेमें उनकी कान्तिका स्वतः ही अंगीकार हुआ, जिससे भीतर कृष्ण और बाहर अकृष्ण या पीतवर्णमें आप प्रकाशित हुए। इस स्वरूपमें उन्होंने अपनी तीन वाञ्छाओंकी पूर्ति की। गौण प्रयोजन है कलिधर्म-श्रीनामसंकीर्त्तनका प्रचार। उस प्रचारके लिये स्वयं उन्होंने उस नाममाधुरीका आस्वादन किया तथा जीव-जगत्के नर-नारी, पशु-पक्षी पर्यन्तको नामप्रेमकी परमरसमय वन्यामें आप्लावित कर कृतार्थ कर दिया।

## भक्तिकी सुदुर्लभता

- ★ श्रीभगवान्‌की स्वरूप-शक्तिकी वृत्ति होनेसे भक्ति ग्रहण करनेकी योग्यता सुदुर्लभ है।
- ★ श्रीभगवत्-स्मृति, आसक्ति तथा रुचि रहित हजारों साधनोंसे भी भक्ति प्राप्त नहीं होतो।
- ★ भजनमें साक्षात्-प्रवृत्तिके विना भक्ति सुदुर्लभ है।
- ★ कर्म-योग-ज्ञान-वैराग्यादि अनुष्ठान भक्ति प्रदान करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं।
- ★ श्रीभगवान् भुक्ति-मुक्ति सहर्ष प्रदान कर देते हैं, किन्तु भक्ति सहजमें नहीं देते।
- ★ ऐसी सुदुर्लभा भक्तिका दान महाप्रभु श्रीगौरांगने अपनी सहज-दृष्टि, स्पर्श, उपदेश, नामसंकीर्त्तन द्वारा निर्विचार आचाण्डाल जनसाधारण को वितरण किया।

# श्रीगौरांग-करुणा वैशिष्टय

—गिरिराज



आनन्दकन्द भगवान्‌की हर लीलामें करुणा है। हर भगवत्स्वरूप, हर भगवदवतार करुणामय है। करुणा श्रीभगवान्‌का स्वरूपधर्म ही है। भगवत्ताका सार है माधुर्य और माधुर्य-का विकास है एकमात्र करुणामें। यदि करुणाका विकास न हो तो श्रीभगवान्‌के माधुर्य, ऐश्वर्य, उनकी दिव्य गुणावलीका, जीव-जगत्-मन-विनोदिनी लीलाओंका दृष्टि-गोचर होना तो क्या, मनबुद्धि द्वारा भी उनका चिन्तन-स्मरण तथा अनुभव दुर्लभ एवं असम्भव ही है।

अनन्तानन्त सृष्टि ही करुणाका क्षेत्र होते हुए भी करुणाका मुख्य लक्ष्य है—जीव-समुदाय। भगवदुन्मुख जीवोंके प्रति उन्हें निखिलैश्वर्य-माधुर्यमयी लीलारसामृत-सिन्धुमें आप्लावित करनेमें करुणाका विकास है; भगवद्-बहिर्मुख जीवोंके प्रति उन्हें हर सम्भव उपायसे श्रीभगवान् सच्चिदानन्दघनके सम्मुख लानेमें करुणाका विकास है, और फिर जो भगवत्-भक्त-विरोधी दुष्कृत दैत्य-असुर समुदाय धर्म-विनाशी है, उसे विनाश करनेमें भी भगवत्-करुणाका निग्रहरूप विकाश है।

करुणा-निधानकी करुणा एक विभु-तत्त्व होते हुए भी प्राकृत-ब्रह्माण्डमें अपने कार्य-प्रभाव द्वारा अनुभूत होती है। प्रपञ्चमें समस्त भगवदवतारोंका मूल कारण साधु-भक्तोंका रक्षण, असाधु-असुरोंका विनाश तथा अधर्म-निरसन-पूर्वक धर्म-संस्थापन ही निरूपण किया गया है—

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥**

श्रीमद्भगवद्गीता ४।७-८

भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके सम्बन्धमें श्रीशुकदेव मुनिने कहा है-

**यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।**
**तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥**

श्रीमद्भागवत ६।२४।५६

—जब-जब संसारमें धर्मका ह्रास और पापकी वृद्धि होती है, तब-तब सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं।-जब असुरोंसे





पीड़ित पृथ्वीको लेकर श्रीब्रह्मा-शिवादि देवतागण क्षीरसमुद्रपर श्रीभगवान्‌की प्रार्थना करनेके लिए गए, तब भगवान् श्रीकृष्णके अवतार होनेके सम्बन्धमें आकाशवाणी हुई थी कि—

**वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।**
**जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥**

—श्रीमद्भागवत १०।१।२३

श्रीवसुदेवके घर पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् प्रकट होंगे। उनकी और उनकी प्रियतमा-(श्रीराधाजी)-की सेवाके लिये देवांगनाएं जन्म ग्रहण करें।

भगवान् श्रीरामके अवतार-सन्दर्भमें इस प्रकार वर्णन मिलता है—राजा दशरथको पुत्रेष्टि यज्ञ कराया ऋष्यश्रृंगने; समस्त देवता एवं जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु वहां साक्षात् पधारे। सब देवताओंने श्रीविष्णुकी अनेक स्तुति करते हुए कहा—

**ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाप्सरसस्तथा।**
**क्रीड़न्तो नन्दनवने रौद्रेण विनिपातितः॥**
**वधार्थं वयमायातस्तस्य वै मुनिभिः सह।**
**सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः॥**
**त्वं गति परमा देव सर्वेषां न परंतप।**
**वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरू॥**

—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सर्ग १६।२३।२५

हे प्रभो! [उस रौद्र निशाचर रावणने महान् उपद्रव मचा रखा है], उसने ऋषियों, नन्दनवनमें क्रीड़ा करने वाले गन्धर्वों और अप्सराओंको भी स्वर्गसे भूमिपर गिरा दिया है। इसलिये मुनियों सहित हम सब सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष तथा देवता उस रावणके वधके लिये आपकी शरणमें आये हैं। शत्रुओंको सन्ताप देने वाले देव! आप ही हम सब लोगोंकी परमगति हैं, अतः उन देव-द्रोहियोंका वध करनेके लिये आप मनुष्य लोकमें अवतार लेनेका निश्चय कीजिये।

तब देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुने कहा—

**भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थे युधि रावणम्।**
**सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञाति बान्धवम्॥**
**हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।**
**दशवर्ष सहस्राणि दशवर्षशतानि च।**
**वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम्॥**

— श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सर्ग १६।२८।२९

—हे देवगण ! आपका मंगल हो। आप भयको त्याग दो। मैं आपका हित करनेके लिये रावणको पुत्र-पौत्र, सैना, मन्त्री और बन्धु-बान्धवों सहित युद्धमें मार डालूँगा। देवताओं और ऋषियोंको भय देने वाले उन क्रूर एवं दुर्धर्ष राक्षसका नाश करके मैं ग्यारह हजार वर्षों तक इस पृथ्वीका पालन करता हुआ मनुष्य लोकमें निवास करूंगा।

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् श्रीरामके अवतारके अनेक कारण बतानेसे पहले भगवान् श्रीशिवने सूत्ररूपमें कहा—

**जब जब होइ धरम कै हानि। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥**
**करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥**
**तब-तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिध सज्जन पीरा॥**
**असुरमारि थापहिं सुरन्ह राखहिं मिज श्रुति सेतु।**
**जग विस्तारहिं विसद जस रामजन्म कर हेतु॥**

हे पार्वती ! जब-जब धर्मकी हानि होती है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी पीड़ित होते हैं, तब-तब कृपानिधान प्रभु विविध शरीर धारणकर—अवतार ग्रहणकर साधु पुरुषोंका दुख दूर करते हैं। श्रीभगवान् असुरोंको मारकर देवताओंको स्थापित करते हैं। अपने श्वासरूप वेदोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं और जगत्में अपना निर्मल यश फैलाते हैं—श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका यही कारण है।

उपर्युक्त आलोचनासे हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि समस्त भगवद्स्वरूपोंके अवतारका कारण यहां तक कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीरामके अवतारका कारण साधुजन रक्षण, असुर-विनाश तथा अधर्मनाश-पूर्वक धर्म-स्थापन ही है।

किन्तु महाप्रभु-श्रीगौरांगके अवतारके मूलमें दो विशेष कारणोंका उल्लेख मिलता है, जिनका किसी भी भगवदवतारमें कहीं भी उल्लेख नहीं दीखता। एक तो, ये करुणाके वशीभूत होकर अवतीर्ण हुए, दूसरा—परमोज्ज्वल रसमयी अपनी भक्ति-सम्पत्तिका प्रदान करनेके लिये वे अवतरित हुए।

श्रीपाद रूपगोस्वामीने महाप्रभु-श्रीगौरांगके अवतारके सामान्य कारणका उल्लेख अपने श्रीविदग्ध-माधव नाटकके आशीर्वादात्मक मंगलाचरणमें इस प्रकार किया है—

**अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ**
**समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।**
**हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्ब-सन्दीपितः**
**सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥**

—श्रीविदग्धमाधवनाटक, १।२





—अनन्तकालसे जिसको प्रदान नहीं किया था, उस परम उज्ज्वल रसमयी अपनी भक्ति-सम्पत्तिको प्रदान करनेके लिये जो करुणावश कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं, सुवर्णसे भी अति सुन्दर कान्तिराशिसे समुद्भासित वे श्रीशचीनन्दन-हरि—श्रीगौर-कृष्ण सर्वदा आपकी हृदय-कन्दरामें स्फुरित हों।

करुणावश स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कलियुगमें शचीनन्दन श्रीगौर-कृष्णरूपमें अवतीर्ण हुये। विचार पूर्वक देखा जाये तो समस्त भगवदवतारोंके कारण साधुजन-रक्षा, असुर-विनाश तथा धर्म-स्थापन ये सब जगद्वासियोंके प्रति भगवत् करुणाके ही परिचायक हैं; जब भी श्रीभगवान् अवतीर्ण होते हैं, तब वे करुणावश ही अवतीर्ण होते हैं, अवतीर्ण होना श्रीभगवान्‌की करुणाका ही फल है; ऐसे होते हुए भी किसी अवतारके कारणमें 'करुणा'-शब्दका उल्लेख नहीं है। महाप्रभु-श्रीगौरांगके अवतार-कारणमें ही एकमात्र 'करुणा'-शब्दका पृथक् उल्लेख मिलता है। अतः अन्यान्य अवतारोंमें जो करुणा प्रकाशित होती है, उसकी अपेक्षा गौर-अवतारमें प्रकाशित होने वाली करुणाका एक अपूर्व वैशिष्टय है, इसलिए ही इस अवतारके कारण निर्देशमें 'करुणा'-शब्दका अलग उल्लेख किया गया है।

करुणाका वैशिष्टय या उत्कर्ष दो बातोंमें प्रकाशित होता है—

**प्रथमतः - करुणाका माधुर्य—**

अन्यान्य अवतारोंमें श्रीभगवान्‌ने साधु-जनोंका परित्राण किया, साधुजनने उनकी उस करुणाका अनुभव किया, आस्वादन भी। धर्म-स्थापन करके धर्म-प्राण लोगोंका उन्होंने उपकार किया। उन लोगोंने भी उस करुणाका अनुभव किया। अन्यान्य अवतारोंमें श्रीभगवान्‌ने असुरोंका प्राण-विनाश किया, उस असुर-संहारमें जहां साधु-जनादि अन्य प्रजाके प्रति करुणाका विकाश है, वहां असुरोंके प्रति भी करुणाका विकाश है, क्योंकि श्रीभगवान् 'हतारिगतिदायक' हैं—जिन असुरोंका वे संहार करते हैं, उन्हें भी वे मुक्ति प्रदानकर सिद्ध-लोकमें भेज देते हैं। कंस-रावणादि, जिन असुरोंका श्रीभगवान्‌ने वध किया, उन्हें भी अपने चरणोंमें श्रीभगवान्‌ने स्थान दिया—यह असुरोंके प्रति उनकी करुणा ही है।

किन्तु उस करुणाका उन असुरोंने कब अनुभव किया? श्रीभगवान्‌के चरणोंमें स्थान प्राप्त करनेके बाद। जब तक वे जीवित रहे—उनके शरीरमें प्राण रहे, उस अन्तिम क्षण पर्यन्त भी वे श्रीभगवान्‌की करुणाका अनुभव न कर पाये। उनके बन्धु-बान्धव, स्त्री-पुत्रादि भी उस करुणाको न आंक सके, बल्कि वे यही मानते रहे कि श्रीभगवान्‌ने उनके साथ निष्ठुरताका व्यवहार किया है। अतः जीवन-कालमें वे असुर श्रीभगवान्‌की करुणाका माधुर्य उपलब्ध न कर सके और न ही उनके आत्मीय या पारिवारिकजन उस माधुर्यका अनुभव कर सकें। अतः अन्यान्य अवतारों में करुणाका माधुर्य विकाश असम्यक् या अधूरा रहता है।

किन्तु श्रीभगवान्‌ने श्रीगौररूपमें अवतीर्ण होकर किसी प्रकारका भी अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं किया। किसीका भी प्राण-विनाश नहीं किया। हरिनाम-प्रेम प्रदानकर उन सबके चित्तको शुद्ध किया। इन्होंने असुर-संहार नहीं किया, असुरत्वका संहार किया है—

रामआदि अवतारे, क्रोधे नाना अस्त्र धरे,
असुरेरे करिल-संहार।
एवे अस्त्र न धरिल, प्राणे कारे न मारिल,
चित्त शुद्ध करिल सभार॥

जगाई-माधाईके दुष्कृत्यों, दुराचारों पर यदि दृष्टि डाली जाये, तो गो-ब्राह्मण हिंसक थे वे मद्य-मास, व्यभिचार, डकैती-लूट मार, कौन-सा अत्याचार और क्रूरतम अपराध था, जो वे न करते थे? कंस-रावणादिसे भी कहीं अधिक दुराचारी, दुर्धर्ष-पापी अधर्माचारी तथा सन्तजन-दुखदायी थे। प्रभु श्रीमन्नित्यानन्दके सिरपर आघात करने पर तथा उनके लहू-लोहान हो जानेपर प्रत्यक्षदर्शी सोच रहे थे कि महातेजशाली, सर्वेश्वर श्रीविश्वम्भर जाने कैसा कठोर दण्ड देंगे उन्हें और जगाई-माधाई भी श्रीमहाप्रभुको सामने देखकर ऐसा ही मनमें निश्चय कर रहे थे, किन्तु महाप्रभु श्रीगौरांगने उनसे गंगा पर जाकर पापोंका संकल्प कराया और स्वयं उसे ग्रहण कर उनको निष्पाप कर दिया। उन्हें कृष्ण-प्रेमदान कर महा-सदाचारी वैष्णव जनमें बदल डाला। जीते-जीते ही उनका जीवन पलट गया। ऐसी अप्रत्याशित करुणाको प्राप्तकर केवल जगाई-माधाई ही नहीं, उनके आत्मीयजन तथा नगरका जन-जन मुग्ध हो गया, बिना मोल सब बिक गए श्रीश्रीनिताई-गौरके हाथों।

चाँद काजीने हिन्दूधर्मका अति उग्रतासे नाश किया, किसीको कृष्णनाम उच्चारण करनेकी हिम्मत न थी, तोड़-फोड़ डाले खोल-मृदंग—ऐसा कड़ा शासन कि समस्त साधुजन कांप गये। किन्तु महाप्रभु-श्रीगौरांगने उसके घर जाकर उसे प्रेम-दान किया, गले लगाया, उसका यवनताक्रान्त चित्त शुद्ध हो गया। आत्म-समर्पण कर दिया उस काजीने श्रीगौरांगको। पूरी छूट दे दी उसने वैष्णव धर्माचरणकी और उच्चनाम संकीर्त्तनकी सदा के लिये। श्रीगौरकी इस करुणाका माधुर्य-अनुभव उस यवन-काजीने किया, उसके पारिवारिकजनोंने किया। वह आजीवन कृतकृत्य हो गया।

कितने पाषण्डी, कितने छात्र, कितने चण्डी-उपासक श्रीमन्महाप्रभुके निन्दा-अपराधके शिकार हुए। निश्चय था उनका अधः पतन; किन्तु महाप्रभु श्रीगौरांगने उनका उद्धार करनेके लिये, उनके भगवत्-निन्दा अपराधको क्षमा करनेके लिए नवविवाहिता-किशोरी श्रीविष्णुप्रियाजीको विलखता, विरहाग्निमें सुलगता हुआ छोड़कर संन्यास ले लिया। पति-विहीना वृद्धा जननीको असहाय अवस्थामें त्यागकर घरसे चल पड़े, क्यों? केवल इसलिये कि संन्यास-वेश देखकर, मेरे उत्कट त्याग-वैराग्यको देखकर वे





पाषण्डी-निन्दक मुझे यदि एक बार भी मस्तक झुकाकर प्रणाम-नमस्कार कर देंगे, तो वे निरपराध होकर नाम-प्रेमके पात्र बन जायेंगे। ऐसा ही हुआ, सबने श्रीमहाप्रभु गौरांगको कोटि-कोटि नमस्कार किये और उनके द्वारा नाम-प्रेमको प्राप्त कर धन्य-धन्य हो गये। गौर-करुणाका असीम-माधुर्य अनुभव एवं आस्वादन किया उन्होंने।

अवश्य, वैष्णव-अपराधी चापाल-गोपालके शरीरमें श्रीगौरांगने कुष्ट-रोगको संचारित किया। वह भी वैष्णव-अपराधके गुरुत्वको दिखानेके लिये था और जगत्-जीवोंको वैष्णव-अपराधसे सदा सतर्क रहनेकी शिक्षा देनेके लिये था। कुछ समयके पश्चात् फिर करुणामय श्रीगौरांगने उसपर अपनी करुणाका विस्तारकर उसको रोग-मुक्त कर दिया। सारा जीवन उसे कुष्ठकी यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ी। अन्तमें वह रोगमुक्त तथा अपराध-मुक्त हो गौरकरुणा-माधुर्यका आस्वादन कर कृतार्थ हो गया।

इस प्रकार महाप्रभु श्रीगौरांगके अनेक चरित्र हैं, जिनको देख-सुनकर सब जाति-वर्णके आबाल-वृद्ध नर-नारी उनकी करुणाके माधुर्यको अनुभव कर सके। भगवत्-करुणाका इस प्रकार अद्‌भुत् माधुर्य अन्य किसी युगमें, किसी भगवदवतारमें प्रकटित नहीं हुआ।

**तृतीयतः—करुणाका उल्लास—**

भगवत्-करुणा हर समय ही जीवको कृतार्थ करनेके लिये उल्लसित या तैयार रहती है। किन्तु वह किसी भक्तकी, अथवा श्रीभगवान्‌की इच्छाकी अपेक्षा रखती है। जब तक कोई भक्त या भगवान् इच्छा न करें, भगवत्-करुणा किसीकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देखती।

श्रीगौररूपमें अवतीर्ण होनेसे पहले ही स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने यह संकल्प किया कि मैं आचण्डाल-साधारणको अपनी प्रेम-भक्ति देकर उद्धार-करूंगा। सच तो यह है कि श्रीभगवान्-के इस मन-संकल्पको जानकर करुणाके आनन्द या उल्लासकी सीमा न रही। साधारणतः जीवोंके अपराधोंकी दीवारको लांघ कर भगवत्-करुणा सहसा जीवके चित्तको स्पर्श नहीं कर सकती, किन्तु श्रीगौरांगके संकलपके अवितर्क्य प्रभाव और उस संकलपको कार्यान्वित करनेके लिये उनकी अचिन्त्य महाशक्तिके दुर्दमनीय उल्लासने करुणाके प्रबल-प्रवाहमें प्रतिकूल सब बाधा-विघ्नोंको तृणोंकी तरह बहाकर जाने कहां जा फेंका, कुछ कहा नहीं जा सकता।

गौर-करुणाने अबाधगतिसे स्वतन्त्रतापूर्वक प्रसारित होकर प्रबल वन्याकी भांति समस्त जगत्‌को प्लावित कर दिया। श्रीगौरांग प्रभुने करुणाको एक बे-लगाम घोड़ेकी तरह छोड़ दिया, जहां चाहे वह ले चले। घोड़ा फिर भी थककर कहीं रुक सकता है, किन्तु गौर-करुणाकी तो अचिन्त्य-असीम शक्ति। श्रीगौरांगने मानों करुणासे कह दिया—

'हे करुणा! मैंने तुम्हें आत्म-समर्पण कर दिया है, जिस दिशामें, जितनी दूर,

जिस स्थानपर तुम मुझे ले जाना चाहो, ले जाओ, जहां चाहो मुझे बेच डालो।' इस स्वतन्त्रतासे करुणामें जो उल्लास आया, उसे कोई वर्णन कर सकता है क्या ? अनिर्वचनीय है, केवल अनुभव-वेद्य है। उस शक्ति एवं आदेशको पाकर श्रीगौर-करुणाने आचण्डाल-साधारणको एक ऐसी वस्तु प्रदान कर दी, जिसे द्वापरकी श्रीकृष्णलीलामें भी प्राप्त नहीं किया जा सका। वस्तुतः भगवत्-करुणाका इस प्रकारका अबाध विकास और किसी भी युगमें, किसी भी भगवत्-लीलामें प्रकटित नहीं हुआ।

उज्ज्वल-रसमयी अपनी भक्ति-सम्पत्ति अर्थात् अति सुदुर्लभ कृष्णप्रेमको महाप्रभु-श्रीगौरांगने पात्र-अपात्रका विचार छोड़कर सबको वितरण कर दिया।

अतः करुणाका अपूर्व माधुर्य और अद्भुत् उल्लास विकसित हुआ है श्रीगौरांग अवतारमें, इसी उद्देश्यसे इनके अवतारके कारण प्रसंगमें 'करुणा'-शब्दका पृथक् रूपमें उल्लेख किया गया है।

गौर-करुणाका उक्त विकास-वैशिष्टय माधुर्यास्वादन तथा करुणाके असमोर्ध्व उल्लास-सन्दर्भमें अनेक विधाओंमें विवेचित किया जा सकता है—

**(क) ऐश्वर्य-प्रकाशमें करुणाका वैशिष्टय—**

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपने ऐश्वर्यको सदा गुप्त रखते हैं, इच्छा होनेपर किसी विरले भक्तके सामने ही अपना वास्तव स्वरूप प्रकटित करते हैं। अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वरूप दिखाया, दिव्य दृष्टिके कारण केवल उसे अर्जुन ही देख सका, रणक्षेत्रमें असंख्य योद्धा उपस्थित थे, किन्तु कोई भी उस स्वरूपको न देख सका। किन्तु श्रीमहाप्रभु गौरांगने किसी एक व्यक्तिको नहीं, किन्तु अनेकानेक भक्तोंको अपने चतुर्भुजरूपके, षड़्भुजरूपके, यहां तक कि वराह, राम, नृसिंह, बलराम, शिवादि समस्त भगवत्स्वरूपोंके अपने देहमें प्रत्यक्ष दर्शन कराये, एक बार नहीं अनेक बार। श्रीअद्वैतप्रभुको अपने विराट् स्वरूपके दर्शन कराते समय वहां उपस्थित अनंत लोगोंने भी उसका साक्षात्कार किया।—इस प्रकार सबके सामने प्रत्यक्ष ऐश्वर्य-प्रकाश करनेकी करुणाका विकाश, किसी भगवत्-स्वरूपके चरित्रमें नहीं दीखता।

**(ख) स्व-भक्ति-सम्पत्ति या नाम-प्रेमदानमें करुणा-वैशिष्टय—**

श्रीकृष्ण-विषयक प्रेम अतीव दुर्लभवस्तु है, उस प्रेमके वशीभूत रहते हैं स्वयं भगवान् सर्वेश्वर। अतः श्रीकृष्ण उसे सहसा हर एकको प्रदान नहीं करते, किन्तु श्रीगौररूपमें श्रीकृष्णने उसे यत्र-तत्र विना पात्रापात्र-विचारके लुटा दिया, वे कहते थे—



**...........आमि विश्वम्भर नाम धरि।**
**नाम सार्थक हय, यदि प्रेमे विश्व भरि॥**



मेरा नाम विश्वम्भर है, किन्तु यह मेरा नाम तभी सार्थक होगा, जब मैं समस्त विश्वको प्रेमसे भर दूं, परिपूर्ण कर दूँ। महावदान्य श्रीगौरांग-ने स्वयं अपनी हर लीलामें उस सुरदुर्लभ कृष्णप्रेमका दान किया और समस्त पार्षदों, अनुयायी-भक्तोंको भी आग्रह-पूर्वक आज्ञा दी कि सर्वत्र, सबको इस कृष्णप्रेमका दान दो, आप्लावित कर दो कण-कणको, कोई भी जड़-चेतन कृष्ण-प्रेमसे वञ्चित न रह जाये। स्वयं श्रीमहाप्रभुने तो अपनी दृष्टि-मात्रसे, अपने दर्शन-मात्रसे सुर-नर, पशु-पक्षी, वृक्ष-लताओं तकको प्रेम प्रदान किया; यहां तक कि जिसे उन्होंने प्रेम प्रदान किया, उसमें एक ऐसी शक्ति भी सञ्चारित कर दी, कि उसका जो दर्श-स्पर्श करे, उसके मुखसे जो कृष्णनाम श्रवण करे, उसमें भी प्रेमका उदय हो उठे। इस प्रकार विशुद्ध कृष्ण-प्रेम प्रचारकी उत्कण्ठा भी किसी युगमें, किसी भगवत्-स्वरूपमें नहीं देखी-सुनी जाती, फिर कृष्णनाम-प्रेम या भक्ति-सम्पत्तिके प्रदानका क्या कहना ?

**(ग) जीव-निस्तारकी उत्कण्ठामें करुणा-वैशिष्टच—**

श्रीमन्महाप्रभु गौरांग अपने भक्तोंमें जब कभी बैठते तो बार-बार यही कहते-पूछते— 'जीवोंका उद्धार कैसे होगा ? पशु-पक्षि, वृक्षादि सृष्टिका निस्तार कैसे हो ?' श्रीहरिदास ठाकुर कहा करते, प्रभो ! आपने जो उच्चस्वरमें श्रीकृष्णनाम-गुण-लीलाके गानका आदर्श स्थापन किया है, इसके द्वारा कोई भी स्थावर-जड़-जंगम उद्धार पाये विना नहीं बच सकता। नाम-ध्वनिका स्पर्श पाते ही, नाम-ध्वनि संपृक्त-वायुके स्पर्शमात्रसे सबका निस्तार निश्चित है। वस्तुतः उच्च श्रीनामसंकीर्त्तन प्रचलन-द्वारा जिस करुणाका विकाश श्रीगौररूपमें हुआ है और उसमें जीव-निस्तारकी उत्कण्ठामयी जितनी भावना निहित है, उतनी उत्कण्ठामयी जीव-निस्तारकी करुणा और कहीं भी अभिव्यक्त नहीं हुई। किसी भगवत्-स्वरूपने स्वयं भक्त बनकर भक्ति-अनुष्ठानकी शिक्षा जीव-जगत्को नहीं दी। केवल जीव-निस्तारके लिये ही श्रीगौरसुन्दर की ऐसी ही बलवती उत्कण्ठा उच्छलित हुई है। इसी प्रकार स्वरूप-प्रकाशमें, पतित-पावनतामें, आत्मदानमें, भावी-जीवोंके भी उद्धारकी व्यवस्था करनेमें, एवं परम-धर्म या अकैतव-धर्म प्रचारमें तथा कृष्णप्रेमके स्वरूप-प्रकाशमें जो गौर-करुणाका माधुर्यमय तथा उल्लासमय विकाश वैशिष्टच है, वह अनिर्वचनीय है, अतुलनीय है, किसी भी युगमें, किसी भी भगवत्स्वरूपकी करुणामें वैसा विकास अभिव्यक्त नहीं हुआ।

[ इस विषयका विस्तृत सोदाहरण विवेचन मण्डल द्वारा प्रकाशित '**श्रीगौरांग-करुणा वैशिष्टच**' नामक पुस्तकमें अपेक्षाकृत द्रष्टव्य है। ]



# गौड़ीयवैष्णव-सम्प्रदायका साध्य-तत्त्व



साध्य तत्त्व—

जिसकी जो काम्यवस्तु है, वही उसका साध्य है, वही उसका पुरुषार्थ है। धर्म-अर्थ-काम—इन तीनों पुरुषार्थोंका लक्ष्य अनित्य स्वर्गसुखादि हैं। इनमें वास्तव पुरुषार्थता ही नहीं है, क्योंकि स्वर्गादि-प्राप्तिमें न तो आत्यन्तिकी दुखनिवृत्ति है और न नित्य निरवच्छिन्न सुख।

मोक्षमें वास्तव पुरुषार्थता है। उसमें आत्यन्तिकी दुख-निवृत्ति तथा नित्य निरवच्छिन्न सुख भी है। किन्तु मोक्षकी अपेक्षा पञ्चम पुरुषार्थ प्रेमका सर्वतोभावसे समधिक उत्कर्ष श्रीमद्भागवत-श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रोंमें बड़े स्पष्ट शब्दोंमें प्रतिपादित किया गया है।

प्रेममें भी फिर द्वारका-मथुराके ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित प्रेममें माधुर्यकी प्रधानता रहते हुए भी ऐश्वर्यज्ञान स्फुरित होता है, तब प्रेम शिथिल पड़ जाता है। अतएव द्वारका-मथुरा, इन दोनों धामोंमें प्रेम-सेवाकी समान भावमें निरवच्छिन्नता नहीं है। द्वारका-मथुराका प्रेम ऐश्वर्यज्ञान-प्रधान परव्योमके-प्रेमकी अपेक्षा उत्कर्षमय होते हुए भी विशेष गाढ़ नहीं है, क्योंकि इन दोनों धामोंके प्रेममें ऐश्वर्य ज्ञान प्रवेश कर सकता है।

किन्तु व्रजप्रेम इतना निविड़ या सान्द्र है कि ऐश्वर्यज्ञान उसमें प्रवेश ही नहीं कर सकता। श्रीकृष्णका ऐश्वर्य भी माधुर्यकी भांति पूर्णतम विकाशमय होते हुए भी माधुर्यके ही सर्वातिशायी आधिक्यके कारण वह माधुर्य द्वारा परिमण्डित, परिसिञ्चित और परिचालित है। व्रजमें ऐश्वर्यका प्रकाश भी होता है तो माधुर्यकी सेवाके लिये, माधुर्यकी परिपुष्टि सम्पादनके लिये। इसलिये व्रजप्रेम ही परम पुरुषार्थ है।

व्रजप्रेममें भी फिर कान्ता-प्रेम परमतम पुरुषार्थरूपमें श्रीमन्महाप्रभुने निरूपण किया है। किन्तु कान्ताप्रेम परमतम पुरुषार्थ होते हुए भी समस्त साधकोंका ही चित्त कान्ताप्रेमके लिये लालायित हो, किंवा परम-पुरुषार्थ व्रजप्रेमकी वैचित्री दास्य, सख्य, वात्सल्य-प्रेमके लिये लुब्ध हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि भिन्न-भिन्न साधकोंकी रुचि और प्रकृति भिन्न-भिन्न है। हर एक अपनी रुचिके अनुसार ही अपनी साध्य वस्तुका निर्णय किया करता है–





यथोत्तरमसौ स्वादविशेषोल्लासमय्यपि ।
रतिर्वासनया स्वादी भासते कापि कस्यचित् ।।[1]

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, २।५।३८

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर—इन पाँच प्रकारोंकी कृष्णरति या कृष्णप्रेम उत्तरोत्तर अधिक स्वाद-विशिष्ट है, किन्तु वासना-भेदसे कोई भी रति किसी भी भक्तके लिये विशेष रुचिकर हुआ करती है, अर्थात् सब की रुचि कान्ताप्रेममें ही हो, ऐसा आवश्यक नहीं ।

**गौड़ीय-वैष्णवोंका साध्यतत्त्व—**

श्रीमन्महाप्रभु-चरणानुगत गौड़ीय वैष्णवाचार्यगण परम पुरुषार्थ प्रेमकी जैसे पारमार्थिकता स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार मोक्षकी भी पारमार्थिकता स्वीकार करते हैं ।

मोक्षके अन्तर्गत पञ्चविधा मुक्तिमें सायुज्यकी पारमार्थिकता गौड़ीय-मतमें स्वीकृत होते हुए भी उसकी लोभनीयता स्वीकार नहीं की गई, क्योंकि सायुज्यमें जीवके स्वरूपतः कृष्णदासत्वका भाव स्फुरित नहीं होता, इसलिये उसमें कृष्णसेवाका अवकाश नहीं है। सालोक्यादि चारों प्रकारकी मुक्तिमें सुखैश्वर्योत्तरा-मुक्ति, (जिसमें सुख-ऐश्वर्य ज्ञानकी प्रधानता रहती है) गौड़ीयमतमें आदरणीय नहीं है; क्योंकि उसमें भी जीवकी स्वरूपानुबन्धिनी कृष्ण-सेवा-वासनाका स्फुरण नहीं है। गौड़ीय वैष्णवगण सालोक्यादिमें प्रेम-सेवोत्तरा मुक्तिका (जिसमें प्रेम-सेवावासनाका प्राधान्य रहता है) अनुमोदन करते हैं—

सालोक्यादिस्तथाप्यत्र भक्त्या नातिविरुध्यते ।
सुखैश्वर्य्योत्तरा सेयं प्रेमसेवोत्तरेत्यपि ।
सालोक्यादिर्द्विधा तत्र नाद्या सेवाजुषां मता ।।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, १।२।५५-५६

—सालोक्यादि चतुर्विधा मुक्ति भक्तिकी अति-विरोधी नहीं है, अर्थात् किसी-किसी विषयमें भक्तिकी वह विरोधी है। ऐश्वर्य ज्ञानकी प्रधानता एवं मोक्ष-वासना कृष्णसेवाके प्रतिकूल होनेसे इस विषयमें वह भक्ति-विरोधी है। सालोक्यादि मुक्ति दो प्रकारकी है—सुखैश्वर्य्योत्तरा एवं प्रेमसेवोत्तरा। इन दोनोंमें पहली अर्थात् सुखैश्वर्य्योत्तरा-मुक्ति सेवाकांक्षी साधकों की सम्मत नहीं है।

**मुक्ति गौड़ीय-वैष्णवोंकी काम्य नहीं है, रसस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेमसेवा ही काम्य है—**

गौड़ीय मतमें मोक्षकी पारमार्थिकता स्वीकृत होते हुए भी और प्रेम-सेवोत्तरा सालोक्यादि मुक्ति गौड़ीयमतमें अनुमोदित होते हुए भी पांचों प्रकारकी मुक्तिमें कोई भी गौड़ीयमतमें एकान्तभावसे काम्य नहीं है। **व्रजविहारी श्रीकृष्णका प्रेमसेवा-माधुर्य ही गौड़ीय वैष्णवोंका एकान्त काम्य या साध्य है—**

१. व्रजगौरव प्रकाशन, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित हिन्दी-संस्करण

किन्तु प्रेमैकमाधुर्य्यभुज एकान्तिनो हरौ।
नैवाङ्गीकुर्वते जातु मुक्तिं पञ्चविधामपि ॥
तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृतमानसाः।
येषां श्रीशप्रसादोऽपि मनोहर्त्तुं न शक्नुयात् ॥

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, १।२।५७-५८

—किन्तु एकमात्र प्रेमसेवाके माधुर्य-पिपासु, श्रीकृष्णमें एकान्तभावसे अनुरक्त भक्त-गण कभी भी पञ्चविधा मुक्तिको अङ्गीकार नहीं करते। इन भक्तोंमें भी श्रीगोविन्दके माधुर्यादिमें जिनका मन लुट गया है, वे श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायणकी और द्वारकाधिपति श्रीवासुदेवकी प्रसन्नता भी उनके मनको आकर्षित नहीं कर सकती। व्रजविहारी श्रीकृष्णके रसत्वके परमोत्कर्षके कारण ही गोविन्दापहृत-चित्त भक्तोंका मन श्रीनारायण तथा श्रीवासुदेवकी प्रसन्नतामें भी लुब्ध नहीं होता—इसका भी स्पष्ट उल्लेख श्रीरूपगोस्वामीने किया है—

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि कृष्णश्रीशस्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः ॥

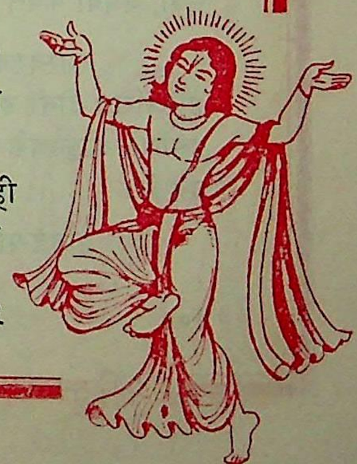
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, १।२।५९

—तत्त्व-विचारमें व्रजविहारी श्रीकृष्ण और परव्योमाधिपति श्रीनारायण तथा द्वारकाधीश श्रीवासुदेवमें कोई भी भेद नहीं है, किन्तु रसविषयमें श्रीकृष्णरूपका उत्कर्ष है। रसका स्वभाव ही यही है कि वह जिसका आश्रय करता है, उसका उत्कर्ष सम्पादन करता है।

इस प्रकार अखिल रसामृत-वारिधि स्वयं-भगवान् परब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेमसेवा ही गौड़ीय वैष्णवाचार्योंकी अभिमत काम्य-वस्तु है। पञ्चविधा मुक्तिमें कोई भी मुक्ति उनको काम्य-वस्तु नहीं है।

परमधर्म-कथनके प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतका भी यही मत है—**'धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्रपरमो निर्मत्सराणां सताम्** ॥ श्रीभा० १।१।२॥ इस श्लोककी टीकामें श्रीश्रीधर स्वामिपादने लिखा है—**'अत्र श्रीमति सुन्दरे भागवते परमो धर्मो निरूप्यते इति। परमत्वे हेतुः प्रकर्षेण उज्झितं कैतवं फलाभिसन्धिलक्षणं कपटं यस्मिन् सः। प्र-शब्देन मोक्षाभिसन्धिरपिनिरस्तः। केवलमीश्वराराधनलक्षणो धर्मो निरूप्यते इति।** —इस सुन्दर श्रीभागवतमें परम-धर्म निरूपित हुआ है। परमत्वका कारण यह है कि इस धर्ममें फलाभिसन्धानलक्षण कैतव या कपट प्रकृष्टरूपसे परित्यक्त हुआ है। प्र-शब्दसे मोक्षाभिसन्धि पर्यन्त निरस्त हुआ हैं। केवलमात्र ईश्वर-आराधना ईश्वरकी प्रीति निमित्त ईश्वर-सेवारूप धर्म ही निरूपित हुआ है।

इस टीकासे ज्ञात होता है कि कृष्णसुखैकतात्पर्यमयी कृष्णसेवा ही परम-धर्मका लक्ष्य है, इसमें इहकाल वा परकालके स्वर्गादि लोकोंकी





सुखवासना नहीं है। यहां तक कि मोक्षवासना—पञ्चविधा मोक्षवासना भी नहीं है। गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंकी यही एकमात्र अभिप्रेत वस्तु है।

श्रुतिके उपदेशका तात्पर्य भी इसी प्रकार है। श्रुति प्रियरूपमें परब्रह्मकी उपासनाका उपदेश देती है—**'आत्मानमेव प्रियमुपासीत ॥** बृहदारण्यक १।४।८॥ और प्रेमके साथ अर्थात् कृष्णसुखैकतात्पर्यमयी सेवा-वासनाके साथ श्रीहरिके भजनका उपदेश भी दिया गया है—**'स होवाच याज्ञवल्क्यस्तं पुमानात्महिताय प्रेम्णा हरिं भजेत् ॥** भक्तिसन्दर्भ २३४-अनुच्छेदधृत शतपथ-श्रुतिवाक्य ॥ --उसी याज्ञवल्क्यने कहा है, अतएव आत्महितके लिये जीव प्रेम सहित श्रीहरिका भजन करे।'

**श्रीश्रीगौर-गोविन्दकी प्रेमसेवा ही काम्य** है—

रसस्वरूप स्वयं-भगवान् परब्रह्म दो रूपोंसे रसका आस्वादन किया करते हैं—प्रेमके विषयरूपसे तथा प्रेमके आश्रयरूपसे। व्रजविहारी श्रीकृष्णमें प्रेमके विषयत्वकी प्रधानता है। प्रेमके विषय-प्रधान-रूपसे ही वे व्रजमें लीला करते हैं, वे श्रीश्याम-कृष्ण हैं।

प्रेमके आश्रय-प्रधान रूपसे वे होते हैं—श्रीगौर-कृष्ण या श्रीगौरसुन्दर। श्रीगौरसुन्दर हैं–राधाकृष्ण-मिलित-स्वरूप, **'रसराज महाभाव दुई एकरूप'** ॥

इन दोनों रूपोंकी लीलामें ही रसस्वरूप परब्रह्मके लीलारस-आस्वादनकी पूर्णता है और जीवके पक्षमें रसस्वरूप परब्रह्मकी सेवाकी भी पूर्णता है। इसका तात्पर्य यह है कि रसास्वादनके लिये रसस्वरूप परब्रह्मकी जितने प्रकारकी वासना है, उस समस्त वासनापूर्त्तिका आनुकूल्य विधान करने पर ही जीवकी परिपूर्ण-सेवा सम्भवपर हो सकती है। किसी भी एक जातीय वासना-पूर्त्तिके आनुकूल्यके अभावमें सेवा अपूर्ण ही रह जायेगी।

रसस्वरूप परब्रह्म अपनी व्रजलीलामें मुख्यत: विषय-जातीय रस ही आस्वादन करते हैं, अथच आश्रयजातीय रसके आस्वादनके लिये व्रजलीलामें उनकी तीव्र लालसा अपूर्ण रहती है। व्रजमें आश्रयजातीय रसका सम्यक् आस्वादन करना असम्भव है। श्रीगौरसुन्दररूपसे ही वे सर्वतोभावसे आश्रय-जातीय रसका आस्वादन किया करते हैं। इसलिये इन दोनों रूपोंकी लीलामें जो व्यक्ति परब्रह्मकी सेवा कर सकते हैं, उनके पक्षमें ही रसस्वरूप परब्रह्मकी पूर्णसेवा हुआ करती है। केवल एक स्वरूपकी सेवा होगी आंशिकी-सेवा; केवल आश्रय-प्रधानरूपकी सेवा, अथवा केवल विषय-प्रधानरूपकी सेवा।

रसस्वरूप परब्रह्मकी पूर्णसेवाके ही आकांक्षी होनेसे गौड़ीय-वैष्णवाचार्यगण उल्लिखित दोनों रूपोंकी—श्रीकृष्णकी तथा श्रीगौरकी सेवाको ही अपना काम्य मानते हैं। इसलिये श्रीकृष्णके उपास्यत्वके साथ-साथ वे श्रीगौरकृष्णके उपास्यत्वका भी प्रतिपादन कर गये हैं।

पतित-पावन श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु भी दोनों स्वरूपोंके भजनका उपदेश दे गये हैं—

'बोल कृष्ण, गाओ कृष्ण, भजह कृष्ण रे।
कृष्ण प्राण, कृष्ण धन, कृष्णसे जीवन।
हरे कृष्ण बोल भाई हई एक मन।।'

श्रीचै० भा० २। प्रथम अध्याय

'भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम।
जे जन गौरांग भजे, से जन आमार प्राण।।
आमार किनिया लह भज गौरहरि।
चैतन्य सेव, चैतन्य गाओ लओ चैतन्य नाम।
चैतन्ये जे भक्ति करे, सेई मोर प्राण।।'

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु-वचन श्रीचै० चरि० २।१।२४

भज कृष्ण, स्मर कृष्ण, शुन कृष्ण नाम।
कृष्ण हओ सभार जीवन धन प्राण।।

श्रीचै० भा० २–द्वितीय अध्याय

भज भज आरे भाई, चैतन्य--चरणे।
अविद्या–बन्धन खण्डे याहार श्रवणे।।

--श्रीचैतन्य भागवतकार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर श्रीचै. भा. ३। ३. अ.

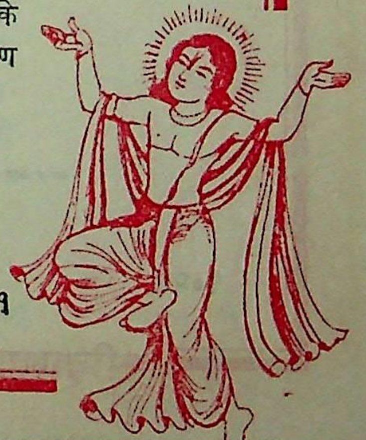
'भक्तवत्सल कृतज्ञ समर्थ वदान्य।
हेन कृष्ण छाड़ि पण्डित नाहि भजे अन्ये।।
अतएव पुनः कहों ऊर्ध्वबाहु हैया।
चैतन्य-नित्यानन्द भज कुतर्क छाड़िया।।'

श्रीचैतन्य चरितामृतकार कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामी

श्रीचै० चरि० २।२२।५१ एवं १।८।१२

इसी प्रकार श्रीपाद रूपगोस्वामी, श्रीपाद श्रीसनातन गोस्वामी, तथा श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी आदि गौड़ीय वैष्णवाचार्य सबके सब जैसे श्रीकृष्णका भजन करते थे, उसी प्रकार श्रीगौरांगका भजन भी करते थे। श्रीजीवगोस्वामीके शिक्षा प्राप्त श्रीनरोत्तमदास ठाकुरने अपनी 'प्रार्थना में श्रीगौर एवं श्रीगोविन्द—दोनोंके भजनका उल्लेखकर दोनों स्वरूपोंकी सेवाको ही साध्यरूपमें निरूपण किया है—

मनोवाञ्छा सिद्धि तबे, हओ पूर्णतृष्ण।
हेथाय चैतन्य मिले सेथा राधाकृष्ण।।





यदि यहां—नवद्वीपलीलामें श्रीचैतन्यकी सेवा और वहां (व्रज-लीलामें) श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवा प्राप्त हो जाये, तभी मनोवाञ्छा सिद्ध हो सकती है और पूर्ण तृप्त हुआ जा सकता है। केवल एक लीलाकी सेवासे तृष्णा पूर्ण नहीं होती, दोनों लीलाओंकी सेवा से ही तृष्णा पूर्णता लाभकर सकती है।

श्रीश्रीगौरसुन्दरके एवं श्रीराधागोविन्दके लीलामाधुर्यके मिश्रणमें जो एक अपूर्व सुमाधुर्य आविर्भूत होता है, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने उसका अति सुन्दर भावोंमें चित्रण किया है—

चैतन्य-लीलामृतपूर, कृष्णलीला सुकर्पूर, दोंहे मेलि हय सुमाधुर्य।
साधुगुरु-प्रसादे, ताहा जेई आस्वादे, सेई जाने माधुर्य-प्राचुर्य॥

श्रीचै० चरि० २।२५।२६

कृष्णलीलामृतसार, आर शत-शत धार, दशदिगे बहे जाहा हैते।
से गौरांगलीला हय, सरोवर अक्षय, मनो हंसचराह ताहाते॥

श्रीचै० चरि० २।२५।२३

इस प्रकार गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायका साध्यतत्त्व है श्रीकृष्ण एवं श्रीगौर—दोनों स्वरूपोंकी लीलाओंमें एकान्त प्रेममयी सेवा।

## प्राण मोर युगलकिशोर

धन मोर नित्यानन्द, पति मोर गौरचन्द्र;
प्राण मोर युगल-किशोर।
अद्वैत आचार्य्य वल, गदाधर मोर कुल;
नरहरि विलासइ मोर॥
वैष्णवेर पदधूलि, ताहे मोर स्नान-केलि;
तर्पण मोर वैष्णवेर नाम।
विचार करिया मने, भक्तिरस आस्वादने;
मध्यस्थ श्रीभागवतपुराण॥
वैष्णवेर उच्छिष्ट, ताहे मोर मन निष्ठ;
वैष्णवेर नामेते उल्लास।
वृन्दावने चबूतरा, ताहे मोर मन घेरा;
कहे दीन नरोत्तमदास॥१०॥

# महाप्रभु श्रीगौरांगका उपदेश एवं पारमार्थिक-अवदान



श्रीमन्महाप्रभुका मुख्य अवदान या श्रेष्ठ दान है पारमार्थिक। इन्होंने व्यवहारिक विषयमें किसीको स्पष्टरूपमें कोई उपदेश नहीं दिया, फिर भी पारमार्थिक विषयके उपदेशमें आनुषंगिक रूपसे श्रीमन्महाप्रभुने जो उपदेश दिया है, उसके अनुसरण करनेसे व्यवहारिक विषयमें भी जीव-जगत्‌का कल्याण साधित हो सकता है।

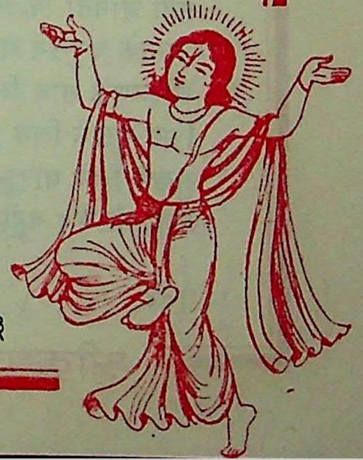
जीवके स्वरूपके साथ जिसका स्वाभाविक अविच्छेद्य सम्बन्ध है, वही वास्तविक सम्बन्ध-तत्त्व है। उस सम्बन्धतत्त्वके अनुरूप जो कर्तव्य है, वही जीवका वास्तविक या स्वरूपानुबन्धी कर्तव्य है, उसे ही हम जीवका वास्तव काम्य या परमार्थ कह सकते हैं। जीवके इस परमार्थका निर्णय लेनेके लिये जीवके स्वरूपको जानना होगा, जीवका किसके साथ स्वाभाविक अविच्छेद्य सम्बन्ध है, उसका भी निर्णय करना होगा।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता (७/४) में भगवान् श्रीकृष्णने आठ प्रकारकी प्रकृति या मायाका परिचय दिया है और उसे अपनी एक शक्ति किन्तु अपरा अर्थात्—निकृष्टा शक्ति कहकर वर्णन किया है। उसके बाद श्रीभगवान्‌ने कहा है—

> अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
> जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
>
> श्रीगीता, ७/५

हे महाबाहो! उपर्युक्त निकृष्टा माया-शक्तिसे परा अर्थात् उत्कृष्टा जीवस्वरूपा मेरी एक और जीवभूता शक्ति है, जिसके द्वारा यह समस्त जगत् धारण हो रहा है—भोगा जा रहा है। —जीव-शक्तिको मायासे उत्कृष्टा इसलिये कहा गया है कि माया-शक्ति जड़, अचेतन तथा भोग्य है, किन्तु जीव-शक्ति चिद्‌रूपा है, चेतन तथा भोग करने वाली है। इस प्रकार श्रीकृष्णकी जो चिद्‌रूपा जीव-शक्ति है, उसका अंश है जीव। यही जीवका स्वरूप है।

जीव-सम्बन्धके विषयमें श्रीभगवान्‌ने कहा है—





**ममैवांशो जीवलोके जीवभूता सनातनः ॥**
**मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥**

श्रीगीता, १५।७

जीव मेरा ही सनातन या नित्य अंश है, मायिक-प्रपञ्चमें अवस्थित रहकर वह प्रकृतिमें स्थित मन एवं इन्द्रियोंको (भोगके लिये) आकर्षण करता है ॥ —इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने जीवको पहले अपनी शक्ति, फिर अपना सनातन अंश कहा है। शक्ति तथा शक्तिमानका अभेद रहनेसे श्रीभगवान्‌ने जीवको अपनी जीव-शक्तिका अंश कहा है। इससे जीवका श्रीकृष्णसे अंश-अंशीका तथा शक्ति-शक्तिमानका सम्बन्ध प्रतिपादित होता है। वह सम्बन्ध भी सनातन या नित्य है। अतः यह निर्णय होता है कि परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके साथ जीवका स्वरूपगत नित्य अविच्छेद्य सम्बन्ध है। अतः एकमात्र श्रीकृष्ण ही सम्बन्ध-तत्त्व हैं।

शक्तिमान की अनुकूलतामयी या प्रीतिमयी सेवा ही शक्तिका स्वरूपानुबन्धी कर्त्तव्य है एवं इसी प्रकार अंशीकी प्रीतिमयी सेवा ही अंशका स्वरूपगत धर्म है। शक्ति या अंश अपने शक्तिमान या अंशीको छोड़कर किसी दूसरेकी सेवा नहीं करते। अतः एकमात्र श्रीकृष्णकी आनुकूल्यमयी या प्रीतिमयी सेवा ही अर्थात् श्रीकृष्णका सुख-सम्पादन करने वाली अन्य-कामना-शून्य सेवा ही जीवका परम कर्तव्य है। सेवाका प्राण है प्रेम। अतः श्रीकृष्णके साथ जीवका प्रियता-सम्बन्ध है। बृहदारण्यकादि श्रुतियां (१।४।८) श्रीकृष्णके साथ जीवका स्वरूपगत प्रियता-सम्बन्ध ही स्थापित करती हैं। परब्रह्म ही जीवका एकमात्र प्रिय है, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पति यहां तक कि शरीर भी वास्तवमें प्रिय नहीं है।

किन्तु अनादि वहिर्मुखताके कारण संसारी जीव अनादिकालसे श्रीकृष्णको, कृष्णके साथ अपने सम्बन्धको भूल रहा है। उसे इस नित्य अविच्छेद्य सम्बन्धका ज्ञान तक भी नहीं है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र उसके प्रीतम हैं—यह जानता ही नहीं। किन्तु नास्तिक लोगोंके ईश्वरका अस्तित्व न मानने पर जैसे ईश्वरका अस्तित्व विलुप्त नहीं होता, उसी प्रकार संसारी-जीवके श्रीकृष्णके साथ अपने सम्बन्धको भूल जानेपर वह सम्बन्ध विलुप्त नहीं होता, क्योंकि वह सम्बन्ध सनातन नित्य एवं अविच्छेद्य कहा गया है। उस नित्य अविच्छेद्य प्रियत्व सम्बन्धके कारण जीवमें प्रियत्वके लिये स्वाभाविक आकर्षण विद्यमान है ही। यह ठीक है कि जीव यह नहीं जानता कि किस प्रियके लिये उसका यह आकर्षण है। अनादि वहिर्मुखताके कारण मायाके चंगुलमें पड़कर जीवकी देहमें आत्मबुद्धि पैदा हो रही है, किन्तु सुख स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके साथ नित्य अविच्छेद्य सम्बन्धके कारण जीवमें सुखकी चिरन्तनी वासना तो है ही। किस सुखके लिये उसकी वासना है, यह न जानकर देहमें आत्मबुद्धिके कारण जीव देह-दैहिक सुखके लिये मारा-मारा भटक रहा है। परन्तु सुखस्वरूप प्रीतमकी प्राप्तिके विना जीवको कहीं भी चैन नहीं मिलता और न ही उसकी सुख-वासनाका ही अवसान होता है। प्रिय

स्वरूप श्रीभगवान्‌की उपासना करनेपर ही उसे प्रियरूपमें प्राप्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

ध्यातव्य है कि प्रियता एकमुखी नहीं होती, दुमुखी या पारस्परिक हुआ करती है। लौकिक जगत्‌में भी यही देखा जाता है, जो मेरा प्रिय है, मैं भी उसका प्रिय हूं। अतः भगवान् श्रीकृष्ण जीवके एकमात्र प्रिय होनेसे जीव भी उनको प्रिय है। जीव तो श्रीभगवान्‌को अनादि बहिर्मुखताके कारण प्रियरूपमें भूल रहा है किन्तु श्रीभगवान् जीवकी प्रियताको कभी नहीं भूलते, भूल सकते भी नहीं, वे संसारी-जीवकी त्रिताप-दुखावस्थाको जानते हैं और जीवको उस दुखसे छुड़ानेके लिये वे केवल विविध चेष्टाएं ही नहीं करते, बल्कि व्याकुल भी रहते हैं।

जीवकी दुखनिवृत्तिके लिये श्रीभगवान्‌ने अनादिकालसे वेद-पुराण-इतिहास आदिक को जगत्‌में प्रकटित कर रखा है, ताकि बहिर्मुख जीव उन वेद-पुराणादिका अनुशीलन कर श्रीभगवान्‌के साथ अपनी प्रियताके सम्बन्धको जानकर उनकी सेवामें तत्पर हो सकें। किन्तु मायामुग्धजीव वेद-पुराणादिके मर्मको नहीं जान पाता। तब वे प्रतियुगमें युगावतारके रूपमें अवतीर्ण होकर वेदादिके मर्मको जीवोंको जनाते हैं, अनेक आकर्षणमय लीलाएं करते हैं, किन्तु दुर्भागा जीव सम्मुख होता है क्या? —नहीं होता। तो क्या फिर भगवान् श्रीकृष्ण चुप करके बैठ जाते हैं? —नहीं, वे फिर ब्रह्माके एक दिनमें स्वयं अवतार लेते हैं और आग्रहपूर्वक अपनेको प्रियरूपमें प्राप्त करनेका उपाय बताते हैं। गत द्वापरमें जैसे अर्जुनके प्रति आपने जीवोंको उपलक्ष्य करके कहा—**'मन्मना भव मद्भक्तो'**—इत्यादि॥ किन्तु हाय! तब भी संसारको सुख-सर्वस्व जानने वाले जीवोंने उस उपदेशको ग्रहण न किया, किसी-किसी भाग्यशालीने उनकी अहैतुकी कृपासे उस मर्मको समझा ग्रहण किया भी होगा। जब जीव इतने पर भी श्रीकृष्णके सम्मुख नहीं होता, तो उनका आग्रह भी उदग्र हो उठता है।

तब वे सोचते हैं कि मेरे साथ प्रियताका सम्बन्ध प्रतिष्ठित होनेमें एकमात्र प्रयोजन है मेरा प्रेम—प्रेमभक्ति। उस प्रेमभक्तिकी प्राप्तिकी बात बताने पर भी जीवने उसे ग्रहण नहीं किया। अब केवल उपाय बतानेसे काम नहीं चलेगा, मैं अवतीर्ण होकर निर्विचार पूर्वक सबको प्रेमभक्ति ही दान करूंगा, जिससे सब जीव मेरे साथ प्रियताका सम्बन्ध जोड़ सकें। कितनी व्याकुलता और आग्रह है भगवान्‌का जीवको अपनाने में? किन्तु मायामुग्ध जीव देहसुखकी कामनामें ऐसा भ्रमित हो रहा है कि देह-सुखप्राप्तिको आत्यन्तिकी दुखनिवृत्ति समझ बैठता है और उसमें अपनी चिरन्तनी सुखवासनाकी पूर्त्ति समझता है। उस आत्यन्तिकी दुखनिवृत्त या मुक्ति देनेमें श्रीभगवान्‌को कोई घाटा नहीं पड़ता, किन्तु तृप्ति तो नहीं होती। मुक्तिमें उनका प्रियत्व सम्बन्ध तो समाप्त हो जाता है। प्रेमास्पद तो प्रेमीके अस्तित्वको कभी मिटाना नहीं चाहता, सदा बनाये रखना चाहता है। श्रीभगवान् तो जीवके साथ प्रियताका सम्बन्ध जोड़े रखना चाहते हैं।



वह एकमात्र सम्भव है प्रेमभक्ति द्वारा। किन्तु जीव उस प्रेमभक्तिकी प्राप्तिके उपायका भी तो अनुसरण नहीं करना चाहता। इसलिये



श्रीभगवान् स्वयं अवतीर्ण होकर विना किसी विचारके साधन-भजनकी अपेक्षा न रखकर सबको प्रेमभक्ति देते हैं, श्रीगौरसुन्दररूपसे। और जीवोंको साधन-भक्तिमें प्रवेश करानेके लिये स्वयं आचरण कर उसका आदर्श भी स्थापन करते हैं जिससे उनके अन्तर्धान हुए पीछे भी जीव उस साधन-भजनके आदर्शका अनुसरण कर उनकी प्रेम-भक्तिको प्राप्त कर सकें।

वह अवतार है करुणा-पारावार प्रेमपुरुषोत्तम श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यका, जिसमें उन्होंने निर्विचार आचाण्डाल प्रेम-भक्ति प्रदान की है और प्रेम-प्राप्तिके उपाय साधन-भक्तिके अनेक अङ्गोंके साथ साधन-भक्ति-सार, परम-उपायरूप श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तनका स्वयं आचरण कर एक अनुपम आदर्श स्थापन किया, जिसे किसी अवतारने, किसी वैष्णवाचार्यने स्थापन नहीं किया। श्रीमन्महाप्रभुके उस आचरणपूर्वक आदर्श स्थापनका ही यह फल है कि आज देश-विदेशमें श्रीनामसंकीर्त्तनका प्रचुर अनुसरण किया जा रहा है।

श्रीमन्महाप्रभुने जीवके लिये प्रियरूपमें उपासनाके तात्पर्यको प्रकाशित करते हुए कहा है कि प्रियरूपमें उपासनाका तात्पर्य एकमात्र प्रेमास्पद परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रीति विधान करनेमें है। प्रीतमकी उपासना या सेवाके बदलेमें कुछ अपने लिये पानेकी वासना प्रियताका विरोधी है। वह सेवा नहीं, कपटतामयी सेवा है। सेवाका तात्पर्य इहलोकके अथवा परलोकके भोग-सुख प्राप्त करना नहीं है, न ही मुक्ति या आत्यन्तिकी दुखोंकी निवृत्ति। मोक्षवाञ्छा तो कैतव-प्रधान है, वह जीवका स्वरूपानुबन्धी परमार्थ नहीं है, न उसमें जीव तथा भगवान्के सम्बन्ध की सार्थकता ही है। एकमात्र कृष्णसुखैकतात्पर्यमयी सेवा, जिसमें अपने दुख-निवृत्तिकी अथवा अपने सुख-प्राप्तिकी लेशमात्र गन्ध भी न हो, वही जीवका स्वरूपानुबन्धी परमार्थ है, परम काम्य-वस्तु है।

सेवा है सेवक या दासका कर्त्तव्य। जिसकी सेवाकी जाती है वह है सेव्य। अतः श्रुति-स्मृति वर्णित वाक्यानुसार श्रीकृष्ण सेव्य हैं और जीव सेवक। श्रीभगवान्के साथ जीवका सम्बन्ध है सेव्य-सेवक सम्बन्ध। किन्तु यह सेव्य-सेवक सम्बन्ध लौकिक जगत्के स्वामी-सेवक का-सा सम्बन्ध नहीं है। जगत्के इस सम्बन्धका मूल है स्वार्थ-सिद्धि। किन्तु भगवान् एवं जीव के इस सेव्य-सेवक सम्बन्धमें किसीके पक्षमें भी स्वार्थकी गन्ध नहीं है। सेवक-जीवका एकमात्र काम्य है श्रीकृष्णका प्रीति-विधान, और श्रीभगवान्का भी एकमात्र काम्य है भक्तोंकी वाञ्छापूर्ति— (पद्मपुराण) —

**मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रिया ॥**

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—'भृत्य-वाञ्छापूर्त्ति विनु नाहि अन्य कृत्य।' श्रीचै० चरि० २।१५।१६६॥ श्रीभगवान्को अपने दासोंकी वाञ्छा-पूर्त्तिको छोड़कर और कोई भी काम नहीं है। उनमें ऐसा भक्तवात्सल्य है कि 'आतमपर्यन्त वदान्यता' अपनेको भक्तोंके हाथ बेच देते हैं।

जीवके पक्षमें कृष्णसुखैक-तात्पर्यमयी सेवाके लिये एक मात्र प्रयोजन है उस प्रकारकी सेवा-वासना, क्योंकि सेवा-वासनाके विना सेवाकी कोई सार्थकता नहीं रहती। वासना-हीन सेवा तो यान्त्रिकी-सेवा हुआ करती है। इस वासनाका उद्भव होता है तब, जब जीवमें भगवान् श्रीकृष्णमें प्रियत्व-बुद्धि जाग्रत होती है। कृष्णसुखैक-तात्पर्यमयी सेवा-वासनाका नाम है—'प्रेम'। —'**कृष्णेन्द्रियप्रीति-इच्छा धरे प्रेम नाम**' इस प्रकारके प्रेमको 'प्रयोजन-तत्त्व' कहकर श्रीगौरांगप्रभुने उपदेश दिया है।

प्रेमको प्राप्त करके ही कृष्णसुखैकतात्पर्यमयी सेवा प्राप्त की जा सकती है। प्रिय-रूपमें श्रीकृष्णकी उपासना करने पर ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। ऐसी उपासनाका स्वरूप श्रीकृष्णने स्वयं कहा है अर्जुनके प्रति—

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
**मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥**

श्रीगीता, १८।६५

हे अर्जुन! मेरेमें मनको लगा, मेरा भक्त हो, मेरी पूजाकर, मुझे नमस्कार कर ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त करेगा, मैं सत्य कहता हूं, प्रतिज्ञा करके कहता हूं, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त-प्रिय है। —अर्जुनको उपलक्ष्य करके जगत्-जीवको श्रीकृष्णका यह उपदेश है। अर्जुनने श्रीकृष्णको प्रियरूपमें प्राप्त किया था। इसलिये अर्जुनको श्रीभगवान्‌ने बार-बार 'प्रिय' कहा है। अतः अर्जुनने जिस प्रकारसे प्रियरूपमें श्रीकृष्णको प्राप्त किया था, उसके प्रति दिये उपदेश-का अनुसरण करनेसे जगत्‌के जीव श्रीकृष्णको उसी भावसे प्राप्त करेंगे—उनकी सत्य-प्रतिज्ञा है। इन वाक्योंको श्रीभगवान्‌ने 'सर्वगुह्यतम' और 'परमवाक्य' भी कहा है—

**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।**
**इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥**

श्रीगीता, १८।६४

अर्जुन! समस्त गुह्योंसे भी गुह्यतम मेरे इस परमवाक्यको तू सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इसलिये तुम्हारे हितकी बात कहता हूं। —जीवके परमार्थको प्राप्त कराने वाला होनेसे इस वाक्यको 'परम-वाक्य' कहा गया है।

श्रीमन्महाप्रभुने अपने इन श्रीगीताके वचनोंकी विवृत्तिमें दिया है साधन-भक्तिका उपदेश। वह साधन-भक्ति है मुख्य अभिधेय-तत्त्व। उन्होंने श्रीपादसनातनके प्रति कहा—

एबे कहि शुन अभिधेयेर लक्षण।
याहा हैते पाई कृष्ण, कृष्णप्रेमधन॥





कृष्णभक्ति अभिधेय सर्वशास्त्रे कय।
अतएव मुनिगण करियाछि निश्चय॥
भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति।
कृष्णप्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति॥

श्रीचै० च० २।२२।३-४ एवं ३।४।६५

—श्रवण-कीर्तनादि साधन-भक्ति 'अभिधेय-तत्त्व' है, इसके द्वारा श्रीकृष्ण तथा कृष्णप्रेम-धनकी प्राप्ति होती है। यही सिद्धान्त समस्त मुनियों-ने निर्धारण किया है। समस्त प्रकारके भजन-साधनमें श्रवण-कीर्तनादि नवविधा-भक्ति श्रेष्ठ है और इसमें कृष्णप्रेम तथा श्रीकृष्णको प्रदान करनेकी महाशक्ति है।

नवविधा भक्तिमें भी निरपराध श्रीनामसंकीर्त्तन श्रेष्ठतम सर्वशक्तिशाली है, क्योंकि श्रीनामसंकीर्त्तनसे प्रेमधनकी प्राप्ति होती है और उससे नवविधा-भक्ति परिपूर्णता लाभ करती है—

तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नामसंकीर्त्तन।
निरपराध नाम हैते हय प्रेमधन॥
एक कृष्णनाम करे सर्वपाप क्षय।
नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय॥

श्रीमन्महाप्रभुने यह भी कहा—श्रवण-कीर्तनादि यदि रागानुभक्तिके साधन-अङ्ग रूपमें अंगीकृत हों तो उनके फलसे व्रजप्रेमकी प्राप्ति होती है, जो असमोर्ध्व महिमाशाली है, श्रीकृष्णको वशीभूत करनेकी असीम शक्ति धारण करती है।

श्रीमन्महाप्रभु जब तक इस ब्रह्माण्डमें प्रकट रहे, उस समय तक उन्होंने विना किसी पात्र-अपात्र विचारके, विना किसी साधन-भजनकी अपेक्षा रखे, आपामर साधारणको कृष्णप्रेम दान किया। उनके अन्तर्धान पीछे जीव जिस प्रकार उस प्रेमको प्राप्त कर सक, उसी उद्देश्यसे श्रीमहाप्रभुने श्रीपादरूप-सनातन गोस्वामिवृन्दको साधन-भक्तिका विस्तृत उपदेश दिया एवं उसकी शिक्षा दी, फिर उनमें अपनी शक्तिका सञ्चार किया। उनके द्वारा भक्तिग्रन्थोंका प्रणयन कराया—यह सब श्रीमन्महाप्रभुका मुख्य पारमार्थिक अवदान है, जिसके लिए जीव-जगत् उनका चिर ऋणी है।



# महाप्रभु-श्रीगौरांग प्रवर्त्तित रागानुगामार्गीय – उपासना



साधन-भक्ति—

श्रीमन्महाप्रभुने सम्वन्ध-तत्त्व परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण एवं जीवके बीच सेव्य-सेवक-सम्बन्धका ही प्रतिपादन किया है, जैसा कि अनेक श्रुति-स्मृतियों और पञ्चम वेद-स्वरूप श्रीमद्भागवतमें निरूपण किया गया है। सेवकका परम कर्त्तव्य है स्वामीकी सेवा। सेवाका प्राण है प्रेम, अर्थात् स्वामीकी सर्वतोभावेन अनुकूलता या प्रेममयी तीव्र वासनासे सेवा सम्पादन करना ही जीवमात्रका परम कर्त्तव्य है। उस सेवाके मूलाधार प्रेमको प्राप्त करानेकी योग्यताके लिये शास्त्रादेशानुसार श्रीमहाप्रभुने साधन-भक्तिपर जोर दिया है। कृष्णप्रेम नित्य-सिद्ध तत्त्व है, किसी साधन द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, न कोई साधन उसे प्राप्त ही करा सकता है, न वह प्रेम किसी साधनकी अपेक्षा ही रखता है, (श्रीचै० च० २।२२।५७)–

**नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम 'साध्य' कभु नय।**
**श्रवणादि-शुद्धचित्ते करये उदय॥**

श्रवण-कीर्त्तनादि स्वरूप-सिद्धा भक्तिके अनुष्ठान द्वारा जब साधकका चित्त शुद्ध हो जाता है, अर्थात् श्रीकृष्ण तथा कृष्ण-सुखकामनाको छोड़कर जब कोई भी कामना चित्तमें नहीं रहती, उस शुद्ध चित्तमें वह नित्य-सिद्ध स्वयं प्रकाश प्रेमतत्त्व अपने-आप उदित हो उठता है। इस प्रकारकी योग्यता मात्रको प्राप्त करनेके लिये श्रीमहाप्रभुने एवं गौड़ीय वैष्णवाचार्यवृन्दने साधन-भक्तिकी अनिवार्यता वर्णन की है, क्योंकि साधन-भक्तिसे ही वह योग्यता प्राप्त होनेकी सम्भावना है। अतः कहा गया है—

**एबे साधन-भक्ति शुन सनातन।**
**याहा हैते पाइ कृष्णप्रेम महाधन॥**
श्रीचै० च० २।२२।५५

साधन-भक्तिका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—





**कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।**
**नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ॥**

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, १।२।२

अन्याभिलाष-शून्य, ज्ञान-कर्मयोगादिके मिश्रण-रहित श्रीकृष्णकी अनुकूलतामय जो चेष्टाएं जिह्वा-कानादि इन्द्रियोंके द्वारा साधित या अनुष्ठित हों, और यदि उनका लक्ष्य कृष्णप्रेम हो, तो उसे 'साधन-भक्ति' कहते हैं। नित्यसिद्ध प्रेमके हृदयमें आविर्भूत होनेको ही साध्यता कहते हैं अर्थात् इन्द्रियों द्वारा अनुष्ठित उन चेष्टाओंसे यदि प्रेम हृदयमें प्रकट हो आता है, तभी उन चेष्टाओंको 'साधन-भक्ति' कहा जाता है। उसीमें साधन-भक्तिकी सफलता या सार्थकता है।

इन्द्रियों द्वारा श्रवण-कीर्त्तन, स्मरणादि जो नवविधा भक्तिका अनुष्ठान है, यदि वह श्रीकृष्णको लक्ष्य करके हृदयमें प्रेमको प्रकटित करता है, तो वह साधन-भक्ति है। यदि श्रवण-कीर्त्तनादि अनुष्ठानोंका लक्ष्य है धन-मान-प्रतिष्ठा कमाना, यदि उनके पीछे जुड़ी हैं सांसारिक कामनाओंकी लड़ी, तो वे श्रवण-कीर्त्तन भी साधन-भक्ति नहीं हैं। पाप-निवृत्तिका कारण हो सकता है, किन्तु उससे कृष्णप्रेम विशेषतः व्रजप्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

**वैधि-भक्ति—**

साधन-भक्ति दो प्रकारकी है—वैधि-भक्ति तथा रागानुगा-भक्ति। संसार-भयकी निवृत्तिके लिये, शास्त्रके शासन-भयसे जिस भक्तिमें प्रवृत्त हुआ जाता है, उसे 'वैधि-भक्ति' कहते हैं। विधिमार्गके भजनमें श्रीकृष्णके प्रति प्रेमकी प्रधानता नहीं रहती, श्रीभगवान्‌के ऐश्वर्य ज्ञानकी प्रधानता रहती है, जिससे चार प्रकारकी मुक्तिकी प्राप्ति होकर वैकुण्ठ प्राप्त होता है। वैधिमार्गके भजनसे व्रजभाव तथा व्रजविहारी श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होती—

**ऐश्वर्यज्ञाने विधि-भजन करिया।**
**वैकुण्ठे जाय चतुर्विध मुक्ति पाइया ॥**

श्रीचै० च० १-३-१५

**विधि-मार्गे न पाईये व्रजे कृष्णचन्द ॥**

श्रीचै० च० २-८-१८२

**रागात्मिका-भक्ति—**

रागानुगा-साधन-भक्तिको समझनेके लिये राग-भक्तिको समझना आवश्यक है। 'राग' नाम है श्रीकृष्णमें स्वाभाविकी एक प्रेममयी तृष्णाका, उससे श्रीकृष्णमें एक परम-आविष्टता उत्पन्न होती है। अतः उस रागमयी भक्तिको रागात्मिका-भक्ति कहा जाता है—

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत् ।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः साऽत्र रागात्मिकोदिता ॥

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, १।२।२७२

वह रागात्मिका-भक्ति एकमात्र श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध परिकरोंमें विद्यमान है। श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्तिके मूर्त्तविग्रहरूप अनादि-सिद्ध परिकर हैं—श्रीनन्द-यशोदादि, श्रीराधा-ललितादि, सुबल-मधुमङ्गलादि तथा रक्तक-पत्रकादि। ये चारों परिकर क्रमशः वात्सल्य, मधुर, सख्य तथा दास्य भावोंके परिकर हैं। इन सबकी सेवा परम स्वतन्त्र तथा अन्यनिरपेक्ष है। दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर—इन चारों भावोंके परिकरोंका श्रीकृष्णसे एक अनादि-सिद्ध सम्बन्ध है या अपने-अपने एक सम्बन्धका अभिमान है।

**सम्बन्धरूपा रागात्मिका-भक्ति—**

दास्य,सख्य एवं वात्सल्य भावके परिकर अपने-अपने दास, सखा, माता-पिताके सम्बन्धके अनुकूल ही कृष्णसेवा सम्पादन करते हैं। सम्बन्ध-मर्यादाका उल्लंघनकर वे सेवा नहीं कर सकते, ऐसी सेवा-वासना भी उनके मनमें कभी उदित नहीं होती। इसलिये इन तीनों परिकरोंकी कृष्ण-सेवाकी प्रवर्त्तक रागात्मिका-भक्तिको **'सम्बन्ध-रूपा'** कहा जाता है।

**कामरूप-रागात्मिका-भक्ति—**

किन्तु मधुर-भावके परिकर श्रीराधादि व्रज-सुन्दरियोंकी रागात्मिका-भक्ति सम्बन्ध-की अपेक्षा नहीं रखती। हर प्रकारसे, हर भावसे श्रीकृष्णकी प्रीति-विधान करना ही उनकी रागात्मिका-भक्तिका काम्य है। श्रीकृष्णकी प्रीति-विधान ही उनकी एकमात्र कामना है। इसलिये उनकी रागात्मिका-भक्तिको **'कामरूपा'** कहा जाता है। सेवा द्वारा श्रीकृष्णकी प्रीति-विधान करनेमें व्रजसुन्दरिवृन्द वेदधर्म, कुलधर्म, स्वजन-आर्यपथका भी त्याग कर देती हैं। इस विषयमें एक दृष्टान्तका उल्लेख करते हैं—

एक समय द्वारकामें श्रीकृष्णने पेट-दर्दका बहाना बनाया और बेचैन हो उठे। अनेक चिकित्सा-उपचारोंके करने पर भी भगवान् स्वस्थ न हुए। श्रीनारदजी वहां आ पहुंचे। भगवान्से उन्होंने पूछा—प्रभो! आप ही अपनी दवा बता दो न? —श्रीकृष्णने कहा, यदि कोई प्रेयसी अपना चरण-जल मुझे पिला दे, तो मैं अभी स्वस्थ हो सकता हूं। श्रीकृष्णकी सोलह हजार एक सौ आठ पटरानियां वहां उपस्थित थीं। श्रीनारदजी प्रत्येकके पास गये, किन्तु किसीने भी अपने चरणोंका धोवन नहीं दिया। स्वामीको कैसे अपने चरणोंका धोवन दिया जाये? —पत्नीधर्म नष्ट होता है। श्रीनारदजी व्रजमें पहुंचे और व्रजसुन्दरियोंके आगे श्रीकृष्णकी अस्वस्थताकी बात और उसका उपाय भी रखा। व्रजकी प्रत्येक सुन्दरी श्रीकृष्ण-के लिये अपना चरण-जल देनेके लिये बिना किसी संकोचके तैयार हो गई।





वे चाहती हैं केवल कृष्ण-सुख। पाप तथा पत्नी-धर्मका नाश तथा उसके फलकी वे कुछ भी परवाह नहीं करतीं, नारदजी ले आये चरण-जल, ठीक हो गये श्रीभगवान्। यह है कामरूपा-रागात्मिका भक्तिकी एक अपूर्वता तथा विशिष्टता।

**रागानुगा-भक्ति—**

रागात्मिका-भक्तिके अनुगत है जो भक्ति, उसे 'रागानुगा-भक्ति' कहते हैं—

**रागात्मिकामनुसृत्य या सा रागानुगोच्यते ॥**

भ० र० सि० १।२।२७०

**रागात्मिका भक्ति मुख्या व्रजवासिजने।**
**तार अनुगत भक्ति 'रागानुगा' नामे ॥**

श्रीचै० च० २।२२।८५

रागात्मिका-भक्ति की अनुगता-भक्तिका तात्पर्य यह है कि रागात्मिकाकी जो समस्त सेवाकी अनुकूलता एवं सहायता करना। व्रजमें रागात्मिकाके आश्रय हैं श्रीनन्द-यशोदादि, सुबल-मधुमंगल आदि तथा श्री-राधा-ललिता आदि। इन सबके अनुगत होकर सेवा करना; अर्थात् वे जिस समस्त सेवा द्वारा श्री-कृष्णको सुखी करते हैं, उस समस्त सेवाका आयोजन आदि करके अनुकूलता या उनकी सहायता करना ही रागात्मिकाका 'आनु-गत्य' कहलाता है।

---

**शास्त्रयुक्ति न मानना ही रागमार्ग-का भजन नहीं है। शास्त्र-युक्तिको छोड़कर भक्ति-रसशास्त्रके अनुकूल आचरण किए बिना, हवाई उड़ानें भरनेसे या मनगढ़न्त कपोल-कल्पित भजन-साधनसे कभी कृष्णसेवाको प्राप्ति नहीं हो सकती।**

---

जिस प्रकार नित्य-व्रजलीलामें श्रीकृष्णके नित्य-रागात्मिकाके नित्य-सिद्ध परिकर हैं और वे श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्तिके मूर्त्तविग्रह हैं, उसी प्रकार उन नित्य-सिद्ध परिकरोंकी सेवा-में आयोजन एवं सहायता करने वाले भी नित्य-सिद्ध परिकर हैं, जो स्वरूप-शक्तिके ही मूर्त्त-विग्रह हैं। वे साधन-सिद्ध जीव नहीं हैं, नित्य-मुक्त जीव भी नहीं हैं। इस प्रकार हर भावके नित्य-सिद्ध रागानुगा-भक्तिके परिकर विद्यमान हैं, जो सजातीय नित्य-सिद्ध रागात्मिकाके परिकरोंके अनुगत होकर उनकी सेवामें सहायता करते रहते हैं। मधुर-भावके रागानुगा-भक्तिके नित्य-सिद्ध परिकर हैं - श्रीरूपमञ्जरी, श्रीरतिमञ्जरी, श्रीअनंगमञ्जरी, श्रीरसमञ्जरी आदि। स्वरूप-शक्तिके मूर्त्तविग्रह होनेसे उनका रागात्मिका-सेवामें स्वरूपगत अधिकार तो है, किन्तु वे रागात्मिका-सेवा न करके केवल रागानुगा-सेवामें ही रहते हैं।

श्रीमन्महाप्रभुने स्पष्ट कहा कि जीवकी सेवा आनुगत्यमयी है। रागानुगा-सेवाके जो नित्य-सिद्ध परिकर हैं, परम्परागत उनके आनुगत्यमें रहकर ही श्रीकृष्णकी सेवाका अधिकार है जीवको। जीव जीव-शक्ति है और श्रीकृष्णका नित्यदास है। अतः श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्तिके जो मूर्त्तविग्रह नन्द-यशोदादि तथा राधा-ललितादि हैं, उन जैसी रागात्मिका सेवामें जीवका कभी अधिकार नहीं है। यहां तक कि नित्य-मुक्त तथा साधन-सिद्ध जीवोंका भी स्वतन्त्र-रागात्मिका-सेवामें अधिकार नहीं है। अतः रागानुगा-भक्तिके नित्य-सिद्ध परिकर श्रीरूप-अनंगमञ्जरी आदिककी कृपासे उनके अनुगत रहकर मञ्जरीरूपसे सेवाका अधिकार है जीव को।

आधुनिक समयमें ऐसी भी कुछ एक सम्प्रदायोंका प्रचलन दीखता है कि उस सम्प्रदाय-के कुछ साधक पुरुष होकर भी अपनेको वस्त्र-अलंकारादिसे सजाकर स्त्री-वेष बनाये रहते हैं और मनमें विचार करते हैं कि वे श्रीराधाजीकी सखी हैं। वे सखी-भावसे साधना-करनेकी बातें करते हैं। अपने नाम भी 'ललिता-विशाखा' आदि रखकर अपनेको कृष्ण-कान्ता समझते हैं। किन्तु गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें ऐसा आचरण शास्त्र-विरुद्ध एवं निषिद्ध है। यथावस्थित शरीरसे साधकके लिये एकमात्र श्रवण-कीर्त्तन आदिको छोड़कर ऐसे सांग रचानेकी बात किसी शास्त्रमें नहीं है। अपनेको ललिता-विशाखादि नित्य-भगवत्-परिकर मानना या बताना अप-राध-जनक है। वस्तुतः ऐसी सम्प्रदायोंका कोई शास्त्र भी तो नहीं है, रस-परिपाटीमें, सेवा-अधिकारादि तथा जीव-स्वरूपादि विषयमें वे नितान्त अनभिज्ञ हैं। कपोल-कल्पित साधनाओंसे जगत्की क्या अपनी ही वे वञ्चना मात्र करते हैं।

रागात्मिका भक्तिमें प्रवृत्तिका एकमात्र कारण जैसे लोभ कहा गया है, रागानुगा-भक्तिमें भी प्रवेशका एकमात्र कारण है लोभ। रागात्मिकाके व्रजपरिकरोंके जो भाव हैं, उनको प्राप्त करनेका लोभ जिनके चित्तमें जागृत होता है, वही रागानुगाके अधिकारी हैं। श्रीचैतन्य-चरितामृत (२।२२।६७-६८) का कहना है—

**रागमयी भक्तिर हय 'रागात्मिका' नाम।**
**ताहा शुनि लुब्ध है कोन भाग्यवान्॥**
**लोभे व्रजवासी भावे करे अनुगति।**
**शास्त्र युक्ति नाहि माने रागानुगार प्रकृति॥**

रागात्मिका-भक्तिके जो व्रज-परिकर नित्य अप्रकट-लीलामें सेवा-सुख-सौभाग्य प्राप्त करते हैं, वे कैसे, किस भावसे अपनी-अपनी सेवाएँ सम्पादन करते हैं, यह बात प्राकृत जगत्के साधक-जीवोंके कैसे गोचर हो सकती है? अतः लीला ग्रन्थोंमें अथवा अनुरागी भक्तोंके मुखसे रागात्मिका-भक्तिकी अपूर्व माधुर्य-कथाको सुनकर उसी प्रकारकी सेवा प्राप्त करनेके लिये कोई भाग्यवान ही लुब्ध होते हैं तथा उसको पानेके लिये उन परिकरोंका आनुगत्य स्वीकार करते हैं, वही आनुगत्य-मूलक भजन ही रागानुगा-भक्ति है।





भाग्यवान्‌का तात्पर्य है उन साधकोंसे, जो कृष्ण-कृपा और कृष्ण-भक्तकृपा प्राप्तिके सौभाग्यको प्राप्त करते हैं। श्रीकृष्ण तथा भक्तकृपाके बिना किसी प्रकार भी रागानुगा-भक्तिका लोभ पैदा नहीं हो सकता। वह कृपा-प्राप्ति पूर्वजन्मकी भी हो सकती है अथवा इस जन्मकी भी।

**'शास्त्रयुक्ति नाहि माने रागानुगार प्रकृति'**—रागानुगाका स्वभाव है कि वह शास्त्रयुक्तिकी परवाह नहीं करती। इस बातके रहस्यको ध्यानसे समझनेकी आवश्यकता है। अनेक साधक अज्ञानवश अथवा आलस्यवश शास्त्र-वचनोंकी उपेक्षा करते दीखते हैं, जब उनसे इस विषयमें पूछा जाये तो वे कहते हैं कि 'हम रागानुगा-भक्तिके साधक हैं, वैधीभक्तिके नहीं'। वे इस वचनकी आड़में शास्त्र-विहित साधन-पथका त्यागकर अधःपतित होते हैं, रागानुगा-भक्ति-की प्राप्ति तो उन्हें स्वप्नमें भी नहीं हो सकती।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीपादने उक्त पयारांशकी टीकामें लिखा है—**रागानुगाभक्तिः शास्त्रयुक्तिं न मन्यते, तज्जनने शास्त्रयुक्त्यपेक्षा नास्तीत्यर्थः, तत्तद्भावादि-माधुर्य-श्रवणेन जातत्वात्**। 'रागवर्त्म चन्द्रिकामें उन्होंने कहा है—**लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्त्यपेक्षा न स्यात्; सत्यञ्च तस्यां लाभत्वस्यैव असिद्धेः'** ॥

तात्पर्य यह है कि रागानुगा शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं रखती, किन्तु कब ?–सेवाकी लोभ-उत्पत्तिके समय। व्रजवासी-परिकरोंकी सेवा-माधुरीको सुनकर ही उसे पानेके लिये उन्हें लोभ पैदा होता है। लोभकी उत्पत्तिके लिये शास्त्र-प्रमाण या किसी युक्तिका कोई प्रयोजन नहीं हुआ करता। वास्तवमें जहां शास्त्र या युक्तिका प्रयोजन रहता है वहां लोभ ही सम्भव नहीं; वहां फिर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यके ज्ञानकी सम्भावना हुआ करती है। लोभकी प्रत्याशामें कोई कभी भी शास्त्रालोचना नहीं किया करता और लोभनीय वस्तुको पानेके लिये कोई अपने मनमें अपनी योग्यता या अयोग्यताका विचार भी नहीं किया करता। लोभनीय वस्तुको देखते या उसकी बात सुनते ही अपने-आप लोभ पैदा हुआ करता है। रसगुल्लाको देखते ही मुँहमें पानी भर आता है –'यह बात लोग कहते हैं और ग्रन्थोंमें भी लिखी है' –इस प्रकारके विचारके फलस्वरूप रसगुल्लेको देखकर मुँहमें पानी भर आता हो, ऐसी बात नहीं है। अचारका लोभ आते ही रोगी फिर अपने स्वास्थ्य-अस्वास्थ्यकी बात नहीं सोचता, किसी शास्त्रयुक्तिकी उसके लोभमें अपेक्षा नहीं है। उसकी इच्छाकी प्रधानता रहती है। 'संसारी जीवोंके पक्षमें प्राकृत-शरीरसे रागसहित श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवा असम्भव है'—यह बात शास्त्र कहते हैं, युक्ति भी कहती है, किन्तु फिर भी जिन्हें कृष्ण-कृपा या भक्तकृपा प्राप्त हो गई है, उनके मनमें श्रीकृष्ण-सेवाका लोभ पैदा होता है। वैधी तथा रागानुगा-भक्तिका पार्थक्य ही यही है कि शास्त्र-शासन-का भय ही वैधीका प्रवर्त्तक है; और कृष्णसेवाका लोभ है रागानुगा-भक्तिका प्रवर्त्तक।

ध्यान देनेकी बात है कि लोभके पैदा होनेके समय शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं है, यह सत्य है, किन्तु लोभनीय-वस्तुको प्राप्त करनेके लिये शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा रखनी ही पड़ती है।

रसगुल्ला खानेका लोभ पैदा होनेपर रसगुल्ला प्राप्त नहीं हो जाता। किन्तु उसे प्राप्त करनेके लिये – रसगुल्ला कहां मिलता है ? कैसे वहां जाना होगा, वहां कैसे वह प्राप्त होगा—ये सब बातें, जिसने रसगुल्ला पाया-खाया है, उससे पूछनी-जाननी होंगी, उसके उपदेशानुसार चलना होगा; अथवा रसगुल्ला कैसे तैयार होता है, क्या-क्या सामान चाहिये—ये सब बातें रसगुल्ला बनाने वालेके उपदेशकी अपेक्षा रखती हैं।

इसी प्रकार रागमार्गमें कृष्णसेवाका जिन्हें लोभ पैदा हुआ है, अपनेको उस सेवाके योग्य बनानेके लिये क्या उपाय है, क्या साधन है, उन्हें शास्त्रोंको देखना होगा, उपयुक्त भक्तोंके निकट तदनुकूल उपदेशादि ग्रहण करना होगा—इसको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। शास्त्र-गुरु एवं वैष्णव उपदेशके विना कोई भी इस पथमें अग्रसर नहीं हो सकता। **'अतः शास्त्र-युक्ति न मानना ही रागमार्गका भजन नहीं** है। शास्त्र-युक्तिको छोड़कर भक्ति-रस शास्त्रके अनुकूल आचरण किये विना हवाई उड़ानें भरनेसे या मनगढ़न्त कपोल-कल्पित भजन-साधनसे कभी कृष्णसेवाकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिये नित्य-सिद्ध रागानुगा-मार्गके आचार्य-प्रवर श्रीपादरूप गोस्वामीका उद्घोष है कि—

**स्मृति-श्रुति-पुराणादि-पञ्चरात्रविधिं विना।**
**आत्यन्तिकी हरिभक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥**

भक्तिरसामृतसिन्धुः, १।२।१०१

स्मृति-श्रुति, पुराण तथा पञ्चरात्रकी विधिका उल्लंघन कर जो आत्यन्तिकी हरि-भक्ति है, वह भी उत्पात् ही पैदा करती है।

यही बात स्वयं भगवान्‌ने भी (श्रीगीता, १६।२३) कही है—

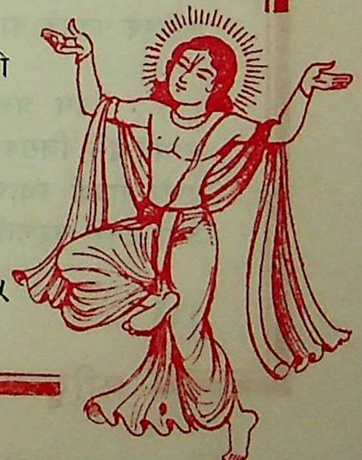
**यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।**
**न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥**

जो व्यक्ति शास्त्र-विधिका उल्लंघन करके अपनी इच्छासे आचरण करता है, वह न तो सिद्धि और सुखको प्राप्त करता है, और न परागतिको; कृष्णसेवा-प्राप्तिकी बात तो बहुत दूर रही ?

अतः भजन-अनुष्ठानमें जैसे विधिमार्गमें विधि-निषेधका शास्त्रोंने वर्णन किया है, रागानुगामार्गके भजनमें भी विधि-निषेध शास्त्रोंमें वर्णित है।

रागानुगाके साधनके विषयमें श्रीपाद सनातन गोस्वामीको श्रीमन्महाप्रभुने कहा—

**'बाह्य' 'अन्तर' इहार दुइ त साधन।**
**बाह्य साधकदेहे करे श्रवण-कीर्त्तन॥**





**मने, निज सिद्ध देह करिया भावन।**
**रात्रिदिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥**

श्रीचै० चरि० २।२२।८६-६०

रागानुगा-भक्तिके दो प्रकारके साधन हैं—'बाह्य' तथा 'अन्तर'। बाह्य यह है कि साधक यथावस्थित शरीरसे श्रवण-कीर्त्तनादि नवविधा भक्ति—साधन-भक्तिका अनुष्ठान करे। 'अन्तर' यह है कि मनमें अपने सिद्ध-देहकी भावना करते हुए रात-दिन निरन्तर व्रजमें अपने भावानुकूल श्रीकृष्ण-की मानसी-सेवा करे।

यह आवश्यक है कि शरीरके द्वारा अनुष्ठित साधनोंमें भी सर्वतो-भावसे मनका संयोग रखना होगा। मनका संयोग न रहने से केवल बाहरसे यन्त्रकी भांति अनुष्ठानादि करनेसे वास्तव रागानुगामार्गका भजन नहीं होगा। बाहरी क्रियाओंके साथ कैसे मनका संयोग रखा जाये, उसके दिग्दर्शन रूपमें एक उदाहरण देखिये। स्नानके समय पानीका लोटा भरकर सिरपर डालनेसे या पानीमें गोता लगानेसे रागानुगा-मार्गके भक्तका स्नान नहीं होता। स्नानके समय भगवन्नाम-स्मरण करनेसे तथा द्वादश अंगोंपर—'केशवाय नमः, नाराय-णाय नमः' आदि मन्त्रों सहित द्वादश तिलक करनेसे साधकका स्नान होता है। उससे उसका अन्तर्देह पवित्र होता है।

'अन्तर-साधन' होता है मानसी चिन्तन द्वारा। साधकको अपने अन्तश्चिन्तित सिद्ध-देहकी भावना करते हुए उसी देहसे व्रजमें अपने भावानुकूल लीला-विलासी श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये। इस देह द्वारा व्रजसे बाहर रहते हुए भी व्रजकी धारणा की जाती है। इस प्रकारके सिद्ध-देहका परिचय शिष्यको श्रीगुरुदेव द्वारा प्राप्त होता है। उसमें वर्ण-वयस-वेश-भूषा-सेवा आदि का स्वरूप श्रीगुरु निर्दिष्ट कर देते हैं। भगवत्-कृपासे साधक सिद्धि लाभकर उस शरीरसे कृष्णसेवा सम्पादन करता है। इस देह द्वारा ही अष्टकालीन सेवा सम्पादन की जाती है। इस अन्तर-साधनको 'लीला-स्मरण' भी कहा जाता है। इस साधनमें यथावस्थित शरीरको गोपी-गोप या सखी-सखा या माता-पिता नन्द-यशोदादिकी वेशभूषामें सजानेका कहीं भी आदेश नहीं है। केवल मन-ही-मन सिद्ध देहकी भावानुकूल वेश-भूषादि चिन्ता करके लीला-स्मरणका आदेश दिया है श्रीमन्महाप्रभुने। अतः अन्तर-साधन केवल भावनामय है। प्राकृत शरीरके पतनके बाद उसी देहकी प्राप्ति पूर्वक व्रजमें कृष्ण-सेवाका सौभाग्य मिलता है।

इस प्रकार कान्ता-भावमयी मञ्जरीरूपमें कृष्णसेवाका विधान है गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें, जिसका श्रीमन्महाप्रभुने समय-समय पर शिक्षा-उपदेश द्वारा तथा अपने आचरण द्वारा आदर्श स्थापन किया है। यह रागानुगा-मार्गीय भजन-साधन एकमात्र श्रीमहाप्रभुका तथा उनके चरणाश्रित गौड़ीय गोस्वामिवृन्दका अनुपम अवदान है साधक-समाजके प्रति।

**नवद्वीपलीलामें रागानुगा—**

गौड़ीय वैष्णव-साधकोंके लिये श्रीश्रीगौरसुन्दर तथा श्रीश्रीव्रजेन्द्रनन्दन—दोनों स्वरूप ही भजनीय हैं। अतः नवद्वीप-लीला तथा वृन्दावनीय-लीला—दोनोंका चिन्तन अपरिहार्य है। श्रीमन्महाप्रभुने व्रजरसका पान कराकर भजनका आदर्श स्थापन कर जीव-जगत्को कृतार्थ किया है, केवल कृतज्ञता ज्ञापनके लिये वे गौड़ीय वैष्णवोंके उपास्य हैं—यह बात नहीं है। उनका भजन केवल साधन-मात्र नहीं, बल्कि वह साध्य भी है।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन स्वरूपसे उन्होंने जिस लीला-स्रोतको प्रवाहित किया, वही ही प्रबल वेग धारण कर श्रीनवद्वीपमें आकर उपस्थित हुआ। अतः व्रजलीलाकी परिणति या पूर्णता नवद्वीप-लीलामें है। श्रीकृष्णकी प्रेमवश्यताका विकाश व्रजलीलासे नवद्वीपलीलामें उत्कर्षमय है। व्रजमें रासलीलामें 'न पारयेऽहं'–(भा० १०। ३२।२२) इन शब्दोंसे केवल मुंहजुबानी श्रीकृष्ण-ने व्रजसुन्दरियोंके सामने अपनेको ऋणी स्वीकार किया था। नवद्वीप-लीलामें तो श्रीराधाके मादनाख्य-महाभावको अंगीकार कर क्रियात्मक रूपसे उनका ऋण चुकाया है।

नवद्वीप-लीलाकी सेवामें नियुक्त-साधक नवद्वीप-परिकरोंके व्रजभावमें आविष्ट होने-पर उनकी भावतरंगमें उनकी कृपासे अपनेको कृतार्थ करते हैं। उनके साथ वे व्रजलीलामें उपस्थित होकर उन्हें मञ्जरी-देहकी अपने-आप स्फूर्त्ति होती है और अपनी गुरुरूपा मञ्जरीके कृपादेशसे श्रीश्रीयुगलकिशोरकी सेवाका लाभ करते हैं। इसी प्रकार नवद्वीप-लीलाकी सेवाके भी उपयोगी सिद्ध-देहकी भावनासे श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें रागानुगा-सेवाका लाभ किया जाता है।

कृष्णलीलामृत सार, तार शत-शत धार,
दशदिगे बहे याहा हैते।
से चैतन्यलीला हय, सरोवर अक्षय,
मन हंस चराह ताहाते॥
एई अमृत अनुक्षण साधु महान्त मेघगण,
विश्वोद्याने करे वरिषण।
ताते फले प्रेम फल, भक्त खाय निरन्तर,
तार शेषे जीये जगजन॥
चैतन्यलीलामृतपूर, कृष्णलीला सुकर्पूर,
दोंहे मिलि हय सुमाधुर्य।
साधुगुरु-प्रसादे, ताहा जेइ आस्वादे,
से-इ जाने माधुर्य-प्राचुर्य॥

श्रीचै. च., २।२५।२२३-२६





# महाप्रभु श्रीगौरांग एवं राय रामानन्द

—डा० नित्यानन्दजी



श्रीपुरीसे श्रीमन्महाप्रभु दक्षिण-यात्राके लिये तैयार हुए। समस्त पुरीवासी भक्त प्रभुके भावी विच्छेदसे अति व्याकुल हो उठे। किन्तु श्रीप्रभुको तो दक्षिणदेशमें प्रेम-भक्ति, श्रीनामकी वन्या प्रवाहित करनी ही थी। सबके विनय करने पर भी प्रभु रुके नहीं। किसीको भी साथ न लेकर केवल एक सेवक कृष्णदासको साथ लेकर जब चलने लगे तो सार्वभौम भट्टाचार्यने विनम्र निवेदन किया, कि प्रभो! गोदावरी तीर-स्थित विद्यानगरमें राय रामानन्दको आप अवश्य मिलकर आइएगा, वह है तो राज-प्रतिनिधि, किन्तु है परमरसिक, प्रखर पण्डित तथा श्रेष्ठ भक्ति सिद्धान्तज्ञ। श्रीमहाप्रभुने हामी भर ली।

यात्रा करते-करते श्रीमहाप्रभु विद्यानगर पधारे और गोदावरीको देखते ही आपको यमुनाकी स्मृति जाग आई। आपने प्रेमविभोर होकर कुछ देर वहां नृत्य-गान किया। फिर गोदावरीके पार आकर उन्होंने स्नान किया और घाटसे कुछ दूर बैठकर महाप्रभु कृष्णनाम संकीर्तन करने लगे।

इसी समय राय रामानन्द भी पालकी पर चढ़कर वहां स्नान करने आये। अनेक वैदिक ब्राह्मण भी उनके साथ आये विधिपूर्वक स्नान-तर्पणादि करानेके लिये। श्रीमहाप्रभु जान गये—राय रामानन्द यही हैं। इधर रायने भी आज एक अपूर्व संन्यासीको बैठे देखा, जो शत-सूर्योंकी तरह कान्ति एवं तेजपुञ्जको विकीर्णकर रहा था। सुगठित विशाल देह, कमलके से विशाल नेत्र, प्रेमविभोर होकर कृष्ण-कृष्ण उच्चारण कर रहा था।

रामानन्द अपनेको स्थिर न रख सके। स्नान करके श्रीमहाप्रभुके पास आये। चमत्कृत होकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभुने जानते हुए भी उनका परिचय पूछा। उठाकर उन्हें आलिंगन किया। दोनोंके शरीरमें अश्रु-पुलक-कम्प-स्वेद आदि सात्त्विक विकार उदित हो उठे, गद्गद कण्ठसे कृष्ण-कृष्ण उच्चारणकर रहे थे दोनों। दोनों स्वस्थ होकर वहीं रेतीमें बैठ गये।

श्रीमहाप्रभुने श्रीसार्वभौमका परिचय देकर उनसे मिलनेकी अपनी उत्कण्ठा जताई।

रामानन्दने कहा—आप तो साक्षात् नारायण हैं, मैं अधम-विषयी जीव हूं। आप मेरे निस्तारके लिये ही यहां पधारे हैं।

श्रीमहाप्रभुने कहा—राय ! आप परमभागवत हैं। आपका दर्शनकर मैं मायावादी संन्यासी अपने हृदयको शोधन करने आया हूं।

इस प्रकार कुछ देर परस्पर प्रेमपूर्वक कथनोपकथन करके श्रीमहाप्रभुने कहा—मैं आपके मुखसे कृष्णकथा सुनना चाहता हूं।

रायने कहा—प्रभो ! आप उल्टी बात कह रहे हैं, मैं संध्या समय उस ब्राह्मणके घर आकर आपके दर्शन करूंगा, जहां आप निवास कर रहे हैं और आपके श्रीमुखसे कृष्ण-कथामृत पानकर अपने दुष्टमनको निर्मल करूंगा।

सन्ध्याकी वेलामें राय रामानन्द श्रीमहाप्रभुके पास पहुंचे। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया, श्रीमहाप्रभुने आलिंगन कर उनका सत्कार किया। दोनों एकान्तमें बैठकर कृष्णकथा-रस पान करने लगे।

सर्वप्रथम श्रीमहाप्रभुने कहा—राय ! आप परम साध्यका निरूपण कीजिये, किन्तु जो भी आप कहें, उसका शास्त्रीय प्रमाण साथ दीजिये।

साध्यसे श्रीमहाप्रभु जीवकी अभीष्ट-वस्तुको प्रकाशित करना चाहते हैं। अनेक वस्तुएं जीवकी अभीष्ट होते हुए भी एकमात्र सुखप्राप्ति ही समस्त जीवोंकी साध्यवस्तु है। धर्म, अर्थ, काम—इन तीनों पुरुषार्थोंका पर्यवसान शरीर एवं इन्द्रियोंके सुखमें है, जो क्षणभंगुर एवं नाशवान है। न तो इनसे नित्य सुखकी प्राप्ति होती है न दुखकी आत्यन्तिकी निवृति।

चतुर्थ पुरुषार्थ है मोक्ष, उसकी प्राप्तिसे दुखकी आत्यन्तिकी निवृति होकर मोक्ष प्राप्त होता है, किन्तु मोक्ष भी परम-साध्य वस्तु नहीं है। कारण कि मोक्ष-प्राप्त या ब्रह्मभूत आत्माराम मुनिगण भी एक अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्तिके लिये भगवत्-भजनमें प्रवृत्त होते हैं[1]। भगवत्-भजन की प्राप्ति होती है केवल प्रेमसे। प्रेमके द्वारा स्वसुख-गन्धलेश-शून्य भगवद्-सुखैकतात्पर्यमयी सेवाकी प्राप्ति होती है, और उसके द्वारा परात्पर रसस्वरूप असमोर्ध्व माधुर्यमूर्त्ति श्रीभगवान्के सर्वचित्ताकर्षक माधुर्यका अनुभवकर अनिर्वचनीय नित्य सुखकी प्राप्ति होती है। उससे जीवकी चिरन्तनी सुखवासनाकी चरम तृप्ति सम्भव है। इसलिये जीवके पक्षमें भगवत्प्रेम ही एक मात्र साध्यवस्तु है, और वही जीवका एकमात्र स्वरूपगत साध्य है। इस कृष्णप्रेमको ही लक्ष्यकर श्रीमहाप्रभुने राय रामानन्दसे साध्य-निर्णयका प्रश्न किया। क्रमशः सब साध्योंको रायके मुखसे कहलवा कर फिर उनका तुलनात्मक विवेचन करते हुए सर्वोत्कृष्ट कृष्णप्रेमके साध्य राधा-प्रेमका स्थापन किया।



---

१—आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

श्रीभागवत, १।७।१०



रायने कहा—अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्म पालन करनेसे विष्णु-भक्ति या कृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है। इसके प्रमाणमें रायने विष्णु पुराण (३-८-९) का एक श्लोक भी पढ़ा—

**वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।**
**विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारणम् ॥**

श्रीमहाप्रभुने कहा—राय ! तुमने ठीक कहा है, किन्तु वर्णाश्रम-धर्मके आचरणसे जो विष्णु-भक्ति प्राप्त होती है, वह जीवकी साध्य-वस्तु नहीं है। वर्णाश्रमधर्म-आचरणसे इह-लोक अथवा परलोकके सुख-सम्पदा प्रदान करने वाली भक्ति ही प्राप्त होती है, किन्तु उनके द्वारा प्रेममयी कृष्णसेवाकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये वर्णाश्रमधर्म आचरण द्वारा प्राप्त वस्तु बाहरी है। इससे आगे कहो।

तब रायने कहा—श्रीकृष्णमें कर्मोंका—कर्मोंके फलका अर्पण कर देनेसे जो भक्ति प्राप्त होती है, वही साध्य है।

**यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।**
**यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्व मदर्पणम् ॥** [श्रीगी० ९।२७]

श्रीमहाप्रभुने कहा—राय ! श्रीकृष्णमें कर्मार्पण करनेसे वर्णाश्रम-धर्माचरणसे होने वाले बन्धनसे जीव अवश्य छुटकारा पा लेता है। और जो लोग भजनीय तत्त्वका निर्णय नहीं कर सकते, उन्हें जैसे शास्त्रमें विराट्-स्वरूपकी उपासना बताई गई है, उसी प्रकार जो अनन्य-भजनकी रीति नहीं जानते, उनके लिये ही कृष्ण-कर्मार्पणका विधान है। जो करो, जो खाओ, जो होम-दान इत्यादि करो, उसे मेरे अर्पण करो—ऐसा श्रीभगवान्‌ने भी गीता (९।२७) में कहा है। किन्तु इस कर्मार्पणमें स्वसुख-वासना है, कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेका लक्ष्य है, उससे कृष्णसेवाका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इसे अनन्यभक्ति नहीं कहा जा सकता। भले ही इसे कर्ममिश्रा-भक्तिका नाम कोई-कोई देते हैं, क्योंकि कर्मार्पण करते समय कृष्ण-स्मृति मात्र हृदयमें उदित होती है। किन्तु इसे जीवका परम साध्य नहीं कहा जा सकता। यह बाहरकी वस्तु है। राय ! इससे कुछ और श्रेष्ठ वस्तु कहिये।

रायने महाप्रभुकी बातकी गहराईको समझा और फिर बोले—स्वधर्म-त्यागसे जिस वस्तुकी प्राप्ति होती है, वही साध्य है। सर्व-धर्मत्यागके विषयमें रायने श्रीकृष्णमुख-कथित गीता (१८।६६) का श्लोक भी पढ़ा—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥**

श्रीमहाप्रभुने कहा—सर्वधर्म-त्यागकी जो बात आपने कही है, ठीक है; किन्तु तीन प्रकारके लोग हैं जो वेद-विहित नित्य-नैमित्तिक कर्मों या वर्णाश्रम-धर्मोंका त्याग करते हैं। एक तो वे मूर्ख लोग हैं जिनको धर्म-अधर्मका कुछ ज्ञान ही नहीं होता, वे स्वधर्माचरण छोड़े

रहते हैं। दूसरे वे लोग हैं जो नास्तिक हैं, जिन्हें वेदविहित धर्मोंपर विश्वास ही नहीं, जानकर भी वे स्वधर्माचरण छोड़े रहते हैं। तीसरे वे हैं जो कर्मोंके गुण दोषोंको जानकर, उनका सूक्ष्म विचारकर कर्मोंका त्याग कर देते हैं। वे जानते हैं कि कैसे भी कर्म क्यों न हों, वे शुद्ध भक्तिके अङ्ग नहीं हैं, उन कर्मोंसे कृष्णसेवाकी प्राप्ति कभी सम्भव नहीं; अतः वे उन कर्मोंको त्याग देते हैं। पहले दो प्रकारके लोगोंसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु राय ! तीसरे प्रकारके लोगोंके स्वधर्म-त्यागके पीछे अपने समस्त पापोंसे मुक्तिकी धारणा रहती है। पापोंसे मुक्त होनेका लक्ष्य लेकर उनकी शरणागति होती है। उनके सर्वधर्म-त्यागका लक्ष्य कृष्ण-सेवा नहीं। शुद्ध भक्ति उनके सर्वधर्म-त्यागका कारण नहीं है। अतः स्वधर्म-त्यागसे प्राप्त होने वाली पाप-मुक्तिकी भित्तिपर खड़ी वस्तु साध्य नहीं है। इससे और कोई श्रेष्ठ साध्य कहो।

राय रामानन्दने बहुत विचारकर कहा—प्रभो ! ज्ञानमिश्रा-भक्ति साध्यसार है। ब्रह्मभूत होनेपर भगवान्‌की पराभक्तिकी प्राप्तिकी बात श्रीगीता (१८।५४) में भी कही गई है—

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।**
**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥**

श्रीमहाप्रभुने कहा—राय ! यह भी बाहरी वस्तु है, कुछ आगे कहो। क्योंकि जीव और ब्रह्मके ऐक्यज्ञानकी सिद्धि या सायुज्य मुक्तिके लिये ज्ञान साधनमें भक्तिका मिश्रण किया जाता है; परन्तु जीव-ब्रह्मैक्यज्ञान तो भक्तिका विरोधी है, कारण कि जीवका ब्रह्मके साथ जो सेव्य-सेवकत्वका स्वरूपगत सम्बन्ध है इसमें वह विलुप्त हो जाता है। ज्ञानमार्गके साध्य सायुज्यको प्राप्त करानेमें वहां भक्ति केवल सहायकरूपसे रहती है। ऐसी निर्भेद ब्रह्मानुसन्धानात्मक भक्ति कभी पराभक्तिमें भी परिणत नहीं होती, कृष्णसेवा भी प्राप्त नहीं कराती।

राय रामानन्दने आगे कहा—ज्ञानशून्या-भक्ति ही साध्यसार है। इसकी पुष्टिके लिये उन्होंने श्रीभागवत (१०।१४।३) का यह श्लोक पढ़ा—

**ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।**
**स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥**

श्रीमहाप्रभु बोले—राय ! यह ठीक है कि श्रीभगवान्‌के स्वरूप-ऐश्वर्यादिके ज्ञानको छोड़कर जो केवल श्रीभगवान् एवं उनके भक्तोंकी रूप-गुण-लीलामयी कथाओंका श्रवण करते हैं, श्रीभगवान् उनके वशीभूत हो जाते हैं। अतः यह साध्य हो सकती है। इसमें कृष्णसेवा-वासनाके विकाशकी सम्भावना भी है; किन्तु आप यह देखें कि भगवत्-भागवतोंकी कथाओंके श्रोताओंके वशीभूत भगवान् नहीं होते। वे उनके वशीभूत होते हैं जिनके हृदयमें भगवत्-भागवतोंकी कथा-श्रवणसे कृष्ण सेवा-वासना या प्रेमका उदय हो उठता है।





केवल श्रवण मात्र भगवत्-वशीभूतताका कारण नहीं है। इसलिये ज्ञान-शून्या भक्तिके आगेकी साध्यवस्तु बताइये।

रायने प्रभुकी गहराईको भांपा और देखा कि प्रभु ही मेरे हृदयमें बैठकर इस प्रकार उत्तरोत्तर साध्यकी स्फूर्ति करा रहे हैं। तब वे बोले—प्रभो ! प्रेम-भक्ति ही साध्य है—

**नानोपचारकृतपूजनमार्तबन्धोः प्रेम्णैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात्।**
**यावत क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा तावत् सुखाय भवतो ननु भक्ष्यपेये ।।**

पद्यावली-१३

श्रीमहाप्रभु बोले—प्रेमभक्ति ही साध्य है, किन्तु प्रेम-भक्ति कहनेसे भगवान्‌की भक्तवश्यताकी विशेषताका विवरण स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। भक्तवश्यताकी विशेषता प्रेमभक्तिकी विशेषतापर निर्भर करती है, जितना प्रेमभक्तिका विकाश अधिक होता है, उतना भक्तवश्यताका भी विकाश बढ़ता है। भक्तोंके मनके भावोंकी प्रधानताके अनुसार प्रेमभक्तिकी अनेक वैचित्री है। इसलिये राय ! इससे भी आगे कहो।

राय रामानन्दने विचार किया कि भक्तकी सेवा-वासनाके विकाशके तारतम्यानुसार प्रेमभक्तिकी अनेक वैचित्री है। उसीसे श्रीकृष्णकी भक्तवश्यताके विकाशमें भी अनेक तारतम्य है। तब वे बोले—'दास्यप्रेम सर्वसाध्य है'—(श्रीभागवत, ९-५-१६)—

**यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः। तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ।।**

श्रीमहाप्रभुने कहा—रामानन्द ! दास-भक्त चाहे मथुरा-द्वारकाके हों, अथवा व्रजके, उनके चित्तमें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें एक सम्भ्रम या गौरवबुद्धि बनी रहती है, क्योंकि वे श्रीकृष्णको अपना स्वामी या प्रभु जानते हैं। श्रीकृष्ण जिस सेवाका आदेश करते हैं, वे उसीको सम्पादन करते हैं। किन्तु यदि किसी और सेवाको वे अपना अभीष्ट मानकर करना चाहें तो वे नहीं कर सकते, प्रभुको वह सेवा स्वीकार होगी कि न, इस सम्भ्रममें रह जाते हैं। अतः वे अपनी इच्छानुसार सेवा नहीं कर पाते। सेवा-वासनाके विकसित होनेपर भी वे उसे कार्यान्वित नहीं कर सकते। इसलिये राय ! इससे भी कुछ आगे कहो।

राय रामानन्दके दिलमें लगी यह बात, तब वे बोले—प्रभो ! सख्यप्रेम सर्वसाध्य है। सखा गौरव-सम्भ्रम रहित सेवा करते हैं—

**इत्थंसतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।**
**मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ।।**

भा० १०।१२।११

श्रीमहाप्रभु बोले—राय ! सुन्दर है, दास्यसे सख्यप्रेमकी विशेषता है ही, क्योंकि सख्यमें सम्भ्रम या गौरव बुद्धि नहीं रहती, विशेषतः व्रजके माधुर्यात्मक सखाओंमें; जैसा कि

आपने प्रमाण-उक्तिमें व्रजके सखाओंकी बात कही है। राय ! सख्यादि भाव व्रजपरिकरों या नित्यसिद्ध परिकरोंकी ही सम्पत्ति है, साधक-जीवोंके यथावस्थित शरीरमें दास्यभाव ही रहता है, इससे आगे नहीं। सख्यभाव नित्य परिकरोंमें है, जीवके अधिकारसे यह बाहरकी भावना है।

राय ! देखिये, सख्यमें गौरवबुद्धि या संकोच तो नहीं है, निःसंकोच है, श्रीकृष्ण-निष्ठा भी है, किन्तु श्रीकृष्णमें उनकी जो ममता है, वह साधारण स्तरपर विकसित होती है। ममताका चरमतम विकाश नहीं है, इसलिये इससे भी आगे कहो।

तब रायने कहा—वात्सल्य प्रेम साध्यसार है, क्योंकि इसमें गौरवबुद्धि नहीं, संकोच-विश्रम्भ भी नहीं, अपितु ममताकी इतनी अधिकता भी है कि श्रीकृष्णके माता-पिता उनकी ताड़ना-भर्त्सना भी करते रहते हैं—

**नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया। प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥**

भा० १०।९।१०

श्रीमहाप्रभुने कहा—वात्सल्यप्रेम उत्तम है। इसमें लालन-पालनकी विशेषता है। वे अपनेको श्रीकृष्णका लालक-पालक मानते हैं और श्रीकृष्ण भी अपनेको उनकी सन्तान मानते हैं एवं उनकी छोटी-से-छोटी सेवा भी करनेको तैयार रहते हैं। किन्तु राय ! दास्य, सख्यकी भांति वात्सल्यमें भी एक सम्बन्धकी अपेक्षा है। श्रीकृष्णसेवा उनके सम्बन्धके पीछे-पीछे चलती है। जिस सेवासे सम्बन्धकी मर्यादाका उल्लंघन हो--ये तीनों ऐसी कोई सेवा नहीं कर सकते। अतः वात्सल्यप्रेम भी सम्बन्ध-मर्यादाकी सीमामें बंधा हुआ है। इससे आगे कहो।

राय रामानन्दने विचारकर कहा--कान्ताप्रेम सर्व साध्यसार है--

**नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।**
**रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ लब्धाशिषां य उद्गाद व्रजसुन्दरीणाम् ॥**

तब श्रीमहाप्रभु बोले—राय ! यही कान्ताप्रेम साध्यकी अवधि है, क्योंकि इसमें दास्य, सख्य, वात्सल्यके सब गुण हैं। विशेषतः निजाङ्ग-सेवा है और व्रजकी कृष्णकान्ताओंमें सम्बन्ध मर्यादाकी कोई अपेक्षा नहीं है। जिस प्रकार भी हो व्रजगोपीगण श्रीकृष्णको सेवा द्वारा सुखी करना चाहती हैं। उसके लिये वे वेद धर्म, कुलधर्म, लोकधर्म यहां तक कि स्वजनोंका भी त्याग करनेमें नहीं हिचकिचातीं। उनकी सेवा-वासनाके विकाश-पथमें कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। अतः उनकी कृष्ण-वश्यता भी सर्वातिशायी है।

इतनेपर भी कौतुकी श्रीमन्महाप्रभुकी जिज्ञासा समाप्त न हुई। उन्होंने जब और भी आगे कुछ कहनेको कहा तो राय रामानन्द अवाक्से रह गये। फिर श्रीमन्महाप्रभुने उनके मुखसे राधा प्रेमकी महिमाको प्रकाशित कराया। राधातत्त्व, कृष्णतत्त्व तथा प्रेमतत्त्वको प्रकट कराया। इस प्रकार





साध्यकी परमावधि प्रकाशित करानेके पश्चात् सुखकी प्राप्तिके साधन पर भी प्रकाश डाला। —उन्होंने कहा राधाप्रेमरूपी साध्यको प्राप्त करनेमें जीव असमर्थ है। जीवकी क्या चली, महिषी-लक्ष्मीगण भी नहीं, अन्यान्य व्रज-गोपीवृन्द भी राधाप्रेमको प्राप्त नहीं कर सकतीं।

जीव नित्य-कृष्णदास है। दासकी सेवा सदा आनुगत्यमयी है। अतः साधकजीव केवल राधाप्रेमकी आनुगत्यमयी सेवा ही प्राप्त कर सकता है। राधाप्रेमकी आनुगत्यमयी सेवाका अवकाश राधा-कृष्ण-कुञ्जलीलामें ही प्राप्त हो सकता है, राधाकृष्ण-कुञ्जलीलामें एक मात्र राधा-दासीरूपसे अर्थात् मञ्जरीरूपसे (सिद्धदेह द्वारा) प्रवेश प्राप्त हो सकता है। [ विस्तृत व्याख्या एवं साध्य-साधन निर्णय-प्रसंग श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला अष्टम परिच्छेदमें द्रष्टव्य है ]

## पदरजमें सतकोटि प्रणाम

पूर्ण त्यागमय सर्वसमर्पणकी जिनके अनन्य अभिलाष।
निज-सुख-वाञ्छा-लेश-गन्धका त्याग, सहजमन परमोल्लास॥
प्रियतम-सुख ही एकमात्र है जिनके जीवनका आनन्द।
पूर्ण आनन्द ममत्व नित्य प्रियतम-पद-पंकजमें स्वच्छन्द॥
प्रियतम मनसे जिनका मन है, प्रियतम प्राणोंसे हैं प्राण।
प्रियतम सेवारत नित श्रवणेन्द्रिय त्वग्-दृग-रसना-घ्राण॥
नित्य कृष्ण-सेवा-रसरूपा सर्वसद्गुणोंकी जो खान।
सर्व सुखोंके दाताको भी देती अहं-रहित सुख-दान॥
ऐसी प्रियतम-सुख-स्वरूपिणी कृष्ण-गतात्मा निरहंकार।
गोपीजन, है भरा हृदय शुचि प्रेम-सुधारस पारावार॥
जिनके पावन प्रेमामृत-रस आस्वादन हित भगवान।
शरद-निशाओंमें मधु मनकर निर्मित रचते रस विधान॥
पुण्यमयी उन गोपीजनके पदरजमें सतकोटि प्रणाम।
जिसे चाहते उद्धव बनकर लता-गुल्म औषधि अभिराम॥

—श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार (पदरत्नाकार)

# महाप्रभु-श्रीगौरांग एवं श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती

डॉ० शकुन्तला अग्रवाल
एम. ए., पी-एच डी.



सोलहवीं शताब्दीमें काशी संन्यासियोंका केन्द्र था। जगद्गुरु शंकराचार्यका अद्वैत-वाद जनमानसमें गहरा प्रविष्ट हो चुका था। 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' की चर्चा तथा उपनिषद-ज्ञानकी पांडित्यपूर्ण विचार-विवेचनामें ही विद्वान् उलझ गये थे। भक्तों और भक्ति-मार्गियोंकी उपासना पद्धतिका न केवल उपहास होता था अपितु उनका पर्याप्त अनादर भी।

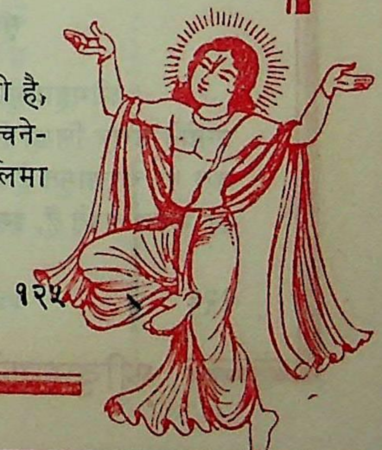
काशीमें स्वामी श्रीप्रकाशानन्द (श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीका महाप्रभु श्रीचैतन्यसे भेंटके पूर्वका नाम) की अति प्रतिष्ठा थी। वे अपनी प्रखर प्रतिभा और स्वाध्यायके बलपर किशोरावस्थामें ही अनेक शास्त्रोंके पारंगत होकर प्रखर विद्वान् हो गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया ही था कि उन्हें 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'—का परिज्ञान हो गया और उन्होंने प्रखर ज्ञानवेगमें संन्यास ग्रहण कर लिया। अपने अनुपम पाण्डित्यके कारण वे अद्वैत-वेदान्तके प्रधान व्याख्याताके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। 'श्रीबिन्दुमाधव' मन्दिरके निकट एक मठमें सहस्राधिक विद्यार्थियोंको अद्वैतवादके प्रतिष्ठापक भाष्योंका उपदेश देते, अद्वैत-वेदान्तका प्रसार करते।

श्रीचैतन्य महाप्रभु काशीमें पधारे। इनकी भक्ति-भावना, नामाविष्टतासे असंख्य भक्त प्रभावित हो उठे। किन्तु वे इनके इस आचरणको देखकर इनकी निन्दा-आलोचना करने लगे।

संन्यासीके लिये रागनिष्ठ-भक्ति और पूजा-कीर्त्तन निषिद्ध माना जाता था। इसीलिए श्रीप्रकाशानन्द भी महाप्रभु श्रीचैतन्यके कृष्णप्रेम और इनकी भक्ति-पद्धतिकी पर्याप्त आलोचना करते थे: (श्रीचै० च० २।१७।११६)—

'संन्यासी नाम मात्र महा इन्द्रजाली।
काशीपुरे ना बिकाये तार भावकाली ॥'

कहा करते सबके सामने—चैतन्य तो नाम-मात्रका संन्यासी है, महा इन्द्रजाली है, सबपर ऐसा जादू फेरता है कि सब उसके साथ नाचने-कूदने लगते हैं; किन्तु इस काशी नगरीमें उसकी यह भावरूपी कालिमा (स्याही) बिकने की नहीं।





महाप्रभु श्रीचैतन्यने सर्वप्रथम श्रीकृष्णानन्द आगम-वागीशको अपने प्रभाव क्षेत्रमें लिया। फिर जगन्नाथपुरीमें वेदान्ती और समादृत विद्वान् वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्यको अपना अनुगत किया। श्रीकृष्णानन्द आगम-वागीश तन्त्रशास्त्रके अध्येता और रचयिता थे। सार्वभौम भट्टाचार्य वेदान्त-चूड़ामणि थे। वे बादमें महाप्रभुजीसे प्रभावित हुए। उन्हें श्रीमन्महाप्रभुने षड्भुजरूपमें दर्शन दिये। वे आत्मसमर्पणकर श्रीमन्महाप्रभुके परम कृपापात्र बन गये, उनकी स्वयं-भगवत्ता-विषयक अनेक रचनायें लिखीं।

श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीको यह जानकर बहुत दुख हुआ। वह सोचने लगे यह कैसा संन्यासी? यह अवश्य ही कोई इन्द्रजाली है जिसने अपनी रूपमोहिनीसे सार्वभौम भट्टाचार्य तक को मोहित कर लिया। परन्तु मैं तो ज्ञानका प्रकाश हूँ, मेरे ऊपर उस संन्यासीके सौन्दर्यका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। उनको यह भी ज्ञात हुआ कि उनके भाई वेंकटभट्ट, त्रिमल्लभट्ट और भतीजे गोपालभट्टने भी श्रीकृष्णचैतन्यके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया है। यह बात सुनकर सरस्वतीपाद अपने-आपको अपमानित समझ महाप्रभुजीकी निन्दा करने लगे। वे भक्तिको भावुकोंका धर्म बतलाते और कहते कि पुरुष होकर नाचने-गानेसे मर जाना अधिक श्रेष्ठ है। अज्ञानी व्यक्तियोंने भगवान्‌की कल्पना कर ली है। जीव तो स्वयं ब्रह्म है। सर्व जगत् ब्रह्म है। परिदृश्यमान् जगत् सब मिथ्या है। उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जीव और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान ही जीवका साध्य है।

दूसरी ओर श्रीमहाप्रभुजीकी महामहिम प्रेमभक्ति, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ब्राह्मण-चाण्डाल, स्थावर-जंगम—सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी रसधारासे सिंचनकर शाश्वत शांति-आनन्द विभोर कर रही थी।

ऐसी किम्वदन्ती है कि सरस्वतीपादने अपनी भावनाओंको एक पत्रके रूपमें लिखकर श्रीमहाप्रभुजी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये उनके पास भेज दिया। उन्होंने लिखा कि जहाँपर मन्दाकिनी एवं मणिकर्णिका है, स्वयं श्रीमहादेव जहाँ मोक्ष प्रदान करते हैं, फिर भी पशुओंके समान मूर्ख व्यक्ति उस स्थानको त्यागकर अन्यत्र भागते हैं—

**यत्रास्ते मणिकर्णिका मलहरा स्वर्दीर्घिका दीर्घिका**
**रत्नन्तारक मोक्षदं तनुभृते शम्भूः स्वयं यच्छति।**
**एतदतत्त्वतद्भुतधामतः सुरपुरो निर्वाणमार्गस्थितं**
**मूढ़ोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति।**

श्रीमहाप्रभुजीने उस पत्रको बहुत आदरपूर्वक लिया, किन्तु पढ़कर प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने उत्तर लिखा कि मणिकर्णिका भगवान्‌का स्वेदजल है और श्रीगंगा उनके चरणोंका जल या चरणामृत है। काशीपति श्रीविश्वनाथ स्वयं गंगाजलको मस्तकपर धारण कर भगवान्‌का भजन करते हैं, इसलिए हे सखे! भगवान्‌के चरणकमलोंका ही भजन कर—

धर्माम्भो-मणिकर्णिका भगवतः पादाम्बुभागीरथी
काशीनां पति वर्द्धमेव भजते श्रीविश्वनाथ स्वयं।
एतस्यैवहि नाम शम्भुनगेर विस्तारकं तारकं
तस्मात् कृष्णपदाम्बुजं भज सखे श्रीपाद ! निर्वाणदम् ॥

श्रीसरस्वतीसे इसका कुछ उत्तर नहीं बना, किन्तु निरन्तर श्रीमहाप्रभुकी निन्दाभरी आलोचना करते रहे।

श्रीमहाप्रभुजी झारिखण्डके मार्गसे वृन्दावन होते हुए काशी पहुँचे। श्रीतपनमिश्र एवं श्रीचन्द्रशेखर उस समय काशीमें ही थे। इन दोनोंके आग्रहवश महाप्रभुजीने काशीमें कुछ दिन वास किया। वहीं पर एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण रहता था। उसकी सरस्वतीपादके प्रति बहुत श्रद्धा थी, किन्तु महाप्रभुके दर्शन कर वह इनका ही भक्त हो गया था। उसने सरस्वती-पादके सम्मुख महाप्रभुजीको अलौकिक रूपमाधुरी तथा नामसंकीर्त्तन-निष्ठाका वर्णन किया। सरस्वतीपादने महाप्रभुजीका उपहास करते हुए इनको हीन-सम्प्रदायका संन्यासी बतलाया।

महाप्रभुजीकी निन्दा सुनकर उस भक्तका हृदय बहुत दुखी हुआ। उसने महाप्रभुजीके सम्मुख सब वृतान्त कह सुनाया। महाप्रभुजीने कहा कि जो मायावादी होते हैं वह श्रीकृष्णके प्रति अपराधी होते हैं। ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य ही उच्चारण करते हैं। उनके मुखसे कृष्णनाम उच्चारित नहीं होता, महाप्रभुजीने श्रीकृष्णस्वरूप तथा श्रीकृष्णनामको अभिन्न बतलाया। वह नाम और नामीके अभिन्नत्वकी शिक्षा देकर वृन्दावन आ गये। प्रकाशानन्दजीसे इस बार भेंट नहीं हुई। सरस्वतीपाद महाप्रभुजीका काशीसे गमन सुनकर बहुत हर्षित हुए। स्वयंको सर्वथा सम्पन्न समझकर कहने लगे कि मेरे भयसे ही वह चैतन्य मेरे पास नहीं आया।

वृन्दावनसे लौटकर महाप्रभुजी पुनः काशी आये। भक्त-समाज महाप्रभुजीकी निन्दासे बहुत व्याकुल था। महाराष्ट्री विप्रने महाप्रभु चैतन्य और प्रकाशानन्दजीका परस्पर मिलन करानेके लिये अपने घरपर सन्तसेवाका आयोजन किया। श्रीसरस्वती सहित अनेक संन्यासियों-को, श्रीमहाप्रभुको और उनके भक्तोंको भी आमंत्रित किया। श्रीमहाप्रभु चैतन्यने जैसे ही सभामें प्रवेश किया, श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती उनके तेज और व्यक्तित्वसे हठात् अभिभूत हो गये। उनके हृदयका घृणाभाव दर्शनमात्रसे ही क्षण भरमें विलीन हो गया। प्रकाशानन्द उनकी विनम्रता देखकर अति लज्जित हुए। श्रीमहाप्रभुजी ऐसे स्थान पर जाकर बैठे थे, जहाँ सभी व्यक्तियोंने पैर धोए थे। प्रकाशानन्दजीने उनसे उस स्थानसे उठकर अपने निकट उच्चासन पर आकर बैठनेका आग्रह किया। श्रीमहाप्रभुने स्वयंको हीन-सम्प्रदायका संन्यासी कहकर, उच्च सम्प्रदायके संन्यासीके समक्ष बैठनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। इससे प्रभावित होकर श्रीप्रकाशानन्दने स्वयं उनको अपना आसन देकर सम्मानित किया और पूछा आप संन्या-सियोंके समान आचरण क्यों नहीं करते। वेदपाठके स्थानपर नृत्य-गीतादिमें क्यों व्यस्त रहते हैं ? महाप्रभुने संक्षेपमें उत्तर देते हुए समझाया कि संन्यास





ग्रहण करते समय मेरे श्रीगुरुदेवने कहा—तुम मूर्ख हो, तुम्हारा वेदान्तमें अधिकार नहीं है। तू कृष्णमन्त्रको सदा जपा कर, यही वेदान्तका सार है। इसीसे तेरा संसार-मोचन हो जायेगा और कृष्णनामसे ही कृष्णचरणोंकी प्राप्ति हो जायेगी। श्रीगुरुदेवने मुझे एक श्लोक भी सुनाया था—

**हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।**
**कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।**

सरस्वतीपाद! उस आज्ञाको पाकर मैं सदा श्रीकृष्णनाम हर क्षण निरन्तर ग्रहण करता हूं। उसीके प्रभावसे मेरा धैर्य छूट जाता है, न जाने मैं क्यों नाचने-गाने, हंसने और कभी रोने लगता हूं। मुझे कृष्णनाममें ऐसे आनन्द-सिन्धुका आस्वादन मिलता है कि उसके आगे ब्रह्मानन्द मुझे अति तुच्छ गोष्पदके सदृश लगता है।

कैसा मिठास था प्रभुके वचनोंमें? सरस्वतीपादका चित्त पलट गया। उन्होंने कहा—चैतन्यदेव! जो तुम कह रहे हो, सब सत्य है, कृष्णप्रेमा जो तुममें उदित हुई है, किसी भाग्यवान्‌में ही उसका आविर्भाव होता है। किन्तु, यह बताइये, आप वेदान्त क्यों नहीं सुनते, उसमें क्या दोष है? वेदान्त-श्रवण तो संन्यासीका मुख्यधर्म है।

**श्रीमहाप्रभुने कहा**—यदि आप बुरा न मानें तो निवेदन करूं? प्रभुकी यह बात सुनकर सब संन्यासी-समाज ही एक स्वरमें बोल उठा—कहिये, कहिये, आप तो हमें साक्षात् श्रीनारायण दीखते हैं। आपके वचन एवं रूपमाधुरीसे हमारे नेत्र एक अद्भुत शीतलताका अनुभव कर रहे हैं।

**श्रीमहाप्रभुने कहा**—वेदान्त-सूत्र स्वयं ईश्वरके वाक्य हैं, श्रीनारायणने ही श्रीव्यासके रूपमें उन्हें अभिव्यक्त किया है। उपनिषत् सहित सूत्र जिस तत्त्वका निरूपण करते हैं, मुख्य-वृत्तिसे उनके अर्थ करनेमें ही महत्व है, किन्तु श्रीपाद शंकराचार्यने उन सूत्रोंका गौण-वृत्तिमें अर्थकर भाष्य रचा है, जो श्रीभगवान्‌के हार्द्‌के विपरीत है। उसके सुननेसे जीवका सर्वनाश होता है। प्रभुने आगे कहा—क्षमा कीजिये, श्रीपाद शंकराचार्यजीका भी इसमें कोई दोष नहीं है वे स्वयं महादेव शिव हैं, परम वैष्णवाग्रगण्य हैं, उन्हें ऐसा करनेकी आज्ञा स्वयं-भगवान्‌ने ही की थी—

**स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान् मद्‌बिमुखान् कुरु।**
**माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।।**

पद्मपुराण उत्तर खण्ड, ६२।३१

श्रीभगवान्‌ने कहा था—हे शंकर! तुम अपने कल्पित आगम-शास्त्रके द्वारा लोगोंको मेरे विमुख करो, और मुझको भी गोपन करो, अर्थात् मेरे सविशेष परम माधुर्यमय स्वरूपका परिचय लोगोंको मत दो। इससे इस सृष्टिकी उत्पत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी।

इसी बातको श्रीशिवजीने फिर श्रीपार्वतीजीसे भी कहा है—

**मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।**
**मयैव विहितं देवि ! कलौ ब्राह्मण-मूर्तिना ॥**

पद्मपुराण, उ० खण्ड, २५।७

हे देवि ! कलिकालमें मैंने ब्राह्मण-मूर्त्ति श्रीशंकराचार्यका रूप धारणकर मायावाद असत्-शास्त्रकी रचनाकी है, जो वास्तवमें प्रच्छन्न बौद्धमत ही है ।

श्रीमहाप्रभुके ये शास्त्रीय-वचन सुनकर सब संन्यासियों सहित श्रीसरस्वतीपाद चौंक उठे, और बोले, कृष्णचैतन्य ! आप ये क्या कह रहे हैं ? हम आपसे वेदान्त-सूत्रोंके मुख्य-वृत्तिके अर्थोंको सुनना चाहेंगे, यदि आप कृपा करें ।

**श्रीमहाप्रभुने कहा**—सुनिये, अति संक्षेपसे कहूंगा—ब्रह्म-शब्दका मुख्य अर्थ है चिदैश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्दघन सविशेष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण । किन्तु आचार्यपादने ब्रह्मको निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक स्थापन किया है । इससे बढ़कर भगवान्के प्रति और अपराध क्या हो सकता है ? जीव भगवान् श्रीकृष्णकी तटस्था-शक्ति अर्थात् जीव-शक्तिका अंश है । नित्य कृष्णदास है । स्वरूपतः जीव अल्पज्ञ, अणु चैतन्य माया-वशीभूत तथा दुखाकर है । उस जीवको आपके यहां ब्रह्म कहकर जीव एवं ब्रह्मकी एकता निरूपण कर दी गई है । केवल चिदंशमें ऐक्य है, न स्वरूपमें, न शक्ति और न परिमाण में ।

श्रीव्यासदेवने वेदान्तसूत्रमें जगत्को ब्रह्मकी परिणति कहकर परिणामवाद स्थापन किया है, किन्तु ब्रह्मके विकारी होनेके भयसे भ्रान्त होकर श्रीआचार्यने विवर्तवादको स्थापन करनेकी व्यर्थ चेष्टा की है । श्रीभगवान् तो अपनी अचिन्त्य शक्तिसे, इच्छासे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करते हैं, वे सदा अविकारी रहते हैं । प्राकृत चिन्तामणिसे अनन्त अभीष्ट वस्तुएं प्रकट होती हैं, किन्तु वह स्वयं अविकारी रहती है, फिर सर्वशक्तिमान्में सृष्टिके कारण विकारकी क्या धारणा ?

**श्रीमहाप्रभुने आगे कहा**—श्रीआचार्यपादने 'तत्त्वमसि' को महावाक्य कहा है । किन्तु वह महावाक्य कैसे हो सकता है ? वह तो सामवेदके अनेक उपनिषदोंमें से एक—छान्दोग्य उपनिषदके वाक्यका भी एक अंश मात्र है । वेदोंका निदान, सर्वविश्वधाम एकमात्र 'प्रणव' ही महावाक्य है । —इस प्रकार श्रीशंकराचार्यपादने वेदान्त-सूत्रोंके अभिधावृतिके अर्थ भगवान् श्रीकृष्णको सर्वत्र आच्छादितकर गौणी वृत्तिको अपनाया है ।

यह सुनकर समस्त संन्यासी-समुदाय चमत्कृत हो उठा और श्रीमहाप्रभुके मुखसे वेदान्तसूत्रकी व्याख्याका श्रवण किया । श्रीमहाप्रभुने एकमात्र स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको **'सम्बन्धतत्त्व'**, तथा भक्तिको **'अभिधेयतत्त्व'**





तथा प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण-सेवा-प्राप्तिको **'प्रयोजन तत्त्व'** कहकर निरूपण किया। इस प्रकारके वेदान्तसार को सुनकर श्रीसरस्वतीपाद तथा समस्त संन्यासी-समुदायने कहा—

**वेदमय मूर्त्ति तुमि साक्षात् नारायण।**
**क्षम अपराध पूर्वे जे कैनु निन्दन॥**

श्रीचै० च० १।७।१४१

हे भगवन्! आप तो वेदमय मूर्त्ति साक्षात् श्रीनारायण हैं, हमने जो आपकी पहले अनेक निन्दा की, उस अपराधको आप क्षमा कीजिये।

श्रीमन्महाप्रभुने सबके अपराधोंको क्षमाकर उन्हें श्रीकृष्णनामका उपदेश दिया। सबने श्रीप्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया एवं उन्हें गुरुरूपमें वरण कर लिया। श्रीमहाप्रभुकी वन्दना करते हुए श्रीसरस्वतीपादने कहा—हे चैतन्यचन्द्र। संसारके शोक-समुद्रमें पड़े हुए मुझ निराश्रित व्यक्तिको अपने चरणोंका आश्रय दीजिए—

**संसार-दुख.जलधौ पतितस्य काम-**
**क्रोधादिनक्रमकरैः कवलीकृतस्य।**
**दुर्वासनानिगड़ितस्य निराश्रयस्य**
**चैतन्यचन्द्र! मम देहि पदावलम्बम्॥**

अपनी भावदशाका चित्र अंकित करते हुए उन्होंने कहा कि स्वयंको ब्रह्म समझने वाले, उत्तम तपस्या करने वाले, जितेन्द्रियको भी धिक्कार है, क्योंकि एकमात्र श्रीमहाप्रभुके चरणकमलोंके मधुका स्पर्श पाकर ही व्यक्ति धन्य हो सकता है—

**धिगस्तु ब्रह्माहं वदनपरिफुल्लान् जड़मतीन्**
**क्रियासक्तान् धिग्धिग्विकर तपसो-धिक्च यमिनः।**

इस रसात्मक-भक्तिका प्रबोध होते ही उनका नाम महाप्रभुजीने प्रबोधानन्द रख दिया। प्रकाशानन्दसे प्रबोधानन्द बनाकर श्रीवृन्दावनकी परम पुनीत रसमयी लीलाभूमिकी ओर उन्हें जानेकी आज्ञा दी। सबने श्रीमहाप्रभुको बीचों-बीच बैठाकर प्रसाद ग्रहण किया। काशी-निवासी समस्त भक्तोंका चिरताप शान्त हो गया।

महाप्रभुजीसे दीक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् उनके ज्ञानरूपी मरुस्थलमें भक्तिरसका सागर हिलोरें भरने लगा। इस भेंटसे श्रीप्रबोधानन्द इतने भाव-विगलित हुए कि उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुकी अवतार-महिमासे प्रेरित होकर, श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् जैसे श्रद्धाशवलित और आत्मनिवेदनात्मक मार्मिक ग्रन्थकी संसृष्टि की। श्रीमहाप्रभुजीके प्रेमपुमर्थोका सिद्धान्त उनके जीवन-दर्शनका अभिन्न अंग बन गया। उन्होंने स्वयंको दलित-द्राक्षा की भांति निचोड़कर रख दियाः—

ईशं भजन्तु पुरुषार्थ-चतुष्टयाशा
दासा भवन्तु च विधाय हरेरुपासाः ।
किंचिद्रहस्यपद - लोभितधीरहं तु-
चैतन्यचन्द्रचरणं शरणं करोमि ।

श्रीवृन्दावनमें आकर उन्होंने धामनिष्ठाके अप्रतिम श्रीग्रन्थ 'श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्' की सौ शतकोंमें रचना की । श्रीराधाकैंकर्य-निष्ठाके अनिर्वचनीय 'श्रीराधारससुधानिधि ग्रन्थका प्रणयन किया । श्रीराधा-कृष्ण-मधुर विहारात्मक अद्भुत ग्रन्थ 'श्रीसंगीतमाधव' का गान किया । आश्चर्यरास-प्रबन्ध, श्रुति-स्मृति व्याख्या, कामबीज-काम गायत्री-व्याख्यान, गीतगोविन्द व्याख्यान तथा श्रीगौरसुधाकर चित्राष्टक आदि अनेक ग्रन्थरत्नोंका सृजन कर रसिक समुदाय-को व्रजरसमें सराबोर कर दिया श्रीसरस्वतीपादने ।

## श्रीराधारससुधानिधिः

निन्दन्तं पुलकोत्करेण विकसन्नीपप्रसूनच्छबिं
प्रोर्द्धीकृत्य भुजद्वयं हरि हरीत्युच्चैर्वदन्तं मुहुः ।
नृत्यन्तं द्रुतमश्रु-निर्झरचयैः सिञ्चन्तमुर्वीतलं
गायन्तं निजपार्षदैः परिवृतं श्रीगौरचन्द्रं नुमः ॥

स जयति गौरपयोधिर्मायावादार्कतापसन्तप्तम् ।
हृन्नभ उदशीतलयद् यो राधारससुधानिधिना ॥

—श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतिपाद

जो पुलकावली युक्त श्रीअंग-शोभासे विकसित कदम्ब-कुसुमकी शोभाको निरस्त करते हैं, विशाल भुजाओंको ऊँचा उठाकर जो बार-बार 'हरि-हरि' बोल रहे हैं, नृत्य करते-करते अजस्र-अश्रुधाराओंसे जो पृथिवीका सिञ्चनकर रहे हैं, निज-पार्षदोंसे परिवृत कीर्त्तनरस-विनोदी उन श्रीगौरचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूं ॥

जिन्होंने 'श्रीराधारससुधानिधि' को उदित करके मायावाद सूर्यसे सन्तप्त मेरे हृदयाकाशको सुशीतल किया है, उन श्रीगौर-पयोधिकी जय हो ॥





# भक्तिरस-सिद्धान्त

आचार्य डॉ० शुकरत्न उपाध्याय

एम. ए., पी. एच-डी., साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय



काव्य-जीवनके सौन्दर्यमय शाश्वत सत्यकी संवेदनात्मक सरस अभिव्यञ्जना है काव्य-संस्कृति, जो भाव-वस्तु और भाषा-चर्या दोनोंमें ही प्रकट होती है, अपने रसामृतसे ही प्राणवती और प्रभावशालिनी बनती है। भाव-संवेदन शक्तिको ज्यादा-से-ज्यादा गहरा, पुष्ट, प्रखर, तलस्पर्शी और व्यापक करते जाना ही काव्य-सत्य है। अभिव्यञ्जना-कौशलके समर्थक सम्प्रदाय भी काव्यकी मूल आतमा रसकी स्वीकृतिसे मुकर न सके थे। वक्रोक्तिको काव्यका जीवनतत्त्व मानने वाला कुन्तक भी रसको वक्रोक्तिका प्राणरस मानकर ही अपने सिद्धान्तका उद्‌घोष कर सका था। अलङ्कार-सम्प्रदायके अनेक आचार्योंने अलङ्कारके महत्वको रसके साथ ही स्वीकार किया है।

मनुष्यका यह सहज स्वभाव है कि वह जीवनकी विकृतियोंसे पिंड छुड़ाकर कुछ समयके लिए ऐसे लोकमें जाना चाहता है, जहाँ उसे अपनापन मिले, अपना जीवन मिले, और सब कुछ स्वच्छ, शुक्ल, सरस, सत्य, सुन्दर और पवित्र मिले, वह औदात्त्यकी उच्च एवं दिव्य भूमिकाके भावलोकमें ही आत्मरमण करना चाहता है। वह काव्यको जीवनके उदात्त आनन्द-की प्राप्तिके लिये ही पढ़ता है, बुद्धि-व्यायामके लिए नहीं। सामान्य-भाषा और काव्य-भाषामें मौलिक अन्तर ही यह है कि सामान्य भाषा तो केवल बोध कराती है, किन्तु काव्य-भाषा वर्ण्यकी रसात्मक-अनुभूति कराती है। काव्यात्मक-सृष्टिके मूलमें चिरन्तन सत्य, शाश्वत सौन्दर्य तथा जीवनका संवेदनशील औदात्त्य निवास करता है। फलतः सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र आत्मरूप रसके चिन्तनमें उसी प्रकार लगा हुआ है, जैसे वेदान्त-शास्त्र आत्म-चिन्तनकी खोजमें निरत है।

संस्कृत-काव्य-शास्त्रके लगभग दो हजार वर्षोंके इतिहासमें नाटयाचार्य भरतसे लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक किसीने भी स्पष्टतः भक्तिको रसरूपमें मान्यता प्रदान नहीं की। यद्यपि विभिन्न आचार्यों और पृथक्-पृथक् मतोंके अनुसार रसके भेद एक, आठ, नौ, दस, बारह अथवा असंख्य हैं, किन्तु भारतीय-काव्य-शास्त्रके इतिहासमें भरतकी परम्पराका सम्मान करने वाले अनेक परवर्ती दिग्गज आचार्योंने नौके आस-पास ही रसकी संख्या रखनेका समर्थन किया है तथा अन्य सम्भावित रसोंका अन्तर्भाव या तो उन्होंने नवरसोंमें ही करनेका प्रयत्न किया है अथवा उनको भावकोटिमें ही रखकर सन्तोष कर लिया है।

भक्ति-रसकी स्वीकृतिके सम्बन्धमें काव्य-शास्त्रके आचार्योंकी आपत्तियोंको इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१—आचार्य भरतने भक्ति-रसको स्वीकार नहीं किया, इसलिए नाटच-शास्त्रकी मर्यादाको ध्यानमें रखते हुए, उनके द्वारा स्थापित परम्पराको भङ्ग करनेसे, सारा काव्य-जगत् ही उलट-पलट हो उठेगा।

२—प्राणी जिन संवेदनाओंसे जन्मसे ही व्याप्त होता है और जिन चित्तवृत्तियोंसे वह शून्य हो ही नहीं सकता, वे चित्तवृत्तियाँ स्थायी-भाव कहलाती हैं, जो रसाभिव्यक्तिमें मुख्य हेतु हैं। भगवद्‌रति इस प्रकारकी प्रवृत्ति नहीं है। वह प्रत्येक सहृदयके चित्तमें वासनारूपसे विद्यमान नहीं रहती।

३—समस्त वासनाओंका प्रशमन या तृष्णाक्षय ही शान्त रस है, जिसमें विषय-वैराग्यके साथ भगवदुन्मुखता भी एक तत्त्व है। अतः भक्तिका अन्तर्भाव 'शान्त-रस' में ही किया जा सकता है।

४—स्नेह, भक्ति वात्सल्य-रसके ही विशेष रूप हैं। तुल्य लोगोंकी परस्पर रति 'स्नेह', श्रेष्ठमें साधारणकी रति 'भक्ति', छोटोंमें बड़ोंकी रति 'वात्सल्य' कहलाती है, अतः रति विशेषका ही वर्णन होनेके कारण भक्तिको शृङ्गारमें ही अन्तर्भुक्त किया जा सकता है।

५—रत्यादि भावोंका जहाँ उन्मीलनमात्र होता है, वहाँ 'भावना' तक ही वह व्याप्त रहता है, रस कोटि तक नहीं पहुँच पाता। भावना-पथको अतिक्रान्त न कर सकनेसे, रस-दशा तक पहुँचनेमें असमर्थ रहनेके कारण ही वह 'भाव' कहलाता है। स्थायी भावोंकी अपेक्षा स्थिरताका कम होना भी इसका एक कारण है। पुरुषार्थोपयोगिता और रञ्जनाधिक्य भी भक्ति-रसमें उतना नहीं होता।

अब यहाँ देखना यह है कि क्या उक्त बाधाओंके रहते हुए भी भक्ति-रसको मान्यता प्रदान की जा सकती है? इन प्रश्नोंका उत्तर विस्तारसे पृथक्-पृथक् लेखोंमें देना ही अधिक उपयुक्त होगा। हाँ, यहाँ इतना बता देना अनुचित नहीं है कि अन्तर्भावकी प्रवृत्ति और परम्परा-सम्मान अपने आपमें अपूर्ण और असम्यक् दृष्टियाँ हैं। इन दीवारों और बन्धनोंके रहते हुए भी 'वात्सल्य-रस'-को प्रायः स्वीकृति मिल चुकी है।

परम्पराके सम्बन्धमें भी यहाँ कुछ विस्तारसे बता देना असङ्गत नहीं होगा। भारतीय-बुद्धि आवश्यकतासे अधिक परम्पराका सम्मान करती है। वह समयानुसार उसका मूल्याङ्कन भी नहीं करना चाहती। पण्डितराज जगन्नाथ जैसे दुर्धर्ष मनीषीने सम्पूर्ण तर्क-बलसे 'भक्ति-रस' का समर्थन करके भी केवल परम्पराके संरक्षणके लिए अपने समर्थनको लौटा लिया। वस्तुतः सांस्कृतिक-विकासके साथ भावनाओंका विकास भी संलग्न रहता है। साहित्य





या काव्यका मूलाधार मानवीय मनोभावनाएँ ही हैं, अतः नित्य-विकसनशील जीवन, जगत् और अनुभूतिके क्षेत्रमें केवल परम्परा-पालनका बहाना लेकर, भक्ति-रसको स्वीकृति न देना उचित नहीं कहा जा सकता। यह मान्यता सचेतन, सहृदय और जाग्रत्-बुद्धि मनुष्यके सदैव वर्द्धमान, नित्यनवायमान अनुभव और बुद्धिके अनुरूप नहीं है, क्योंकि सजीव और बुद्धिमान् मनुष्यकी विचार-सरणिके आगे कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं खींची जा सकती। 'भाव' जीवन और जगत्की प्रतिक्रियामें उत्पन्न होते हैं, वे सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावोंसे, समकालीन चेतनासे शक्ति प्राप्तकर अधिक सघन और प्रभावशाली होते हैं। प्रत्येक जातिके जीवनकी पृथक् सांस्कृतिक-परम्परा होती है, युगानुकूल परिवर्तित सांस्कृतिक तत्त्व नये स्थायी भावोंको जन्म देते हैं। मानव-जीवनकी विविधता और स्वभावकी अनुकूलताको देखते हुए, मनुष्यके भावोंकी कोई सीमा निश्चित नहीं हो सकती। फलतः स्थायी-भावोंकी नियत संख्याका शाश्वतिक निश्चय नहीं किया जा सकता। युक्तियुक्त परीक्षाके द्वारा ही तथ्यका निर्णय किया जाना चाहिए।

'परम्परा'—के अन्धभक्त बन जानेपर तो काव्य-सम्प्रदायके अनेक आचार्योंकी प्रोज्ज्वल परम्पराने भरत मुनिकी सीमाओंको तोड़कर, जो काव्यकी अनेक विधाओं और सूक्ष्मताओंका विश्लेषण किया है, वह निरर्थक हो जायगा और संसार-भरके ज्ञान तथा अनुभवोंके आगे भी प्रश्न-चिह्न लगाना पड़ेगा। भरत मुनिने तो केवल चार ही अलङ्कारोंकी चर्चा की है,[1] किन्तु कुवलयानन्द तक आते-आते उनकी संख्या १०५ हो गयी। इसी प्रकार ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य आदिके क्षेत्रमें जो चकित कर देने वाला विवेचन हुआ है, वह नहीं होता। दार्शनिक-धार्मिक-चेतना भी युगानुरूप विकसित होती रहती है और यह स्वाभाविक ही है कि इसके विकासके अनुरूप ही अन्य सम्बद्ध विषयोंमें भी विकास हो। भरत, दण्डी, वामन, आनन्द-वर्द्धन आदि आचार्योंने अनुभूतिकी जो प्रक्रियायें बताई हैं, उनके अतिरिक्त भी प्रक्रियायें हो सकती हैं, क्योंकि अनुभूति एक जीवित तत्त्व है। कलाकृतियोंके रूप-विधानमें परिवर्तन इतना शीघ्र होता है कि सौन्दर्यका आंकलन करने वाले मानोंको भी उसकी विकासशीलताका सम्मान करना चाहिए।

रसोंका मानना कोई प्रभुसम्मत, अनुल्लङ्घनीय वेदाज्ञा नहीं है, कि जो कुछ भी लिखा है, उसीको स्वीकृति प्रदान की जाय। रस तो अनुभवसिद्ध वस्तु है, अनुभव द्वारा समर्थित होनेपर, उसे मान्यता देना एक सहृदयका नैतिक कर्तव्य है। निष्कर्षतः परम्परा-पोषित सिद्धान्तोंको ही शाश्वत और सार्वभौम सिद्ध करना एकान्त सत्य नहीं है। यद्यपि एक सुनिश्चित और सुसंयत व्यवस्था रखनेके लिए 'आप्तवाक्य' तथा 'परम्परा-पालन' का भी कुछ सीमा तक महत्व है, किन्तु उसे एक सार्वकालिक और सार्वभौम सिद्धान्तके रूपमें मान्यता नहीं दी जा सकती।

---

१—उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा।
अलङ्कारास्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः॥ (नाटयशास्त्र, १७।४३)

यह तो हुई काव्य-शास्त्रके आचार्योंकी दृष्टिकी संक्षिप्त चर्चा, अब यदि हम धार्मिक-साहित्यके इतिहासकी समीक्षा करें, तो सहजमें ही इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वस्तुतः धार्मिक-साहित्य ही क्रमशः भक्तिको सर्वोच्च शिखरपर ले जाकर, उसे 'रस' रूपमें प्रतिष्ठित करनेके प्रति नितान्त सजग है। वैदिक-स्तुतियोंमें भक्ति-सिद्धान्तके बीज प्राप्त हो सकते हैं। कठोपनिषद्[1] तथा गीता[2] में समस्त वेदोंके तात्पर्य परमात्म-तत्त्वका प्रतिपादन बताया है। 'भक्ति' शब्दका उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद[3] और 'श्वेताश्वतरोपनिषद्'[4] में मिलता है। मुख्यतः पुराण, पाञ्चरात्र-साहित्य तथा वैखानस सूत्रोंमें भक्ति सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तोंका प्रतिपादन मिलता है। सिद्धान्ततः भक्तिकी स्थापना भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र एवं नारद-भक्ति-सूत्र ग्रन्थोंमें विशेष रूपसे दिखायी पड़ती है। 'श्रीमद्भागवत' तो भक्ति-रस-सिद्धान्तका आकर ग्रन्थ ही है। भागवतके एक पद्य[5] में भगवद्-विषयक रतिको 'रसरूप' और भागवतोंको 'रसिक' नामसे स्मरण किया गया है।

इस प्रकार वैदिक-साहित्यमें वर्णित श्रद्धा तथा स्तुतियोंमें ही भगवद्रतिके विकासका अमरबीज छिपा हुआ है। उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, पाञ्चरात्र-साहित्यने विशेष रूपसे गुप्तकाल तक आकर वैदिक-स्रोतमें प्रबल वेग पैदा किया। तत्कालीन परिस्थितियोंके अनुसार यह कभी तूफानी वेग और कभी अन्तर्लीन सरस्वतीके समान अपने देशके लोक-जीवनमें अविच्छिन्न रूपसे बहता रहा।

रामानुजके बाद व्यापक भाव भूमियों पर भक्तिका प्रवेश चिन्तन और साधनाके क्षेत्रमें होता गया। भक्तिको ऐकान्तिक सर्वभुक् और तरल बनानेके प्रयत्न होते रहे। रामानुज, मध्व और निम्बार्कने अद्वैतवादके ब्रह्म-जीव-समीकरणको विशिष्टाद्वैत, द्वैतवाद एवं द्वैताद्वैतके रूपमें तीन नयी भूमिकायें दीं। आगे चलकर वल्लभाचार्यने जीवात्मामें आनन्द-तिरोभावको स्वीकारकर, उसकी प्राप्ति और आनन्दकी साधनाके लिए भक्तिको पूर्ण गौरवसे मण्डित करनेका प्रयत्न किया। शताब्दियों तक महान् आचार्योंका आविर्भाव और उनकी मानवमात्र-सुलभ अनुरागबहुल भक्ति-स्रोतस्विनी दक्षिणमें एकके बाद एक फूटती रही। इसमें श्रीकृष्ण-प्रेमके महाप्रवाहने मिलकर अद्भुत आप्लावन उत्पन्न कर दिया। श्रीमहाप्रभु चैतन्यके मोहक व्यक्तित्व द्वारा विह्वलकारी प्रेमकी प्रबलधारा बंगालसे समस्त उत्तरी भारतकी ओर बहने लगी।

---

१—सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, कठो० २।२।२५,

२—वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः, गीता, १५।१५

३—तस्य ते भक्तिवांसः स्याम, अथर्व० ६।७९।३

४ यस्य देवे पराभक्तिः, श्वेता०, ६।२३

५—मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः, भाग०, १।१।३





काव्य-शास्त्रके आचार्यों द्वारा परम्परा-सम्मान अथवा अन्तर्भाव-की प्रवृत्तिसे की गई उपेक्षाकी चिन्ता न कर, जीवनकी कृतकृत्यता तक पहुँचनेके लिए भक्ति-धर्मके शतशः शास्त्रकर्ता कवि, साधक और मनीषियोंने अपनी अगणित रचनाओं द्वारा रस-सम्राटके पदपर ही भक्ति-रसका महा-भिषेक कर दिया। भक्ति-चेतना, राष्ट्रीय-चेतना बन गई, उसने सम्पूर्ण जीवन और संस्कृतिको आक्रान्त कर लिया। काव्य, साहित्य-शास्त्र, संगीत, चित्र, मूर्त्ति, नृत्य, नाटच, धर्म, दर्शन, सामाजिक-व्यवस्था, सामाजिक-जीवन भक्ति-धर्मसे प्रेरित, प्रभावित एवं नियन्त्रित किए गए। १· वीं शताब्दीमें आकर अनेक वैदिक एवं आगमिक दर्शनके उपकूलोंसे बहनेवाली काव्य-रस-की धाराने प्रेम-पिच्छिल भक्ति-रस-तरङ्गिणीका रूप धारण कर लिया।

श्रीनिम्बार्काचार्यने ज्ञेय पदार्थोंमें भक्ति-रसको भी एक प्रमुख ज्ञेय पदार्थ माना है।[1] १३ वीं शताब्दीमें बोपदेवने कदाचित् पहले-पहल, भागवतके आधारपर भक्ति-रसका अधिक विषद् विवेचन किया, इन्होंने 'मुक्ताफल' में नव रसोंका भक्तिमें ही अन्तर्भाव किया है और यह भी सिद्ध किया है कि पूर्व स्वीकृत भावोंमेंसे, ऐसा कोई भी भाव नहीं है, जिसमें भक्तिका अन्तर्भाव किया जा सके[2]।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत ही भक्ति-ग्रन्थोंका उपजीव्य ग्रन्थ है। इसीमें इतस्ततः विखरे हुए, वचनों, विवेचनों तथा उदाहरणोंके आधार पर, वैष्णवाचार्योंने भक्तिका विविध रूपोंमें व्याख्यान किया है। श्रीधर स्वामीने भागवतके एक पद्यमें तत्तद् भावानुरूप दर्शकोंके चित्तमें दशरसोंकी अनुभूतिका सङ्केत किया है[3]। वल्लभाचार्य भी उक्त पद्यमें दशरसोंकी स्थिति स्वीकार करते हैं। किन्तु इन पूर्वोक्त आचार्योंने काव्यशास्त्रीय प्रक्रियाके अनुसार, भक्ति-रसका विवेचन नहीं किया, साधनाकी दृष्टिसे भक्तिका स्मरणमात्र किया है, अपनी सीमाओंमें रहकर भक्तिके अङ्गोपाङ्गोंकी विस्तारसे चर्चा तथा व्याख्यान भी किया है, किन्तु इससे भक्ति-रसकी सम्पूर्ण स्थिति और पूर्ण गौरवका उद्घाटन नहीं होता, सम्बन्धित अनेक प्रश्न भी अनुत्तरित रह जाते हैं।

भक्ति-रसका सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन मिलता है, श्रीमहाप्रभु चैतन्यके अनुयायी और उनके सम्प्रदायके शास्त्रकर्ता षड्गोस्वामियोंकी रचनाओंमें। श्रीरूपगोस्वामीका 'भक्ति-रसामृत-सिन्धुः[4], तो भक्ति-रसका प्रस्थान-ग्रन्थ ही है। इसमें 'भक्ति-रससे सम्बन्धित उन सभी प्रश्नोंपर विचार किया गया है, जिनसे वह साहित्यशास्त्रीय प्रणालीके अनुसार, निर्बाध रूपसे 'रस' के स्थानपर प्रतिष्ठित हो सके। भक्ति-रसकी मुख्यता एवं उसके भेद-प्रभेदोंका विवेचन नितान्त मौलिक तथा वैष्णव-जगत्के लिए एक नवीन घटना है।

---

१—वेदान्त कामधेनु, श्लोक ३। २—मुक्ताफल, पृ० ८३-६३। ३—भागवत, १०।४३। १७, पर श्रीधरी व्याख्या। ४ - भक्तिरसामृतसिन्धु तीन टीकाओं सहित श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावनसे उपलब्ध है।

इन गौड़ीय गोस्वामियोंने प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे महाप्रभु श्रीचैतन्यके जीवनमें भक्ति-की उत्कट आस्वाद्यताका अनुभव किया और उनके साथ अगणित नर-नारियोंको कृष्ण-विरहमें भाव-विभोर होते, नाचते और आँसू बरसाते देखा। स्वयं उनका जीवन ही इसका मूर्तिमान् उदाहरण था, फिर वे भक्तिरसकी चरम आस्वाद्यताका स्वयं भी अपलाप कैसे कर सकते थे, जिससे उनका अङ्ग भीग चुका था।

उन्हींसे प्रभावित होकर प्रसिद्ध अद्वैत वेदान्ती मधुसूदन सरस्वतीने भी 'भक्ति-रसायन' में भक्तिकी रसरूपतापर विस्तारसे विचार किया है। यद्यपि मधुसूदन सरस्वतीका रस-विवेचन अद्वैत-वेदान्तसे प्रभावित है, इस दृष्टिसे गौड़ीय गोस्वामियों और उनका अनेक स्थानों-पर मतभेद है। शाण्डिल्य भक्ति-सूत्रकी 'भक्ति-चन्द्रिका' नामक व्याख्यामें नारायण तीर्थने भी भक्ति-रसका व्यापक विवेचन किया है। श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके ही कवि श्रीकर्णपूर गोस्वामीने 'अलङ्कार-कौस्तुभ' में और श्रीनारायण भट्टने 'भक्ति-रस-तरङ्गिणी' में भक्ति-रसकी व्याख्याका प्रयत्न किया है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है, कि क्या काव्यशास्त्रियोंके द्वारा निर्धारित प्रक्रियासे भक्ति-रसका अनुभव नहीं हो सकता था। उस प्रक्रियासे अनुभवमें क्या-क्या कठि-नाइयाँ हैं। गौड़ीय गोस्वामियोंको पृथक्-पृथक् बड़े-बड़े ग्रन्थ रचनेकी क्या आवश्यकता आ पड़ी? जबकि उन्होंने भी काव्य-शास्त्रके सैंकड़ों शब्दों और सिद्धान्तोंको अपने ग्रन्थोंमें विवे-चनके लिए ग्रहण किया है।

हम यहाँ संक्षेपतः इन प्रश्नोंपर विचार करेंगे। भारतीय-दर्शन और वैष्णव-साधना-की यह प्रमुख मान्यता है कि जीवका, परमात्माके साथ अनादिसिद्ध सम्बन्ध, सांसारिक द्वन्द्वोंसे ढक जानेपर भी नित्य-सिद्धभाव है। (डार्विनका सिद्धान्त भारतीय-दर्शनको मान्य नहीं) यद्यपि उसकी अभिव्यक्तिके लिए, अधिकांश व्यक्तियोंको साधना करनी पड़ती है, वह अन्य भावोंके समान सर्वत्र स्वतः प्रकट नहीं होता।

इस विश्वमें जीवात्मा मौलिक रूपसे परमात्मासे सम्बद्ध है, उसीकी इच्छासे यह उससे अलग होकर, इस दुनियामें आया है। सम्पूर्ण चिन्तनका उद्देश्य है—जीवात्माको पर-मात्माके साथ अपने स्वाभाविक सम्बन्धके विषयमें जागरूक रखना और इस जागरूकतासे साधना द्वारा परमात्माके साथ पुनः वाञ्छित सम्बन्ध स्थापित करना, तभी वह सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो सकता है। निष्कर्षतः भक्ति जैसे भावोंकी समष्टिसे भावित जीवन धाराको केवल नौ रसोंकी मेड़ बाँधकर ही स्वाभीष्ट पथसे नहीं बहाया जा सकता। मानवीय-संस्कृतिके विकासमें संस्कार पोषित ईश्वर-भक्ति एक प्रबल भावना है। करोड़ों व्यक्ति भक्ति-भावनामें रस-मग्न होते दिखाई देते हैं। कुछ नीरस और कलुषितान्तःकरण-जनोंमें उसका अभाव होनेसे भक्तिकी रसात्मकताका प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता। यदि हम भक्तिके इतिहासपर दृष्टिपात करें, तो ऐसे असंख्य





लोगोंकी परम्परा मिलेगी, जिनके जीवनका अधिकांश भाग परमात्म-प्राप्ति-में रोते-बिलखते ही बीता है।

आस्वादयिताकी दृष्टिसे भी, जब अन्य रसोंके आस्वादनमें सहृदयों-को प्रमाण स्वीकार किया जा सकता है, तो भक्ति-रसके आस्वादनमें भी भक्तोंको, जो भक्ति रसास्वादनके वास्तविक अधिकारी हैं, प्रमाण माना जाना चाहिए।

पूर्वाचार्योंने देवादि-विषयक रतिको जो 'भाव' कहा है, उसका एक सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है—श्रीमधुसूदन सरस्वतीने[१]। देवादि-विषयक रतिको 'भाव' कहना अन्य सामान्य देवोंकी रतिके लिए ही उपयुक्त हो सकता है किन्तु जहाँ साक्षात् परमानन्द स्वरूप भगवान् मनरूप उपाधिमें प्रतिबिम्बित होकर, स्थायिभावताको प्राप्तकर, रसरूपमें परिणत होते हैं, वहाँ परमानन्द स्वरूप भक्तिका रसत्व निर्विवाद सिद्ध है। यह मान्यता इसलिए उचित है क्योंकि व्यक्ति, जीवनमें अनेक अवसरोंपर विभिन्न देवोंकी उपासनामें प्रवृत्त होता है, किन्तु ऐसे अवसरोंपर सर्वत्र रस-सिद्धि नहीं मानी जा सकती, उसको 'भाव' कहना ही अनुभव–सिद्ध तथा स्वाभाविक है। यह नियम अखिलविश्व-सौन्दर्य-निधि, परमानन्द-सिन्धु भगवान् पर लागू नहीं होता, क्योंकि समस्त विश्वके अधिपति होनेसे, वे प्राणिमात्रकी भावनाके केन्द्र हैं। उनके अत्यद्भुत, सर्वाकर्षक रूप, लीला और प्रेममाधुरीका उपभोग करनेके लिए मनुष्य मात्र कभी भी सहृदय बनकर आत्म-विभोर हो सकता है और यह आत्म-विभोरता एवं तन्मयता ही रसोद्रेककी परमावस्था है।

**श्रीरूपगोस्वामीके मतानुसार—'भक्तिको भावमात्र सिद्ध करना भक्ति-साहित्यकी महती परम्पराकी उपेक्षा है', क्योंकि पुराणों तथा भक्ति सम्बन्धी विविध ग्रन्थोंमें भक्तिका रसत्व स्वीकार किया गया है और रस-परीक्षणकी प्रत्येक कसौटीपर उसे परखा जा सकता है[२]।**

श्रीनारायण तीर्थका कहना है लौकिक रस शृङ्गार आदिमें विषयावच्छिन्न ही चिदा-नन्दका स्फुरण होनेसे आनन्दांशकी न्यूनता रहती है, किन्तु भगवदाकाराकारित चेतोवृत्तिरूप

---

१ – देवान्तरेषु जीवत्वात् परमानन्द–प्रकाशनात्।
तद्योज्यं परमानन्दरूपे न परमात्मनि॥ भक्ति-रसायन, २।७५

२—केचिदस्या रतेः कृष्णभक्त्यादिबहिर्मुखाः,
भावत्वमेव निश्चित्य न रसावस्थतां जगुः।
इति तावदसाधीयो यत्पुराणेषु केषुचित्,
श्रीमद्भागवते चैव प्रकटो दृश्यते रसः॥ भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।२।१३९-४०

भक्ति-रसमें अनवच्छिन्न चिदानन्दघन भगवान्‌का स्फुरण होनेसे आनन्द अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है[1]।

श्रीमधुसूदन सरस्वतीके अनुसार लाक्षा जब तक पिघली हुई नहीं होती है, तब तक उसमें कोई रङ्ग व्यापक और स्थिर नहीं होता, किन्तु तापक अग्निके संयोगसे, गङ्गाजलके समान निर्मल और द्रुत उस लाक्षामें रङ्ग छोड़नेपर, वह लाक्षाके अणु-अणुमें व्यक्त और स्थिर हो जाता है। उस स्थितिमें यदि लाक्षा चाहे कि मैं अपनेसे इस रङ्गको पृथक् कर दूँ या रङ्ग ही चाहे कि मैं पृथक् हो जाऊँ, तो भी दोनों ही पृथक् होनेमें असमर्थ हैं, ठीक इसी प्रकार भगवद्-विषयक रागसे द्रवीभूत चित्तमें परमानन्दपूर्ण भगवान्‌के प्रकट हो जाने पर, सर्वांशमें व्यापक और स्थिर रूपसे भगवान्‌की स्थिति हो जाती है। भावनाके प्रभावसे इसका अपरिच्छिन्न आन्तर विस्तार अन्तःकरण, प्राण तथा रोम-रोममें फैल ज ता है[2]। उसको पाकर सांसारिक क्षुद्र-रस भी स्वतः छूट जाते हैं—**'रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते' ( गीता, २।५९ )**

इस अमृत-सागरमें डूबते-उतराते हुए ही भागवतकार, जयदेव, आलवार, रूपगोस्वामी, सूर, तुलसी और मीरा जैसे भक्त कवियोंने, अपने सरस हृदयके उन्मुक्त भाववर्षण द्वारा, योग, ज्ञान, वैराग्यकी कठोर प्रस्तर शिलाओंको तोड़ते हुए, एक अनन्त रस-सागर बहाकर, सारे देशको ही आप्लावित कर दिया था, यह इस सकी ही महिमा है, जिसका आस्वादनकर पुण्यवान् मनुष्य जीवनके महान् प्रेरक चार पुरुषार्थोंको भी तृणकी तरह त्याग देते हैं—

**मनागेव प्ररूढ़ायां हृदये भगवद्रतौ।**
**पुरुषार्थास्तु चत्वारस्तृणायन्ते समन्ततः॥**

भक्तिरसामृतसिन्धुः, १।१।३३

यह कहा जा चुका है कि अन्य स्थायी-भावोंके समान भगवद्रति भी जीवात्माका अनादि सिद्ध नित्य भाव है, उसकी उपस्थिति प्राक्तन-संस्कार तथा काव्यानुशीलनसे सर्वत्र स्वीकार करने योग्य है, किन्तु भक्ति काव्योंके प्रगाढ़ अनुशीलन तथा भागवत-भावोंके निरन्तर चिन्तनसे 'भगवद्रति' के संस्कारोंकी तीव्रता भक्तोंमें विशेष रूपसे द्रष्टव्य तथा अनुभवनीय है, यद्यपि उच्चकोटिके भक्त भक्ति-रसका साक्षात् अनुभव करते हैं, किन्तु सामान्य सहृदय और काव्यशास्त्रीय दृष्टिसे नाटकोंके रूपमें भगवत् लीला-चरित्रोंका दर्शन करते समय तथा भागवतादि भक्ति ग्रन्थोंका श्रवण करते समय, हजारों व्यक्तियोंके हृदय, चारों ओरसे उमड़ते हुए भक्ति-रसामृत-सिन्धुके स्वर्ण तटोंपर द्रवीभूत होकर भगवदाकारतामें परिणत

---

१—इत्थं च लौकिक-रसे शृङ्गारादिविषयावच्छिन्नस्यैव चिदानन्दां-शस्य स्फुरणा-दानन्दांशस्य न्यूनत्वम्, भगवदाकारोक्तचेतोवृत्तिलक्षणे भक्ति-रसे त्वनवच्छिन्नचिदानन्दघनस्य भगवतः स्फुरणादत्यन्ताधिक्यमानन्दस्य। भक्ति-चन्द्रिका, पृष्ठ ८॥

२—भक्ति-रसायन, ११४-१०॥





दिखाई पड़ते हैं। 'पुलकित रोम रोम गद्‌गद मुख बानी कहति न आवे' 'भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः'—की स्थितिपर पहुँचकर आँसुओंके बहाने अपने मर्म विगलित पिघले हुए हृदयोंको बहाते देखकर किसको 'पुर इव परिस्फुरन् हृदयमित प्रविशन् सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन् अन्यत्सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन्'—रस मूर्तिमान् दिखाई नहीं देगा ? फिर उनका क्या कहना जो 'युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्। शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द-विरहेण मे'; 'अँसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई' कहकर, आश्चर्यपूर्ण अनुभावोंको प्रदर्शित करते हुए, लाखों नर-नारियोंको महा-नर्तनमें प्रवृत्त कर देते थे।

श्रद्धा, प्रणति, विस्मय, जिज्ञासा, प्रेम, भीति आदि अनेक चित्त-वृत्तियोंका संयोग पाकर, भगवद्रतिकी चर्वणीयता अपनी पराकाष्ठापर पहुँच जाती है। ऐसा इसलिये भी होता है—जब विभु, नित्य, पूर्ण, ज्ञान और सुखस्वरूप भगवान्‌का आकार द्रवीभूत चित्तमें प्रविष्ट हो जाता है, तो अनादिकालसे चित्तमें प्रविष्ट हुए, असंख्य विषयोंके सारे स्वरूपोंको निगलकर केवल उसी भगवत्स्वरूपका अनुभव कराता है, जिसे पाकर मानव कृतकृत्य हो उठता है[1]। श्रीरूपगोस्वामीने और विलक्षणतासे इस अनुभवका वर्णन किया है, क्योंकि उनके अनुसार तो यह भक्ति-सुख जिस भाग्यवान्‌को मिल जाय, वह हजारों मुक्तियोंको भी इसपर न्यौछावर कर देता है। उन्होंने परार्द्धगुणीकृत ब्रह्मानन्दको भी भक्ति-सुख-समुद्रके परमाणुके बराबर भी नहीं माना, फिर काव्यशास्त्रीय ब्रह्मानन्द-सहोदर-मात्र रस तो कल्पनासे भी इसकी तुलनामें नहीं आ सकता[2]।

फलतः भगवद्रतिमें रसकोटि तक पहुँचनेके लिए सभी आवश्यक गुण विद्यमान हैं। भक्ति-भावनासे उच्च नैतिक चेतनाका भी जागरण होता है। जीवनके आनन्द, सुख, समृद्धि, श्रेष्ठ संस्कार, महान् पुरुषार्थोंकी साधिका होनेसे तथा राष्ट्रीय चरित्र आदिकी दृष्टिसे भक्ति अन्य भावोंकी अपेक्षा बलवत्तर है; अखण्डता, अलौकिकता एवं ब्रह्मानन्द-सहोदरता आदिमें भी यह सभी रसोंसे उत्कृष्टतर है। भावनाकी व्यापकताकी दृष्टिसे भी भक्ति-रस अन्य रसोंकी अपेक्षा कुछ कम नहीं है। संस्कृत, हिन्दी, मराठी, बंगला आदि समस्त भारतीय भाषाओंमें भक्ति-रससे भीगा हुआ अति विपुल उच्चकोटिका साहित्य मिलता है जिसने मानो रससम्राटके

---

१—भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्णं बोधसुखात्मकम्।
यद् गृह्णाति द्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते॥ भक्ति-रसायन, १।३०

२—ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि॥
भक्तिरसामृतसिन्धुः, १।१।३८

पदपर स्वभावतः ही भक्ति-रसका महाभिषेक कर दिया है, वस्तुतः जिस देशमें इतनी अधिक मात्रामें भक्ति-साहित्यकी रचना हुई हो, वहाँ उसको रसरूपमें स्पष्ट एवं सार्वभौम मान्यता न देना उचित प्रतीत नहीं होता।

इतना होनेपर भी, यदि कोई सर्वाङ्ग-परिपुष्ट एवं सर्वहेतु-सिद्ध भक्तिके रसत्वका प्रत्याख्यान करता है तो या तो उसके हृदयके अनुराग-निर्झर सूख चुके हैं अथवा स्त्री-पुरुष विषयक प्रणय-व्यापारमें ही विलीन हो गए हैं। उसमें लोकोत्तर, असमोर्ध्व-माधुर्य-मेदुर भगवद्-रसके अनुभवकी योग्यता ही नहीं रही अथवा वह उन हृदयहीन, भक्ति-रसास्वाद-पराङ्मुख- जरन्मीमांसकोंकी पंक्तिमें जाकर बैठ जाता है, श्रीरूपगोस्वामीने उनके लिए भक्ति-रसका अनुभव सर्वथा दुरुह कहा है[1]।

## रसो वै सः

रस ही सों तरु ठाड़े, रस ही सों पात हरे,
रस ही सों फूल भरे, रस ही जिवायो है।
रस ही सों फल भावै, रस ही सों जल भावै,
रस ही सों अन्न भावै, रससार गायो है॥
रस ही सों रूप भले, रस ही सों बोल भले,
रस ही की गारी भली, रस ही लुभायो है।
रस ही आनन्दरूप, रसकी मूरति अनूप,
'रसो वै सः' श्याम-प्रेम वेद स्वयं गायो है॥

—श्रीप्रेमकवि

१—सर्वथैव दुरुहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः। भक्ति० रसा० सिन्धुः, २।५।१३१

तुलनीय-मीमांसकेभ्यः शठतार्किकेभ्यो विशेषतो हेतुरतेभ्य एषः।
गोप्यः प्रयत्नाद्रसशास्त्रविद्भ्यो देयः सदा गौरपदाश्रयेभ्यः॥

—गौरगणोद्देशदीपिका, श्लोक २१३, श्रीकविकर्णपूर गोस्वामी





# भक्तिरसके मूल प्रस्थानाचार्य—गौड़ीय-वैष्णवाचार्यगण



श्रुति परब्रह्मको रसस्वरूप कहती है—'रसो वै सः'—वह रसघन है। श्रुतियां परब्रह्मको आनन्दस्वरूप तथा आनन्दघन भी कहकर वर्णन करती हैं। अपूर्व आस्वादन-चमत्कारित्वमय आनन्द ही है 'रस'। अतः परब्रह्म अपूर्व आस्वादन-चमत्कारित्वमय आनन्द-स्वरूप है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्योंसे पूर्ववर्ती समस्त आचार्योंने ब्रह्मतत्त्वकी अवश्य आलोचना की है, किन्तु वह ब्रह्मके रसस्वरूपत्व पर्यन्त अग्रसर नहीं हो सकी। प्रायः उन सबने ही ब्रह्मके आनन्दस्वरूपत्वकी बात भले ही कही है, किन्तु उस आनन्दस्वरूपत्वका तात्पर्य क्या है, उसे वे नहीं कह पाये। श्रीपादनिम्बार्काचार्यने परब्रह्म श्रीकृष्णको रसस्वरूप कहा है, किन्तु उन्होंने भी रसस्वरूपत्वका रहस्य उद्घाटन नहीं किया। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे एकमात्र गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने परब्रह्मके रसस्वरूपत्वके तात्पर्यको प्रकाशित करनेकी चेष्टा कर अभूतपूर्व श्रेय प्राप्त किया है।

रस-शब्दके दो अर्थ हैं—**'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः'** अर्थात् रस आस्वाद्यवस्तु है, तथा **'रसयति आस्वादयति इति रसः ॥'** जो रस-आस्वादक या रसिक है, वह 'रस' है। रसस्वरूप होनेसे परब्रह्म—आस्वाद्य एवं आस्वादक भी है। वह ब्रह्म बृहत्तम वस्तु है, उसके समान कोई नहीं, उससे अधिक भी कोई नहीं। **'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च कश्चिद् दृश्यते ॥'** श्वेताश्वतर श्रुति ॥ परब्रह्मकी सर्वातिशायिता उसके रसस्वरूपत्वमें भी है। उसके समान आस्वाद्य भी और कोई वस्तु नहीं, और उसकी भांति आस्वादक या रसिक भी और कोई नहीं; अर्थात् आस्वाद्यरूपमें तथा आस्वादकरूपमें वह असमोर्ध्व है।

**परब्रह्मका आस्वाद्य स्वरूप—**

मधुर वस्तु ही आस्वाद्य होती है। श्रुतियोंमें दो माधुर्य-व्यञ्जक शब्दों द्वारा ही परब्रह्मके स्वरूपका परिचय दिया गया है। वह आनन्द स्वरूप है, वह रसस्वरूप है। परब्रह्म है—अपूर्व आस्वादन-चमत्कारित्वमय आनन्दस्वरूप। इसके द्वारा उसका माधुर्य ही सूचित होता है। इस माधुर्यमें परब्रह्म असमोर्ध्व है। कोटि ब्रह्माण्डोंमें, परव्योममें जितने भी भगवत्स्वरूप हैं, वह सबका मन हरण करने वाला है। यहां तक कि परब्रह्म श्रीकृष्णका माधुर्य उनके अपने

मनको भी हरण करने वाला है। मोहित होकर वे अपने-आपको आलिंगन करना चाहते हैं—

**आपन माधुर्ये हरे आपनार मन। आपने आपना चाहे करिते आलिंगन ॥**

श्रीचै० च० २।८।११४

उनका नरलीलोपयोगी अपना रूप उनको चमत्कृत—विस्मित कर देता है।

**'विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषण-भूषणाङ्गम् ॥'**

श्रीभा० ३।२।१२

—सौभाग्यकी पराकाष्ठा श्रीकृष्णका सौन्दर्य-माधुर्य उन्हें अपनेको भी विस्मित करने वाला है। भूषणोंको भी वह अलंकृत करता है। लीलाशुक श्रीविल्वमंगलको तो उनके रूप-वर्णन करनेके लिये मधुर-शब्दके अतिरिक्त और कोई शब्द ही नहीं मिला—

**मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।**
**मधुगन्धि मधुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरम् मधुरम् ॥**

अहो! इस विभु श्रीकृष्णका वपु अति मधुर है, उसमें भी इनका मुख और भी अधिक सुमधुर है। उसकी मृदु-सुगधि तथा मन्द मुस्कराहट उससे भी अधिक समधुर है। यह मधुर है, अति मधुर है, मधुरसे भी सुमधुर है, सुमधुरसे भी अतिशय सुमधुर है। यह तो रहा रसस्वरूप परब्रह्मका असमोर्ध्व माधुर्यमय आस्वाद्य-स्वरूप।

अब देखिये रसस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णका सर्वातिशायी असमोर्ध्व आस्वादक या रसिक-स्वरूपत्व –

**परब्रह्मका आस्वादक स्वरूप –**

वे आस्वादन करते हैं—स्वरूपानन्द एवं शक्त्यानन्द। स्वरूपानन्दका आस्वादन है उनका आस्वाद्य-रसस्वरूपका आस्वादन; मुण्डक श्रुति[1] वर्णित रुक्मवर्ण स्वरूपसे या सुवर्ण वर्णमय श्रीगौरांग स्वरूपसे वे अपने रूप-गुण-लीलादिके माधुर्यका आस्वादन करते हैं। और शक्त्यानन्दके आस्वादनमें परब्रह्म अपनी ह्लादिनी-प्रधाना स्वरूपशक्तिकी वृत्ति विशेष, जो प्रेम या भक्ति है, उस प्रेमरस निर्यासका या भक्तिरस निर्यासका आस्वादन किया करते हैं। इसीमें उनका रसिकत्व, रसिकशेखरत्व है। भक्तिरसके आस्वादनमें असमोर्ध्व माधुर्यमय भगवान् श्रीकृष्ण हैं उस भक्तिरसके विषयालम्बन (प्रेमास्पद) और उनके परिकरवर्ग हैं आश्रयालम्बन (प्रेमी)।



प्राकृत रसवेत्ताओंने भक्तिकी रसतापत्तिको स्वीकार नहीं किया। उनका कहना है कि देवता विषया रति होती है भावमात्र, चित्तकी प्रथम

१—'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥' इत्यादि ॥



विक्रिया मात्र, सामग्रीके अभावके कारण वह रसरूपमें परिणत नहीं हो सकती। उनके इस अभिमतका कारण यह है कि उनके मतमें सामाजिकका लक्षण है रज-तमोहीन प्राकृत सत्त्व-प्रधान-चित्तता; किन्तु रज-तमोहीन प्राकृत सत्त्व प्रधान चित्त भी भक्तिको अनुभव नहीं कर सकता। भक्ति एवं भक्तिरसके अनुभवके लिये चाहिये मायिक–गुणातीत चित्त। प्राकृत-रस-वेत्ताओंके कथित सामाजिकका चित्त मायागुणातीत न होनेसे भक्तिरसका आस्वादन उनके पक्षमें सम्भव नहीं। भक्तिरसका आस्वादन न कर सकनेके कारण वे समझते हैं भक्तिकी रसतापत्ति सम्भव नहीं है। भक्तिरसके सम्बन्धमें उन्होंने आलोचना ही नहीं की। अवश्य अभिनव गुप्तादिने रामायण-महाभारतादि भक्तिरसमय ग्रन्थोंको रसग्रन्थ स्वीकार किया है, किन्तु यहां भी उनके कथित साधारणीकरणके द्वारा श्रीरामादि सामने आते हैं साधारण मनुष्य रूपमें, उनकी रति भी पर्यवसित होती है नैर्व्यष्टिक नायक-नायिकाओंकी रतिमें। अतः रामायण-महाभारतादिका रस भी उनके पक्षमें आस्वादनीय होता है–प्राकृत रसरूपमें, भक्तिरस रूपमें नहीं।

इधर श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंने प्राकृत रतिकी रसतापत्ति स्वीकार ही नहीं की है। इनका कहना है, रस है सुखप्राचुर्यमय वस्तु। प्राकृत वस्तुमें सुख रह ही नहीं सकता; क्योंकि प्राकृत वस्तुमात्र ही है अल्प, सीमाबद्ध एवं देशकाल-सीमाबद्ध। अल्पवस्तुमें सुख नहीं रह सकता। श्रुति भी कहती है—**'नाल्पे सुखमस्ति'**। क्यों? **'भूमैव सुखम्'**—सुख है भूमा अर्थात् अनल्प एवं असीम वस्तु। प्राकृत वस्तुका जो सुख है, वह है वस्तुतः सत्त्वगुणजात चित्तप्रसाद; वह स्वरूपतः सुख नहीं होता। सत्वगुण प्रधान-चित्त सामाजिकके चित्तस्थित सत्त्वगुणजात चित्त प्रसादको ही प्राकृत रसवेत्ता रसास्वाद-जनित सुख समझते हैं और इसलिये वे प्राकृत-रतिकी रसतापत्ति स्वीकार करते हैं; किन्तु गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने वास्तव सुखहीन प्राकृत-रतिकी रसतापत्ति स्वीकार नहीं की है।

भक्तिरस मर्मज्ञ गौड़ीय वैष्णवाचार्य कहते हैं—प्राकृत रस-वेत्तागण जो देवता-विषया रतिकी रसतापत्ति स्वीकार नहीं करते, वे देवता हैं जीवतत्त्व प्राकृत देवता। प्राकृत देवता-विषया रतिमें स्थायीभावके लक्षण नहीं हैं, वह रति विभावादि सामग्रीके साथ मिलित भी नहीं हो सकती, इसलिये वह रसरूपमें परिणत हो ही नहीं सकती।

**भक्तिका रसत्व—**

भक्ति किन्तु प्राकृत-देवता-विषया रति नहीं है। यह है भगवद्-विषया रति—ह्लादिनी-प्रधाना स्वरूपशक्तिकी वृत्ति। स्वरूपशक्ति विभ्वी या भूमा होनेसे भक्ति या भगवद्-विषया रति भी विभ्वी तथा भूमा है। अतएव यह सुख-स्वरूप है। —**'रतिरानन्दरूपैव'**। भक्ति स्वयं सुख स्वरूपा होनेसे सुख प्राचुर्यमय रसमें परिणत होनेके योग्य है। फिर प्राकृत रसवेत्ता स्थायी भावके जो समस्त लक्षण स्वीकार करते हैं, भक्तिमें वे समस्त लक्षण विद्यमान्

हैं। अतः भक्तिकी स्थायी भाव-योग्यता है। भक्तिरसकी विभावादि सामग्री भी भक्तिकी भांति अप्राकृत है, उनके साथ मिलनेकी योग्यता स्थायी-भावरूपा भक्तिमें है एवं भक्तिके साथ मिलने-की योग्यता विभावादि-सामग्रीमें भी है। इसलिये भक्तिकी रसतापत्तिमें भी आपत्तिका कोई भी कारण नहीं है।

प्राचीन आचार्योंमें श्रीधरस्वामी, वोपदेव, हेमाद्रि, सुदेव, भगवन्नाम-कौमदीके रच-यिता श्रीलक्ष्मीधर आदिने भक्तिकी रसतापत्तिकी चर्चा की है। किन्तु उनमेंसे किसीने भी भक्तिरसके सम्बन्धमें विस्तृत आलोचना नहीं की। श्रीमन्महाप्रभुके शिक्षानुसरणमें श्रीपाद रूपगोस्वामीने अपने भक्तिरसामृतसिन्धुमें तथा उज्ज्वल-नीलमणिग्रन्थोंमें तथा श्रीपाद जीव-गोस्वामीने उक्त दोनों ग्रन्थोंकी टीकाओंमें तथा अपने प्रीति-सन्दर्भमें भक्तिरसके सम्बन्धमें विज्ञान-सम्मत भावसे विस्तृत आलोचना की है। अतएव ये ही **'आदि भक्तिरस-प्रस्थानाचार्य'** कहे जाते हैं।

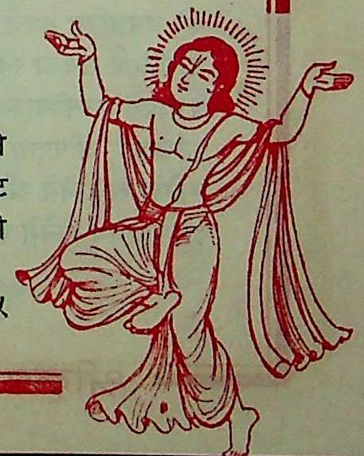
रतिकी रसतापत्तिके प्रकार सम्बन्धमें भरतमुनिके नाटचशास्त्रमें कथित **'विभावानु-भाव व्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'** वाक्यका अवलम्बन लेकर विभिन्न रसाचार्योंने विभिन्न मतवादोंका प्रचार किया है, यथा भट्टलोल्लटका उत्पत्तिवाद, शंकुकका अनुमितिवाद, भट्ट-नायकका भुक्तिवाद एवं अभिनव गुप्तका अभिव्यक्तिवाद; किन्तु सब मतवादोंमें कोई भी मतवाद भरतमुनिकी उक्तिके मर्मानुसार सिद्ध नहीं होता। गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने इन चारों मतवादोंमें से किसी मतवादका अनुसरण नहीं किया है। भरतमुनिसे इनका अभिमत मिलता है।

**साधारणीकरण—**

भट्टनायकादिकी तरह गौड़ीय वैष्णवाचार्यगणने साधारणीकरणको स्वीकार किया; किन्तु दोनोंका साधारणीकरण एक सा नहीं है। भट्टनायकके साधारणीकरणमें दृश्यकाव्यमें राम-सीतादिका वैशिष्टच ही लुप्त हो जाता है। राम-सीता एक पुरुष-नारी मात्रमें पर्यवसित हो जाते हैं। किन्तु गौड़ीयमतमें श्रीकृष्णके अपने वैशिष्टचका लोप नहीं होता, उनके परिकर-गणका भी वैशिष्टच अक्षुण्ण रहता है। गौड़ीयमतमें कृष्ण-रतिकी अचिन्त्य शक्तिसे विभाव-अनुभावादिका वैशिष्टच जन्मता है, और ऐसे विभाव-अनुभावादिकके प्रभावसे रतिका वैशिष्टच उद्भव होता है। दोनोंके वैशिष्टचका मूल कारण है एकमात्र कृष्णरतिका प्रभाव। मूल एक एवं अभिन्न होनेके कारण रति तथा अनुभाव-विभावादिकके वैशिष्टचमें कुछ भेद नहीं है।

**रसका अलौकिकत्व—**

रसका अलौकिकत्व प्राकृत तथा अप्राकृत रसवेत्तागण दोनोंने स्वीकार किया है। किन्तु स्वीकृत अलौकिकत्वका स्वरूप पृथक् है। भट्टलोल्लट आदि चारों आचार्योंके मतों की आलोचना करनेपर केवल रसनिष्पत्तिकी





एवं रसास्वादनकी प्रक्रियाकी अलौकिकता ज्ञात होती है। उनका यह अलौकिकत्व है लौकिक जगत्‌में साधारणतः अदृष्टत्व। भट्टनायककी रसनिष्पत्तिकी प्रक्रियाका अलौकिकत्व है लोकविशेषगतत्व-हीनता।

भट्टलोल्लटादिने अपने कथित रसके अलौकिकत्वके सम्बन्धमें विशेष आलोचना नहीं की, हां, फिर भी उन्होंने उसे **ब्रह्मास्वादसहोदरं**—ब्रह्मास्वादके तुल्य' कहा है। तन्मयत्व अंशमें तुल्यताहै, किन्तु स्वरूपमें तुल्यता नहीं। क्योंकि ब्रह्मास्वाद होता है अप्राकृत चिद्‌वस्तुका आस्वादन। लौकिकी रति एवं लौकिक विभावादि भी अप्राकृत चिद्‌वस्तु नहीं हैं, वे समस्त प्राकृत हैं। सब प्राकृत वस्तुओंके संयोगसे उत्पन्न रस भी होगा प्राकृत वस्तु, वह कभी अप्राकृत नहीं हो सकता। फिर भी उन्होंने जो उसे ब्रह्मास्वादके तुल्य कहकर अलौकिक कहा है, उसका कारण यह लगता है कि काव्यरसके आस्वादनमें जो आनन्द प्राप्त होता है, लौकिक जगत्‌में वैसा आनन्द अन्यत्र अति विरल एवं दुर्लभ हुआ करता है। रति तथा विभावादिके लौकिक रहनेके कारण उनसे उत्पन्न रस भी होता है लौकिक, किन्तु जगत्‌में विरल-दृष्ट वस्तुको भी अलौकिक कहनेकी रीति प्रचलित है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रस्थापित भक्तिरसका अलौकिकत्वका स्वरूप दूसरा है। इनका अलौकिकत्व है अप्राकृतत्व एवं मायातीतत्व। कृष्णरति वा भक्ति स्वरूपशक्ति होनेसे मायातीत है, विषयालम्बन-विभाव श्रीकृष्ण तथा आश्रयालम्बन-विभाव श्रीकृष्ण-परिकरवृन्द सब अप्राकृत, मायातीत एवं चिद्‌वस्तु हैं, अनुभाव-विभावादि भाव भी चित्‌स्वरूप या चिद्‌-रूपता-प्राप्त हैं। इन सबके संयोगसे उद्‌भूत भक्तिरस भी होगा—अप्राकृत, मायातीत एवं चिद्‌ वस्तु, अतः अलौकिक।

**परकीया-मधुररस—**

रस-शास्त्रीय मधुररसमें परोढा नायिका एवं उपपति निन्दित हैं। गौड़ीय वैष्णवगण इस बातको स्वीकार करते हैं। किन्तु इनका मत है जीवतत्त्व प्राकृत नायक-नायिकाके सम्बन्धमें यह उक्ति है। अप्राकृत नायक परब्रह्म श्रीकृष्ण एवं अप्राकृत नायिका व्रजसुन्दरीगणके सम्बन्धमें यह वचन या विधि प्रयुक्त नहीं हो सकती; क्योंकि रसवैचित्री-विशेषके आस्वादनके लिये स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्माण्डमें अवतीर्ण होते हैं और अपनी नित्य-कान्तावृन्द व्रजसुन्दरीवृन्द-को अवतरित करते हैं। अतः वस्तुतः व्रजसुन्दरीगण श्रीकृष्णकी स्वकीया कान्ता ही हैं। अप्रकट-गोलोकमें उनका स्वकीयात्व है, केवल प्रकट व्रजलीलामें वही स्वकीया कान्तागण योगमायाके प्रभावसे परकीयारूपमें प्रतीयमान होती हैं। प्रकट लीलामें इनका परकीयात्व होनेसे ही श्री-कृष्णका औपपत्य है, जो प्रातीतिक एवं रसनिर्यासास्वादन हेतु है। व्रजदेवीगण स्वरूपतः परोढ़ा न होनेसे श्रीकृष्णका भी औपपत्य स्वरूपतः सिद्ध नहीं है। उनका स्वाभाविक सम्बन्ध दाम्पत्यमय होनेसे रसशास्त्र-कथित परोढ़ा-औपपत्य विषयक विधान श्रीकृष्ण एवं व्रजसुन्दरियोंके

लिये प्रयोज्य नहीं है। परब्रह्म श्रीकृष्णकी हरभावकी लीलाका नित्यत्व है; अतः प्रकट-व्रजलीला-के नित्यत्वकी भांति परकीया-भावमयी लीलाका भी नित्यत्व है।

इस प्रकार गौड़ीय वैष्णवाचार्योंके भक्तिरसके सैद्धान्तिक दिग्दर्शनके बाद यहां हम अति संक्षेपसे भक्तिरस, उसकी सामग्री, रस-निष्पत्ति आदिका परिचय देते हैं—[विस्तारपूर्वक वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि तथा गौड़ीय वैष्णवदर्शनमें द्रष्टव्य हैं]

**भक्तिरस—**

पहले कह आये हैं कि भक्ति स्वरूपतः आनन्दरूपा है। इसका आनन्द इतना प्राचुर्य-मय है कि ब्रह्मानन्द इसके आगे अति तुच्छ है। तथापि भक्ति अपने-आप अपने आस्वाद्यत्वके अनुरूप चमत्कारितामयी नहीं, कुछ एक सामग्री मिलनेपर अपूर्व आस्वादन चमत्कारिता धारण करती है, तभी उसे 'भक्तिरस' कहा जाता है।

**भक्तिरसकी सामग्री—**

मिश्री, घृत, कालीमिर्च एवं कर्पूरके मिलानेपर दही एक रसाल-नामक रसमें परिणत हो जाता है, अतिशय स्वादयुक्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव—कृष्णरतिके इन समस्त स्तरोंके यथायथ मिलनेपर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर-रतिका उद्‌भव हुआ करता है। यही पञ्चविधा रति ही प्रेम-स्नेहादि-सामग्रीके मिलनेपर रसमें परिणत हुआ करती है। शान्तादि पांच प्रकारकी रति पांच प्रकारके रसका 'स्थायी-भाव' कहलाती है। इन स्थायी-भावोंके साथ विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी भावरूप सामग्री मिलनेपर वे रसरूपमें परिणत होते हैं।

**भक्तिरस-निष्पत्ति**—श्रीपादरूपगोस्वामीने कहा है—

**अथास्याः केशवरतेर्लक्षिताया निगद्यते।**
**सामग्रीपरिपोषेण परमा रसरूपता॥**
**विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।**
**स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।**
**एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत्॥**

भक्तिरसामृतसिन्धुः २।१।४-५॥

विभाव, अनुभावादि सामग्रीके द्वारा कृष्णरतिरूप स्थायी-भाव परिपुष्ट होकर रसरूपताको प्राप्त होते हैं। श्रवणादिके प्रभावसे विभावादिके द्वारा भक्तोंके हृदयमें स्वाद्यत्व प्राप्त होता है। स्थायीभाव भक्तिरस हो जाते हैं। रसनिष्पत्तिकी प्रक्रियाके विषयमें भरतमुनिके नाटचशास्त्रमें तथा भक्ति-रसामृतसिन्धुका मतैक्य है। किन्तु गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने लौकिक रतिमें रसरूपताको सर्वथा अस्वीकार किया है।





यहां यह भी उल्लेखनीय है कि श्रीपाद मधुसूदन सरस्वतीने भक्तिके रसत्वको जैसे स्वीकार किया है, उसी तरह लौकिकी रतिका रसत्व भी स्वीकार किया है, इसलिये उन्हें 'मध्य-पंथी' कहा जाता है। किन्तु जिस प्रणालीसे उन्होंने लौकिकी रतिका रसत्व प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की है, वह विचारसह नहीं है। गौड़ीय वैष्णवाचार्यगण उनके मतको ग्रहण नहीं करते।

रसतत्त्व सर्वबृहत्तम तत्त्व है—इसके विषयमें एक छोटेसे लेखमें क्या और कितना कोई उल्लेखकर सकता है। तथ्य यह है कि श्रीपाद रूप-गोस्वामीने भक्ति तथा भक्तिरसके सम्बन्धमें पुंखानुपुंख भावसे विज्ञान सम्मत आलोचना की है। उनके आनुगत्यमें श्रीपाद जीवगोस्वामीने उनके ग्रन्थोंकी टीकाओंमें तथा षट्सन्दर्भ-ग्रन्थरत्नमें भक्तिरसके सम्बन्धमें अशेष-विशेष रूपसे आलोचना की है। इनसे पूर्व किसी वैष्णवाचार्यने भक्तिरसके सम्बन्धमें न ही इतना अनुसन्धान किया और न ही कोई विज्ञान-सम्मत रस-ग्रन्थ ही प्रस्तुत किया।

वस्तुतः रस-रस कहनेसे कोई रसवेत्ता या रसिकाचार्य नहीं बनता, अनन्य रसिक होना तो बहुत दूर की बात है। रसको ज्ञान-विज्ञान सहित समझना एवं उसके वास्तव स्वरूप-की अनुभूति एकमात्र रसस्वरूप श्रीभगवान्‌की कृपाके विना नहीं हो सकती। अन्यथा रसाभास, अपसिद्धान्तोंसे पूर्ण रसकी चर्चाएं भगवत् लीलाओंकी आड़में प्राकृतेन्द्रिय रसोत्पत्ति कर साधक-का सर्वनाश करनेवाली होती हैं।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यके साक्षात् कृपाप्राप्त गौड़ीय वैष्णवाचार्योंकी केवल रस-विषयक ही नहीं, उनके समस्त दार्शनिक आलोचनाओंका मूल आधार हैं रसस्वरूप परब्रह्मश्रीनन्द-नन्दन। सबका पर्यवसान भी उन्हींकी प्राप्तिमें है। हर सिद्धान्तकी मूल भित्ति है प्रस्थानत्रयी। उन्होंने भक्तिरसको केवल दार्शनिक भित्तिपर ही प्रतिष्ठित नहीं किया, अपितु सुदृढ़ और नीरन्ध्र दार्शनिक प्राचीरमें उसके संरक्षणकी भी वे व्यवस्था कर गये हैं।

## रस–सूत्र

**प्रेमादिक स्थायीभाव सामग्री-मिलने।**
**कृष्णभक्तिरस-स्वरूप पाय परिणामे॥**
**विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी।**
**स्थायीभाव 'रस' हय एइ चारि मिलि॥**

श्रीचैतन्यचरितामृत, २।२३।२५-२६

# गौड़ीयवैष्णव-दर्शन—अचिन्त्य भेदाभेदवाद

सभी प्राणी दुखसे छुटकारा चाहते हैं और सभी चाहते हैं सुख, किन्तु ऐसा होता है क्या ? दुखके न चाहनेपर भी, उसे बहुत टालनेके यत्न करनेपर भी दुख आता है और सुखके चाहनेपर, उसकी प्राप्तिके लाख-लाख साधन जुटानेपर भी सुख प्राप्त नहीं होता। अतः दुखकी आत्यन्तिकी निवृत्ति कैसे हो और वास्तव सुख कैसे मिले—इस विषयको निर्णय करनेके लिए विभिन्न मनीषियोंके चिन्तन करनेपर दर्शन-शास्त्रोंका उद्भव हुआ और विभिन्न दार्शनिक-मतवाद सामने आये।

कोई तो केवल सांसारिक सुखोंको प्राप्त करने तथा उनके जुटानेके उपायोंमें निष्ठा रखते हैं, उनका विचार है कि दुखके कारण या दुखको दूर करनेकी क्या चिन्ता ? सुखोंको जुटाओ, सुखोंकी बाढ़में दुख अपने-आप बह जायेंगे। कोई दोनों बातोंमें ध्यान रखे हुए हैं, दुखकी निवृत्तिके साथ-साथ सुख भी चाहते हैं, उसका भी सन्धान करते हैं। अनेकोंका मन्तव्य है दुख-सुखका तो जोड़ा है। दुख-सुख साथ-साथ रहते हैं, अतः दुखकी आत्यन्तिकी निवृत्ति की जाये। वे सुख जुटानेके हकमें नहीं हैं। ऐसा भी समुदाय है जो केवल शाश्वत सुखकी प्राप्तिके उपायोंके सन्धानमें रत है। वह कहता है सूर्यके उदित होनेपर जैसे अन्धकार अपने-आप दूर भाग जाता है, वैसे शाश्वत सुख प्राप्त होनेपर दुख अपने-आप निवृत्त हो जायेगा।

इस प्रकारकी विभिन्न चिन्ताओं या धारणाओंके फलस्वरूप विभिन्न दार्शनिक-मतवादोंका उद्भव हुआ। दुखकी निवृति तथा सुखकी प्राप्तिके उपायोंके अनुसन्धान करनेमें मनीषियोंके सामने और भी कई प्रश्न उठ खड़े हुए—सुख क्या है ? सुख-दुखका भोक्ता जीव क्या है ? यह जो हम लम्बा-चौड़ा विस्तार देख रहे हैं, यह जगत् क्या है ? किसने इसे बनाया ? या कोई भी इसे बनाने वाला नहीं है ? मृत्यु क्या बला है ? मृत्युके बाद जीव कहां जाता है, रहता है या इसका बिल्कुल अभाव हो जाता है ? इस प्रकारके अनेक प्रश्न मनीषियोंके सामने आये और उन्हें ऐसे अनेक तत्त्वोंकी गहरी गवेषणा, आलोचना करनी पड़ी। विभिन्न दार्शनिकोंने अपनी-अपनी सूझके अनुसार अन्तिम निर्णय किया और उस सिद्धान्तके आधारपर अपना-अपना मतवाद संस्थापन किया, और उसका नामकरण भी।

चार्वाक, बौद्ध, जैन तथा निरीश्वर सांख्य-दर्शन—इन चारोंका मतवाद वेद-उपनिषद् मतके विरुद्ध है, ये नास्तिक दर्शन माने जाते हैं। योग,





वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमांसा (जैमिनी) दर्शन—इनकी कुछ-कुछ किसी अंशमें मान्यता है भी और नहीं भी, कारण कि उक्त दार्शनिकोंने जो तत्त्व या पदार्थ स्वीकार किये हैं, वे उन्हींके द्वारा ही कल्पित हैं। अपौरुषेय वेदकी भूमिसे उनके पांव अधर हैं।

सर्वोपरि है वेदान्त-दर्शन (उत्तर मीमांसा), अर्थात् वेदके उत्तर-काण्डान्तर्गत जो उपनिषद् हैं तथा उनके अनुगत जो स्मृतिग्रन्थ हैं, उनकी सम्यक् विचारपूर्वक जो मीमांसाकी है श्रीभगवान्‌ने श्रीवेदव्यासके रूपमें, उसका नाम है **'वेदान्त दर्शन'** या **'ब्रह्मसूत्र'**। इस वेदान्त-दर्शनमें जो तत्त्व पदार्थ स्वीकृति हुए हैं वे विद्वत्ताके बलपर या कपोल-कल्पित मात्र नहीं हैं। वे अपौरुषेय वेदोंपर प्रतिष्ठित हैं। उनमें भ्रम-प्रमादादि दोषचतुष्टयका कोई अवकाश ही नहीं है।

वेदान्त-दर्शनमें श्रुति-कथित ब्रह्मको ही एकमात्र तत्त्व स्वीकार किया गया है। जीव-जगत् आदि समस्त पदार्थ उसी ब्रह्मके ही अन्तर्भुक्त माने गये हैं। इस वेदान्त-दर्शनके भाष्य-कारोंने भी अपनी-अपनी दृष्टि-भंगीके अनुसार विभिन्न मतवाद स्थापन किये हैं। सबने वेदको अपौरुषेय प्रामाण्य स्वीकार किया है, फिर भी वेद-वाक्योंके व्याख्यान प्रसंगमें युक्ति-तर्क उठाकर अलग-अलग सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। इस विभिन्नताका मूल कारण है वेद-वाक्योंके विभिन्न वृत्तियोंमें अर्थ। कहीं मुख्यावृत्तिसे तो कहीं लक्षणा अथवा गौणीवृत्तिसे अर्थ ग्रहण किये गये हैं। अर्थोंके व्याख्यानमें युक्ति-तर्ककी अपेक्षा रहती है। कुछ भाष्यकारोंने वेद-प्रतिष्ठित युक्ति-तर्क अपनाई हैं तो दूसरेने लौकिक या निजस्व युक्ति-तर्कके आधारपर वेद-वाक्योंका अर्थ ग्रहण किया है। अतः एक ही ब्रह्मसूत्रमें अनेक मतवाद स्थापित हो गये। ब्रह्मसूत्रके प्रथम भाष्यकार हैं श्रीशंकराचार्य, उनके बाद अनेक वैष्णवाचार्योंने भी उसके अपने-अपने भाष्य रचे—वे सबही वेदान्त हैं, केवल शांकर-भाष्य ही वेदान्त नहीं। प्रमुख भाष्यकारोंके मतवादोंका अति संक्षिप्त परिचय देनेके बाद हम गौड़ीय वेदान्त-दर्शनका किञ्चित् उल्लेख करेंगे—

**श्रीशंकराचार्यने** एकमात्र ब्रह्मको परम तत्त्व स्वीकार किया है, किन्तु ब्रह्मको इन्होंने निर्विशेष, निर्गुण, निःशक्तिक प्रतिपादन किया है। उसे ज्ञानस्वरूप माना है, ज्ञाता नहीं, आनन्द स्वरूप माना है, आनन्दमय नहीं। आनन्द या चित् सत्ता मात्र माना है। जीव एवं जगत्‌को इन्होंने भ्रम मानकर इनका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया। मायाको अवश्य इन्होंने बीचमें रखा है जिसके योगसे निर्विशेष ब्रह्म सविशेष होकर 'ईश्वर' नामको प्राप्त करता है और वह जगत्‌की सृष्टि करता है। जीव-जगत्‌का अस्तित्व न माननेके कारण ब्रह्मसे इन दोनोंके सम्बन्धका इस वादमें कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इनके मतवादका नाम है **'अद्वैतवाद'**, **'मायावाद'** या **'प्रच्छन्न बौद्धमत'**।

इनके बाद श्रीरामानुजाचार्यने एक ही तत्त्व ब्रह्म स्वीकार किया है और उसको स्वरूपतः सर्वबृहत्तम—स्वरूपमें, शक्तिमें एवं गुणोंमें असीम प्रतिपादित किया है। ब्रह्मको

सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, मायातीत, जगत्का कर्त्ता, सर्वज्ञ, साकार एवं सविशेष निरूपण किया है। इन्होंने वैकुण्ठपति श्रीनारायणको ही परब्रह्म स्थापन किया है।

श्रीमध्वाचार्य, श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीवल्लभाचार्य तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके चरणाश्रित श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्योंने ब्रह्मके स्वरूपको प्राय श्रीरामानुजाचार्यके मतानुसार प्रतिपादित किया है। ऐसे ही जीव तथा जगत्के स्वरूपको सत्य, किन्तु नाशवान्। कर्त्ता, भोक्ता, ब्रह्मका अंश, अणु, अल्पज्ञ, संख्यामें अनन्त तथा जीवके नित्य पृथक् अस्तित्वको स्वीकार किया है। एकमात्र श्रीशंकराचार्यको छोड़कर अन्यान्य सब भाष्यकारोंने जीव-जगत्का अस्तित्व स्वीकार किया है।

इन भाष्यकारोंके मतमें यदि पार्थक्य है तो वह है ब्रह्मकी स्वरूप-वैचित्रीके विषयमें, जीव-जगत्के स्वरूप तथा ब्रह्मके साथ जीव-जगत्के सम्वन्धको लेकर।

**श्रीरामानुजाचार्यने** श्रीनारायणको परब्रह्म माना है और जीव-जगत्को परब्रह्मका शरीर माना है। अतः ब्रह्मके साथ जीव-जगत्का शरीरी-शरीर सम्वन्ध माना है। जीव-जगत्, दोनोंको ब्रह्मका विशेषण कहा है। अतः इनके मतको **'विशिष्टाद्वैत-वाद'** कहा गया है।

**श्रीभास्कराचार्यने** ब्रह्मके दो रूप माने हैं—कारण रूप ब्रह्मको अद्वितीय तथा कार्यरूप ब्रह्मको अनेक माना है। ब्रह्मकी दो शक्तियां इन्होंने स्वीकार की हैं—जीव परिणाम-शक्ति तथा अचेतन परिणाम-शक्ति। जीव परिणाम-शक्तिसे ब्रह्म अनादि अविद्या तथा कर्मकी उपाधियोंसे युक्त होकर जीव रूपमें परिणत होता है और अचेतन परिणाम शक्तिसे उपाहित होकर ब्रह्म जगत्रूपमें प्रकाशित होता है। सृष्टिकालमें जीव-जगत्को इन्होंने ब्रह्मसे भिन्न तथा प्रलयमें ब्रह्मसे अभिन्न माना है। अतः जीव-जगत्का ब्रह्मसे भेदाभेद सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, किन्तु औपाधिक। अतः इनके मतको **'औपाधिक या औपचारिक भेदाभेदवाद'** कहा जाता है।

**श्रीमध्वाचार्यने** श्रीविष्णुको परब्रह्म माना है। जीवको ईश्वरका निरुपाधिक प्रतिबिम्बांश और परतन्त्र तत्त्व माना है। जगत्को भी परतन्त्र तत्त्व माना है और उसका निमित्त-कारण माना है ईश्वरको और उपादान कारण माना है जड़ प्रकृतिको। जीव-जगत्को परतन्त्र एवं उनका वास्तव पृथक् अस्तित्व मानकर ब्रह्मसे उनका नित्य-भेद माना है। अतः इनके मतका नाम है –**'द्वैतवाद।'**

**श्रीनिम्बार्काचार्यने** श्रीकृष्णको परब्रह्म निरूपण किया है। जीवको ब्रह्मका चिदंश और जगत्को ब्रह्मका अचित्-अंश माना है। ब्रह्मको कारण तथा जीव-जगत्को ब्रह्मका कार्य या अंश मानकर ब्रह्मसे जीव-जगत्का स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध स्वीकार किया है, जैसे अंश-अंशीमें स्वाभाविक भेद एवं अभेद रहता है। अतः इनके मतको **'स्वाभाविक भेदाभेद-वाद'** कहा जाता है।





**श्रीवल्लभाचार्यने** श्रीकृष्णको ही परब्रह्म माना है। जीव-जगत्को सत्य तथा ब्रह्मका कार्य स्वीकार कर कारण-ब्रह्मसे अभिन्न माना है। इन्होंने भी श्रीशंकराचार्यकी भांति अद्वैतवाद स्थापन किया है। पार्थक्य यह है कि श्रीशंकराचार्यके अद्वैतवादमें मायाका सम्बन्ध है, किन्तु इनके अद्वैतवादमें मायाका कोई सम्बन्ध नहीं—वह शुद्ध है। अतः इनके मतको **'शुद्धाद्वैतवाद'** कहा गया है।

**श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य** तथा उनके अनुयायी गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने ब्रह्मसूत्रका पृथक् कोई भाष्य नहीं रचा। ब्रह्मसूत्रके रचयिता श्रीवेदव्यास द्वारा ब्रह्मसूत्रके भाष्यरूपमें आविर्भूत श्रीमद्भागवतको ही ब्रह्मसूत्रका प्रकृत-भाष्य घोषित किया है। अवश्य श्रीमाध्वसम्प्रदायसे गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदायका नितान्त पृथक् अस्तित्व प्रमाणित करनेकी परिस्थितिमें श्रीबलदेव विद्याभूषणने श्रीगोविन्द-भाष्यकी रचना की और श्रीमन्महाप्रभुके हार्द श्रीमद्भागवतीय मतका अनुसरण किया, जिसे श्रीजीवगोस्वामीपादने अपने षट्सन्दर्भात्मक श्रीभागवत-सन्दर्भमें बहुत पहले विशद आलोचना पूर्वक प्रतिष्ठित किया था।

गौड़ीय वैष्णवाचार्यों द्वारा ब्रह्मसूत्रके पृथक् भाष्य न रचनेका कारण यह है कि भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने श्रीभगवद्मुखनिसृत चतुष्यात्मक एक वेदको संक्षिप्तरूपसे ऋग-यजु-साम-अथर्व—इन चार भागोंमें विभक्त किया। इसलिये उनका नाम 'वेदव्यास' पड़ा[१]। दुर्बोध्य वेदोंके तात्पर्य या प्रतिपाद्य परतत्त्वको सुगम बनानेके लिये उन्होंने ब्रह्मसूत्रकी रचना की। इन सूत्रोंका अर्थ निर्णय करना भी सर्व-सहज न था, अतः उन्होंने ब्रह्मसूत्रके अर्थ-निर्णयके लिए इतिहास—महाभारत एवं अठारह पुराणोंको प्रकटित किया, जिसमें एक पुराण श्रीभागवत भी था, किन्तु उसका अति संक्षिप्त रूप था, वर्तमान विस्तृत श्रीमद्भागवतका उन्होंने समाधिके बाद ही अविर्भाव किया। श्रीवेदव्यासजीने इतिहास एवं पुराणोंके विना वेद एवं वेदान्त-सूत्रोंकी अपूर्णताका अनुभव किया था[२]।

ब्रह्मसूत्र, इतिहास एवं पुराणोंके प्रकटित करनेपर भी जब श्रीवेदव्यासजी मनःसन्तोषको प्राप्त न हुए, तो वे समाधिस्थित हो गये। उन्हें समाधिमें ब्रह्मसूत्रके अकृत्रिम भाष्यरूपमें वर्तमान श्रीमद्भागवत प्राप्त हुई। उसमें समस्त वेदोंके तात्पर्यार्थ या प्रतिपाद्य विषय-सम्बन्ध-तत्त्व श्रीभगवान्का, जीव-जगत्का, माया तथा माया निवृतिके उपायका संक्षिप्त परिचय मिला।

---

१—संक्षिप्य चतुरो वेदांश्चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः।
व्यस्तवेदतयाख्यातो वेदव्यास इति स्मृतः॥ शिवपुराण वा० संहि० १।३३

२—इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत॥ महाभारत, आ० प० १।२६७॥
पूरणात् पुराणम्॥ मनुस्मृति॥

वेदोंके सूत्ररूप गायत्रीके आधारपर उस श्रीभागवतकी प्रवृत्तिको उन्होंने अनुभव किया[1]। श्रीमद्-भागवत ब्रह्मसूत्रोंकी तथा महाभारतकी अर्थ-निर्णायक है। गायत्रीका भाष्य है। समस्त वेदोंका निगूढ़ तात्पर्य अर्थ इसमें सन्निविष्ट है। सामवेदकी भांति यह समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ एवं प्रधान है। साक्षात् श्रीभगवान्के द्वारा कथित होनेके कारण ही इस पुराणका नाम **'भागवत'** है—

**अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः।**
**गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ-परिबृंहितः**
**पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भगवतोदितः॥**
**द्वादशस्कन्धयुक्तोऽयं शतविच्छेद संयुतः।**
**ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥**

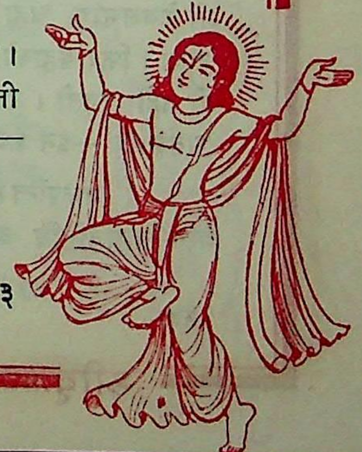
श्रीगरुड़पुराण।

इस प्रकार अनेक अपौरुषेय प्रमाणों द्वारा सिद्ध ब्रह्मसूत्रोंके अकृत्रिम-भाष्य श्रीमद्-भागवतके विद्यमान रहते हुए भी विभिन्न भाष्यकारोंने भागवत-सिद्धान्तवादकी अवहेलना कर अपने-अपने अनुभव-तर्कयुक्तियोंके आधारपर प्राकृत भाष्योंका प्रचार-प्रसार किया।

स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण व्रजरसनिर्यास आस्वादनकी शृङ्खलामें जब नवद्वीपधाममें श्रीशचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्य-रूपसे अवतीर्ण हुए, तब उन्होंने अनर्पित-चरीं चिरात् अपनी परमोज्ज्वलरसमयी भक्ति-सम्पतिदानके साथ-साथ उक्त विभिन्नवादोंकी गुत्थीको भी सुलझाया। निजकृत वेद-ब्रह्मसूत्रोंके प्रकृत-भाष्य श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तवादको सर्वोपरि प्रतिष्ठित किया। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने अपने चरणाश्रित गौड़ीय गोस्वामिवृन्दके सामने इस परम गुह्यतम रहस्यका उद्घाटन किया। गौड़ीय-दर्शन-प्रधानाचार्य श्रीपाद श्रीजीव-गोस्वामीने उसी श्रीभागवतीय सिद्धान्तको **'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद'** की आख्या प्रदान की। साथ ही विस्तृतरूपसे पूर्व प्रचलित वादोंकी आलोचना कर उनमें वेद-श्रुति-स्मृति सिद्धान्तोंका विरोध एवं असंगतिका भी सप्रमाण उल्लेख किया।

**ब्रह्मको** गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने सविशेष, सशक्तिक, सच्चिदानन्द-विग्रह, अनन्त अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न माना है। सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्त्ता, अनन्त कल्याण-गुणालय तथा लीला-विलासी कहा है। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं एवं उनका धाम है श्रीगोलोक-वृन्दावन। परब्रह्मकी अनन्त शक्तियोंमें इन्होंने चित्-शक्ति स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति (तटस्था शक्ति) तथा मायाशक्ति (बहिरंगा शक्ति)—इन तीनोंको मुख्य एवं परब्रह्मकी स्वाभाविकी शक्तियां निरूपण किया है।

स्वरूपशक्तिकी तीन वृत्तियां हैं—सन्धिनी, सम्वित् एवं ह्लादिनी। सन्धिनी है सच्चिदानन्द परब्रह्मकी 'सत्'-अंशकी शक्ति, जो सत्त्वा-सम्बन्धिनी



---

१—यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म-विस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते॥ मत्स्य, ५३।२०



या आधारशक्ति है। संवित् शक्ति है 'चित्'-अंशकी शक्ति, जो ज्ञान सम्बन्धिनी है, और ह्लादिनी है 'आनन्द' अंशकी शक्ति जो आनन्ददायिनी शक्ति है।

**जीवको** गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने परब्रह्मकी जीवशक्ति (तटस्था-शक्ति) का अंश माना है। चिद्रूपा होकर भी जीव चित् या स्वरूपशक्ति नहीं है, उसका अंश भी नहीं है, श्रीकृष्णका विभिन्नांश है। संख्यामें अनन्त, ज्ञानस्वरूप एवं ज्ञाता, कर्त्ता कहकर जीवका स्वरूप निरूपण किया गया है। जीवके कर्तृत्वको परमेश्वराधीन तथा स्वरूपत: जीवको नित्य-कृष्णदास कहा गया है।

**जगत्को** परब्रह्मकी माया ( बहिरङ्गा ) शक्तिकी परिणति माना है ; जगत् रूपमें परिणत होकर भी स्वीय अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे ब्रह्म अविकृत रहता है।

**जीव एवं जगत्का ब्रह्मके साथ सम्बन्ध** इन्होंने शक्ति और शक्तिमानका सम्बन्ध प्रतिपादित किया है। जीव-जगत्का ही नहीं, समस्तका—प्राकृत-अप्राकृत (चिन्मय-धामों) का भी ब्रह्मके साथ शक्ति-शक्तिमानका सम्वन्ध वर्णन किया है। शक्ति व शक्तिमानका सम्बन्ध वास्तवमें भेदाभेद सम्वन्ध है। कस्तूरीसे गन्धको जब पृथक् नहीं किया जा सकता, तब ऐसा ज्ञात होता है कि दोनोंमें कोई भेद नहीं है। दोनोंके अभेदका सिद्धान्त करते हुए भी एक समस्या सामने आती है। जहाँ कस्तूरी कुछ दूर नेत्रोंसे परे रहती है, तब वहाँ भी कस्तूरीकी गन्धका अनुभव होता है। तब कस्तूरीसे कस्तूरीकी गन्धको एक या अभिन्न भी नहीं कहा जा सकता। इन दोनोंमें भेद भी स्वीकार करना पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शक्तिको शक्तिमानके स्वरूपसे अभिन्न भी नहीं समझा जा सकता, क्योंकि दोनोंमें भेद सिद्ध है और दोनोंके बीच भेद भी केवल स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों अभिन्न प्रतीत होते हैं। अत: शक्ति और शक्तिमानके बीच युगपत् भेद एवं अभेद—दोनों ही स्वीकार करने पड़ेंगे।

यह भेदाभेद अचिन्त्य है, यह भी स्वीकार करना होगा। **तस्मात् स्वरूपादभिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद् भेदः, भिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद् अभेदश्च प्रतीयत इति शक्तिशक्तिमतो र्भेदाभेदावेवाङ्गीकृतो तौ च अचिन्त्यौ इति ॥ सर्वसम्वादिनी ॥**

श्रीपादजीवने कहा है—केवल अभेद स्वीकार करने पर यह दोष उपस्थित होता है कि—परब्रह्मको श्रुतियोंमें ज्ञान-विज्ञाननिधि अर्थात् ज्ञान विज्ञानपूर्ण तथा अनन्तशक्ति-विशिष्ट भी कहा गया है। यदि शक्ति और शक्तिमानका आत्यन्तिक अभेद स्वीकार कर लिया जाए, तो केवलमात्र 'ब्रह्म' शब्दके उल्लेखमें ही शक्ति व शक्तिमान्—इन दोनोंका परिचय मिल जाता। फिर ब्रह्मको ज्ञान-विज्ञाननिधि एवं सर्वशक्ति कहकर उल्लेख करनेकी कोई सार्थकता ही नहीं रहती। उससे बल्कि पुनरुक्ति दोष और उपस्थित होता है। 'ज्ञानविज्ञाननिधि', 'सर्वशक्ति'—इन शब्दोंसे शक्तिमान ब्रह्म और उसकी शक्तिमें भेदका ही सूचना मिलती है।

आत्यन्तिक-भेद स्वीकार करनेसे ब्रह्मका अद्वयत्व नहीं रहता। इस रूपमें ब्रह्म फिर ज्ञान-विज्ञाननिधि और सर्वशक्ति भी नहीं हो सकता। इन दोनों शब्दोंसे ब्रह्मकी शक्तिका

स्वाभाविकत्व सूचित होता है। आत्यन्तिक भावसे भिन्न शक्ति कभी भी स्वाभाविकी नहीं हो सकती। अथच शक्ति ब्रह्मकी स्वाभाविकी है, यह बात श्रुति प्रतिपादित है।

श्रीपाद जीवगोस्वामीने भेद एवं अभेदके सम्बन्धमें विषद विचार किया है। अन्तमें उन्होंने यह सिद्धान्त किया है कि शक्ति एवं शक्तिमानके बीच जैसे भेदकी स्थापना कठिन है, उसी प्रकार उनमें अभेदको स्थापन करना भी कठिन है। इसलिए कोई-कोई भेदाभेद साधन विचारमें असमर्थ होकर 'अचिन्त्य भेदाभेद-वाद' को स्वीकार करते हैं। —**'अपरे तु तर्काप्रतिष्ठानात्'** ( ब्रह्मसूत्र, २-१-११ ) **भेदेऽप्यभेदेऽपि निर्मर्याददोष-सन्ततिदर्शनेन भिन्नतया चिन्तयितुमशक्यत्वादभेदं' साधयन्तुः तद्वदभिन्नतयापि चिन्तयितुमशक्यत्वाद् भेदमपि साधयन्तोऽचिन्त्य-भेदाभेदवादं स्वीकुर्वन्ति ।। सर्वसस्वादिनी ।।**

इस रूपमें असमर्थतावश जो अचिन्त्य-भेदाभेदवादको स्वीकार करते हैं, यह बात श्रीगोस्वामिपादने 'अपरे तु', दूसरे लोगोंके सम्बन्धमें कही है। वे स्वयं क्यों अचिन्त्य भेदाभेदवाद स्वीकार करते हैं—उसके सम्बन्धमें वे अपना मत स्पष्ट करते हुए कहते हैं—**स्वमते तु अचिन्त्य भेदाभेदावेव अचिन्त्यशक्ति मयत्वादिति।** सर्वसम्वादिनी ।। श्रीजीव कहते हैं—हमारे मतमें या हम जो 'अचिन्त्य भेदाभेद' स्वीकार करते हैं, वह केवल भेद-अभेद सम्बन्धके अचिन्त्य शक्तिमयत्वके कारण ही 'अचिन्त्य-भेदाभेद' स्वीकार करते हैं, न कि असमर्थतावश।

अन्यान्य लोग 'अचिन्त्य भेदाभेद' इसलिए स्वीकार करते हैं कि श्रीविष्णुपुराणमें भी उनके मतका समर्थन किया गया है। वहां श्रीमैत्रेयजीने श्रीपराशरजीसे जिज्ञासा की है कि जो निर्गुण है, जो देशकालादि द्वारा अपरिच्छिन्न हैं, जो शुद्ध एवं रागद्वेषादिसे रहित है, उस ब्रह्मके पक्षमें जगत्को सृष्टि-रचना आदि कर्तृत्व किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है?— इस जिज्ञासाका समाधान करते हुए श्रीपराशरजीने कहा है (विष्णुपुराण, १।३।२२)—

**शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञान - गोचराः ।।**
**यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्य भावशक्तयः।**
**भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ।।**

हे तपस्वि श्रेष्ठ! समस्त भाव पदार्थोंकी शक्तियाँ जैसे अचिन्त्य, अगोचर हैं, उसी प्रकार ब्रह्मकी जगत् सृष्टयादि भाव-शक्ति भी अचिन्त्य-ज्ञान गोचर है। अग्निको दाहिका शक्तिकी भाँति उसकी भी वह शक्ति स्वभाव-सिद्धा है।

तात्पर्य यह है कि जगत्में अनेक पदार्थोंकी शक्तियोंको हम तर्क या किसी युक्तिसे निर्णय नहीं कर पाते, अर्थात् वे अचिन्त्य हैं, वे अचिन्त्य-ज्ञान-गोचर हैं। जैसे मणिमें सर्पविषको हरनेकी शक्ति, मन्त्रोंमें अनेक शक्तियाँ—इत्यादि ये सब अचिन्त्य ज्ञान-गोचर हैं।

श्री श्रीधरस्वामिपादने कहा है—**अचिन्त्या भिन्नाभिन्नत्वादिविकल्पैश्चिन्तयितुम् अशक्याः।'** अर्थात् जो भिन्नता एवं अभिन्नतादि विकल्पके द्वारा चिन्ताके अयोग्य है वह **'अचिन्त्य'** है।





ब्रह्मसूत्र 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।' से तथा श्रीमहाभारतके निम्नलिखित श्लोकसे भी इसी अर्थका समर्थन होता है—

**अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् ।**
**प्रकृतिभ्यः परं यत्तू तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ।।**

जो भाव या शक्तिसमूह अचिन्त्य हैं, जिनका निर्णय तर्क-युक्तिसे नहीं किया जा सकता, जो प्रकृतिसे अतीत अर्थात् प्राकृतेन्द्रिय-मन-बुद्धिके अगोचर हैं, उन्हें 'अचिन्त्य' कहते हैं ।

इस प्रकार 'अचिन्त्य'—शब्दके शास्त्रसम्मत अर्थोंको ग्रहण पूर्वक अन्यान्य लोगों द्वारा अचिन्त्य भेदाभेदकी स्वीकृतिको भी प्रमाणित एवं शास्त्रसम्मत माना गया है, फिर भी श्रीपाद जीवगोस्वामीजीने, अपने मतमें भेदाभेदके साथ 'अचिन्त्य'—शब्दका एक विशेष हेतु अभिव्यक्त किया है, जिसका किसीने भी उल्लेख नहीं किया । उन्होंने कहा है कि **अचिन्त्यशक्तिमयत्व-वशतः हम अचिन्त्य-भेदाभेद स्वीकार करते हैं** । अचिन्त्य शक्तिमयत्व किसका ? ब्रह्मके शक्तिमयत्वसे उनका अभिप्राय नहीं है, क्योंकि यदि यही उनका अभिप्रेत होता तो, यहां ब्रह्म शब्दका उल्लेख वे अवश्य करते, अर्थात् **'ब्रह्मणः अचिन्त्यशक्तिमयत्वात्'**—इस प्रकार वे उल्लेख करते । किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । विशेषतः विष्णुपुराणके **'शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्य ज्ञानगोचराः'**—इस वाक्यमें समस्त वस्तुओंकी शक्तिसमूहके सम्बन्धमें ऐसा कहा गया है । केवल ब्रह्मकी शक्तिके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही गई है । प्राकृत एवं अप्राकृत समस्त वस्तुओंके साथ उनकी शक्तियोंका अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है । अतः ब्रह्मकी अचिन्त्यशक्ति ही अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्धका मूल है, श्रीजीवगोस्वामिपादका यह अभिप्राय नहीं है । उन्होने शक्तिमयत्वको भेदाभेदका विशेषण माना है । भेदाभेदका अचिन्त्य-शक्तिमयत्व या अचिन्त्य प्रभाव अथवा अचिन्त्य स्वभाव ही उनका अभिप्रेत है, अर्थात् शक्ति एवं शक्तिमान्के बीच जो सम्बन्ध है, उसका एक ऐसा स्वभाव या प्रभाव है कि जिससे भेद तथा अभेद युगपत् रह सकते हैं, और वही स्वभाव व प्रभाव ही अचिन्त्य है या चिन्तातीत है ।

दृष्टान्त—दो भाग हाइड्रोजनके साथ एक भाग आक्सीजन मिलानेसे जलकी उत्पत्ति होती है—ऐसा विज्ञान सिद्ध है । किन्तु इसका क्या कारण ? अर्थापत्ति न्यायसे यही कहा जा सकता है कि हाईड्रोजन एवं आक्सीजनमें ही ऐसी कोई अचिन्त्यशक्ति है जो पानीकी उत्पत्तिका हेतु है । इन दोनोंको मिलाने वाले व्यक्तिकी शक्तिका कुछ भी कार्य नहीं है । इन दोनों गैसोंमें स्वभावतः रहने वाली कोई एक शक्ति जलकी उत्पत्तिका हेतु है । युक्ति तर्कके द्वारा वह शक्ति निर्णीत नहीं हो सकती । वह एक अचिन्त्य शक्ति है । इसी प्रकार शक्ति एवं शक्तिमानमें भेद एवं अभेद विद्यमान् हैं । उन्हींकी ही कोई एक अचिन्त्य शक्ति उनके युगपत् अवस्थान या अस्तित्वका कारण है ।

ब्रह्मकी अचिन्त्य शक्ति ही यदि परस्पर विरोधी भेद एवं अभेदके युगपत् अस्तित्वका हेतु होती तो श्रीजीवगोस्वामिपाद सहजमें ही यह कह सकते थे कि ब्रह्मकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे उसमें युगपत् भेद एवं अभेदकी विद्यमानता है। किन्तु ऐसा न कहकर उन्होंने शक्ति एवं शक्तिमान्‌के बीच भेदाभेदके अचिन्त्य शक्तिमयत्वकी अपूर्व कथा कही है **'तौ च अचिन्त्यौ'** ॥ सर्वसम्वादिनी ॥

यहां एक प्रश्न उठता है —**विचित्रशक्तिः पुरुषः पुराणो न चान्येषां शक्त्योस्तादृशाः स्युः एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा सर्वान् देवानेक एवानुविष्टः** ॥ अर्थात् वह पुराणपुरुष ब्रह्म विचित्र शक्ति सम्पन्न है या अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न है, वैसी शक्ति और किसीमें भी नहीं है—वही एक वशीकारक है, सर्वभूतोंका अन्तरात्मा है; वह एक होकर भी समस्त देवताओंमें अनुप्रविष्ट है। ऐसा श्वेताश्वतर श्रुति कहती है। इस श्रुति वाक्यानुसार जब केवल ब्रह्ममें हो ऐसी अचिन्त्य शक्ति है, और किसीमें नहीं, तब भेदाभेद सम्बन्धकी अचिन्त्य शक्ति कैसे मानी जा सकती है ? इससे श्रुतिवाक्योंके साथ विरोध उत्पन्न होता है।

इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीगोस्वामिपादने कहा है कि—ब्रह्मकी अचिन्त्य-शक्तिका एक असाधारण वैशिष्टच है। वह अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे एक होते हुए भी अन्तर-आत्मा-रूपसे सर्वभूतोंमें अनुप्रविष्ट है। इसी अचिन्त्य-शक्तिका व्यापकत्व सर्वातिशायी है। श्रुतिने जो कहा है—ब्रह्मकी अचिन्त्य शक्तिके समान अचिन्त्य शक्ति और किसीमें नहीं है, उसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मकी सर्वातिशायी व्यापक अचिन्त्यशक्तिके समान और किसीकी अचिन्त्यशक्ति नहीं है, केवल वह ब्रह्ममें ही है। भेदाभेद सम्बन्धकी अचिन्त्यशक्ति केवलमात्र इसी सम्बन्धमें ही सीमाबद्ध है। इस सम्बन्धके बाहर इसकी व्याप्ति नहीं है। अतः भेदाभेद सम्बन्धका जो अचिन्त्य शक्तित्व है, वह ब्रह्मके सर्वातिशायी व्यापकत्व विशिष्ट अचिन्त्य शक्तित्वसे सर्वथा भिन्न है। एक जातीय होनेपर भी व्यापकत्वमें अनेक पार्थक्य है। अतः इसमें विरोध कुछ भी नहीं है। श्रुतिवाक्यसे विरोध न होनेके कारण ही तो सबने मणि—मन्त्र-औषधि आदिकी अचिन्त्य शक्ति स्वीकार की है और भाववस्तुमात्रकी ही शक्तिको विष्णुपुराणमें अचिन्त्य शक्ति कहकर वर्णन किया गया है। अर्थापत्ति न्यायसे भेदाभेद सम्बन्धकी उत्पत्तिके लिए जिस हेतुकी कल्पनाकी जा सकती है, वही हेतु ही शक्ति-शक्तिमान्‌के भेदाभेद सम्बन्धका एक अचिन्त्य धर्म या अचिन्त्य-शक्ति है।

श्रीजीवगोस्वामिपादने परब्रह्मके साथ उसकी शक्तिके अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्धको श्रुतार्थापत्ति ज्ञानगोचर कहा है। जो बात प्रत्यक्ष नहीं दीखती, किन्तु जिसका ज्ञान श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रोंमें प्राप्त होता है एवं जो अति प्रसिद्ध हो, अथवा जिसके हेतुके सम्बन्धमें कुछ भी उल्लेख न पाया जाए, उसके सम्बन्धमें जिस हेतुकी आपत्ति या कल्पना की जाती है, उसे 'श्रुतार्थापत्ति' कहते हैं।

एक दृष्टान्त द्वारा इसे दिखाते हैं—श्रुतिसे जाना जाता है कि





अग्निष्टोम यज्ञ करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। श्रुतिका वचन है अतः इसे सब स्वीकार करते हैं। किन्तु इस बातके हेतुका कुछ भी उल्लेख कहीं नहीं किया गया। यदि कहा जाए कि अग्निष्टोम यज्ञको स्वर्गप्राप्तिका हेतु कहा तो गया है—हेतुका उल्लेख कैसे नहीं है? तो इसका उत्तर यह है कि हेतुका फलके साथ सदा अव्यवहित सम्बन्ध रहता है। जो फलसे अव्यवहित या सम्बन्धरहित है, उसे हेतु नहीं कहा जा सकता—ऐसा न्यायशास्त्र कहता है। अग्निष्टोम यज्ञ तो किया जाता है जीवित अवस्थामें और यज्ञकर्त्ताको फलकी प्राप्ति या स्वर्गकी प्राप्ति होती है मृत्युके बाद। अतः यज्ञ एवं स्वर्ग-प्राप्ति—इन दोनोंके बीच समयका, अवस्थाका अनेक व्यवधान है। इनका परस्पर सम्बन्ध टूटा हुआ है। इसलिए अग्निष्टोम यज्ञको स्वर्गप्राप्तिका हेतु नहीं कहा जा सकता। किन्तु सब ऐसा स्वीकार करते हैं—इसका समाधान यह है कि अग्निष्टोम यज्ञ करने वालेको एक ऐसा विशेष पुण्य प्राप्त होता है, जो स्वर्गप्राप्ति पर्यन्त यज्ञकर्त्ताके साथ रहता है और वही पुण्य ही स्वर्ग-प्राप्तिका अव्यवहित हेतु है। अतः श्रुतिसिद्ध वस्तुकी उपपत्तिके लिये पुण्यरूप हेतुकी जो आपत्ति या कल्पना की जाती है, उसे **श्रुतार्थापत्ति** कहते हैं।

इसी श्रुतार्थापत्ति न्यायके आश्रित होकर श्रीगोस्वामिपादने अचिन्त्य भेदाभेद सम्वन्ध-को स्वीकार किया है। क्योंकि परब्रह्मकी स्वाभाविकी शक्तिकी बात श्रुतिमें वर्त्तमान् है और इस शक्तिके साथ ब्रह्मके भेदकी बात वर्णित है तथा इस शक्तिके साथ ब्रह्मके अभेदकी बात भी श्रुतिमें कही गई है। अथच, केवल भेद या केवल अभेद स्वीकार करनेसे दोष उत्पन्न होते हैं। अतः भेद एवं अभेद दोनोंके युगपत् अस्तित्वको स्वीकार करना ही पड़ता है। और ऐसा माननेसे दोनों प्रकारके श्रुतिवाक्योंका समन्वय हो सकता है। अतः ब्रह्मके साथ जीव जगत्का भेद एवं अभेद—इन दोनोंका युगपत् अस्तित्व या सम्बन्ध श्रुति-सम्मत है और केवल वह अचिन्त्य है या अचिन्त्यज्ञान-गोचर है अथवा श्रुतार्थापत्तिज्ञान-गोचर है।

श्रुतार्थापत्ति प्रमाण भी शब्द-प्रमाणके समान प्रामाण्य होता है। अतः इसके आश्रित होकर जो अचिन्त्य-भेदाभेदका सिद्धान्त श्रीजीवगोस्वामिपादने स्वीकार एवं स्थापन किया है, यह सर्वशास्त्र सम्मत एवं अनुपेक्षणीय है। यह सिद्धान्त उनकी केवल कपोल-कल्पना नहीं है। इस सिद्धान्तमें ही सर्वश्रुतिवाक्योंका एवं सर्ववादोंका समन्वय होता है।

सारांश यह है कि जीव-जगत् स्वरूपतः परब्रह्मकी शक्तिके अंश या परिणाम हैं, और जीव-जगत्से अतीत अप्राकृत भगवत् धाम लीला-परिकर एवं श्रीभगवान्के गुण-रूप भी स्वरूपतः परब्रह्मकी शक्तियोंके विलास हैं। इन सबका सम्बन्ध ब्रह्मसे वही है जो सम्वन्ध शक्तिका शक्तिमानसे होता है और वह सम्बन्ध है—**अचिन्त्य भेदाभेद-सम्बन्ध।**

अतः श्रीजीवगोस्वामिपादने कहा है कि व्यतिरेक एवं अव्यतिरेक, इन दोनों भावोंमें जीव ब्रह्मके साथ सम्बन्धित है और इन विरोधी भावोंकी ब्रह्म एवं जीवके सम्बन्धमें अवस्थिति अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे ही है॥ यही है गौड़ीयवैष्णव-दर्शनका सर्वोपरि 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' -जिसका अतिसंक्षेपमें यहां परिचय दिया गया है।

# गौड़ीय-वैष्णवदर्शनका वैशिष्टय



अचिन्त्य-भेदाभेद वाद, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व तथा रसतत्त्व इन समस्त विषयोंमें गौड़ीय-वैष्णवदर्शनका अपूर्व वैशिष्टय है। गौड़ीय दर्शनका अचिन्त्य-भेदाभेद-वाद एक अभिनव दार्शनिक तत्त्वकी अभिव्यक्ति है। प्रेमतत्त्व तथा रसतत्त्वके सम्बन्धमें पूर्ववर्ती वैष्णवाचार्योंमें किसीने भी विशेष आलोचना नहीं की है। श्रीपाद रामानुजादि आचार्योंने भक्तिकी महिमा-गान की है, यह ठीक है, किन्तु भक्तिके सम्बन्धमें, भक्तिके स्वरूपके सम्बन्धमें पुंखानुपुंखरूपसे विश्लेषणात्मिका आलोचना किसीने भी नहीं की है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्योंका एक और विशेषत्व यह है कि उन्होंने श्रुति-प्रतिष्ठित किसी भी प्रामाणिक शास्त्रकी उपेक्षा प्रदर्शन नहीं की है। सम्यक् विचारपूर्वक उन्होंने समस्त शास्त्रोंका ही समन्वय स्थापन किया है।

विभिन्न भगवत्-स्वरूपोंकी शास्त्रकथित गुण-महिमाका विचारपूर्वक उन्होंने समन्वय स्थापन किया है। किसी भी भगवत्-स्वरूपके प्रति उन्होंने उपेक्षा प्रदर्शित नहीं की, किसी भी भगवत् स्वरूपकी अवज्ञाको उन्होंने अपराधजनक तथा भजन-विघ्नकारी कहा है।

शास्त्रविहित विभिन्न साधन-प्रणाली एवं विभिन्न साधनोंके विभिन्न फलोंके सम्बन्धमें भी गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने शास्त्रानुगत्यमें एक अपूर्व समन्वय स्थापन किया है। शास्त्रविहित किसी साधना-पथकी असारता, या उसके फलकी असारता दिखानेका उन्होंने प्रयास नहीं किया है। शास्त्र मर्यादाके उल्लंघनको उन्होंने संहारका ही साधन माना है। गौड़ीय वैष्णवाचार्योंने श्रुति-पुराण-इतिहास तथा स्मृतिके प्रमाणों पर ही अपने सिद्धान्तोंको प्रतिष्ठित किया है। श्रुतियोंका प्रमाण-शिरोमणित्व उन्होंने सर्वतोभावसे स्वीकार किया है।

किसी भी प्रकारकी साम्प्रदायिक सङ्कीर्णता न होनेसे गौड़ीय वैष्णव धर्मकी उदारताका एक अपूर्व वैशिष्टय है।

साम्प्रदायिकता दो प्रकारकी हो सकती है—समाज-विषयक तथा धर्म-विषयक। अनाचरणीयता एवं अस्पृश्यतादि समाज-विषयक साम्प्रदायिकता है—'मैं जिस समाजके अन्तर्भुक्त हूं, वही समाज ही कुलीन एवं श्रेष्ठ है; वही पवित्र और सबसे ऊंचा है'—इस प्रकारकी अज्ञतावश संकीर्णता, समाज-विषयक साम्प्रदायिकताका हेतु है। और हम जिस धर्मका अनुसरण करते हैं,





वही सर्वोत्तम है, वही एकमात्र श्रेष्ठ फलप्रद है। दूसरोंकी साधन-प्रणाली भ्रांतिपूर्ण और निरर्थक है—इस प्रकारके जो संकीर्णभाव हैं, वे धर्मविषयक साम्प्रदायिकताके मूल कारण हैं।

**गौड़ीय वैष्णवधर्ममें सामाजिक या व्यवहारिक तथा धार्मिक या पारमार्थिक-दोनों प्रकारकी संकीर्णताका अभाव है।**

गौड़ीय गोस्वामिग्रन्थोंमें, गौड़ीय वैष्णवधर्म या भजन-साधनमें वंश-जातिविचार मूलक जिस व्यवहारका परिचय मिलता है, वह सामाजिक-उदारताका आदर्श-स्थानीय है। श्रीहरिभक्ति विलास (१०।७८) में कहा है—

**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रा वा यदि वेतरः।**
**विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः॥**

ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र, किंवा और भी किसी जातिका क्यों न हो, जो विष्णु भक्तियुक्त है, वही सर्वोत्तमोत्तम है। इस प्रकार वंश-जाति-कुलकी अपेक्षा जीवके स्वरूप (नित्य कृष्ण-दासत्व) के प्रति गौड़ीय वैष्णवोंने अधिक गौरव स्थापन किया है। जीवका कृष्णदासरूपमें जो परिचय दिया गया है, वही सब जीवोंका वास्तविक और पारमार्थिक परिचय है। जब सभी कृष्णदास हैं तब सभी समान हैं, कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं। फिर सबके स्वामी जब एक ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं, तब सभी सबके प्रिय एवं बन्धु हैं। इस रूपमें सबका सबके प्रति प्रीतिमूलक भाव जाग्रत हो सकता है—

**प्राणिमात्रे मनो वाक्ये उद्वेग ना दिवे** ॥ श्रीचै० च०, २।२२।६६॥

किसी भी प्राणीको शरीर, मन तथा वचन द्वारा भी उद्वेग नहीं देना चाहिये।

**सर्वोत्तम आपनाके हीन कर माने** ॥ वही, २।२३।१४॥

सबसे सब प्रकार उत्तम होकर भी अपनेको सबसे हीन मानना चाहिये।

**अमानी मानद कृष्णनाम सदा लवे** ॥ वही, ३।६।१३५॥

किसीसे भी सम्मानकी प्रत्याशा न रखकर, दूसरोंको सम्मान देते हुए सदा श्रीकृष्ण-नाम ग्रहण करना चाहिये॥

**जीवे सम्मान दिवे जानि कृष्णेर अधिष्ठान** ॥ वही, ३।२०।२०॥

समस्त जीवोंके अन्दर परमात्मा श्रीकृष्ण विराजमान हैं, सभी श्रीकृष्णके मन्दिर समान हैं—यह जानकर सब जीवोंका सम्मान करना चाहिये। गोस्वामि-ग्रन्थोंके इन समस्त उपदेश-वचनोंका आधार है श्रीमद्भागबत एवं वैदिक भारतीय संस्कृति-इतिहास। वैदिक भारतका लक्ष्य देहावेश, देहाभिमान तथा तज्जनित अस्पृश्यतादि तथा अनाचरणीयतादि भावोंको हृदयसे दूरकर परमतत्त्वकी प्राप्तिमें ही रहा है।

**पारमार्थिक धर्मयाजन विषयमें** गौड़ीयधर्मकी उदारता इस प्रकार है कि उसमें श्रीकृष्ण सेवामें जीवमात्रका स्वरूपगत अधिकार दिया गया है। स्वरूपगत अधिकार होते हुए भी अनादि बहिर्मुख जीवमें कृष्णसेवा वासना लुप्त हो रही है, अतः उस सेवा-वासनाको उद्‌बुद्ध करनेके लिये साधन-भजनकी प्रयोजनीयताका इस धर्ममें उपदेश दिया गया है। श्रीमन्महाप्रभु गौरांगने कहा है—

**कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि विचार ॥** श्रीचै० च० ३।४।६३॥

यवनकुलोत्पन्न श्रीहरिदास ठाकुर आदि अनेक यवनोंको भी उन्होंने कृष्णभजन कराया। नवविधा-भक्तिमें श्रेष्ठतम साधन श्रीनामसंकीर्त्तनका उपदेश देकर श्रीमन्महाप्रभुने वैष्णव-अवैष्णव, यवन-श्वपच सबको कृष्णभजनमें प्रविष्ट कराकर अपूर्व पारमार्थिक उदारताका आदर्श स्थापन किया है।

**उपासना-विषयक उदारता** भी गौड़ीय वैष्णवधर्मका एक अपना वैशिष्टच है—श्रीकृष्ण-श्रीगौर सेवा-प्राप्ति ही गौड़ीय वैष्णवोंकी एकान्त काम्य वस्तु होते हुए भी, उनमें श्रीनारायण-श्रीराम-श्रीनृसिंह आदि भगवत् स्वरूपोंके उपासकोंके प्रति भी प्रीतिका अभाव नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुके अन्तरङ्ग पार्षदोंमें भी विभिन्न भगवत्स्वरूपोंके उपासक विद्यमान थे। श्रीवासपण्डित श्रीश्रीलक्ष्मीनारायणके उपासक थे; श्रीमुरारिगुप्त श्रीश्रीसीतारामके उपासक थे। श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी श्रीनृसिंहके उपासक थे। इस प्रकार सेव्य-सेवकभाव हृदयमें पोषण करके शास्त्रीय-मार्गसे जो भी भगवद्-भजन करते हैं, वे किसी भी मायातीत भगवत्स्वरूपके उपासक क्यों न हों, उनके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका कभी भी विरोध किसी कारण भी नहीं रहा। इसप्रकार गौड़ीय वैष्णवधर्मकी अनेक विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं।

## भजन-योग्यता

श्रीहरिदास ठाकुरका यवनकुलमें जन्म हुआ था। वे परम भागवत तीन लाख नाम नित्य करते थे। श्रीअद्वैताचार्य-प्रभुने अपने पिता का श्राद्ध उन्हें भोजन कराया। श्रीहरिदासने कहा—मैं यवन जाति हूँ, महाकुलीन ब्राह्मण समाज क्या कहेगा? आपका विरोध करेगा। श्रीआचार्यने कहा—'**तुमि खाइले हय कोटि ब्राह्मण-भोजन।**' —हरिदास! आपके भोजन से कोटि ब्राह्मणोंके भोजनका फल होगा। कोटि-कोटि वेदपाठी-ब्राह्मणोंसे एक परम-वैष्णव यवन भी अति श्रेष्ठ है। वह अपने कुलको एवं विश्वको पवित्र करता है एवं श्रीभगवान्‌को अतिशय प्रिय है।





# महाप्रभु-श्रीगौरांग निर्धारित-उपास्य युगल-राधाकृष्णनाम

—पं० श्री श्रीनाथजी शास्त्री, पुराणाचार्य



महाप्रभु श्रीगौरांग अपनी दक्षिण-यात्रामें राय रामानन्दसे मिले। उनमें अपनी शक्ति सञ्चारकर उनके मुखसे अनेक भक्ति-सिद्धान्तोंको प्रकाशित किया। उस प्रसङ्गान्तर्गत श्रीमहाप्रभुने पूछा—

**सर्व त्यजि जीवेर कर्त्तव्य काहाँ वास ?**
**-व्रजभूमि वृन्दावन, जाहाँ लीलारास ।।**
**श्रवण मध्ये जीवेर कोन श्रेष्ठ श्रवण ?**
**-राधाकृष्ण प्रेमकेलि कर्णरसायन ।।**
**उपास्येर मध्ये कोन उपास्य प्रधान ?**
**-श्रेष्ठ उपास्य, युगल राधाकृष्ण-नाम ।।**

श्रीचैतन्यचरितामृत, २।८।२० -१०

रामानन्द ! सब कुछ त्यागकर साधक-जीवको कहाँ वास करना चाहिए ?

**राय रामानन्दने कहा**—प्रभो ! व्रजभूमि वृन्दावनमें, जहां रासलीला होती है, वहां वास करना चाहिए।

**फिर श्रीमहाप्रभुने पूछा** - श्रवणमें साधक-जीवके लिए सर्वश्रेष्ठ सुनने योग्य क्या है ?

**रायने कहा**—श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रेम-केलि कथा, जो कानोंके लिये रसायन-अमृततुल्य है, श्रवणमें वही सर्वश्रेष्ठ सुनने योग्य है।

**श्रीमहाप्रभुने आगे पूछा**—राय ! उपास्यदेवोंमें कौन उपास्य या इष्टदेव प्रधान है ?

**रायने कहा**—प्रभो ! जिनका नाम राधाकृष्ण है, वही युगल श्रेष्ठ उपास्य हैं।

क्या अनुपम चित्रण हुआ है—साधक की अवस्थिति, उसके साधन तथा साध्यका इन पयारोंमें ? अतीव गम्भीर आशय है इनका !

सर्वप्रथम प्रवृत्ति तथा निवृत्तिमूलक समस्त धर्मोंका साधकको परित्याग कर श्री-भगवान्‌के शरणापन्न होना है। यहां शरणागति पापोंसे छुटकारा पानेके लिये लक्षित नहीं है। इस लक्ष्यको लेकर शरणापन्न साधक कहीं भी वास कर सकता है। यहां व्रजभूमिमें वासकी बात कही गई है; व्रजभूमिमें वास एकमात्र व्रजवासियोंके अनुगत होकर व्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा सम्पादनको लक्ष्य करता है। विशुद्ध सेवाका एकमात्र स्थान है व्रज-वृन्दावन या भौम-वृन्दावन। अप्रकट गोलोक-धाम भी यहां अभिप्रेत नहीं है, क्योंकि वृन्दावनका यहां एक विशेषण दिया है—'जाहां लीलारास'। जहां नित्य रासलीला होती है। रासलीला एकमात्र भौम-वृन्दावनमें ही प्रकाशित होती है। यही असाधारण वैशिष्टच है व्रजभूमि—भौम-वृन्दावन का।

तात्पर्य यह है कि साधक जीवको सर्वत्यागपूर्वक शरणापन्न होकर श्रीभगवान्‌की विशुद्ध प्रेममयी सेवाके लिये व्रजभूमि वृन्दावनमें निश्चल अवस्थान करना चाहिये—सर्वप्रथम श्रीमहाप्रभुजीने इस बातको यहां प्रकाशित किया।

श्रीमन्महाप्रभुका दूसरा प्रश्न है जीवके परम श्रेयरूप साधनका। समस्त भक्ति-अङ्गों-में नवविधा-भक्तिका श्रेष्ठत्व सर्वत्र निरूपण किया जाता है। उसमें सर्वप्रथम अङ्ग है **श्रवण**। वेद-शास्त्र एवं इतिहाससे समस्त विचारशील तत्त्ववेत्ताओंने इस सिद्धान्तको पूर्णतया निर्धारित कर रखा है कि इस परिवर्तनशील एवं नाशवान संसारमें जन्म-मरणादि दुख-परम्परासे छुटकारा पानेके लिये श्रीमद्भागवत-कथारूपी अमृत सेवनके सिवा और कोई साधन नहीं है—

**संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-**
**र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।**
**लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण**
**पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥**

श्रीभा०, १२।४।४०॥

भगवान् श्रीपुरुषोत्तमकी लीला-कथा श्रवणसे ज्ञान-वैराग्यकी उत्पत्ति होती है और मनमें भक्तियोगका आविर्भाव हो उठता है। ज्ञान-वैराग्यके परिपाकसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, तदनन्तर सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त भक्तजनोंके साथ रमण करने वाले भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य अनुग्रह प्राप्त होता है। तब जीव अपने नित्य-कृष्णदास स्वरूपका अनुभव कर श्रीभगवान्‌की सेवाके लिये लालायित हो उठता है। अपनेको सेवक और श्रीभगवान्‌को अपना स्वामी जान लेता है, तभी वह संसार-सागरसे पार जा सकता है—



**सेवक-सेव्यभाव विनु भव न तरिअ उरगारि॥** श्रीमानस॥

व्रजगोपियोंने कहा है—

**तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।**
**श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥**

श्रीभा०, १०।३१।९॥



भगवान् श्यामसुन्दरने मानो व्रजगोपियोंसे यह पूछा कि हे गोपियो ! आप तो मुझे प्राण-जीवनधन कहती हो, प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम कहती हो, किन्तु मेरे मथुरा चले जानेपर मेरे बिना प्राण कैसे धारण कर रही हो—जीवित कैसे रह रही हो ?

व्रजगोपियोंने इसके उत्तरमें कहा – श्यामसुन्दर ! ब्रह्मादिक देवोंकी प्रार्थनापर जब आप भूतलपर प्रकट होते हैं, तब जीव समुदाय आपके रूपदर्शन तथा चरण-स्पर्शसे कृतार्थ हो जाते हैं। जब आप अपने प्रेमीजनोंकी दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं, निश्चय ही उनका जीवन-प्राण संकटमें पड़ जाता है। उस समय एकमात्र आपकी परम रसमयी लीला-कथा ही उनके लिये परमौषधि संजीवनीका काम करती है। उसीसे उन विरही-जनोंके प्राण बचे रहते हैं।

आपकी उस लीला-कथा संजीवनी पानके कारण हमारे प्राण नहीं निकल रहे हैं। फिर हम करें भी क्या ? जायें भी कहाँ ?—गांव-गांवमें, नगर-नगरमें पण्डितगण आपकी सरस लीला-कथा सुरसरी को प्रवाहित करते फिरते हैं। उससे बचनेका उपाय भी तो नहीं है।

प्राणोंमें एक अनिर्वचनीय सुखसुधाका सञ्चार तो वह करती ही है, अनन्य रसिकोंने स्वर्गीय सुधासे तो क्या, ब्रह्मानन्दमय मोक्षसे भी आपके कथामृतकी परम श्रेष्ठता प्रतिपादन की है—

**या निर्वृ तिस्तनुभृतां तव पादपद्म-**
**ध्यानाद्भगवज्जनकथा-श्रवणेन वा स्यात् ।**
**सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथमाभूत्**
**किं त्वन्तकासि-लुलितात्पततां विमानात् ।।**

श्रीभा०, ४।९।१०।।

भगवत् कथा सुधा-रस प्रारब्ध पर्यन्त समस्त दोषोंको नष्ट करता है। स्वर्गीय सुधा तो कामादि वर्धक है, अतः उसकी सर्वत्र उपेक्षा की गई है ओर मोक्षामृत भगवद्भक्तोंको अभीष्ट नहीं है। इस भगवत् कथामृतकी तो ब्रह्मादि देवगण भी प्रशंसा करते हैं, सर्वमंगलमय है यह और आपके स्वरूपसे अभिन्न होनेके कारण सर्वत्र व्याप्त है।

भगवत् कथा श्रवणके लिये श्रीमहाप्रभुने कहा कि श्रीगीताके श्रोता अर्जुनकी भांति विचार-प्रधान होकर भगवत्कथा श्रवण नहीं करो, वल्कि श्रीनारदजीकी भांति रुचि-प्रधान होकर इस कथामृतका पान करना चाहिये।

भगवत् स्वरूप अनन्त हैं, उनकी लीला-कथाएं भी अनन्त हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें श्रीभगवान् अनेक अवतार ग्रहण करते हैं। उनकी कथाओंमें भी कुछ कथाएं ऐश्वर्यमयी हैं,

कुछ माधुर्यमयी हैं। श्रीमहाप्रभुने कहा—माधुर्यमयी लीला-कथाओंका ही श्रेष्ठत्व है। उनमें भी फिर व्रजेन्द्रनन्दन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भावमयी विशुद्ध प्रेम-भरी लीला-कथाओंकी श्रेष्ठता है। अन्तमें श्रीश्रीराधा-कृष्णकी परमोज्ज्वल माधुर्यरसमयी लीला-कथाओंके श्रवणको श्रीमहाप्रभुने सर्वोत्कृष्ट कहकर निरूपण किया है।

श्रीमहाप्रभुने श्रीरायके मुखसे प्रधान-उपास्यके सम्बन्धमें यह कहलवाया कि वे युगल प्रधान उपास्य हैं, जिनका नाम श्रीराधाकृष्ण है। वे परम उपास्य-मुकुटमणि हैं।

उपास्योंमें ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्—ये तीनों मुख्य उपास्य माने जाते हैं। किन्तु ब्रह्म निराकार है एवं भगवान्की अङ्गकान्ति स्थानीय है। उपासना तथा सेव्य-सेवक भावका वहां संघटन असम्भव है। परमात्माका मायाके साथ नियन्ता-रूपमें सम्बन्ध है और उसकी भी आत्मा हैं श्रीकृष्ण। समस्त भगवत् स्वरूप स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी अनन्त भाव-वैचित्री तथा रस-वैचित्रीके मूर्त्तरूप हैं। श्रीकृष्ण सर्वावतारी, सर्वकारण-कारण अद्वयज्ञान-तत्त्व हैं। अतः वे अपनी स्वरूपशक्ति-ह्लादिनीकी मूर्त्तरूपा शक्तिके सहित ही युगल-रूपमें प्रधान उपास्य हैं शक्तिके विना नहीं। और भी अनेक युगल उपास्यरूपमें शास्त्र सम्मत हैं, किन्तु सर्वश्रेष्ठ प्रधान उपास्य वे युगल हैं, जिनका नाम है श्रीश्रीराधा-कृष्ण।

श्रीश्रीराधा-कृष्ण युगल प्रधान उपास्यकी उपासनाके लिये श्रीश्रीराधाकृष्ण प्रेम-केलि कथाका श्रवण तथा सर्वत्यागपूर्वक व्रजभूमि वृन्दावनमें वास अनिवार्य है—यही श्रीमन्महा-प्रभुका हार्द है, जिसे उन्होंने श्रीरामानन्दरायके मुखसे प्रकाशित किया।

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु श्रीश्रीराधाकृष्णके एकीभूत हैं। स्वामिनी श्रीराधाजीके महाभाव तथा गौर-कान्तिसे सुवलित होकर ही व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्णचैतन्य महा-प्रभुरूपमें अवतीर्ण हुए हैं—अतः श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलित-विग्रह श्रीमन्महाप्रभुकी उपासना प्रचलित है। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीपाद अद्वैताचार्यप्रभु, श्रीश्रीवास, श्रीपण्डितगदाधर, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद, श्रीश्रीरूप-सनातनादि अगणित पार्षद-वृन्दने परतत्त्व-सीमाके अर्थमें श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरसुन्दरको सर्वथा प्रत्यक्ष अनुभव किया और इनकी उपासनाका भी प्रचलन किया।

श्रीमद्भागवतकी प्रतिध्वनि करते हुए श्रीपादजीव गोस्वामीने कलियुगके परमोपास्य-रूपमें श्रीमन्महाप्रभुको प्रतिष्ठित किया है -

**अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादि वैभवम्।**
**कलौ संकीर्त्तनाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिताः॥**



श्रीचैतन्य-उपासनामें श्रीनामसंकीर्त्तन ही अंगीरूप मुख्य उपासना है, वह विशुद्ध अविमिश्र है। सभी काल, सभी देश, सभी अवस्थाओंमें यह उपासना सभीके लिये साध्य है—



अवतरि चैतन्य कैल धर्म प्रचारण।
कलिकालेर धर्म कृष्णनाम संकीर्तन ।।
संकीर्त्तन यज्ञे तारे करे आराधन।
सइ त सुमेधा, आर कलिहत जन ।।

श्रीचैं० च०, २।११।८७-८८

जगद्गुरु श्रीपाद वल्लभाचार्यजीने अद्भुत-कर्मा श्रीकृष्णचैतन्यको नमस्कार करते हुए यही कहा है—जो नाम-रूप भेदसे जगत्में क्रीड़ा करते हैं, उनको मेरा प्रणाम है—

**नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे।**
**नाम-रूप विभेदेन यः क्रीड़ति जगद् यतः ।।**

—निबन्ध ।।

## भजनमें अनन्य-निष्ठा

बालब्रह्मचारी निष्किञ्चन बाबा श्रीकृष्णदास बंगालसे आकर निरन्तर ५० वर्ष तक रणवाड़ी गांवमें रागानुगा-मार्गसे श्रीश्रीराधाकृष्णका लीला-स्मरण करते रहे। मनमें आया कि एकवार चारधाम-यात्रा कर आऊं। रात्रिमें श्रीराधाजीने स्वप्नमें आकर कहा - **'बाबा! वृन्दावनसे बाहर मत जाओ, तीर्थ भ्रमणका कोई प्रयोजन नहीं, यहीं परम साध्यकी प्राप्ति करोगे।'**

स्वप्नको साधारण स्वप्न समझा, मन नहीं माना। तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका पहुँचे और वहां प्रथानुसार तप्त मुद्राएं शरीरपर धारण कर लीं। यात्राके बाद व्रजमें लौट आये। उसी दिन रातको फिर श्रीजीने आकर स्वप्नादेश दिया - **'तुम तप्तमुद्रा धारणकर अब सत्यभामाके परिकर-के होगये हो। व्रजके रागानुगा-भजनके योग्य नहीं रहे, चले जाओ यहां से।'**

व्याकुल हो उठे, गोवर्धनके सिद्ध बाबाके पास पहुंचे, उन्होंने अपने को स्पर्श करने तक का निषेध कर दिया। कोई प्रतिकार न प्राप्तकर कुटियामें आकर ३ मास तक अन्नजल छोड़ नामसंकीर्त्तन करते रहे। अन्दर-की विरहानल बाहर प्रकट हो आई। पांवसे लेकर सिर तक क्रमशः आगने शरीरको भस्मकर दिया। अन्तिम क्षण तक स्पष्ट रूपसे नामध्वनि करते रहे।'

**'रागानुगा-भजनमें कितनो अपेक्षित है अनन्यनिष्ठा?'**

# गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय एवं परकीया-भाव



गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका साध्य-साधन तथा भजन-उपासना श्रीमद्भागवतीय-सिद्धान्तपर प्रतिष्ठित होते हुए भी श्रौत-धर्म है। चारों वेदोंकी भांति इतिहास (महाभारत) तथा पुराण परब्रह्मके निश्वास-स्वरूप हैं। अतः वे अपौरुषेय हैं—

**अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्**—मैत्रेयी श्रुति, ॥६।३२॥

छान्दोग्य-श्रुति ( ७।१।२ ) कहती है—**ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**। इस श्रुतिमें इतिहास तथा पुराणको पांचवां वेद कहा गया है। मनुसंहिताका कहेना है कि **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेदिति'** ॥ इतिहास तथा पुराण द्वारा वेदोंके अर्थको स्पष्ट करना चाहिये। **'पूरणात् पुराणम्'** ॥ वेदोंके अर्थको पूर्ण करनेवाले शास्त्र हैं पुराण;—इत्यादि अनेक ऐसे श्रुति-शास्त्रके वचन हैं कि इतिहास-पुराण प्रतिष्ठित धर्म भी वस्तुतः श्रौत या वैदिक धर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत (इतिहास) का अंग है, यदि इतिहास वेद-वहिर्भूत होता तो श्रीगीताको 'सर्वोपनिषत्सार' कैसे कहा जा सकता था। श्रीमद्गीता सर्वत्र-मान्य प्रामाण्य ग्रन्थ है।

फिर जो सम्प्रदाय केवलमात्र पुराणों पर आधारित है, श्रुति-प्रमाण उद्धृत नहीं करती, तो भी वह वेद-विरुद्ध नहीं कही जा सकती, तब गौड़ीय वैष्णय सम्प्रदाय तो पुराण-वचनोंका जैसे प्रमाण उद्धृत करती है, वैसे ही श्रुतियोंके वचनोंका उल्लेखकर अपने धर्मको प्रमाणित करती है।

पुराण-शिरोमणि श्रीमद्भागवतके लिये स्पष्ट उल्लेख है - **'सर्ववेदितिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।'** इस श्रीमद्भागवतमें समस्त वेद-इतिहासका परम सार धर्म निरूपण किया गया है। अतः यदि गौड़ीयवैष्णव-धर्मको एकमात्र श्रीमद्-भागवतपर ही प्रतिष्ठित कहा जाये, तो भी वह धर्म श्रौतधर्मका परम सार-स्वरूप है।



श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके मतको एक ही श्लोकमें इस प्रकार श्रीनाथचक्रवर्त्तिने वर्णन किया है—



आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम-वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
इत्थं गौर-महाप्रभोर्मतमतस्तत्रादरो नः परः ॥

श्रीचैतन्यमत-मञ्जुषा—१

—श्रीभगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण आराध्य हैं, उनका धाम श्रीवृन्दावन है, व्रजवधूवर्गके द्वारा कल्पित रमणीय उपासना-पद्धति है, निर्मल प्रमाण-शास्त्र श्रीमद्भागवत है तथा परम पुरुषार्थ कृष्ण-प्रेम है—श्रीगौरांग महाप्रभुका यही मत है—इसीमें हमारा आदर है। इसके अतिरिक्त मतमें नहीं।

हमारा विषय है यहां 'व्रजवधूवर्गकी कल्पित रमणीय उपासना-पद्धति।' वह उपासना-पद्धति है परकीया-भावमयी भविष्य, पद्म पुराण, सनत्कुमार संहिता एवं श्रीमद्भागवतादि शास्त्रमतानुसार। व्रजवधूवर्गसे श्रीकृष्णकान्तागण ही अभिप्रेत हैं। उनकी उपासना-पद्धतिपर विचार करनेसे पहले उनके स्वरूप तत्त्वका, उनके भावोंकी गहराईका दिग्दर्शन यहां अप्रासङ्गिक न होगा।

परब्रह्म श्रीकृष्ण रसिकशेखर हैं। उनकी अन्तरंग लीलामें एकमात्र उनकी स्वरूपशक्तिका अधिकार है एवं श्रीकृष्ण भी अपनी अन्तरंग-लीलामें उसकी अपेक्षा रखते हैं। रसस्वरूप परब्रह्म मधुररस-निर्यास आस्वादन करते हैं—कान्ताभावके परिकरों द्वारा लीलामें। कान्ता-भावके परिकर तत्त्वतः उनकी ह्लादिनी-प्रधाना स्वरूपशक्तिके मूर्त्तविग्रह हैं। अतः वे श्रीकृष्णकी स्वाभाविकी स्वीया शक्ति होनेसे उनकी स्वकीया-कान्ता या नित्य-प्रेयसी हैं। इस प्रकार परव्योम या वैकुण्ठोंकी समस्त लक्ष्मीगण, प्रकट-द्वारकाकी रुक्मिणी-सत्यभामादि महिषी-वृन्द तथा अप्रकट-व्रजधामकी श्रीराधादि व्रजगोपीवृन्द—सब ही स्वकीया कान्ता हैं और स्वकीया-कान्तारूपसे उन-उन धामोंमें वे श्रीकृष्णकी मधुरभावमयी सेवा सम्पादन करती हैं।

किन्तु कान्ता-रसकी दो प्रकारकी वैचित्री है—स्वकीया कान्ता-प्रेमरस तथा परकीया कान्ता-प्रेमरस। इन दोनों प्रकारकी वैचित्री रसके आस्वादनमें ही कान्तारस या मधुर-रसका आस्वादन पूर्ण है। किसी एक प्रकारकी वैचित्रीके आस्वादन विना रसस्वरूप श्रीकृष्णकी रसस्वरूपता अधूरी रहती है। परव्योममें, प्रकट तथा अप्रकट द्वारकामें और अप्रकट व्रजधाममें वे स्वकीया-कान्ताओंके प्रेमरस-वैचित्रीका आस्वादन करते रहते हैं। इन समस्त धामोंमें परकीया-कान्ता नहीं हैं। वस्तुतः स्वरूपतः परकीया कान्ता कोई हो भी नहीं सकती, क्योंकि वे श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिकी ही मूर्त्त-विग्रह हैं। अतः समस्त अप्रकट धामोंमें परकीया-कान्ता-प्रेमरस वैचित्रीका आस्वादन नितान्त असम्भव है।

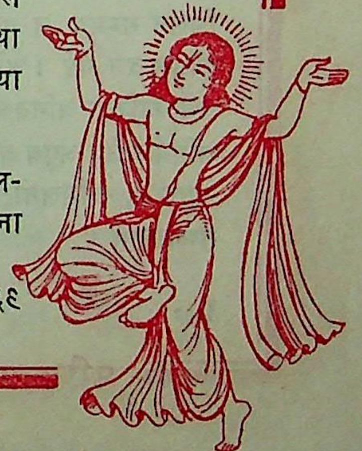
रसस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण जब प्राकृत-ब्रह्माण्डमें—प्रकट व्रजधाममें अवतीर्ण होते हैं, तब उनके साथ उनके समस्त भावोंके परिकर भी अवतीर्ण होते हैं। उनकी स्वकीया

कान्तागण श्रीराधिकादि भी अवतीर्ण होती हैं। श्रीकृष्ण नित्य-किशोर हैं, श्रीराधादि व्रजकान्तागण भी नित्य-किशोरी हैं, किन्तु नरलील श्रीभगवान् स्वरूपतः नित्य-किशोर होते हुए भी वात्सल्य-सख्य रसोंकी वैचित्रीका अशेष-विशेषरूपसे आस्वादन करनेके लिये जन्म, बाल्य तथा पौगण्ड अवस्थाओंको अंगीकार करते हैं और उसी प्रकार उनकी कान्तागण स्वरूपतः नित्य-किशोरी होते हुए भी जन्म बाल्य-पौगण्ड अवस्थाओंको अंगीकार किया करती हैं। तब प्रकट-लीलामें लीला-सहायकारिणी अघट-घटन-पटीयसी चित्शक्तिरूपा योगमाया एक ऐसा भी प्रभाव विस्तार करती है कि श्रीकृष्णकी नित्य-स्वकीया कान्ता होते हुए भी श्रीराधिकादि गोप-सुन्दरियोंमें परकीया-कान्ताभाव आरोपित हो जाता है। इस प्रकार रसस्वरूप श्रीकृष्णके पक्षमें परकीया-कान्ता-प्रेमरस निर्यासके आस्वादनका अवसर प्राप्त हो जाता है—वह केवल प्रकट व्रजलीलामें, प्रकट-द्वारका-लीलामें नहीं। श्रीकृष्णकी अप्रकट-लीलाकी भांति उनकी प्रकट-व्रजलीला भी नित्य है। अतः आरोपित परकीया-भावमयी लीलाका भी नित्यत्व सिद्ध है।

देखा जाये तो प्रकट लीलाका अवलम्बन करके ही साधककी उपासना होती है और लीला-प्रवेश भी प्रकट-लीलाके योग से। अतः जो व्रजके मधुर-भावके या कान्ता भावके उपासक हैं, उन्हें प्रकट-व्रजकी परकीया-भावमयी लीलाकी उपासना करना अनिवार्य है; यही है रागानुगा-मार्गकी उपासना। यही गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायकी उपासनाका प्राण है, जिसे स्वयं सम्प्रदायके प्रवर्त्तक श्रीमन्महाप्रभुने प्रदान किया। इसी उज्ज्वल रसमयी निजी सम्पत्तिको प्रदान करनेके लिये ही श्रीमन्महाप्रभु रूपमें स्वयं श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका कारण भक्तोंके प्रेमरस निर्यासका आस्वादन ही है। धर्म संस्थापन, असुर-संहार आदि कार्य युगावतारके द्वारा होता है, जो स्वयं भगवान्के प्राकटय-समयमें उनमें अन्तर्प्रविष्ट होकर रहता है। स्वरूपतः नित्य किशोर भी श्रीकृष्ण जैसे बाल्य-पौगण्ड-अवस्थाओंको अंगीकार करते हैं, उनकी स्वकीया नित्य कान्ता श्रीराधिकादि उन्हें मधुररसनिर्यासका आस्वादन करानेके लिये परकीया-भावको अंगीकार करती हैं जिसमें कोई भी आपत्ति नहीं उठ सकती, विशेषतः यह कार्य सम्पन्न होता है, श्रीभगवान्की स्वरूपशक्ति रूपा योग-माया द्वारा। वह परकीया-भाव श्रीराधिकादिमें तथा उधर उपपति-भाव श्रीकृष्णमें कैसे सञ्चारित होता है, उसे स्वयं नित्यकान्तागण श्रीराधादि तथा नित्य-कान्त श्रीकृष्ण भी नहीं जानते; यही लीला-शक्ति योगमाया का प्रभाव है अथवा अपने प्रभुकी सेवा सम्पादन शैलीकी विशेषता। अतः व्रजका परकीया-भाव परम-उज्ज्वल, सर्वथा अनिन्द्य तथा परम उल्लासमय है। यह परकीयत्व नहीं है, स्वकीयत्व पर प्रतिष्ठित केवल परकीया भाव है। तत्त्वतः परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके पक्षमें स्वकीयत्व तथा परकीयत्व कहना-मानना नहीं बनता। अतः इसे 'कल्पिता' विशेषण दिया गया है।

व्रजके इस रसनिर्यास आस्वादनके अपूर्व वैशिष्टचको किस कौशल-से योगमाया परिवेषण करती है, यह प्रसंग श्रीगोपालचम्पू श्रीग्रन्थसे जाना





जा सकता है—वहां उल्लेख है कि दुष्टमति कंसने अविवाहिता सुन्दरी गोप-कन्याओंको लूटकर ले जानेका संकल्प किया। इस भयके मारे विवाह योग्य वयस न होनेपर भी पिता-माता उनके विवाह-सम्बन्धके लिये चेष्टा करने लगे। हर एककी इच्छा तो यह थी कि मेरी कन्याका विवाह श्रीनन्दके पुत्र श्रीकृष्णसे हो। किन्तु श्रीकृष्णका तो अभी उपनयन भी नहीं हुआ था, विवाहका प्रस्ताव करना भी अनुचित था। विवश होकर उन्होंने अन्यान्य पात्रोंको स्थिर किया। किन्तु श्रीकृष्णकी नित्य-कान्ता गोपसुन्दरियोंके साथ अन्य किसीका विवाह कदाचित सम्भव ही नहीं। किन्तु लीलानुरोधसे दूसरेके साथ विवाह न होनेपर परकीयत्व भी साधित नहीं हो सकता।

तब योगमायाने अपनी अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे मायामय स्वप्न जाल फैलाया। एक रातको निद्रित अवस्थामें गोपकन्याओंको छोड़कर दोनों पक्षके सब लोगोंने एक स्वप्न देखा कि जिस-जिससे उन्होंने अपने पुत्र-कन्याका विवाह होना निर्णय किया था, उससे विवाह हो गया है।

इस स्वप्नको किसीने स्वप्न न समझा, सत्य ही समझा। गोपसुन्दरियोंके ऐसा कोई स्वप्न न देखनेका एकमात्र कारण यह है कि वे श्रीकृष्णकी नित्य-कान्ता हैं, वे स्वप्नमें भी दूसरे किसीको पति नहीं देख-मान सकतीं। मायामय स्वप्नको सत्य मानकर उन कन्याओंको तथा-कथित ससुरालमें भेज दिया गया। उन्होंने सास-नन्द आदि सबको प्राप्त किया, किन्तु सासके पुत्रको किसीने भी पतिरूपमें अङ्गीकार न किया। यह मेरा पति है—ऐसा भी किसीने मनसे नहीं सोचा। योगमायाने अनेक चतुराईसे उनकी हर प्रकार उन वरोंसे रक्षा भी की। तथापि लोकदृष्टिसे एवं श्रीकृष्णकी दृष्टिमें भी वे सब परदारा समझी जाने लगीं, यही है परकीया-भावकी मूल भित्ति।

लोकदृष्टिमें परवधू होते हुए भी श्रीकृष्ण विषयमें उनका स्वभाव-सिद्ध और स्वरूप-गत प्रेम रहनेके कारण उनका चित्त श्रीकृष्णकी ओर, और वैसे ही श्रीकृष्णका चित्त उनकी ओर आकृष्ट होने लगा। इस पारस्परिकी प्रीतिने एक-दूसरेके साथ मिलनके लिये उनमें बल-वती उत्कण्ठा को जगा दिया। किन्तु मिलन तो सहज न था। लोकदृष्टिमें परवधू होनेके कारण कुलधर्म, लोकधर्म आदि उनके श्रीकृष्ण-मिलनमें प्रबल बाधक थे। किन्तु उनके महा-शक्ति-सम्पन्न प्रेमने उन समस्त बाधाविघ्नोंको तृणके समान तुच्छकर फैंक दिया। किन्तु छिप-छिपाकर परस्पर मिलन होने लगा अति गुप्तरूपसे। परन्तु इच्छानुरूप भावसे हर समय वह मिलन सम्भव न था। वे विघ्न-बाधाएँ मिलनोत्कण्ठाको घनीभूतकर रसकी पुष्टिका ही साधन बन गईं। अनेक बार व्यर्थ प्रयासोंके बाद जब मिलन होता है, तब मिलनकी आस्वादन-चमत्कारिता अनिवर्चनीय हुआ करती है। यही परकीया-भावमें मधुर-रसके आस्वादनकी एक अनिर्वचनीय अपूर्व वैचित्री है। स्वकीया-भावमयी कान्ताके सहित मिलनमें न कोई बाधा-विघ्न रहता है, न मिलनोत्कण्ठाकी तीव्र-उत्कण्ठा और न इस प्रकारकी रस-वैचित्रीके आस्वादनकी सम्भावना।

किन्तु महाभाववती व्रजसुन्दरियोंके उत्कट प्रेमका ऐसा अद्भुत स्वभाव है, असाधारण सामर्थ्य है कि वह दुर्लङ्घनीय कुलधर्म, वेद-धर्म-लोक धर्मादि की दीवारोंको अपने प्रबल प्रवाहसे ढहता हुआ चला जाता है। 'परकीया-भावके प्रभावसे व्रजसुन्दरियोंके प्रेमकी ऐसी असाधारण सामर्थ्य हो'—ऐसी बात नहीं है। उस प्रेमका यह प्रभाव नित्य है, अप्रकट-लीला हो चाहे प्रकट-लीला, किन्तु ऐसी असाधारण शक्तिके प्रकाशित होनेका सुयोग अप्रकट-लीलामें नहीं होता, कारण वहां कोई बाधा-विघ्न नहीं। किन्तु प्रकट-लीलामें परकीया-भावके कारण ऐसा सुयोग उपस्थित होता है। इसलिये परकीया-भावमें रसका अतिशय उल्लास वर्णन किया गया है—

**परकीया-भावे अति रसेर उल्लास।**
**व्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास॥**

श्रीचै० चरि०, १।४।४३

इस परमोल्लासमय परकीया-भावकी रसवैचित्री एकमात्र प्रकट-व्रजधामकी वस्तु है और यही अप्रकट-धामकी अपेक्षा प्रकट-धामके सर्वोत्कर्षका कारण है। केवल मधुररसको लेकर नहीं, व्रजके सख्य-वात्सल्यके समान रसमयता भी तो न अप्रकट धामोंमें है, न प्रकट मथुरा-द्वारका लीलामें। विशेषत: श्रीकृष्ण केवल ग्यारह वर्षकी आयु तक व्रजमें रहे, तब तक उनका यज्ञोपवीत ही न हुआ था।। विवाहका तो प्रसंग ही नहीं उठता। अत: व्रजमें एकमात्र परकीया-भावमय मधुररस ही सम्भव है। प्रकट-व्रजधाममें स्वकीयत्वका औचित्य कहां ?

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें ब्रह्माजी द्वारा श्रीश्रीराधाकृष्णके विवाहका प्रसंग वर्णित है। देखा जाये तो वहां भी स्वकीयत्व सिद्ध नहीं होता, क्योंकि माता-पिता तथा समस्त व्रजवासी लोगोंसे वह विवाह अगोचर हुआ—उसे स्वकीया-परक कैसे माना जा सकता है ? व्रजमें तो परकीय-भावकी भावना हर रसके परिकरमें स्पष्ट दीखती है—श्रीनन्द-यशोदादि वात्सल्य भावापन्न तथा श्रीदामादि सख्यभावके परिकर भी इस परकीय-भावके भाजन हैं। इस रसकी पुष्टि श्रीसूरदासजीने अनेक पदोंमें की है—

**'मैया ! मोहि दाऊ बहुत खिजायौ।**
**मोसों कहत मोलकौं लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ॥**

**खेलन मेरी जाई बलैया।**
**मोसौं कहत तात वसुदेव है, देवकि तेरी मैया।**
**अब बाबा कहि कहत नन्द सौं, जसुमति सौं कह मैया'॥**

सब व्रजवासी इस परकीय-भावकी यवनिकामें रसोत्कर्षका आस्वादन करते हैं। श्रीवल्लभ सम्प्रदायका वात्सल्यरस सर्वथा परकीय-भावसे ओत-प्रोत है। व्रजके वानीकारों, लीलाकारोंने जो छद्म-निकुञ्जादि लीलाओं-का उल्लेख किया है, वे सब परकीया-भावसे अनुप्राणित हैं। श्रीयशोदाजीके





वचन भी विवेचनीय हैं—'**सन्देसो देवकी सूं कहियों। हौं तो धाय तुम्हारे सुतकी मया करत ही रहियों।**' संयोगके बाद वियोगकी तन्मयता मथुरागमनके बाद जो उपलब्धियां कराती हैं, वे सब परकीय-भावयुक्त हैं।

परकीया-भाव सर्वशास्त्र-शिरोमणि भागवत-सम्मत है। स्वयं भगवान्ने इसे 'निर्वद्य' अर्थात् अनिन्दनीय कहकर वर्णन किया है। परम भागवताचार्य स्वामी श्रीश्रीधरपादने (१०-३३-३६) श्लोकको टीकामें लिखा है—

**परदारत्वं गोपीनामङ्गीकृत्य परिहृतमिदानीं भगवतः सर्वान्तर्यामिणः परदारसेवा नाम न काचिदित्याह गोपीनामिति'**—व्रजगोपियोंको परदारा-भावमें अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णने जो अङ्गीकार किया है, वह श्रीकृष्ण एवं गोपियोंके पक्षमें कुछ भी दोषयुक्त नहीं है। परमहंस मुनि शिरोमणि श्रीशुकदेवजीने कहा है—

**गोपीनां तत्पतीनाञ्च सर्वेषामेव देहिनाम्।**
**योऽन्तश्चरति सोऽधक्ष्यः क्रीड़नेनेह देहभाक्॥**

श्रीभाग० १०।३३।३५

जो गोपरमणियोंके एवं उनके पतियोंके तथा समस्त देहधारियोंके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विचरण करते हैं, जो अध्यक्ष—बुद्धि आदिके साक्षी हैं, वे यह भगवान् श्रीकृष्ण क्रीड़ा करनेके लिये—भक्तोंके भावरस-निर्यासका आस्वादन करनेके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। —अतः व्रजका परकीया-भाव किसी दृष्टिसे भी निन्दनीय नहीं है, वरं परम प्रशंसनीय है।

सर्वप्रथम इस उन्नत उज्ज्वल रसमयी निज भक्ति सम्पत्तिके प्रदाता श्रीगौरांगप्रभुने इस भावोत्कर्षको वैष्णव समाजके सामने प्रकाशित किया। उनके पदाश्रित भक्तिरसके आदि प्रतिष्ठानाचार्य श्रीपादरूपगोस्वामीसे लेकर समस्त गौड़ीय गोस्वामिवृन्द तथा श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती श्रीबलदेव विद्याभूषणादि सबने इस विषयपर विशद विवेचना की है।

हां, जिनमें रस-सिद्धान्तका सूक्ष्म विवेचन नहीं है, प्रकट व्रजधामके रसोत्कर्षवैशिष्टचका ज्ञान नहीं है, विशेषतः रागानुगा-मार्गसे अपरिचित हैं, तथा जिनकी उपासना-पद्धति श्रीमद्भागवत-सिद्धान्तपर प्रतिष्ठित नहीं है, गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायकी परमोज्ज्वल इस उपासना-पद्धतिसे वे दूर रह सकते हैं। वैसे श्रीश्रीराधाकृष्णकी हर उपासना-पद्धति आदरणीय है। व्रजकी सर्वतोभावेन उपासना कल्याणकारी है, इसमें दो मत नहीं।



# गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय एवं मध्व-सम्प्रदाय•



कुछ एक व्यक्ति गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायको श्रीमध्वाचार्य-प्रवर्त्तित माध्व-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त मानते हैं। किन्तु गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय, जिसे श्रीचैतन्य-सम्प्रदायकी भी आख्या दी जाती है, माध्व-सम्प्रदायसे विल्कुल पृथक् सम्प्रदाय है। ईश्वर सेव्य हैं और जीव सेवक—केवल इस सिद्धान्तको छोड़कर और किसी भी सिद्धान्तमें इन दोनों सम्प्रदाओंका मतैक्य नहीं है।

माध्व-सम्प्रदायके उपास्य हैं वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण। किन्तु गौड़ीय-सम्प्रदायके उपास्य व्रजविहारी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं। माध्व-सम्प्रदाय श्रीनारायणको परब्रह्म मानती है, किन्तु गौड़ीय-सम्प्रदाय नन्दनन्दन श्रीकृष्णको परब्रह्म मानती है और श्रीनारायणको श्रीकृष्णका एक प्रकाश या विलासरूप मानती है।

श्रीमध्वाचार्य अपनी सम्प्रदायकी उपासना-प्रणालीके विषयमें इस प्रकार कहते हैं—भजन दस प्रकारका है। सत्य, हित, प्रिय-कथन तथा शास्त्रानुशीलन—यह चार प्रकारका वाचिक भजन है। दया, स्पृहा एवं श्रद्धा—ये तीनों मानसिक-भजन हैं। दान-परित्राण तथा परिरक्षण—ये तीनों कायिक भजन हैं। इनमें एक-एकको सम्पादनकर श्रीनारायणको समर्पण करना ही भजन है[1]। माध्व-सम्प्रदायका लक्ष्य है, पाँच प्रकारकी मुक्ति प्राप्तकर वैकुण्ठकी प्राप्ति; यही उनका श्रेष्ठ साधन-साध्य है।

किन्तु गौड़ीय सम्प्रदायका लक्ष्य है एकमात्र वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्णकी प्रेमसेवा-प्राप्ति। पाँच प्रकारकी मुक्तिमें कोई एक भी मुक्ति गौड़ीय-सम्प्रदायका काम्य नहीं है।

ब्रह्मके साथ जीव-जगत्‌के सम्बन्धमें माध्व-सम्प्रदाय भेदवादी है और गौड़ीय-सम्प्रदाय अचिन्त्य-भेदाभेदवादी है। दोनोंमें विषम मतभेद है।

---

• डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथ, पराविद्याचार्य, विद्यावाचस्पतिके 'गौड़ीय वैष्णव दर्शन-परिशिष्ट' से अनुवादित एवं संकलित।

१—भजनं दशविधं वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायः, कायेन दानं परित्राणं परिरक्षणं, मनसादया स्पृहा श्रद्धाचेति। अत्रैककं निष्पाद्य नारायणे समर्पणं भजनम् ॥





सबसे बड़ा मतभेद यह है कि श्रीमध्वाचार्यके कई एक ऐसे मन्तव्य एवं उक्तियां हैं, जो केवल शास्त्र-विरुद्ध ही नहीं, अपितु गौड़ीय-वैष्णवोंकी हृदयविदारक हैं। श्रुति-स्मृति अनुसार श्रीकृष्ण-कान्ता श्रीराधादि व्रजगोपीगण श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिकी मूर्त्तविग्रह हैं, वे जीव-तत्त्व नहीं हैं, किन्तु श्रीमध्वाचार्यने उन्हें 'अप्सरा-स्त्री'[1] कहा है। अप्सरा होती हैं प्राकृत-स्वर्गवासिनी रमणी—जीवतत्त्व; जो देहसुख-भोग परायण एवं देहद्वारा दूसरोंकी प्रीति-विधान करनेमें संकोचहीना होती हैं।

शास्त्रानुसार व्रजगोपीगण ही भक्तमुकुटमणि हैं, वे श्रीकृष्णकी प्रियतमा हैं, उनके प्रेमके सर्वतोभावसे वशीभूत रहते हैं भगवान् श्रीकृष्ण। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—हे अर्जुन! ब्रह्मा, रुद्र और तो क्या वैकुण्ठेश्वरी लक्ष्मी तथा स्वयं मैं भी अपनेको उतना प्रिय नहीं हूँ, जितनी मुझे गोपीगण प्रिय हैं—

**न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।**
**न च लक्ष्मी र्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम ॥**

लघुभागवतामृत भक्तामृत, ३५-धृत आदि पुराण वचन॥

भक्त श्रेष्ठ श्रीउद्धवजी तथा ब्रह्मादि भी उन व्रजगोपियोंकी चरणरेणुके लिये प्रार्थना किया करते हैं—

**यष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।**
**नन्दगोप – व्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये।**
**तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः॥**

वही, ३१–धृत बृहद्वामन पुराण वचन।

—ब्रह्माजीने कहा है, पहले मैंने नन्दव्रजकी गोपियोंकी चरणरज प्राप्तिके लिये दो हजार वर्ष तक तपस्या की थी, तथापि मैं उनकी चरणरजको प्राप्त न कर सका।

---

१—विमुक्तावपि कामिन्यो विष्णुकामा व्रजस्त्रियः।
द्वेषिणश्च हरौ नित्यं द्वेषेण तमसि स्थिताः॥
स्नेहभक्ताः सदा देवाः कामित्वेनाप्सरः स्त्रियः।
काश्चित् काश्चिन्न कामेन भक्त्या केवलयैव तु॥
भक्त्या वा कामभक्त्या वा मोक्षो नान्येन केनचित्।
कामभक्त्याप्सरःस्त्रीणामन्येषां नैव कामतः॥
उपास्यः श्वशुरत्वेन देवस्त्रीणां जनार्दनः।
जारत्वेनाप्सरःस्त्रीणां कासाञ्चिदिति योग्यता॥
—श्रीमध्वाचार्यरचित, भागवत-तात्पर्य।

व्रजगोपीगणका महाभाव श्रीकृष्ण-महिषी—रुक्मिणी-सत्यभामादि आठोंके लिये अति दुर्लभ है। किन्तु श्रीमध्वाचार्यके मतमें भक्तिमें गोपियोंसे अष्ट-महिषी दुगनी श्रेष्ठा हैं। अष्ट-महिषियोंसे यशोदाकी भक्ति हजारगुणा श्रेष्ठ है, यशोदासे देवकी, देवकीसे वसुदेवजी श्रेष्ठ हैं, वसुदेवजीसे अर्जुन, अर्जुनसे श्रीबलराम, तथा बलरामजीसे भी भक्तिमें ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, ब्रह्मासे परे और कोई श्रेष्ठ नहीं है॥ भागवत-तात्पर्य—११।१२।२२॥ इससे स्पष्ट है कि—श्रीमध्वाचार्यके मतमें भक्तिमें सबसे नीचा स्तर है व्रजगोपियोंका, और सबसे ऊँचा स्तर है ब्रह्माका।

कितना शास्त्र-विरुद्ध मत है श्रीमध्वाचार्यका? क्योंकि माध्व-सम्प्रदाय ब्रह्माको आदिगुरु मानती है, इसलिये वह ब्रह्माकी इतनी महिमा गान करती है। तथ्य यह है कि ब्रह्मा व्रजगोपियोंकी चरण-रजके लिये तरसते रहते हैं। ब्रह्माके अपने वचन हैं कि—

**'नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समा क्वचित्॥'** वृहद्वामन पुराण॥

ब्रह्माको भक्तिमें सर्वश्रेष्ठ स्थापन कर सकनेके लिये श्रीमध्वाचार्यने श्रीमद्भागवत-वर्णित ब्रह्म-मोहन लीलाके १२, १३ तथा १४ अध्यायोंको प्रक्षिप्त कहकर स्वीकार ही नहीं किया है तथा उनपर मध्वभाष्य नहीं है।

इस अवस्थामें गौड़ीय-सम्प्रदायको माध्व-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त कैसे माना जा सकता है? जबकि गौड़ीय-सम्प्रदायका एकमात्र प्रामाण्य है श्रीमद्भागवत तथा परम-उपास्य हैं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और उपासना है व्रजगोपीगण द्वारा प्रवर्तित रागात्मिका-भक्ति।

श्रीमन्महाप्रभुने माध्व-सम्प्रदायी तत्त्वादियोंके मतका खण्डन किया है, यह कहकर कि 'तुम्हारी सम्प्रदाय कर्मी, ज्ञानी होनेसे भक्तिहीन है'। श्रीमहाप्रभुके अनुगत—शिक्षा-प्राप्त श्रीश्रीरूप-सनातन, श्रीजीवगोस्वामिपादसे लेकर श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीबलदेवविद्याभूषणपाद तक किसीने भी माध्व-मतको स्वीकार नहीं किया है बल्कि स्थान-स्थानपर माध्वमतका खण्डन किया है और माध्व-सम्प्रदायकी अयौक्तिकता तथा अशास्त्रीयता सिद्ध की है। उसे गौड़ीय सम्प्रदायसे बिल्कुल अलग माना है।

सबसे बड़े आश्चर्यका विषय यह है कि गौड़ीय-सम्प्रदायको माध्वसम्प्रदायके अन्तर्गत मानने वालोंमें गौड़ीय-सम्प्रदायके ही कुछ महानुभाव शामिल हैं, जबकि माध्व-सम्प्रदायके पूर्वाचार्योंसे लेकर आधुनिकतम मध्वाचार्यगण गौड़ीय-सम्प्रदायसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं मानते, न उनका यह आग्रह ही है कि गौड़ीय सम्प्रदाय माध्वकी शाखा है या उसके अन्तर्गत। बल्कि उडुपी मध्वाचार्यमठके साईन-बोर्ड पर यह लिखा बताया जाता है कि—Krishna With Sri Radha is not worshipped in our Sampradaya'—हमारी माध्व-सम्प्रदायमें श्रीराधाके सहित श्रीकृष्णकी पूजा या उपासना नहीं होती है।'

माध्वसम्प्रदायके आचार्य उडुपी-कानुक मठाधीश श्रीविद्यासमुद्रतीर्थ अपने पत्र दिनांक २२-३-१९५२ में लिखते हैं—





'Radhika and Gopies are Apsara Women'

किन्हीं एक श्रीमन्माध्वपीठाधीश्वर महाराजको 'महाप्रभु-श्रीगौरांग' में अपना आशीर्वाद प्रदान करनेकी सम्पादकने प्रार्थना की थी। उसके उत्तरमें श्रीस्वामीजीने अपने पत्र दिनांक २०-१०-८३ में लिखा—'.... ....श्रीगौरांगकी चरित्रका किताब भेजिये'—इससे भी प्रमाणित होता है कि वर्तमान समय तक श्रीमन्माध्वपीठाधीश्वर श्रीगौरांग महाप्रभुके सम्बन्धमें अपरिचित हैं और उनके पुस्तकालयमें श्रीगौरांग-साहित्य भी नहीं है।

विचार कीजिये ये मन्तव्य मध्व-सम्प्रदायसे गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायका क्या सम्बन्ध जोड़ सकते हैं ?

माध्वसम्प्रदायसे गौड़ीय-सम्प्रदायके कुछ लोकोंको चपकाये रखनेकी एक कल्पित और अवास्तव धारणा डोरीका काम कर रही है। उनकी भ्रान्त-धारणा यह है कि वैदिक वैष्णव सम्प्रदायें कुल चार हैं, यदि कोई पांचवी-छठी सम्प्रदाय सामने आती है तो वह उप-सम्प्रदाय हो जायेगी और फिर कुम्भ-मेलाओंमें उसे स्थान न मिल सकेगा। इस भ्रान्त धारणाके मूलमें हैं निम्नलिखित दो श्लोक, जिनको पद्मपुराणका बताकर किसी व्यक्तिने श्रीमन्महाप्रभुके परमप्रिय पार्षद गो० कवि कर्णपूर-रचित 'गौरगुणोद्देशदीपिका' में घुसेड़ दिया है। इन्हीं श्लोकोंको फिर गुरुपरम्पराके साथ 'प्रमेयरत्नावली' नामकी पुस्तकमें भी उद्धृत किया गया है तथा श्रीबलदेव विद्याभूषण रचित गोविन्द-भाष्यकी 'सूक्ष्मा' नामक टीकामें भी दोनों श्लोक देखे जाते हैं—१-गौरगुणोद्देशदीपिका, २-प्रमेयरत्नावली तथा ३-सूक्ष्मा-टीका—इन तीनोंके विषयमें कुछ आलोचना की जाती है—

**गौरगुणोद्देश-दीपिकाके** आरम्भमें १ श्लोकसे लेकर १९ श्लोकों तक श्रीमन्महाप्रभुकी वन्दना, है, उनके पञ्चतत्त्वात्मक कृष्णस्वरूपका तथा नवद्वीपधाम-माहात्म्यका वर्णन किया गया है। बीसवां श्लोक इस प्रकार है—

**यः सत्ये सितवर्णमादधदसौ श्रीशुक्लनामाभव-**
**त्त्रेतायां मखभुङ्मखाख्य उचितोऽभूद्रक्तवर्णं दधत्।**
**यः श्यामो दधदास बर्णकममुं श्यामं युगे द्वापरे**
**सोऽयं गौरविधुर्विभाति कलयन्नामावतारं कलौ ॥२०॥**

अर्थात् जो सत्ययुगमें शुभ्रवर्ण तथा शुक्लनामको धारण करते हैं, जिन्होंने त्रेतायुगमें रक्तवर्ण होकर यज्ञभुक्-नाम धारण किया, जो द्वापरमें श्यामवर्ण होकर श्याम-कृष्णनामसे अभिहित हुए, वे ही भगवान् गौर-वर्णसे श्रीगौरांग नामसे कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं। इसके बाद २१ वां श्लोक है—जिसे पद्मपुराणका कहा गया है—

**प्रादुर्भूताः कलियुगे चत्वारः साम्प्रदायिकाः।**
**श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनकाह्वयाः पाद्मे यथा स्मृताः॥**
**अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।**
**श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः ॥२१॥**

अर्थात् कलियुगमें श्री, ब्रह्म, रुद्र तथा सनक—ये चार सम्प्रदाय प्रादुर्भूत होती हैं। पद्मपुराणमें लिखा है कि कलियुगमें श्री, ब्रह्म, रुद्र तथा सनक—ये चार धरणि-पावन वैष्णव-सम्प्रदायें होंगी ॥

२२ वें श्लोकसे लेकर २४ श्लोक तक माध्वसम्प्रदायका विवरण दिया गया है, जिसमें श्रीनारायणके शिष्य ब्रह्मा, ब्रह्माके नारद, नारदके व्यास, व्यासके शुकदेव तथा मध्वाचार्य कहे गये हैं। अन्तमें व्यासतीर्थके शिष्य भक्तिरसाश्रय लक्ष्मीपति, उनके माधवेन्द्र-पुरी, उनके ईश्वरपुरी, रंगपुरी, अद्वैत हुए। श्लोक सं० २५ में कहा गया है कि श्रीगौरांगने ईश्वरपुरीको गुरुरूपमें वरण किया और प्राकृत-अप्राकृत जगत्को प्रेम भक्तिरसमें आप्लावित किया। फिर श्लोक सं० २६ इस प्रकार है—

**स्वीकृत्य राधिका-भाव-कान्ती पूर्व-सुदुष्करे।**
**अन्तर्बहिरसाम्भोधिः श्रीनन्दनन्दोऽपि सन् ॥२६॥**

पहले व्रजलीलामें जो रस श्रीनन्दनन्दनके लिये सुदुष्कर था, उसे आस्वादन करनेके लिये श्रीराधाकी भाव-कान्तिको भीतर-बाहर स्वीकार कर वही (श्रीनन्दनन्दन) गौरांगरूपमें अवतीर्ण हुए।

विवेकपूर्ण बुद्धिसे देखा जाये तो श्लोक सं० २० से इस श्लोक सं० २६ का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। श्लोक सं० २० में कहा गया है कि श्यामवर्ण श्रीकृष्ण गौरवर्णसे श्रीगौरांग नामसे अवतीर्ण हुए। श्यामवर्ण कृष्ण गौरवर्ण गौरांग कैसे हुए ? इस प्रश्नका समाधान श्लोक सं० २६ में किया गया है कि श्रीकृष्ण राधा-भाव-कान्तिको अङ्गीकार कर श्रीगौरांग हुए।

किन्तु २१ से २५ तकके श्लोकोंका न तो श्लोक २० से कोई सम्बन्ध है न श्लोक सं० २६ से। अतः स्पष्ट है कि २१ से २५ तकके सारे श्लोक क्षेपक हैं। किसी व्यक्तिने अपनी उद्देश्य-सिद्धिके लिये स्वयं रचकर गौरगुणोद्देशदीपिकामें जोड़ दिये हैं।

सबसे अधिक ध्यान देने योग्य यह बात है कि 'प्रादुर्भूता-क्षितिपावनाः'—यह श्लोक सं० २१ पद्मपुराणका श्लोक ही नहीं है। आजसे लगभग ०-६० वर्ष पूर्व गोस्वामी श्रीमधु-सूदनदासजी, राधारमणघेरा, वृन्दावन, श्रीपाद गो० भक्तिसिद्धान्त सरस्वती संस्थापक श्री-चैतन्यगौड़ीयमठ, तथा डा० श्रीराधागोविन्दनाथ एम. ए. डी-लिट् पराविद्या-चार्य, भूतपूर्व अध्यक्ष कुमिल्ला कालेज एवं चौमुहनी कालेज कलकत्ता, और डा० श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद आदि निष्पक्ष धुरन्धर विद्वानोंने देश-विदेशमें जितने भी पद्मपुराण उन्हें हस्तलिखित अथवा प्रकाशित मिले, उन समस्तको अनुसन्धान पूर्वक देख-दिखाकर यह निर्णय दिया है कि सम्प्रदायोंको चार की संख्यामें सीमाबद्ध करने वाला यह श्लोक सं० २१ पद्मपुराणमें नहीं है और न किसी अन्य पुराणमें ही है। किसी माध्व-सम्प्रदायके व्यक्तिने इसे रचकर पद्मपुराणके नामसे गौरगुणोद्देशदीपिकामें जोड़ा है। इसी प्रकार मध्वाचार्य-





गुरुपरम्परामें श्रीलक्ष्मीपतिसे लेकर श्रीचैतन्यके नाम पर्यन्त नाम जोड़ दिये है, जो निराधार हैं।

श्रीगौड़ीय गोस्वामिवृन्दने, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादने तथा श्रीपाद बलदेव विद्याभूषणने भी अपनी अनेक रचनाओं-टीकाओंमें कहीं भी वैष्णवसम्प्रदायोंके चार होनेका उल्लेख नहीं किया है। अतः जो गौड़ीय महानुभाव चारसम्प्रदाय-विषयक इस कल्पित एवं अशास्त्रीय प्रमाण-वश भ्रान्त होकर अपनेको श्रीचैतन्य-सम्प्रदायी या गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायी या पांचवीं सम्प्रदायके कहलानेसे भयभीत हो रहे हैं, वे मध्वसे सम्बन्ध जोड़े रखकर स्वतः भी एक नई पांचवी सम्प्रदायकी आख्या स्वीकार कर रहे हैं।

गोस्वामी कवि कर्णपूर श्रीमन्महाप्रभुके परमप्रिय पार्षद थे, उन्होंने अपना मत अपनी रचना 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक' में स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट किया है कि श्रीमन्महाप्रभुने दक्षिण यात्रामें अनेक वैष्णव देखे, वे श्रीनारायणके उपासक थे। कुछ दूसरे माध्वसम्प्रदायके वैष्णव देखे, जिन्हें तत्त्ववादी कहा जाता है, वे भी श्रीनारायण उपासक थे किन्तु उनका मत—सिद्धान्त अनिन्दनीय नहीं है, अर्थात् शास्त्र-सम्मत न होनेसे निन्दनीय है।

अपनी एक रचनामें जब कवि कर्णपूरजी अपना मत माध्वसम्प्रदायके विरोधमें प्रकाशित कर चुके हैं, फिर दूसरी रचना 'गौरगुणोद्देशदीपिका' में वे अपने इष्टदेव भगवान् श्रीचैतन्यको उस निन्दनीय सम्प्रदायके अनुगत उल्लेख करें—यह कभी भी विश्वसनीय है।

**माध्वसम्प्रदायकी गुरु-परम्पराका** जो उल्लेख 'गौरगुणोद्देशदीपिका' में मिलता है—उसमें भी बड़ी गोलमाल है। उसमें लिखा है कि श्रीमध्वाचार्यने 'शतदूषणी' नामक संहिताकी रचना की और निर्गुण ब्रह्मका खण्डन किया है। किन्तु श्रीजीवगोस्वामिपादने श्रीभागवत (१०।८७।२ श्लोक) की संक्षिप्त वैष्णवतोषणी टीकामें लिखा है कि 'शतदूषणी' संहिता श्रीरामानुज सम्प्रदायका ग्रन्थ है—**श्रीवैष्णवानां श्रीभाष्य-तदीयटीकयोः शतदूषणी-आदिषु**'—इत्यादि। श्रीराजेन्द्रनाथ घोषने अपने अद्वैत-सिद्धिग्रन्थकी भूमिकामें लिखा है कि गौड़ पूर्णानन्द कवि चक्रवर्तीने श्रीमध्वाचार्यके बहुत पीछे व्यासतीर्थ रचित न्यायामृतका अनुसरण कर 'मायावाद शतदूषणी' तथा 'तत्त्वमुक्तावली' ग्रन्थोंकी रचना की। यह रचना श्रीआनन्दतीर्थ मध्वाचार्यकी नहीं है।

फिर, गौरगुणोद्देशदीपिकाके २२ वें श्लोकके अन्तर्गत लिखा है—

**'व्यासाल्लब्ध कृष्णदीक्षो मध्वाचार्यो महायशाः।'**

श्रीमध्वाचार्य ने श्रीव्यासजीसे कृष्ण-मन्त्र दीक्षा-ग्रहण की—कितनी असत्य बात है यह? माध्वसम्प्रदायके साहित्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीमध्वाचार्यके दीक्षागुरु थे श्रीपाद अच्युतप्रेक्ष, न कि श्रीव्यासदेव। श्रीमध्वाचार्य कृष्णमन्त्रसे दीक्षित भी न थे, यदि ऐसा होता

तो वे कृष्णोपासक होते, वे थे नारायण-उपासक। यदि श्रीमध्वाचार्य श्रीव्यासदेवके दीक्षित शिष्य होते, तो क्या वे अपने दीक्षागुरु भगवान् श्रीव्यासदेव द्वारा आविर्भूत श्रीमद्भागवत वर्णित ब्रह्ममोहन-लीलाके तीनों अध्यायोंका बहिष्कार करते ? श्रीमद्भागवतके पञ्चप्राण स्वरूप रास पञ्चाध्यायीमें महामहिम व्रजगोपियोंको, जिनका श्रीकृष्णने भी चिरऋण स्वीकार किया है, अप्सरा कहनेका दुःसाहस करते ? —अतः यह नितान्त असत्य है कि श्रीमध्वाचार्यजी श्रीव्यासजी द्वारा कृष्णमन्त्रसे दीक्षित थे।

ऐसी निराधार एवं अवास्तविक सामग्रीको देखकर यही निष्कर्ष निकलता है कि गौरगुणोद्देशदीपिकामें २१ से लेकर २५ तकके श्लोकोंको किसी सिद्धान्त तथा इतिहास अनभिज्ञ व्यक्तिने रचकर इस ग्रन्थको दूषित किया है तथा औरों की तो क्या बात, गौड़ीय-वैष्णवोंमें भी एक निराधार भ्रम पैदा कर दिया है।

और एक बात है, श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण रचित श्रीगोविन्द भाष्यकी **'सूक्ष्मा' नामक** टीकामें लिखित प्रसंग। वह गौड़ीय सम्प्रदायके माध्वसम्प्रदायके अन्तर्भुक्त होनेका भ्रम उत्पादक है—

सर्वप्रथम श्रीपाद बलदेवविद्याभूषणके सम्बन्धमें कुछ एक बातें जानना जरूरी हैं; अतः उनका अति संक्षिप्त यहां विवरण दिया जाता है—

श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण वेद-वेदान्त-दर्शन-काव्य-व्याकरण-अलंकारादि शास्त्रोंके असाधारण पण्डित थे। ये पहले माध्वसम्प्रदायमें दीक्षित हुए, फिर श्रीजीवगोस्वामीके रचित षड्-सन्दर्भका अध्ययनकर श्रीराधादामोदरदासजीसे कान्ताभावके उपासना-मन्त्रसे दीक्षित हो गौड़ीय सम्प्रदायमें आ गये।

जयपुरमें श्रीगोविन्दजी सेवाके सम्बन्धमें श्रीरामानुजसम्प्रदायके महन्तों द्वारा आपत्ति उठाई गई कि गौड़ीय-वैष्णव असम्प्रदायी हैं, क्योंकि इनका ब्रह्मसूत्रपर भाष्य नहीं है। अतः इन्हें गोविन्दजीकी सेवा-पूजाका कोई अधिकार नहीं है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजीकी प्रेरणासे श्रीविद्याभूषण जयपुर राजदरबारमें पहुँचे। उन्होंने गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायका भाष्य रचकर प्रस्तुत किया। चाहे श्रीमहाप्रभुने ब्रह्मसूत्रका प्रकृत भाष्य श्रीमद्भागवतको ही घोषित किया था, किन्तु रामानुज, मध्व, निम्बार्क तथा विष्णुस्वामी--वल्लभके पृथक्-पृथक् भाष्य विद्यमान थे। उस आपत्तिके समाधानके लिये पृथक् भाष्य रचा गया, जिससे रामानुज तथा अन्य सम्प्रदायोंके महान्तोंने गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायको श्रौत एवं प्रामाणिक एक पृथक् सम्प्रदाय स्वीकार किया।

यदि गौड़ीय-सम्प्रदाय मध्वसम्प्रदायके अन्तर्भुक्त होती तो गोविन्द-भाष्यकी रचनाका क्या प्रयोजन था ? माध्वका भाष्यतो उस समय पहलेसे विद्यमान था ही। गोविन्द-भाष्यकी रचना एवं सिद्धान्त ही गौड़ीय सम्प्रदायके चारों सम्प्रदायोंसे पृथक् अस्तित्वका अकाटच प्रमाण है।





मजेकी बात यह है कि चारों अन्य सम्प्रदायोंने गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायको एक पृथक् शास्त्रीय सम्प्रदायके रूपमें पृथक् भाष्य देखते ही मान्यता दे दी, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित इस श्रौत सम्प्रदायको अभी तक कई महानुभाव माध्वके अन्तर्गत माने जा रहे हैं और अपना सम्बन्ध माध्वसे जोड़े हुए हैं।

**'प्रमेय रत्नावली'** पुस्तकमें भी यही भ्रम है। श्रीपाद विद्याभूषणजी-ने पहले दो श्लोकोंमें श्रीगोविन्द-गोपीनाथ-मदनमोहनकी वन्दना की है। तीसरे श्लोकमें आनन्दतीर्थ नामक यति (मध्वाचार्य) की वन्दना की गई है वह भी मायावाद-खण्डनकारी आचार्यरूपमें, न कि अपनी सम्प्रदायके आचार्य-रूपमें। चौथे श्लोकमें गुरुपरम्पराके ध्यान-प्रणामकी महिमा कथन की है। इसके बाद वहां उल्लेख है—**'यदुक्तं पद्मपुराणे'**—

**सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।**
**अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।**
**श्री - ब्रह्म - रुद्र - सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।**
**चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात् ॥ इति ॥५॥**
**रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।**
**श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुः सनः ॥६॥**

—जो मन्त्र सम्प्रदाय-विहीन हैं, वे निष्फल माने गये हैं, इसलिये कलियुगमें चार सम्प्रदाय होंगी। श्री (रामानुज) ब्रह्म (माध्व) रुद्र (विष्णु-स्वामी) तथा सनक (निम्बार्क)—ये चारों उत्कल-प्रदेशीय पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) में उत्पन्न होंगे।

पहले जैसा कहा जा चुका है—ये चार-सम्प्रदाय सम्बन्धीय श्लोक पद्मपुराणमें है ही नहीं, किसी संस्करणमें नहीं है। फिर यहां चारों सम्प्रदायोंके आचार्योंके उड़ीसा प्रदेश श्रीजगन्नाथपुरीमें उत्पन्न होनेकी बात कही गई है। कितनी अवास्तव एवं भ्रमात्मक है यह उक्ति ? वैष्णव सम्प्रदायोंसे सम्बन्ध रखने वाला एक अनपढ़ व्यक्ति भी यह जानता है कि श्रीरामानुजाचार्यका जन्मस्थान दक्षिण भारतमें मद्रासके निकट श्रीपेरेम्बुदुर है। श्रीमध्वाचार्य उडूपीडके निकट पाजकाक्षेत्रमें उत्पन्न हुए। श्रीनिम्बार्काचार्यका जन्मस्थान तैलिङ्ग देशमें मुङ्गेरपतन है और श्रीविष्णुस्वामी भी दाक्षिणात्यमें उत्पन्न हुए। इन चारोंमें कौन सा क्षिति-पावन सम्प्रदायाचार्य है जो उत्कलक्षेत्र पुरीमें उत्पन्न हुआ है ? — कोई भी नहीं। इससे स्पष्ट है कि पद्मपुराणका नाम देकर किसी मध्वसम्प्रदायीने जैसे गौरगुणोद्देशदीपिकाको दूषित किया है, उसी प्रकार प्रमेय-रत्नावलीमें गौरगुणोद्देशदीपिकाका सहारा लेकर चारों वैष्णवाचार्योंको उत्कल वासी कहकर सार्वभौम सर्वशास्त्र-इतिहास-निष्णात श्रीपाद विद्याभूषणका उपहास किया है। यह किसी अपूर्व-बुद्धिमान उत्कलवासी की सूझ-बूझ लगती है।

प्रमेयरत्नावलीमें छठे श्लोकके बाद शीर्षक है—**'तत्र स्वगुरु-परम्परा यथा'**—श्रीपाद-बलदेव विद्याभूषण पहले माध्वसम्प्रदायमें दीक्षित हुए, इसलिये माध्वसम्प्रदायकी गुरु परम्परा-को वे जानते थे – इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। और माध्वसम्प्रदायके मठोंमें जो गुरु परम्पराका वर्णन है, उसे भी गलत नहीं कहा जा सकता। किन्तु उडूपी मठमें सुरक्षित गुरु परम्पराके साथ प्रमेयरत्नावलीमें प्रकाशित गुरुपरम्पराका मेल नहीं है। वहां कुछ और है तथा इसमें कुछ और। जयतीर्थ तक दोनों एक सी हैं, परन्तु प्रमेयरत्नावलीमें जयतीर्थका शिष्य है ज्ञानसिन्धु किन्तु उडुपी गुरुपरम्परामें जयतीर्थका शिष्य बताया गया है विद्याधिराज। प्रमेयरत्नावलीमें ज्ञानसिन्धुका शिष्य है दयानिधि, उसका विद्यानिधि, उसका राजेन्द्र। उडुपी परम्परामें—विद्याधिराजका शिष्य कवीन्द्र, उसका वागीश, उसका रामचन्द्र फिर उसका शिष्य है विद्यानिधि। इस प्रकार अन्यान्य माध्वसम्प्रदायके मठोंमें जो गुरु परम्पराएं सुरक्षित हैं, उनमें किसीसे भी प्रमेयरत्नावली वर्णित गुरुपरम्पराका मेल नहीं खाता[1]। इस प्रकार प्रमेय-रत्नावली-वर्णित जो गुरुपरम्परा है, उसमें बहुत गोलमाल है, अतः इसको कभी भी श्रीमद्-विद्याभूषण द्वारा संकलित नहीं माना जा सकता[2]।

LIBRARY

एक बात और भी विवेचनीय है कि जिस गुरुपरम्पराको 'स्वगुरु परम्परा' का नाम प्रमेयरत्नावलीमें दिया गया है, क्या वह श्रीपाद बलदेवविद्याभूषणकी निजकी गुरुपरम्परा है ? वस्तुतः वह उनकी गुरुपरम्परा नहीं है, हो भी नहीं सकती। केवल माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुको माध्वसम्प्रदायानुगत दिखानेके लिये उस गुरुपरम्पराको प्रकाशित किया गया है। श्रीविद्याभूषणकी यदि स्व-गुरु परम्परा यह होती, तो उनके श्रीगुरुदेव, परम-गुरुदेव तथा अन्तमें उनका अपना नाम रहना आवश्यक था। किन्तु यहां तो श्रीचैतन्य तक गुरु परम्पराका शेष किया गया है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने किसीको भी मन्त्र दीक्षा न दी—यहां तक कि श्रीरूपसनातन-जीव-श्रीरघुनाथदास, श्रीगोपालभट्ट आदि षड्गोस्वामीवृन्दमें भी कोई श्रीमहाप्रभुका मन्त्रदीक्षित शिष्य न था। यदि प्रमेयरत्नावली-वर्णित गुरुपरम्पराको ही वास्तव मान लिया जाये, तो श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैतप्रभुके परिवारोंको छोड़कर और परिवार—गदाधर-परिवार, ठाकुर महाशय-परिवार आदि असम्प्रदायी वैष्णव मानने होंगे क्योंकि माध्वसम्प्रदायकी गुरु-परम्परामें उनका उल्लेख ही नहीं है। अतः वास्तवमें यह गुरु-परम्परा न तो श्रीबलदेवविद्याभूषणकी स्वगुरुपरम्परा है, न उनके द्वारा ऐसी भ्रान्त परम्पराका उल्लेख ही किया जाना सम्भव है, निश्चित ही यह क्षेपक रूपमें माध्व-सम्प्रदायियों द्वारा जोड़ी गई है।

---

1—A History of Indian Philosophy by Dr. S. N. Das Gupta Vol IV Page 56

२—गौड़ीय वैष्णव दर्शन—परिशिष्ट, डॉ० राधागोविन्दनाथ पृष्ठ—३७८८





इसी प्रकार गोविन्दभाष्यकी **'सूक्ष्मा'** नामक टीका भी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखी गई है और श्रीपाद बलदेव विद्याभूषणके नामसे आरोपित है, इसमें चार सम्प्रदाय सूचक श्लोकोंके पद्मपुराणमें होनेका कोई उल्लेख नहीं है।

इस टीकाके आरम्भमें कहा गया है—**'भाष्यमेतद्विरचितं बलदेवेन धीमता'**—अर्थात् बुद्धिमान् बलदेव द्वारा यह टीका रची जा रही है। परम-भागवत श्रीबलदेव विद्याभूषणजी क्या अपनेको 'बुद्धिमान् बलदेव' इस प्रकार उल्लेख कर सकते हैं? आजके व्याख्याकार या लेखक तो अपने नामके आगे अनेक उपाधियां देकर उसे सुसज्जित कर सकते हैं, किन्तु जिस गौड़ीय-समुदायके अद्वितीय आद्य रसशास्त्र एवं दर्शन शास्त्रोंके प्रणेता अपने नामको श्रीरूपकी जगह 'रूपकः' एवं जीवके स्थानपर 'जीवकः' लिखते आये हैं, उस सम्प्रदायके आचार्य श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्ती पादके परम कृपापात्र श्रीपादबलदेव विद्याभूषण अपनेको 'बुद्धिमान बलदेव' लिखेंगे—कोई भी विश्वास नहीं कर सकता इसी 'सूक्ष्मा' टीकामें आगे लिखा है—

भाष्यं यस्य निर्देशाद् रचितं विद्याभूषणेनेदम्।
गोविन्दः स परमात्मा ममापि सूक्ष्मं करोत्यस्मिन्॥

अर्थात् जिन परमात्मा श्रीगोविन्ददेवके निर्देशसे विद्याभूषण द्वारा यह भाष्य रचित हुआ है वही इस टीकाके रचनेमें मुझे भी सूक्ष्म कर रहे हैं—उनकी कृपासे मैं सूक्ष्मा नाम्नी टीका लिखता हूं। सुधीजन सहजमें विवेचना कर सकते हैं कि यह टीका श्रीपाद विद्याभूषण द्वारा लिखित ही नहीं, बल्कि उसी महानुभाव द्वारा लिखित प्रतीत होती है, जिसने प्रमेय-रत्नावलीमें चार सम्प्रदाय सूचक श्लोक तथा स्वगुरुपरम्पराके प्रसंग जोड़े हैं।

श्रीलक्ष्मीपति तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरीका माध्वसम्प्रदायसे कुछ सम्भव न था, वे शांकर सम्प्रदायसे हटकर वृन्दावनीय-भक्तिरसके उपासक हुए[1]। लौकिक-लीलामें श्रीमन्महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीसे दीक्षा ग्रहण की। स्वयं भगवान् श्रीचैतन्यदेव ही गौड़ीय सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं तथा श्रीमन्नित्यानन्द, श्रीअद्वैतप्रभु आदिसे लेकर गौड़ीय गोस्वामिवृन्द ही इस सम्प्रदायके मूल-प्रतिष्ठाता हैं, जिसका नाम 'श्रीचैतन्य-सम्प्रदाय' किंवा 'गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय' प्रशस्त है।

श्रीमन्महाप्रभुसे लेकर उनके कृपापात्र—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीकविकर्णपूर गोस्वामी, श्रीमुरारिगुप्त, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, श्रीसनातन-श्रीरूप-श्रीजीव आदि षड्गौड़ीय-गोस्वामि, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीपाद ईश्वरी, आदि प्राचीन आचार्यवृन्द तथा अद्वैत वंशीय प्रभुपाद श्रीराधामोहन गोस्वामी भट्टाचार्य, प्रभुपाद श्रीराधिकानाथ गोस्वामी, श्रीनित्यानन्दवंशीय प्रभुपाद श्रीसत्यानन्द गोस्वामी,

१—डॉ० सुन्दरानन्द विद्याविनोद रचित अचिन्त्य भेदाभेदवाद पृष्ठ २२४

पण्डित प्रवर[1] श्रीरासविहारी सांख्यतीर्थ, डॉ० एस. एन. दास गुप्त, डा० श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद, डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथ विद्यावाचस्पति इत्यादि समस्त आधुनिक आचार्यों, प्रसिद्ध दार्शनिक अनुसन्धानकर्ताओंका एकमात्र यही निर्णय है कि माध्वसम्प्रदायसे गौड़ीय सम्प्रदायका किसी भी रूपमें सम्बन्ध नहीं है। गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय एक पृथक् श्रौत-सम्प्रदाय है, जिसका चारों सम्प्रदायोंकी भाँति अपना पृथक् श्रीमद्भागवतमत-प्रतिष्ठित भाष्य है। इस सम्प्रदायका पृथक् उज्ज्वल अस्तित्व है। विस्तृत-आलोचनाके लिए 'गौड़ीयवैष्णव दर्शन-परिशिष्ट' अपेक्षाकृत द्रष्टव्य है।

## श्रीगौरांगसुन्दर

—श्रीकृष्णदयालजी दुग्गल 'शैदा'

रशके-सद जन्नत वह नदिया की फजा थी, मैं न था।
फूल थे, गुंचे थे, और ऊदी घटा थी, मैं न था॥
आरती का दिलरुबा मंजर था गंगा की बहार।
कीर्त्तन की हर तरफ दिलकश सदा थी, मैं न था॥
ऊदी साड़ी में किशोरी जी घटा में जैसे बर्क।
रूकशे-खुरशैद, उधर पीली कबा थी, मैं न था॥
देवता, गंधर्व, किन्नर, आदमी हैवां तयूर।
महव नजारे में सब खल्के-खुदा थी, मैं न था॥
प्रेम और भक्तिमें अज-खुद रफतगी में था समां।
दरे किस्मत बे-असर! अपनी दुआ थी, मैं न था॥
दिल न खूं हो जाये जब तक है ख्याले-वस्ल खब्त।
सच है काबिल चरण छूने के हिना थी, मैं न था॥
याद करता हूं तो आहें दिलके हो जाती हैं पार।
प्यारी-प्यारी युगल की वह हर अदा थी, मैं न था॥

—श्रीनिमाई चाँद



1—डॉ० राधागोविन्दनाथ रचित गौड़ीय वैष्णव दर्शन—द्रष्टव्य



# गौड़ीयवैष्णव-सम्प्रदाय एवं संन्यास



श्रीगौरांग महाप्रभु प्रवर्त्तित गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें संन्यासकी रीति प्रचलित नहीं है। श्रीमहाप्रभुके चरणाश्रित श्रीश्रीरूप-सनातनादि गौड़ीय वैष्णवोंमें किसीने भी संन्यास नहीं ग्रहण किया। उनके जो नाम गृह त्यागसे पहले थे, वही नाम रहे और आज भी वे उन्हीं नामोंसे परिचित हैं।

श्रीसनातन गोस्वामी गृह त्यागकर जब वाराणसी आये, उनके पास एक ही वस्त्र शरीर पर था। प्रभु-आदेशसे गंगा-स्नान करके आये तो गीला ही वस्त्र उनके परिधानमें था। श्रीतपन मिश्रने एक नई धोती लाकर जब उन्हें दी, तो उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया बल्कि प्रयोग की हुई एक धोती उनसे ली और उसके दो टुकड़े कर दिये, एकको कोपीन बनाया और एकको बहिर्वास। यह धोती सफेद रंगकी थी—गेरिवे रंगकी न थी।

श्रीमहाप्रभुने किसीको भी संन्यास ग्रहण करनेका उपदेश नहीं दिया। श्रीतपन मिश्रके पुत्र श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामीको उन्होंने विवाह करनेसे रोका और वृन्दावन जाकर श्रीश्रीरूप-सनातनके आश्रयमें रहनेका उपदेश दिया, किन्तु उसे भी श्रीमहाप्रभुने संन्यास ग्रहण करनेको नहीं कहा। चौंसठ-अङ्ग साधन-भक्तिके उपदेशमें प्रभुने संन्यासका कहीं भी वर्णन नहीं किया। अतः गौड़ीय वैष्णवाचार्यगणने भक्तिरसामृतसिन्धु आदि, जिन भक्ति-पथ प्रदर्शक ग्रन्थोंकी रचना की, उनमें भी किसीमें कहीं संन्यासका उपदेश नहीं है।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको 'अभिधेय तत्त्व' के प्रसङ्गमें वैष्णवाचारके सम्बन्धमें कहा है—

**असत्-संग त्याग एई वैष्णव-आचार।**
**स्त्री-संगी एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥**
**ए सब छाड़िया आर वर्णाश्रम-धर्म।**
**अकिञ्चन हञा लय कृष्णैकशरण॥**

श्रीचै० च० २।२२।४९-५०

सनातन! असत् संगका त्याग करना ही वैष्णवाचार है। स्त्री-संगी तथा श्रीकृष्णके अभक्त, ये दोनों असत् पुरुष हैं, उनका संग त्याग करो तथा वर्णाश्रम-धर्मोंका भी त्याग कर अकिञ्चन हो करके एकमात्र श्रीकृष्ण-शरण ग्रहण करो।

इस उपदेशमें चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासके त्यागका स्पष्ट उल्लेख है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादने 'भक्तस्यानाश्रमित्वञ्च'— भक्तोंके लिये अनाश्रमित्वका (श्रीमद्भागवत, ११-१८ अध्यायकी टीकामें) निरूपण किया है।

इस प्रसङ्गमें श्रीपाद सनातनगोस्वामीके वचन भी उल्लेखनीय हैं—जब वे वृन्दावनमें रह रहे थे, तब श्रीमहाप्रभुके पार्षद एवं अन्तरंग-भक्त श्रीजगदानन्द वृन्दावन आये। उन्होंने एक दिन श्रीसनातनको अपने यहां प्रसाद पानेका निमन्त्रण दिया। मुकुन्द सरस्वती नामके एक संन्यासी उन दिनों वृन्दावन रहते थे, उन्होंने एक गेरिवे रंगका बहिर्वास प्रीतिवश श्रीसनातनको दिया था। श्रीसनातनने उसे कभी धारण नहीं किया था। आज जब श्रीसनातन श्रीजगदानन्दके निवास स्थानपर जाने लगे, तो उन्होंने वह वस्त्र सिरपर बांध लिया। श्रीजगदानन्दने जब उस गेरिवे वस्त्रको देखा, तो वे प्रेमाविष्ट हो उठे। उन्होंने उसको श्रीमहाप्रभुका प्रसादी बहिर्वास समझा—

**कांहा पाइले एइ तुमि रातुल वसन।**
**मुकुन्द सरस्वती दिल, कहे सनातन॥**
**शुनि पण्डितेरे मने दुख उपजिल।**
**भातेर हाण्डी लञा तांरे मारिते आसिल॥**

श्रीचै० च० ३।१३।५२-५३॥

श्रीजगदानन्द पण्डितने पूछा, सनातन ! यह गेरवा वस्त्र तुम्हें कहाँ से मिला ? श्रीसनातनने कहा—पण्डित ! मुझे मुकुन्द सरस्वतीने दिया था। इतना सुनते ही जगदानन्दको मनमें महान् दुख हुआ और क्रोधमें भरकर साथ चूल्हेपर रखी चावलोंकी हाण्डी लेकर श्रीसनातनको मारनेको तैयार हो गये। श्रीसनातन मनमें बड़े लज्जित हुए। श्रीजगदानन्दने उन्हें देखकर हाण्डीको तो चूल्हेपर रखा और बोले—

**तुमि महाप्रभु हओ पार्षद प्रधान।**
**तोमा सम महाप्रभुर प्रिय नाहि आन॥**
**अन्य संन्यासीर वस्त्र तुमि धर शिरे।**
**कोन् ऐछे हय इहा पारे सहिवारे॥**

श्रीचै० च०—३।१३।५५-५६॥

सनातन ! तुमि श्रीमहाप्रभुके प्रधान पार्षद हो और महाप्रभुको तुम्हारे समान प्रिय और कोई नहीं है। मायावादी संन्यासीका वस्त्र तुमने शिरपर धारण कर रखा है ? ऐसा कौन वैष्णव होगा जो यह सहन कर पायेगा ?

**श्रीसनातनने कहा**—'साधु' पण्डित महाशय।
चैतन्येर तोमासम प्रिय केह नय॥





ऐछे चैतन्यनिष्ठा योग्य तोमाते।
तुमि ना देखाइले इह शिखिव केमते ॥
याहा देखिवारे वस्त्र मस्तके बान्धिल।
सेइ अपूर्व प्रेम प्रत्यक्षे देखिल ॥
रक्तवस्त्र वैष्णवेरे परिते ना जुयाय।
कोन परदेशीके दिव कि काज इहाय ॥

श्रीचै० चरि० ३।१३।५७-६०॥

पण्डित महाशय ! आपकी बात ठीक है। आपके समान श्रीचैतन्यदेवका और कोई प्रिय भक्त नहीं है। ऐसी चैतन्यनिष्ठा आपको सुहाती ही है। आप यदि ऐसा नहीं कहोगे, तो फिर कौन ऐसी शिक्षा देगा ? जिसको देखनेके लिये मैंने यह गेरवा वस्त्र मस्तकपर बांधा था, आपके उस प्रेमको मैंने आज प्रत्यक्ष देख लिया है। **वास्तवमें वैष्णवोंको गेरवा-वस्त्र शोभा नहीं देता।** मैं इसे किसी परदेशीको दे दूंगा, यह मेरे किस काम का ?

इससे स्पष्ट है कि श्रीमन्महाप्रभु तथा श्रीपाद सनातनगोस्वामीने संन्यास ग्रहण करना तो दूर, गेरवे-वस्त्रको धारण करना भी वैष्णवोंके लिए निषिद्ध बतलाया है।

श्रीसार्वभौमभट्टाचार्यके उद्धार करनेके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुने अपने को उपलक्ष्य बनाकर श्रीसार्वभौमके मुखसे संन्यासकी अनावश्यकता तथा अपकारिता विशेषत: भक्ति-धर्मकी विरोधिताका भी निरूपण कराया है, (श्रीचैतन्य भागवत, ३।३।२२–३०)—

**बड़इ कृष्णेर कृपा हैयाछे तोमार।**
**सबे एक खानि करियाछ अन्यभावे ॥**
**परम सुबुद्धि तुमि हइया आपने।**
**तबे तुमि संन्यास करिला कि कारणे ॥**
**बूझ देखि विचारिया कि आछे संन्यासे।**
**प्रथमेइ बद्ध हय अहंकार पाशे ॥**
**दण्ड धरि महाज्ञानी हय आपनारे।**
**काहारेओ बोल हस्त जोड़ नाहि करे ॥**
**यार पदधूलि लैते वेदेर विहित।**
**हेन जन नमस्करे, तभु नहे भीत ॥**

श्रीसार्वभौमने कहा—आपपर श्रीकृष्णकी महान् कृपा हुई है, किन्तु यह एक काम आपने बहुत ही अनुचित किया है कि संन्यास ग्रहण कर लिया है। आप तो अति सबुद्धिमान् हैं, फिर आपने संन्यास किस लिये ग्रहण किया ? थोड़ा विचार करके तो देखो कि संन्यासमें भक्तिके अनुकूल क्या रखा है ? सबसे पहले तो संन्यासी अपनेको दण्डधारी महा-ज्ञानी मानकर

अहंकार के पाशमें बंध जाता है। किसीके साथ वह हाथ जोड़कर—विनीत भावसे नहीं बोलता। (संन्यासी संन्यासीको छोड़कर और किसीको नमस्कार नहीं करते)। फिर वेद जिन गुरुजन ब्राह्मण-वैष्णवादिकी पदधूलि लेनेकी आज्ञा करता है, उनको नमस्कार करना तो दूर, संन्यासी उनसे अपनी वन्दना कराता है। वह ? ऐसा करनेमें उसे मनमें कुछ भय भी नहीं लगता, कितना अपराध करता है वह ?

संन्यासीर धर्म वा बलिव सेहो नहे।
बूझ एई भागवते येनमत कहे॥

'प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ।'
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति।
(भागवते ११।२९।१६, ३।२९।३४)—

ब्राह्मणादि कुक्कुर चण्डाल अन्तकरि।
दण्डवत करिवेक बहुमान्य धरि॥

प्रणाम योग्य व्यक्तिको भी प्रणाम न करना, अथच उससे प्रणाम ग्रहण करना—ऐसा संन्यास-धर्म नहीं कहता। श्रीभागवतमें कहा गया है कि अन्तर्यामि-परमात्मारूपसे सब जीवोंमें भगवान् विराजमान् हैं, ऐसा जानकर कुत्ते, चाण्डाल, गाय एवं गधे पर्यन्त समस्त जीवोंको पृथ्वीपर दण्डवत् पड़कर संन्यासीको प्रणाम करना चाहिये। अतः ब्राह्मणादि, कुत्ते-चाण्डाल पर्यन्त सब जीवोंको अनेक सम्मान देते हुए प्रणाम करना चाहिये—ऐसी आज्ञा है श्रीमद्भागवत-की, किन्तु संन्यास ग्रहण करने वाला इसके विपरीत आचरण करता है।

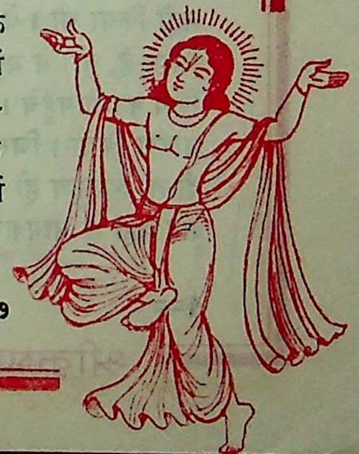
श्रीमन्महाप्रभुने अपने स्वरूपका परिचय देते हुए स्पष्ट कहा है—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो।
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नोवनस्थो यतिर्वा॥ इत्यादि॥

मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र नहीं हूं, मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी भी नहीं हूं।

प्रश्न उठता है—रामानुज एवं मध्ववैष्णव सम्प्रदायें हैं। यदि संन्यास वैष्णवधर्मके प्रतिकूल होता तो उन वैष्णव सम्प्रदायोंमें संन्यास की प्रथा क्यों देखी जाती है ?

इसका उत्तर यह है कि उक्त दोनों वैष्णव सम्प्रदायें होते हुए भी उनका लक्ष्य और साधनपथ गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके लक्ष्य तथा साध्य-साधनसे अलग है। उनका लक्ष्य है मुक्ति, संन्यास वर्णाश्रमधर्मके अन्तर्भुक्त है। निष्काम वर्णाश्रम धर्मपालनसे मुक्ति प्राप्त होती है। अतः उनके साधनमें संन्यास विहित है। किन्तु गौड़ीय वैष्णवोंका एकमात्र लक्ष्य है व्रजमें श्रीकृष्ण-की प्रेमसेवा। उस प्रेम-सेवाके साधनमें मुक्तिकामना, ज्ञान-कर्म-योगादिके अनुष्ठानोंका त्याग ही सर्वप्रथम सोपान है। अतः गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें संन्यास रीतिका अवकाश ही नहीं है।





वेदोंमें ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ—इन तीनों आश्रमोंके बाद चतुर्थ आश्रम संन्यासका वर्णन आता है। और किसी प्रकारके संन्यासकी बात वैदिक शास्त्रमें नहीं है। वेद-विरोधी बुद्धदेवने एक नयी संन्यास रीति चलाई और फिर उनका अनुकरण करते हुए प्रच्छन्न-बौद्ध श्रीपाद शंकराचार्य-ने एक प्रकारके संन्यासका प्रचलन किया। श्रीपाद शंकराचार्यका अपना संन्यास भी वेद विहित चतुर्थ आश्रमका संन्यास नहीं था क्योंकि उन्होंने आठ वर्षमें ही संन्यास ले लिया था। इनकी देखा-देख परवर्ती कई आचार्योंने अपनी सम्प्रदायमें संन्यासको चलाया। वास्तवमें वह संन्यास वेदविहित नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह भी हो सकता है कि लौकिक-लीलामें श्रीमन्महाप्रभुके गुरु थे श्रीपाद ईश्वरपुरी और परमगुरु थे श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी। श्रीमाधवेन्द्रपुरीके दूसरे शिष्य थे श्रीपरमा-नन्दपुरी। वे सब व्रजभावके उपासक थे, मुक्तिकामी न थे, फिर उन्होंने संन्यास क्यों ग्रहण किया था ?

इसका उत्तर यह है कि—श्रीपाद माधवेन्द्रकी 'पुरी' उपाधिसे स्पष्ट है कि उन्होंने श्रीपाद शंकरकी दशनामी संन्यासी-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त 'पुरी' सम्प्रदायमें पहले संन्यास ग्रहण किया था। किन्तु बादमें उन्होंने भक्तिमार्गमें प्रवेश किया। अतः पूर्वाचार्योंके प्रति मर्यादाका प्रदर्शन करते हुए उन्होंने पूर्व आश्रमके नाम तथा उपाधिका परित्याग नहीं किया। जैसे माया-वादी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती श्रीप्रभुकी कृपासे परम-भागवत हो गए किन्तु 'सरस्वती' उपाधि अभी तक उनके नामके साथ लगी हुई है। श्रीईश्वरपुरी तथा श्रीपरमानन्दपुरीने जब श्रीमाध-वेन्द्रपुरीसे मन्त्रदीक्षा ली, उस समय वे कृष्ण-भक्ति पथमें आ चुके थे। किन्तु इन सबने भक्ति-मार्गमें प्रवेश करनेसे पहले ही संन्यास ग्रहण किया था। भक्तिपथ पथिक होकर किसीने संन्यास ग्रहण नहीं किया। संन्यासके बाद भक्तिमार्गका पथ सबके लिये खुला है।

एक और भी प्रश्न उठता है—श्रीमहाप्रभुके अत्यन्त अन्तरंग पार्षद थे श्रीपुरुषोत्तमा-चार्य। उन्होंने संन्यास ग्रहण किया और फिर स्वरूप दामोदर नामसे परिचित हुए। वे आरम्भ-से ही भक्तिमार्गावलम्बी थे एवं नवद्वीपमें रहते समयसे ही श्रीमहाप्रभुके अत्यन्त प्रिय थे। भक्ति पथावलम्वी होकर भी उन्होंने फिर संन्यास क्यों ग्रहण किया ?

उत्तर—श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीने भी भक्तिसाधनके अनुकूल जानकर संन्यासको ग्रहण नहीं किया था। वे गौरगत-प्राण थे। जब उन्होंने सुना कि श्रीमहाप्रभुने संन्यास ग्रहण कर लिया है, तो वे बहुत दुखी हुए। वे भी संसार-सुखोंको लात मारकर संन्यास ग्रहण करनेके लिये काशी पहुँचे। संन्यास तो लिया, किन्तु अधूरा, न तो योगपट लिया और न दण्ड-कमण्डल धारण किया। जिस समय उनके संन्यासी गुरुने उन्हें मायावाद भाष्य पढ़ने-पढ़ानेकी आज्ञा दी तो व्याकुल हो उठे। प्रभुके नीलाचल आनेकी इन्तजार करते रहे। प्रभुके नीलाचल आनेपर झट वहां से भागकर नीलाचलमें प्रभुके चरणोंमें जा पहुंचे। श्रीमहाप्रभुको छोड़कर फिर वह

कहीं नहीं गये। उन्होंने संन्यासधर्मका आचरण नहीं किया। अपने प्राणप्रिय प्रभुकी संन्यास आश्रमोचित कठोरताके अंशको ग्रहण करनेके लिये ही उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। इन्होंने दण्ड-कमण्डल धारण नहीं किया। न संन्यासोचित नाम ग्रहण किया। श्रीपाद स्वरूपदामोदर सिद्धभक्त एवं महाप्रभुके नित्यपार्षद हैं। सिद्ध भक्तोंके सब आचरण अनुसरणीय नहीं होते—यह बात स्मरण रखने योग्य है।

अन्तमें यही प्रश्न रह जाता है कि श्रीमन्महाप्रभु स्वयं आचरण कर जीवोंको भक्तिकी शिक्षा देनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। उनके आचरणका अनुवर्त्तन करना सब साधक-जीवोंका कर्त्तव्य हो जाता है। श्रीमहाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया, साधक-जीव यदि उनका अनुकरण कर संन्यास ग्रहण करें तो क्या दोष है?

उत्तर—श्रीमन्महाप्रभु हैं स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण। उनके उपदेशका अनुसरण करना ही साधक-जीवोंका कर्त्तव्य है। फिर उनका जो आचरण उनके उपदेशके साथ संगतियुक्त है, उसका अनुसरण करना ही कर्त्तव्य है। वे प्रेमावेशमें समुद्रमें कूद पड़े थे—उस आचरणका अनुसरण क्या कोई जीव करेगा? श्रीभगवान् तथा ईश्वरोंके वचनोंका पालन विधेय है न कि उनके सब आचरणोंका अनुसरण करना।

श्रीमहाप्रभुका संन्यास भजनके आदर्श-स्थापनके लिये नहीं था। वस्तुतः गत द्वापर-युगमें जब स्वयं-भगवान् अवतीर्ण हुए थे, तब उन्होंने प्रसगवश श्रीव्यासदेवजीसे कहा था—

**अहमेव क्वचिद् ब्रह्मन् संन्यासाश्रममाश्रितः।**
**हरिभक्तिं ग्राहयामि कलौ पापहतान् नरान्॥**

उपपुराण-वचन

हे व्यासदेव! किसी विशेष कलिमें मैं स्वयं ही संन्यास-आश्रम ग्रहण करके पापहत लोगोंको हरिभक्ति ग्रहण कराता रहता हूं॥

उस द्वापरके परवर्त्ती वर्तमान कलियुगमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण गौरांगकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अतः संन्यास लेकर वे पापहत लोगोंको हरिभक्ति ग्रहण करा रहे हैं—

श्रीमहाप्रभुका संन्यास वास्तवमें कपट-संन्यास है। तत्कालीन अध्यापक, उनके शिष्य अथवा जो बुद्धिजीवी लोग थे, वे श्रीमहाप्रभुके भक्ति आचरण—श्रीनाम-संकीर्त्तनादिकी निन्दा करते थे। इस प्रकार वे भगवान्के प्रति घोर अपराधके भागी बन रहे थे। उनके निस्तारका उपाय सूझा श्रीमहाप्रभुको संन्यास ग्रहण करना। क्योंकि उस समय ही नहीं, अब भी संन्यासीको देखते ही अच्छे-बुरे सब लोग नमस्कार कर देते हैं। भगवान्को नमस्कार करते ही उनके प्रति समस्त अपराधोंका विध्वंस हो जाता है। श्रीमहाप्रभुने यही सोचा कि मेरे संन्यासी-वेशको देखकर वे निन्दक लोग मुझे नमस्कार करेंगे-जिससे उनका निस्तार हो सकेगा—





**अतएव अवश्य आमि संन्यास करिव।**
**संन्यासीर बुद्धये मोरे प्रणत हइवे॥**
**प्रणतिते हवे इहार अपराध क्षय।**
**निर्मल हृदये भक्ति करिव उदय॥**

श्रीचै० च० १।१७।२५८-५९॥

श्रीमन्महाप्रभुका संन्यास उनकी स्वरूपानुबन्धिनी लीला है। अपने भगवत् स्वरूपको गोपन करना उनका स्वभाव है। उनका संन्यास न वेदविहित संन्यास है, न भजन-साधनका प्रतीक।

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुपादके विषयमें भी यही वक्तव्य है कि वे ईश्वर तत्त्व हैं, व्रज-लीलाके श्रीबलदेव हैं। ईश्वरोंका आचरण अनुकरणीय नहीं होता। श्रीनित्यानन्द प्रभुका संन्यास भी उनकी एक लीला है। नवद्वीप पहुँचने पर उन्होंने अपने हाथसे अपना दण्ड-कमण्डल तोड़ डाला और श्रीमहाप्रभुने उसे गंगामें विसर्जन कर दिया। उधर संन्यास ग्रहणके पश्चात् श्रीमहाप्रभु जब नीलाचल जा रहे थे, उनके दण्ड-कमण्डलको श्रीनित्यानन्दप्रभुने तीन टुकड़े कर नदीमें बहा दिया। श्रीमहाप्रभु, श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं श्रीस्वरूपदामोदरने लीलानुरोधसे संन्यास ग्रहण करनेपर भी इनमें किसीने दण्डको धारण नहीं किया। संन्यासधर्मका आचरण नहीं किया।

श्रीमन्महाप्रभुके चरणाश्रित वैष्णवाचार्य गोस्वामियोंके आनुगत्यमें भजन करनेवाले किसी व्यक्तिने भी संन्यास ग्रहण नहीं किया। वस्तुतः गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें संन्यासकी रीति ही नहीं है, वलिक श्रीमहाप्रभु द्वारा उसका निषेध किया गया है।

वैसे भी सर्वसम्प्रदायोंके लिये श्रीब्रह्मवैवर्त्त, कृष्णजन्म-खण्ड (१८५-१८०) में कहा गया है कि—

**अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।**
**देवरेण सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥**

अश्वमेध यज्ञ, गोमेध यज्ञ, संन्यास, मांस द्वारा पितृ-श्राद्ध तथा देवरके द्वारा पुत्रोत्पत्ति—ये पांचों कलियुगमें विवर्जित हैं।

अब तक भी व्रजमण्डलमें जो सब अकिञ्चन गौड़ीय-वैष्णव विराजमान हैं, उनका वेश श्रीश्रीरूपसनातनादिके अनुसरणमें निष्किञ्चनोंका वेश है। संन्यासियोंकी भांति गेरवा वस्त्र कोई भी धारण नहीं करता, जो गौड़ीय वैष्णवाचार्य गोस्वामिवृन्दके आनुगत्यसे वाहर हैं एवं स्वच्छन्दाचारी हैं, गौड़ीयवैष्णव होते हुए भी संन्यास ग्रहण तो क्या, यदि वे गृहस्थ—स्त्री-पुत्र-कलत्रमें रहते हुए भी गेरवे वस्त्र धारण कर संन्यास प्रदर्शित करें तो उनपर किसका, कैसा अंकुश ?



# महाप्रभु श्रीगौरांगका उपदेश-सार

—रसिकाचार्य स्वामी भक्तिदीपकजी महाराज



कलियुग-पावनावतार श्रीमन्महाप्रभु गौरांग आजसे लगभग ५०० वर्ष पहले बंगदेशके नवद्वीप धाममें अवतीर्ण हुए। यों तो बंगदेश हमेशा ही तामसिक, तन्त्रसाधक यानी वामाचार-की भूमि रही है, परन्तु उस समय स्थिति बहुत खराब थी। तदानीन्तन श्रीचैतन्य भागवतके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके अनुसार—उस समय बंगवासी विषहरीकी पूजा तथा मंगल-चण्डीके गानके द्वारा रात्रि-जागरणको बहुत बड़ी साधना जानते थे। कोई विशेष पुण्यवान् ही स्नानके समय गोविन्द, पुण्डरीकाक्ष आदि भगवान्के नामका उच्चारण करते थे। श्रीगीता, श्रीभागवत पढ़ानेवाले पण्डित लोग युगधर्म—नामसंकीर्त्तनको नहीं जानते थे। मत्स्य, मांस, मद्य, मैथुन—पञ्च मकार-साधनकी प्रधानता थी उस समय बंगालमें। धर्मके नामपर निरीह पशुओंका बध करना, मनुष्यकी खोपड़ीमें श्मशान-कालीको भोग लगाना आदि जैसा घोर दुराचार ही बंग और आसाम देशका धर्म बन चुका था उस समय।

ऐसे समयमें श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी करुण-पुकार एवं नाम हुंकारको सुनकर राधा-भाव-द्युतिको अंगीकार करके व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ही बड़भागी शची-जगन्नाथके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। स्वयं भगवान् होकर भी उन्होंने भक्तरूपमें अपनेको प्रकाशित किया। भक्तरूपमें अवतीर्ण होनेपर भी बाल्य-लीलामें उनका ऐश्वर्य कभी-कभी परिस्फुट हो उठता था! पितृ-श्राद्धके बहाने प्रभु गया पधारे। उन्होंने वहां भक्तशिरोमणि श्रीपाद ईश्वरपुरी गोस्वामीसे श्रीकृष्णमन्त्रकी विधिवत् दीक्षा प्राप्त की। उसी समयसे उनके श्रीअंगमें कृष्णप्रेमके अद्भुत सात्त्विक विकार—स्वेद, अश्रु-कम्प-पुलकादि प्रकट होने लगे। श्रीगौरांग जब नवद्वीप लौटे तो पहले वाले श्रीगौरांग न थे, उनमें बाल्य-चापल्य तथा विद्याभिमान न था, वे थे एक महान् प्रेमिक भगवद्-भक्त।

श्रीवास पण्डितादि भक्तमण्डली उन्हें देखकर धन्य हो गई। क्रमशः श्रीगौरांगमें भगवद्-भावका आवेश होने लगा। भक्तमण्डलीके समक्ष भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें उन्होंने आत्म-प्रकाश किया, किन्तु यह भाव सामयिक होता था। यदि उन्हें कोई भगवान् कहता तो श्रीगौरांग विष्णु-विष्णु स्मरणकर ऐसा कहनेसे निषेध करते और ईश्वर तथा जीवके नित्य भेदका प्रतिपादन करते।





चौबीस वर्षके अन्तमें श्रीगौरांगने कोटायामें जाकर श्रीपाद केशवभारतीसे संन्यास ग्रहण किया। संन्यासका नाम हुआ—'श्रीकृष्णचैतन्य'। छय वर्ष तक भागवत-धर्म, भगवन्नाम-प्रेमका दान एवं प्रचार करते हुए तीर्थाटन किया और अवशिष्ट प्रकटकाल उन्होंने श्रीजगन्नाथपुरीमें ही बिताया।

श्रीमन्महाप्रभुका उपदेशामृत उनके श्रीमुखनिसृत श्रीशिक्षाष्टकमें निहित है। इसके अलावा उन्होंने श्रीरूपगोस्वामी तथा श्रीसनातन गोस्वामी-को प्रयाग एवं काशीमें जो शिक्षाएं दी हैं, उनका कविराज श्रीकृष्णदासने अपने 'श्रीचैतन्यचरितामृत' में विस्तरशः उल्लेख किया है। श्रीगौरांगकी शिक्षाओंका कुछ अंश हम यहां उद्धृत करते हैं—

शास्त्रोंमें सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन इन तीन तत्त्वोंका विस्तरशः वर्णन मिलता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही 'सम्बन्ध-तत्त्व' हैं। उनकी प्राप्तिका सर्वोत्तम-सुदृढ़ साधन है, श्रवण-कीर्त्तनादि नवविधा-भक्ति, जो 'अभिधेय तत्त्व' है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-कामना रहित कृष्णप्रेम ही 'प्रयोजन-तत्त्व' है।

भगवान् श्रीकृष्णके अनन्त स्वरूप हैं। वे सर्वावतारी, विभु, अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्य मण्डित हैं। उनकी तीन शक्तियां प्रमुख हैं—चित्शक्ति, जीवशक्ति तथा मायाशक्ति। अनन्त भगवत्स्वरूप तथा उनके धाम-परिकरादि उनकी चित्-शक्तिका विलास हैं। अनन्त जीव श्रीकृष्णकी तटस्था अर्थात् जीव शक्तिके अंश हैं और प्राकृत अनन्त-ब्रह्माण्ड उनकी माया-शक्ति की परिणति हैं।

ज्ञान, योग एवं भक्ति —इन तीन प्रकारके साधनों द्वारा ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् रूपमें वे अद्वय-ज्ञानतत्त्व श्रीकृष्ण ही प्रकाशित होते हैं। जीव भगवान् श्रीकृष्णकी जीव शक्तिका विभिन्नांश है। जीव दो प्रकारके हैं— नित्यमुक्त तथा नित्यबद्ध। नित्यमुक्त जीव नित्य कृष्ण-सेवामें उनके सुख सम्पादनमें लगे रहते हैं। जो अनादिकालसे कृष्ण-बहिर्मुख हैं, वे नित्यबद्ध माने गये हैं। वे संसारमें त्रिविध तापोंसे सन्तप्त होकर जीवन-मरणके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। किसी महत्पुरुषकी कृपासे जब उन्हें सत्-संग प्राप्त होता है और उन सत्पुरुषोंके मुखसे श्रीकृष्णकी नाम-गुण-लीलामयी सरस कथा जब उनके कानोंमें पड़ती है, तब उनमें श्रद्धा, रति और भक्तिका उदय होता है। सत्पुरुषों—विशेषतः गुरुदेवकी कृपासे साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते उनका संसार-बन्धन निवृत्त हो जाता है। उनको फिर माया दुख नहीं देती। श्रीभगवान्के शरणापन्न होनेपर वे जीवको अपने चारु चरणारविन्दकी सेवा प्रदानकर कृतार्थकर देते हैं।

साधन-भक्तिके अनेक अंगोंमें श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तनकी सर्वोत्कृष्ट महिमा निरूपण की है श्रीगौरांग महाप्रभुने। उन्होंने स्पष्ट कहा—

**नवविधा-भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।**

एकमात्र श्रीकृष्णसंकीर्त्तनसे, श्रीकृष्णनामाश्रय ग्रहण करनेसे नवविधा-भक्ति परिपूर्णता लाभ करती है। निरपराध होकर श्रीकृष्णनामका संकीर्त्तन करते हुए तथा मनमें श्रीकृष्णकी नाम-धाम-रूप-गुण-लीलाका सतत स्मरण करते रहनेका चरमतम उपदेशसार है श्रीमन्महाप्रभुका। इसी सन्दर्भमें उन्होंने आज्ञा की है -

जीवे दया, नामेरुचि, वैष्णव सेवन।
इहा हैते धर्म नांहि शुन सनातन॥

जीवोंके प्रति दया, नाममें सदा रुचि तथा कृष्ण-भक्तोंकी यथायोग्य सेवा—इन तीनों धर्मोंसे बढ़कर श्रेष्ठ और कोई साधन—धर्म नहीं है।

## श्रीरूप शिक्षा

- जीवका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, जीव विभु नहीं है। ब्रह्माण्ड अनन्त जीवोंसे भरा हुआ है, जो चौरासीलाख-योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं।
- मनुष्य-जाति सब योनियोंसे अल्प संख्या वाली है। उनमें भी वेदोंमें निष्ठा रखने वाले बहुत कम हैं, नास्तिक एवं वेद-विरोधी बहुत हैं।
- सकामी एवं मुक्ति-सिद्धिकामी पुरुष सबके सब अशान्त हैं, क्योंकि वे अपना सुख अथवा दुख-निवृत्ति चाहते हैं। केवल कृष्णभक्त ही शान्त है, क्योंकि वह एकमात्र कृष्णसुख ही चाहता है।
- कोई भाग्यवान् जीव गुरु-कृष्ण-कृपासे भक्तिलताके बीजको प्राप्त करता है। उस बीजको बोकर श्रवण-कीर्तन जलसे सींचनेसे भक्तिलता अंकुरित होकर प्राकृत-ब्रह्माण्डको भेदकर परव्योमसे ऊपर गोलोक-वृन्दावन तक चली जाती है।
- गोलोकमें कृष्णचरणरूप कल्पतरुका भक्तिलता आश्रयकर बढ़ती है और फिर उसमें प्रेमफल लगता है। जो परम आस्वादनीय है।





# श्रीगौरांग महाप्रभुकी प्रासंगिकता

डॉ० मृत्युञ्जय उपाध्याय



श्रीचैतन्यको गोलोकगमन किए पाँच सौ वर्ष ( लगभग ) बीत गए। देशमें कितना विकास हुआ, परिवर्तनका कितना दौर चला, हमारी मूल्यवत्तामें कितनी तब्दीलियाँ आईं, परन्तु उनका महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है। इसलिए नहीं कि वे एक महान भक्त थे—कृष्णके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था, वरन् इसलिए कि उनकी साधना, उनकी जीवन-दृष्टि, मूल्यबोध आज भी हमें अनुप्राणित किए विना नहीं रहते। कहना नहीं होगा कि उनका नाम-स्मरण ही मनुष्यके हृदय को आप्यायित कर ऊर्ध्वगामी बना देता है। वे महान संत थे। बाबा तुलसीके शब्दोंमें 'जो सहि दुःख पर छिद्र दुरावा, वदनीय जेहि जग जस पावा' के वे साक्षात् अवतार थे। ऐसे महापुरुषकी स्मृतिको काल प्रवाह मिटा नहीं पाता। वह युग-युग तक प्रकाश फैलाता रहता है।

समत्व दृष्टि भक्तिकी चरमावस्थाकी परिणति है। वहां भेद मिट जाता है, पार्थक्य की दीवार टूट जाती है। 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' का भाव व्याप जाता है। ऐसी अवस्थामें निंदा और स्तुतिका अन्तर समाप्त हो जाता है। कहाँ तो लोग निंदा करने वालेके जानी दुश्मन बने रहते हैं, उनके विरोधमें बिष वमन करते रहते हैं और कहाँ महाप्रभु उनके प्रति सम्मान व्यक्त करते नहीं अघाते। उनका विचार है—

**क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।**
**अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति ।।**

—सु० र० भा० ८७।१

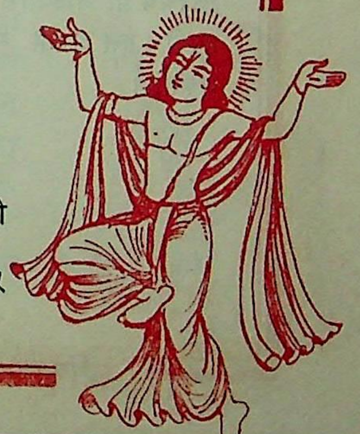
अर्थात् जिनके हाथमें क्षमारूपी शस्त्र है, उनका दुर्जन लोग क्या बिगाड़ सकते हैं। जहाँ तिनके ही न हों, वहाँ यदि अग्नि गिर भी पड़े तो थोड़ी देरमें आप-से-आप ही शांत हो जाएगी। श्रीरामचन्द्र पुरी भगवान् माधवेन्द्र पुरीके शिष्य थे (ये श्रीशंकराचार्यके दस नामी संन्यासियोंमें एक हैं) श्रीरामचन्द्र पुरी शुष्क हृदय और गुरुनिंदक थे। जब इनके गुरु (माधवेन्द्र-पुरी) के महाप्रयाणका समय आया तब वे रोते रोते विकलताके साथ सांस भर-भरकर वेदनाके स्वरमें कहते—'हा नाथ ! तुम्हें कब देख सकूँगा, मथुरामें जाकर आपके दर्शन न कर सका। हे मेरे मनमोहन ! इस अधमको भी उबारो, मैं आपके विरहजन्य दुःखसे जला जा रहा हूँ।'

उनकी यह विकलता और कातरता देखकर श्रीरामचन्द्र पुरीने ज्ञानकी बातें छाँटनी शुरू कर दी, अपने गुरुको उपदेश देने लगे। खैर, उन्होंने ईश्वरपुरीको क्षीण स्वरमें कहकर उसे सामनेसे हटाया। यही श्रीरामचन्द्रपुरी एक दिन श्रीजगदानन्दजीके अतिथि हुए। महाप्रभुके भक्त जगदानन्दने मन्दिरसे प्रसाद लाकर उन्हें भोजन कराया। जिस प्रकार प्रभुको वे प्रेम पूर्वक भिक्षा कराते थे, उसी प्रकार आग्रह करके उन्हें भी खिलाया। उन्होंने भोजन तो डटकर किया, पर उनकी निंदा करने लगे 'सचमुच हमने जो सुना था कि श्रीकृष्ण चैतन्यके सभी भक्त पेटू हैं, यह बात ठीक ही निकली। भला साधु होकर जो इतना अन्न खायेगा, वह भजन पूजन कैसे करेगा?' इस प्रकार जगह-जगह वे निंदा पुराण बाँचने लगे। यह खबर महाप्रभुको मिली तो उन्होंने कोई परवाह ही नहीं की। एक दिन श्रीरामचन्द्रपुरी महाप्रभुके पास पहुँचे। उन्होंने उठकर उन्हें सादर प्रणाम किया और बैठनेके लिए आसन दिया। जिस प्रकार मीठा और विष्ठा पास रहने पर भी मक्खीकी दृष्टि विष्ठा पर ही रहती है. उसी प्रकार छिद्रान्वेषी पुरी की दृष्टि दीवालपर चढ़ती चींटी पर पड़ी और उन्होंने कहा—क्यों जी! हम समझते हैं तुम मीठा बहुत खाते हो, तभी तो तुम्हारे यहाँ इतनी चींटी हैं और फिर भिक्षा, संन्यास, भोजनपर प्रवचन करने लगे। महाप्रभुने उनकी आज्ञाको सिर आँखोंपर लिया और एक चोढि भात पाँच पीठाके व्यंजन भिक्षामें लेने लगे। कभी न उनके प्रति आक्रोश प्रकट किया, न असहिष्णु हुए, न उनके सम्मानमें कोई कमी की—उनका हृदय शारदीय आकाशके समान निरभ्र और निर्मल था—वह निंदा स्तुतिके पार चला गया था। काश, आजकी मानवता महाप्रभुकी इस दृष्टिसे संवलित प्रेरित हो पाती, तो निश्चय ही उसका अलभ कल्याण होता। इसी अर्थमें महाप्रभुकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

आज की क्षिप्रता, आपाधापी, भागदौड़की जिंदगीमें आदमी बराबर तनावोंसे घिरा रहता है। सदा चिंतित, परेशान मानो किसी अजगरने उसे जकड़ लिया है। प्रज्ञा की लौ चंचल है। कँपती हो, संशयके मेघ मनके क्षितिजपर मँडराएँ, तो न आनन्द मिल सकता है और न सुखकी कल्पना की जा सकती है। आनन्द बाह्य नहीं, नितांत आंतरिक है। बाह्य जगत्में जो आनन्द हमें मिलता है, वह अन्तरका ही प्रक्षेपण है। हम इतने बुद्धिवादी हो गए हैं, पग-पगपर तर्कका दामन थामते हैं कि महाप्रभुका दिव्योन्माद पागलका प्रलाप लगेगा, परन्तु यह सच्चाई है कि एक अवस्था भक्तकी ऐसी आती है, जहाँ वह दिव्योन्मादसे भर जाता है। फिर 'दर दीवार दरपन भया जित देखौं तित तोहिं, कंकड़ पत्थर ठीकरी भई आरसी मोहिं' और 'सियाराम मय सब जगजानी' की भाव दशा हो जाती है। महाप्रभुका हृदय उनके प्रेमसे लबालब भरा है, फिर चराचर जगत् में उन्हें उसीकी अनुभूति होती है। वे उसके विरहमें पागल हो उठते हैं—

**सिञ्चन् सिञ्चन् नयनपयसा पाण्डुगण्डस्थलान्तं**
**मुञ्चन् मुञ्चन् प्रति मुहुरहो दीर्घ निःश्वासजातम्।**
**उच्चैः क्रन्दन-करुण करुणोद्गीर्ण हाहेति नादो**
**गौरः कोऽपि व्रजविरहिणी भावमग्नश्चकास्ति॥**

—श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती





अर्थात् श्रीगौरसुन्दर अपने निरन्तरके नयन-जलसे दोनों गंड-स्थलोंको पांडुरंगके बनाते हुए, प्रतिक्षण दीर्घ निःस्वास छोड़ते हुए और करुण स्वरसे हा ! हा ! शब्द करके जोरोंसे रुदन करते हुए किसी व्रज-विरहिणीके भावमें सदा निमग्न रहने लगे।

क्षणभरके लिए भी हम प्रभुका सान्निध्य पाकर इस उन्मादका अनुभव कर सकें, तो जीवन धन्य हो जाए। हमारा हृदय पत्थरका होता जा रहा है। भावनाकी सरिता सूख गई है। आषाढ़का पहला दिन-बादलोंका हुमड़ना-घुमड़ना, वसंतका पूरे तामझामके साथ आना, मदनकी अनंत कथा कहना, कोयलका कूकना, मन्दिरोंमें भक्त टोलोका मस्त होकर नाचना, कल-कलकर बहती नदियाँ, कूजते खग भोली भाली बालिकाके ओठोंकी पवित्र मुसकान, फूलोंका गंधदान हममें भावनाएँ नहीं जगा पाए, हमारे हृदयको आप्यायित नहीं कर सके, तो इस जीवनको प्राणहीन मृत उपवन ही समझना चाहिए। ऐसी अवस्थामें श्रीमहाप्रभुका दिव्योन्माद उनकी साधनाकी चंदनी गंध, उनका पावन चरित्र ही हमारा संबल है। कहना नहीं होगा कि भौतिकताकी पराकाष्ठापर पहुँचा पश्चिमी देश लाख शोध-अनुसंधानके बाद इसी निष्कर्षपर पहुँचा है कि कृष्णका श्रवण कीर्तन ही हमारी शांतिका एकमात्र उपाय है और मन अनायास ही 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' गुन गुनाने लगता है।

जहाँ आदमीका अपने आपसे विश्वास उठता जा रहा है—उसकी हालत 'मुनिया जल बिच मरत पियासा' की हो गई है, संशय असुरक्षाकी सेना उसे तबाहकर रही है, वहाँ शरणागत होनेके अलावा उपाय क्या है ? क्षणभरके लिए ही सही उस विराटके होनेके अहसास-को हम सहला पाएँ, अपने अहंका विसर्जन कर पाएँ, तो हमारे जीवनमें मगल प्रभात फूटेगा, जिसके किरण खर जालमे सारे पापताप कल्मष जल जाएँगे। विराट्की आरती सँवारने वाला विराट् ही हो जाता है, तद्रूप हो जाता है—महाप्रभुका पावन चरित्र इस तथ्यका प्रबल प्रमाण है।

हम आशावादी हैं अमरके समान 'एहि आशा अटक्यो रहे अलि गुलाबके फूल, ह्वै है बहुरि वसंत ऋतु इन डारन वे फूल।' श्रीचैतन्य चरितामृतका पानकर आजकी कुंठित, हताश, हतदर्प, दिशाहारा पीढ़ी नई चेतना और आशासे अनुप्राणित हो अपना लक्ष्य संधानकर सकती है। स्वयं चेतना संपन्न है। चैतन्य हो, विराट् चेतनाका वह सामीप्य अनुभवकर सकती है, बशर्ते वह श्रद्धा, विश्वाससे पूरित हो और यह भाव श्रीमहाप्रभुके चरित्र गायनसे मिलेगा, निश्चय ही आध्यात्म पथमें वह अग्रसर होगा। इसीसे सब लोक सुधरेगा—मानवता विजयिनी होगी। इस अर्थमें महाप्रभु सदा प्रासंगिक हैं—कालकी कठोरता कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगा सकती।



# संकीर्तन-मनोविज्ञान एवं श्रीगौरांगावतार

डॉ० (श्रीमती) प्रेमलता पालीवाल,



चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना।
नाद-ब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे ॥

—'संगीत रत्नाकर'

सर्वात्म प्रकाश, चैतन्य स्वरूप, सर्वव्यापी नाद ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं जो स्वयं आनन्द व अद्वितीय है। इसी नाद-ब्रह्मको 'शब्द-ब्रह्म' से भी सम्बोधित किया गया है। तभी तो महिमामयी श्रुतियोंने 'नाद' को ब्रह्मरूपमें रूपायितकर इसे अशेष ब्रह्माण्डका कारण स्वरूप उद्घोषित किया है। 'अणो अणीयान् महतो महीयान्' रूपी यह सर्वात्मा नाद ब्रह्म ही ब्रह्मांडकी एकमात्र चैतन्य सत्ता है जो जगत्की संरचनामें ब्रह्मा, पोषणार्थ विष्णु एवं विलयन-कालमें शिवरूप धारण कर लेता है—ओंकार इस नाद-ब्रह्मका बीज मंत्र है जो अनाहत रूपमें विश्वके कण-कणमें अनुस्यूत है। दिव्येच्छासे अरूप अगोचर निरंजन नाद आहत ( Struck ) होकर ध्वनिरूपमें स्वरित हो जाता है और ये सुरम्य स्वर लहरियाँ उस दिव्य नादसे सप्त लोकोंको संकीर्त्तित कर देती हैं। 'नाद' का यह सहज विस्फोट ही संकीर्त्तन-मनोविज्ञानकी पृष्ठ-भूमि है।

'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे' उक्तिके अनुसार ब्रह्मांडको सम्पूर्ण प्रक्रिया इस मानव-देहमें सम्प्रवाहित है—ब्रह्मांडमें सातों लोक भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों शक्तियाँ ब्राह्मी, वैष्णवी व माहेश्वरी—इस शरीरमें विद्यमान हैं—पंच प्राणोंसे प्राणान्वित यह मानव देह विभुका मन्दिर है, दिव्यकी पीठिका है जिसमें दश इन्द्रियोंके देवता निज-निज कोषमें बैठकर अपने अपने प्राणाधिपतिको नित्य निरन्तर दीपदान करते रहते हैं और अन्तःकरण सहित मन उस 'प्राण-सखा' की मूक साधना कर मनस्विनी भूमिका पर अर्चन करता है तथा पंच प्राण प्रतिपल प्रकम्पित होकर आरोहावरोहके स्वरोंमें प्रस्फुटित हो इस अंगुष्ठमात्र परम पुरुषकी पाद-वन्दना करते हैं—यही है प्राणका अनवरत आलाप, सहज संकीर्त्तन जो प्राकृत प्राणेन्द्रियोंको अपने स्पर्शसे अप्राकृत बना देता है। यही पिंड-स्थित परमात्मरूपमें अवस्थित ब्रह्म-नाद जब इस मानव-जिह्वापर अनुगुंत्रित होता है तो उसे 'संकीर्त्तन' की संज्ञा दी जाती है। किस दिव्य प्रक्रियासे यह नाद-





स्फोट मानवीय वाणीके द्वारा झंकरित होता है, उसके विषयमें कहा गया है—

**आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः**
**देहस्थं वन्हिमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।**
**ब्रह्मग्रन्थि स्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्व पथेचरन्**
**नाभि हृत्कंठमूर्धास्येष्वाविर्भावयति ध्वनिम् ।।**

वाणीकी विवक्षा होनेपर व्यक्ति-परक चेतना मनको सम्प्रेरित करती है—फिर क्रमशः मन देहमें स्थित प्राण पुंजको, तदुपरान्त प्राण पुंज मुख्य प्राण (Vital body) को आहत करता हुआ सुष्मनासे प्रवाहित हो नाद नाभि हृत् कंठ व सहस्रारको तरंगित करता है । यही संकीर्त्तन शैलीका रहस्य है ।

प्रेमावतार महाप्रभु श्रीगौराङ्गने संकीर्त्तन-महिमाको चहुँ दिक् गुंजरित करने हेतु ही इस धराधामपर अवतार धारणकर हमें कृतकृत्य किया—आपने नाम-संकीर्त्तनको ही जीवोंका परम पुरुषार्थ इंगितकर कलियुग-प्राणियोंको भवताप निवारणार्थ नाम-संकीर्त्तनका अद्भुत मंत्र दिया जिसके आस्वादनका प्रत्येक प्राणीको समान अधिकार है, जो देशकाल-पात्रादि की सीमाको पारकर किसी भी व्यक्तिको किसी भी स्थानपर किसी भी अवस्थामें सहज ही प्राप्त हो सकता है । वस्तुतः सत्य यह है कि संकीर्त्तन लहरीसे संकीर्त्तनकारके मनका अहंकार विलीन हो जाता है जिससे अपने 'इष्ट' की झाँकी प्रतिविम्बित होती है ।

तभी तो महाप्रभु गौराङ्गने अपनी 'नामावतारी' दिव्य शैलीके माध्यमसे उद्घोष किया कि नाम-संकीर्त्तन-यज्ञ मनके शुद्धीकरणका एक सहज उपाय है जिससे भगवत् प्रेमकी अलौकिक अनुभूति प्राप्त होती है । नामको ही महाप्रभुने सर्ववीज स्वरूप घोषितकर सतत् संकीर्त्तनका आदेश दिया है ।

नाम ही भेदभाव रहित सर्वप्रिय है—नाम ही सब उपासनाओंका सार है—यही ऊँच नीच भावनासे परे सर्वोद्धारक मंत्र है जो आज हमें महाप्रभुके प्रसादरूपमें प्राप्त है—श्रीचैतन्याष्टकमें कथित है—

**तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।**
**अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ।।**

इस प्रकार सर्वभाव प्रिय श्रीनामका संकीर्त्तन ही वैष्णवोंका धन है जिसके द्वारा रूप और लीलाका स्फुरण होता है और जिससे धामकी प्राप्ति होती है—इस प्रकार नाम, रूप, लीला, धामके चारों तत्त्व एक कृष्णनाम में ही संनिहित हैं ।

आधुनिक मनोविज्ञानने मन ( Mind ) को मानवीय विचार सरणिका मुकुटमणि कहकर इसके उज्ज्वलीकरणके विषयमें इंगित किया है । जहाँ तक मनुष्यकी सूझ बूझ काम

करती है, वहां तक मानवके मनोराज्यका ही खेल है तभी तो श्रुति 'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' की अभ्यर्थना करती है।

महाप्रभु गौरांगने संकीर्त्तन-प्रणाली द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि संकीर्त्तनके माध्यमसे मन शिव-संकल्प होता है जिसका अनुभव न केवल हिन्दुओं या वैष्णवों या भारतीयोंने किया है वरन् हरिदास, रसखान, रशीद जैसे मुसलमान रसिकवर तथा भारतीयेतर भाइयोंने भी नाम रसमें डूबकर आत्मानन्दानुभूति प्राप्त की है—यह आनन्दानुभूति ही वह आह्लादिनी शक्ति है जिसका आस्वादन संकीर्त्तनके माध्यमसे अक्षरशः प्राप्त होता है। यही है व्यष्टि चेतनाका पुरुषोत्तम चेतनामें निमज्जन। यही है 'बुद्धेः परतः' आत्माकी प्रगाढ़ अनुभूति व उच्चतर मानस लोक प्राप्ति जिसके विषयमें योगी अरविन्द कहते हैं—

'जब साधक साधारण मनोमय लोकसे ऊपर उच्चत्तर व बृहत्तर मनमें पहुँचता है तब आत्मा अपनी समस्त सचेतन विशालताके साथ उसके सामने प्रकट होने लगता है।'

आत्माके इस दिव्य उद्घाटन हेतु अथवा इष्ट साक्षात्कारार्थ संकीर्त्तन एक सहज और सरल उपाय है जिसके द्वारा मन शान्त होकर अपने अन्तःस्थित प्रभुके चरणोंमें न्यौछावर हो जाता है। इसी सन्दर्भमें चैतन्य-सम्प्रदायके संकीर्त्तन-तत्त्वका वैज्ञानिक रहस्य उद्घाटित्त करते हुए महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज लिखते हैं—

'मृदंगकी आवाज पिंगलामें कार्य करती है। करतालकी ध्वनि क्रिया करती है मस्तिष्कमें, दोनोंको एक साथ बजाने पर वे परस्परको निरुद्ध करते हैं और हृदयमें साम्यभाव का उद्‌बोधन करते हैं[1]।'

अब प्रश्न है सङ्कीर्त्तन किसका? स्पष्ट उत्तर है—नामका—नाम-माहात्म्यको दिग्दर्शित करनेकी दिशामें प्रश्नोपनिषद् षोडश कलायुक्त पुरुष के सोलह तत्त्वों—प्राण, बुद्धि, पंचभूत, वायु, ज्योति, अप, पृथिवी, मन, इन्द्रिय, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक व नामका सङ्कीर्त्तन करना है। इस विराट् षोड़श कलायुक्त पुरुषका अन्तिम तत्त्व 'नाम' है जो सङ्कीर्त्तन-यज्ञमें नामकी आहुति देकर परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम नारायणकी अभ्यर्थना करता है। भगवन्नाम-गानकी यह शाश्वत प्रणाली ही 'सङ्कीर्त्तन शैली' की संजीविका है—तभी तो जो तत्त्व गुह्य है, निराकार है, निरूप है, अलक्ष्य और अलभ्य है, वही नामोच्चारण द्वारा सङ्कीर्त्तित होकर सुस्पष्ट, साकार, सरूप, सलक्ष्य व सुलभ्य बनकर सङ्कीर्त्तनकारोंका कंठहार बन जाता है।

तभी तो नामावतार परम प्रेमी महाप्रभु गौराङ्गने 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्' चेतावनी देकर कलियुगमें 'प्रणव की भांति नाम-यज्ञका विस्फोट किया—और नाम-सङ्कीर्त्तन-साधना द्वारा इस भौतिक



१—भारतीय संस्कृति और साधना, भाग २-पृष्ठ १३९



युगमें त्रयताप, मुक्तिका सहज उपाय बताया। आपका आदेश है कि जब भक्त आकंठ हृदय से—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

महामंत्रका कीर्तन करता है तो ह्लादिनी शक्तिकी कृपासे सर्वतोभावेन स्वरूप की दर्शन-क्रिया आरम्भ हो जाती है—फलतः रोम-रोमसे पुलकावलिके साथ नाम-ध्वनि निकलने लगती है और उस नामके उदयसे आत्मवृत्तिमें चिन्मय शुद्ध नाम और नामीका अभिन्न रूप प्रकट हो जाता है—गोस्वामी तुलसीदासने भी इसी प्रकियाके प्रकाशमें लिखा है—

**सुमिरिय नाम रूप बिनु देखें।**
**आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥**

यही नहीं गोस्वामीजीने तो महाप्रभुकी नाम परम्पराको इतना सम्मान दिया कि 'नाम महाराज' को आपने दुभाषिए (Translator) की संज्ञा दे दी क्योंकि निर्गुण और सगुण ब्रह्मके मध्य साक्षित्व स्थापित कर 'नाम' ही उनकी तात्त्विक भाषाको प्रकाशमें लाता है जैसा कि 'मानस' में निगदित है—

**अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।**
**उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥**

श्रीमद्भागवतमें चारों युगोंके चार पृथक्-पृथक् धर्मोंका उल्लेख है। सतयुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ, द्वापरमें सेवा व कलियुगमें कीर्तनकी ही विशेषता है। इस भागवदीय वाणीको श्रीमहाप्रभुजीने मंत्र रूपमें सिद्धकर हमें यह खुला मंत्र दिया जिसके माध्यमसे देश ही नहीं वरन् विदेशमें भी 'नाम-सङ्कीर्त्तन' का जयघोष प्रस्थापित हो चुका है और जिस 'राम-बाण' से सहस्रों भटकती हुई आत्माओंका साधना-मार्ग प्रशस्त हो गया है। कैसा विलक्षण जादू है इस सङ्कीर्त्तन-शैलीका कि जो जीवात्माएं अभी तक 'खाओ पिओ' व्यापारमें उन्मत्त हो जीवन-बोझ ढो रही थीं, वे ही 'नाम-प्रेमी' बनकर अहर्निश 'महामंत्र' उच्चारणमें मदमस्त हो गई हैं—भौतिक मदसे आत्मिक मदकी ओर मोड़ महाप्रभु चैतन्यकी सङ्कीर्त्तन परम्पराकी ही देन है जिसने 'हरे कृष्ण हरे राम' आन्दोलनके द्वारा सम्पूर्ण विश्वकी काया पलट कर दी है—

इस नाम-सङ्कीर्त्तन-यज्ञकी यह विशेषता है कि यह साधन और साध्य दोनों ही है क्योंकि प्रेमका प्रतिफल ही नाम-जप है और सब साधनोंका प्रतिफल है प्रेमा-भक्ति, तभी तो रसिकजन नाम सङ्कीर्त्तनको ही प्रेम-स्वरूप मानते हैं—कृष्णनाम उच्चरित करते ही प्राणोंमें उत्फुल्लता जाग्रत होती है।

श्रीमहाप्रभुजीने भी महामंत्रको उच्चस्वरसे कीर्तन करनेका आदेश दिया जैसा कि श्रीरूप गोस्वामीने श्रीचैतन्यदेवके प्रथमाष्टक 'हरे कृष्णैत्युच्चैः स्फुरित रसनः' इत्यादि वाक्यसे

प्रमाणित किया गया है। ठाकुर हरिदास तीन लाख जपमें से एक लाख जप उच्च स्वरसे करते थे—

ज्ञान-उपासनाके सभी साधनोंमें सङ्कीर्त्तन-साधन श्रेष्ठतम है क्योंकि यह अन्योन्याश्रित न होकर अन्य निरपेक्ष सिद्ध है अर्थात् इसे किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं है। शुच अशुच, मलिन अमलिन सभी परिस्थितियोंमें नाम-सङ्कीर्त्तन ग्राह्य है और इसका सभी साधनोंसे तादात्म्य स्थापित है। नाम-संकीर्त्तनकी सभी साधनोंमें व्याप्ति होनेके कारण आज यही एक मात्र आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक उपाय है जिसके आश्रित होकर हम सहज ही भवसागरसे पार हो सकते हैं—

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाम-संकीर्त्तन ही हमारी नाव है, 'नाम' ही खिवैया और नाम ही लक्ष्य है नाम ही उतरैया। इस नाम-यज्ञमें सकाम भक्तोंकी अभीष्ट प्राप्ति, मुमुक्षुगण की मोक्ष-प्राप्ति, योगियोंकी परमात्म-प्राप्ति व कर्म-ज्ञान-योगियोंकी स्वस्ववांछापूर्त्ति श्रीहरि-नाम-कीर्त्तनसे ही है। प्रभु श्रीकृष्णने अपनेको नाम प्रेमीके हाथ बेचनेकी आदि पुराणमें इस प्रकार प्रतिज्ञा प्रदर्शित की है—

**गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ।**
**तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः॥**

हे अर्जुन ! जो मेरे नामका गान करके रोते हैं, मैं सभी प्रकारसे उनके द्वारा क्रीत वशीभूत हो जाता हूँ और किसी प्रकार नहीं।

तभी तो श्रीचैतन्यदेवने हमें आश्वस्त कर उद्‌बोधन किया है—

**एक कृष्ण नामे करे सर्वपाप नाश।**
**प्रेमेर कारणभक्ति करेन प्रकाश॥**
**प्रेमेर उदय हय प्रेमेर विकार।**
**स्वेद कम्प पुलकाश्रु गद्‌गदाश्रुधार॥**[१]

इस प्रकार सर्वाकर्षण केन्द्र हरिनाम-संकीर्त्तनके प्रवर्त्तक महाप्रभु-गौराङ्गके प्रेमावतारी-आविर्भाव पर हम अपना परम सौभाग्य समझें जिन्होंने अलक्ष, अगोचर अक्षर ब्रह्मको वाणीका सुब्रह्मण्य भूषण बनाकर नाम-सङ्कीर्त्तन-सरिताके प्रवाहसे हमें कृतार्थ किया।

सुधी पाठक ! जरा कल्पना कीजिए अपने समक्ष उस सङ्कीर्त्तन-मंडलीकी जहाँ दो हाथ बाजेपर हैं—नेत्र सहज रूपेण बन्द हैं—मन इन्द्रियों सहित समाहित होकर—

**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।**
**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥**



---

१—चैतन्य चरितामृत १-८-२२



इस महामंत्रकी अजस्त्र गूँजमें डूबा है। इधर मृदंगोंपर अनेक हाथ थिरक रहे हैं—उधर झाँझ, करताल व मंजीरे भी सजीव होकर उस 'चैतन्य-नाम' को तरंगित कर रहे हैं—फलतः समवेत जय-जयकारके मध्य एक ऐसी अनुपम व तीव्र ऊर्जा (Energy) उत्पन्न होती है जो अशेष वायुमंडलको तरंगित कर जाती है और व्यष्टि मन समष्टि मनमें मिलकर तद्रूपता धारण कर भगवदाकार वृत्तिमें बदल जाता है—यही विश्वास, यही सङ्कीर्त्तन-निष्ठा महाप्रभुकी इस युगको अमूल्य देन है।

## नामोच्चारणेच्छा-प्रभाव

हे कृष्ण ! आपके नामोच्चारण करनेकी इच्छा मात्र करनेसे समस्त पाप काँप उठते हैं। संसारासक्ति मोहित होकर भाग जाती है। भयभीत होकर पुण्य-पापका लेखा-जोखा रखने वाले चतुर श्रीचित्रगुप्त उस व्यक्तिका नाम पापियोंकी लिस्टमें से मिटानेके लिये नहरनीकी धार संवारने लगते हैं। सत्यलोकमें उस गोलोक-प्रापक व्यक्तिकी पूजा-आरतीके लिये ब्रह्माजी आनन्दपूर्वक मधुपर्कादि सामग्री जुटानेमें लग जाते हैं। —इससे अधिक आपके नामकी महिमा क्या कहें ?

**वेपन्ते दुरितानि मोहमहिमा संमोहमालम्बते**
**सातंकं नखरंजनीं कलयति श्रीचित्रगुप्तः कृती।**
**सानन्दं मधुपर्कसम्भृतिविधौ वेधाः करोत्युद्यमं**
**वक्तुं नाम्नि तवेश्वाभिलषिते ब्रूमः किमन्यत परम ।।**

—भक्तप्रवर पं० श्रीजगन्नाथजी भक्तमाली

# परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम्

—श्रीगणेशदासजी,

बी. ए., एल-एल. बी., रामायण विशारद

श्रीश्रीचैतन्य-शिक्षाष्टक[1] भक्ति सिद्धान्तोंका अतल रत्नाकर है। दुग्धमें नवनीतकी भांति इसमें साधकोंके लिये ज्ञातव्य समस्त साध्य-साधन तत्त्व अति सूक्ष्म एवं सूत्ररूपमें विद्यमान हैं। वैष्णवोंका तो यह कण्ठहार है। नीलाचलमें श्रीगौरहरि श्रीकृष्णके विषम विरहमें विह्वल होकर प्रायः श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन किया करते थे। एक दिन वे कहने लगे—

हर्षे कहे प्रभु शुन स्वरूप रामराय।
नाम सङ्कीर्तन कलौ परम उपाय ॥ (श्रीचै० च० ३।२०।७)

भावी जीवोंके दुःख-दैन्यका विचार करके श्रीगौरांगके हृदयमें जो विषाद उदय हो आया था, श्रीनाम-सङ्कीर्तनकी महा-महिमाका स्मरण करके वह तिरोहित हो गया। अतः वे हर्षित हो उठे।

शिक्षाष्टक श्रीमद्भागवतके कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥११।५।३२॥ श्लोकका सुगम्भीर भाष्य है। इसमें श्रीनामसङ्कीर्तन-यज्ञका वास्तविक स्वरूप एवं माधुर्यका निर्णय किया गया है। यहाँ श्रीगौरहरिके प्रेमाश्रुओंसे निषिक्त शिक्षाष्टकके प्रथम श्लोकका आस्वादन करते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरव चन्द्रिका वितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम् ॥

—जो चित्तरूप दर्पणको मार्जित करता है, जो संसार-ताप-रूप महा-दावाग्निको निर्वापित करता है, जो मङ्गलरूप कुमुदके विकाशके लिये ज्योत्स्ना वितरित करता है, जो विद्यावधू अर्थात् भक्ति-महारानीका प्राण-



१—श्रीमणीन्द्रनाथ गुह, भक्तिशास्त्री-कृत श्रीचैतन्य शिक्षाष्टकके 'भक्तचित्तप्रसादन' बंगला-भाष्यसे संकलित।



स्वरूप है, जो आनन्द-समुद्रको वर्धित करता है, जिसके प्रतिपदमें पूर्णामृतका आस्वादन है एवं जो समस्त इन्द्रियोंको आनन्दमें सराबोर कर देता है—ऐसा श्रीकृष्ण-नाम सङ्कीर्तन सर्वोत्कर्ष सहित जय-युक्त है ।

इस श्लोकमें भजनके विभिन्न-स्तर परम कौशलसे विन्यस्त हुए हैं । यहाँ हम उनकी आलोचना संक्षेपमें करते हैं—श्रीरूपगोस्वामिपादने अपने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ( १।३।१५-१६ ) ग्रन्थमें भजनके स्तरोंका निर्णय इस प्रकार किया है—

**आदौ श्रद्धा ततोसाधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया ।**
**ततोऽनर्थनिवृत्ति स्यात्ततोनिष्ठा रुचिस्ततः ।।**
**अथासक्तिस्ततो भावस्ततो प्रेमाभ्युदञ्चति ।**
**साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ।।**

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिपादने इस क्रमको और भी विस्तृत करके निम्नलिखित रूपसे सजाया है—

**सतां-कृपा महत्-सेवा श्रद्धा गुरुपादाश्रयः ।**
**भजनेषु स्पृहा भक्तिरनर्थापगमस्ततः ।।**
**निष्ठा रुचिरथासक्ति रतिः प्रेमाथदर्शनम् ।**
**हरेर्माधुर्यानुभव इत्यर्थाः स्युश्चतुर्दशः ।।**

संक्षेपमें भक्तिके तीन विभाग हैं—साधन-भक्ति, भाव-भक्ति एवं प्रेमा-भक्ति[1] । उपर्युक्त 'सतां कृपा' से लेकर 'आसक्ति' पर्यन्त साधन-भक्तिके विभिन्न स्तर हैं । 'रति' और 'भाव भक्ति' एक ही वस्तु है । उसके पश्चात् ही प्रेमाभक्ति आती है । प्रेमाभक्तिके प्राप्त हो जाने पर श्रीभगवान्‌के दर्शन होते हैं और उनके माधुर्यकी अनुभूति होती है ।

अशुद्ध-चित्त-जीवकी जिह्वा, कान आदि इन्द्रियों द्वारा श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिका श्रवण, कीर्तन 'साधन-भक्ति' है । भक्ति कोई 'जन्य' पदार्थ नहीं, नित्य-सिद्ध पदार्थ है । श्रीमद्‌भागवत (११।३।११) के 'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या' सिद्धान्तके अनुसार भक्तिका उदय भक्तिसे ही होता है । नाम-कीर्तन आदि साधन-भक्तिका आचरण करते-करते चित्त जब शुद्ध हो जाता है तो उस शुद्ध चित्तमें भाव-भक्तिका उदय होता है ।[2]

**श्रवणादि क्रिया तार 'स्वरूप लक्षण' ।**
**'तटस्थ' लक्षणे उपजय प्रेमधन ।।**

---

१—सा भक्ति साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता ।। —भ० र० सि० १।२।१

२—कृति साध्या भवेत् साध्य भावा सा साधनाभिधा ।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ।। –भ० र० सि० १।२।२

नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभु नय।
श्रवणादि शुद्ध चित्ते करये उदय॥ (श्रीचै० च० २।२२-५६-५७)

माया-मलिन चित्तमें स्वरूपशक्तिकी वृत्ति भावभक्तिका प्रतिफलित होना सम्भव नहीं है। साधन-भक्ति द्वारा चित्तकी मलिनता अपसारित हो जानेपर भाव-भक्तिका उदय होता है। जैसे सूर्य सर्वत्र अपनी किरणोंको वितरण करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी अपनी ह्लादिनी-शक्तिकी वृत्ति-विशेषको सर्वत्र निक्षिप्त करते रहते हैं।[1] भाव-भक्ति शुद्ध-सत्त्व-का स्वरूप-विशेष है, यह प्रेमरूप सूर्यकी किरणके समान है। रुचि (अर्थात् भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषा, भगवान्के आनुकूल्यकी अभिलाषा एवं भगवान्के सौहार्दकी अभिलाषा) द्वारा चित्त-की स्निग्धता-सम्पादक करने वाली भक्ति-विशेषका नाम भाव है।[2] भाव-भक्तिरूप कुमुद श्रीनामसङ्कीर्तन रूप चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रस्फुटित होकर 'प्रेम' नाम धारण करता है।[3]

**कृष्णरति गाढ़ हइले 'प्रेम' अभिधान।**
**कृष्णभक्ति-रसेर सेइ 'स्थायिभाव' नाम॥** (श्रीचै० च० २।२३।३)

श्रीनामसङ्कीर्तन रूप रस-समुद्रसे निकले शिक्षाष्टकके रत्न समूह साधन क्रमरूप सम्पुटमें सजाकर भक्तोंके समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

**परं विजयते श्रीनामसङ्कीर्तनम्**

- साधन भक्ति
  - चेतोदर्पण-मार्जनम् (अनर्थ-निवृत्ति आरम्भ-) दशा
  - भवमहादावाग्नि-निर्वापणम् (अनर्थ-निवृत्ति प्रायः समाप्त दशा आसक्ति स्तर पर)
- भाव भक्ति
  - श्रेयः-कैरव
- प्रेम भक्ति
  - विद्या-वधू
- दर्शन और
  - माधुर्य-अनुभव•
    - आनन्दाम्बुधि-वर्द्धनम्
- अधिरूढ़ महाभाव
  - प्रतिपदं पूर्णामृता-स्वादनम्
  - सर्वात्म-स्नपनम्

---

१—तस्या ह्लादिन्या एव कापि सर्वानन्दातिशायिनी वृत्तिर्नित्यं भक्तवृन्देष्वेव निक्षिप्यमाना भगवत् प्रीत्याख्यया वर्तते। प्रीति सन्दर्भ, ६५

२—शुद्ध सत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्य-कृदसौ भाव उच्यते॥ भ० र० सि० १।३।१

३—सम्यङ् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥ भ० र० सि० १।४।१

•—यथावस्थित देहमें जीवकी प्राप्तिकी सीमा यहीं तक है, इस कारण उपर्युक्त क्रम यहीं तक दिखाया गया है।





बिना श्रद्धाके किसी भी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये श्रीरूपगोस्वामिपादने श्रद्धाको भजनके सर्वप्रथम स्तरके रूपमें निर्णय किया है।

'श्रद्धा शब्द कहे शास्त्रे सुदृढ़ विश्वास।' किन्तु प्राकृत सत्व-रज-तमगुणवान् जीवमें निर्गुणा मायातीत श्रद्धाका उद्भव अपने-आप नहीं हो सकता। इस कारण श्रद्धासे पूर्व सूक्ष्मरूपसे किसी निर्गुण वस्तुका स्पर्श अवश्य स्वीकार्य है। अतएव श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपादने श्रद्धासे पूर्व निर्गुण-वस्तु साधुकृपा और साधुसेवा— इन दो स्तरोंको स्वीकार किया है। साधुकृपा और साधुसेवारूप स्तर पूर्व-पूर्व जन्मोंमें भी हो सकते हैं और इस जन्ममें भी हो सकते हैं। 'श्रद्धा' प्राप्तिके पश्चात् एक और ऐसे साधुसङ्गका प्रयोजन है जो जीवको भजन-क्रियामें प्रवृत्त करा दे। भजन-क्रियाके ६४ प्रकारके अङ्गोंमें सबसे पहला है श्रीगुरुपादाश्रय। सूक्ष्म रूपसे विचार करनेपर ज्ञात होता है कि श्रीनामसङ्कीर्तन ही भजनका सबसे पहला स्तर है। श्रद्धासे पूर्व जिस साधुसङ्गरूप स्तरको कहा गया है, उस साधुमें तीन वस्तुएँ होती हैं— (१) साधु स्वयं (२, उसके मुखमें श्रीहरिनाम और (३) हृदयमें साक्षात् श्रीहरि। अतएव सबसे पहले स्तर साधुसङ्गसे धर्म-वृक्षका बीज श्रीनाम ही प्राप्त किया जाता है। इसलिए सर्वादिकारण रूपमें, समस्त भजन जगत्के अङ्गीके रूपमें श्रीनामका ही निर्देश करने पर पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित होता है। बीजधर्मी श्रीनामसे ही क्रमशः समस्त साधन-भजनका उद्गम होता है।

'नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।' श्रीचै० च० २।१५।१०८

'सङ्कीर्तन हैते पाप संसार-नाशन। चित्तशुद्धि सर्वभक्ति साधन उद्गम ॥

श्रीचै० च० ३।२०।१०

श्रीगौरहरिके आविर्भावसे धन्यातिधन्य वर्तमान कलियुगमें भजनके आदि स्तरपर जीवोंके भाग्यमें एक महान् सुयोग उपस्थित हुआ है। इस समय अन्य किसी महत्-सङ्गकी भी अपेक्षा नहीं है। श्रीभगवान्ने स्वयं महा-महत् रूपमें आकर इस कलियुगके जीवोंको, समस्त भजनके बीजस्वरूप श्रीनामको और उसे ग्रहण करनेकी योग्यताको भी प्रदान किया है। उनके द्वारा प्रदत्त इस 'नाम' का जो भी कोई आश्रय ग्रहण करेगा, वही श्रद्धादि समस्त भजन-क्रमको पार करता हुआ यथा समय प्रेमकी भूमिकापर पहुँच जायेगा।[1] इस युगकी एक और विशेष बात यह है कि इस युगमें अब और विधि-भक्ति भी नहीं हैं। श्रीनामसङ्कीर्तनके प्रभावसे सभी रागमार्गमें प्रवेश करेंगे एवं व्रजप्रेम प्राप्त करके व्रजकी कुञ्जोंमें श्रीश्रीयुगलसेवा लाभ करेंगे।[2]

१—श्रीचैतन्यमुखोद्गीर्णा हरे कृष्णेति वर्णकाः।
मज्जयन्तो जगत् प्रेम्णि विजयन्तां तदाह्वयाः ॥

२—दास्ये केचन........मय्याबद्ध हृदोऽखिलान्वितनवै वृन्दावनासङ्गिनः ॥

श्रीचै० चन्द्रोदय ना० १०।७४

भजन क्रियाके स्तरपर बीजधर्मी तथा अङ्गी श्रीनामसे जैसे श्रवण स्मरण आदि अन्यान्य भक्ति-अङ्ग प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार श्रीनाम-सङ्कीर्तन भी एक भजन-अङ्गके रूपमें प्रकाशित होता है। जैसे वृक्ष के कारणरूप एक बीजसे कार्यरूप वृक्षमें तना, शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्प, फल आदिके साथ-साथ असंख्य बीज भी प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार श्रीनामसङ्कीर्तन भी एक अंगके रूपमें प्रकाशित होता है। शिक्षाष्टका आरम्भ भजन क्रिया स्तरसे किया गया है। इसीलिये सर्वप्रथम 'चेतोदर्पण मार्जनं—परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्' कहा गया है। यहाँ कार्यरूप असंख्य नामोंकी ही बात कही गयी है। साधन-भक्तिरूपमें प्रकाशित होकर श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन चित्तदर्पणका मार्जनकार्य आरम्भ करते है। चेतोदर्पण मार्जनसे अभिप्रेत है 'अनर्थ-निवृत्ति। यद्यपि अनर्थ-निवृत्तिको भजनके चौथे स्तरके रूपमें निर्दिष्ट किया गया है, तथापि इसी स्तरपर अनर्थोंकी निवृत्ति होती है, किन्तु आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। अनर्थ-निवृत्तिको यह प्रक्रिया निष्ठा, रुचि, आसक्ति स्तरोंकी सीमा पर्यन्त चलती रहती है। और आसक्ति स्तर पर्यन्त ही साधन-भक्ति है। 'हरावासक्त्यवधिका: साधन भक्ति'-(भ० र० सि०, १।३।१, श्रीमुकुन्दगोस्वामी टीका) अतएव भव महादावाग्निका निर्वापणं साधन-भक्तिकी चरम-अवस्था आसक्ति स्तरपर पहुँचनेपर ही होता है। यहां 'भवमहादावाग्नि निर्वापणं' वाक्यके तात्पर्यका विचार करना आवश्यक है। श्रीभक्तिरसामृत सिन्धुकी (१।१।१३) कारिकामें साधन-भक्तिको 'क्लेशघ्नी' कहा गया है। अगली (१।१।१४) कारिकामें 'क्लेशघ्नत्व' वाक्यका अर्थ पाप, पापबीज और अविद्याका नाश कहा गया है। अत: उपर्युक्त कारिकाके अनुसार 'आसक्ति' स्तरपर भवमहादावाग्निका निर्वापण हो जानेसे पाप, पापबीज और अविद्याका नाश हो जाता है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुके उक्त सिद्धान्तको पूर्वापर सङ्गति-पूर्वक समझे बिना आलोच्य श्लोकमें निहित भजन स्तर क्रमको नहीं समझा जा सकता। कारण, कषायहीन निरपराध क्षेत्रमें तो केवल एक कृष्णनामसे प्रेम अर्थात् विद्यावधू स्तरकी प्राप्ति शास्त्र-सम्मत है। अथच, इस श्लोकमें भवमहादावाग्नि निर्वापणके पश्चात् श्रीकृष्णनामसे 'श्रेय: कैरव' अर्थात् रति-स्तरकी ही बात कही गयी है। इसकी मीमांसाका सूत्र हमें श्रीरूपगोस्वामिपादकी श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुकी (२।१।२७६) कारिका एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपादकी श्रीभागवत (१।२।१८) टीका और भक्तिरसामृतसिन्धुकी (१।२।१)टीकामें प्राप्त होता है।[1]

---

१ (क) उत्पन्नरतय: सम्यङ् नैर्विघ्न्यमनुपागता:।
कृष्णसाक्षात्कृतौ योग्या: साधका इति कीर्तिता॥ भ० र० सि० २।१।२७६

(ख) नामापराधलक्षणस्याभद्रस्य कश्चन कश्चन प्रबलो भाग: क्षीणत्वं गच्छन् रतिपर्यन्तोऽपि भवतीति भाव:। भा० १।२।१८ श्रीविश्वनाथ टीका

(ग) साधक भक्तलक्षणस्य मध्ये रत्यपर-पर्यायस्य भावस्याविर्भावेऽपि 'सम्यङ् नैर्विघ्न्यमनुपागता:' इति विशेषेण प्रबलतरस्य कस्यचिन्महदपराधस्य कश्चन भागोऽवशिष्टोऽस्तीति लभ्यते। भ० र० सि० १।२।१ श्रीविश्वनाथ टीका।





भवमहादावाग्निके निर्वापित हो जानेपर भी चित्त पूरी तरहसे अपराध-शून्य, निर्धूतकषाय नहीं हो जाता। जलधारा वर्षणसे दावाग्निके निर्वापित हो जाने पर भी जैसे एक तरफ किसी कौनेमें एकाध अग्निकणिका रह भी सकती है, जो कुछ बिलम्बसे ही पूर्णरूपेण निर्वापित हो पाती है। उसी प्रकार पाप, पापबीज और अविद्याके, अपराधों-सहित क्षय हो जानेपर भी नामापराध-लक्षण कषायका कोई-कोई प्रबल अंश क्षीण होते-होते भी रतिस्तर पर्यन्त रह जाता है एवं इस रति-स्तरमें ही निःशेषरूपसे नष्ट होता है। उसके पश्चात् केवल एक ही कृष्णनामसे श्रीभगवान्‌में प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है—

**एक कृष्णनाम करे सर्वपापनाश; प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश ।।**
**प्रेमेर उदय हय प्रेमेर विकार। स्वेद-कम्प-पुलकादि गद्‌गदाश्रुधार ।।**

श्रीचै० चरि० १।८।२२-२३

आसक्ति स्तरपर भक्तका चित्त इतना परिमार्जित हो जाता है कि उस शुद्धप्राय चित्त-दर्पणमें श्रीभगवान् सहसा प्रतिबिम्बित होकर आलोक्यमान् जैसे प्रतीत होते हैं।[1] इस अवस्थामें श्रीनामामृतके आस्वादनमें आलोड़ित भक्तकी रसना प्रायः निरन्तर स्पन्दित होती रहती है।[2] श्रीकृष्णनामसङ्कीर्तनके इस रूपमें चलते-चलते भक्तके निर्मल चित्त-सरोवरमें धीरे-धीरे एक अपूर्व शोभाशाली 'भावकुमुद'[3] का विकास होता है, जिसे आलोच्य श्लोकमें 'श्रेयः केरव' कहा गया है। जीवके भाग्याकाशमें यह घटना परम-मङ्गलमय है। भावोदयसे बढ़कर और कोई मङ्गल नहीं हो सकता। इसीलिये इसे 'श्रेयः' कहा गया है एवं सौन्दर्य, माधुर्यमें अतुलनीय होनेके कारण इसे कुमुदकी उपमा दी गयी है। यह भाव भगवान्‌की स्वरूपभूता सत्-चित्-आनन्द नामक शक्ति-त्रयकी मुकुलित अवस्था है—इसको ही भक्ति-कल्प-लताका उत्फुल्ल प्रसून कहा गया है।[4]

---

१—आसक्तिरेवान्तःकरण-मुकुरं तथा मार्जयन्ती, यथा तत्र सहसा प्रतिबिम्बितो भगवानालोक्यमान इव भवति। —माधुर्यकादम्बिनी, षष्ठासृत वृष्टि।

२—'लघु लघुच्चारित श्रीकृष्णनामामृतास्वाद प्रतिक्षण लोलित रसनः'—मा० का०, ६।।

३—रति अथवा भावकी भूमिकामें भक्तमें कुछ लक्षण प्रकाशित होते हैं—जैसे, नाम गानमें सदा रुचि, क्षान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता आशा-बन्ध, समुत्कण्ठा, भगवद्‌गुणगानमें आसक्ति, भगवद्-लीला-स्थलोंमें प्रीति। (भ० र० सि० १।३।२५-२६)

४—'य एव हि सच्चिदानन्द इति शक्तित्रिकस्य स्वरूपभूतस्य कन्दली भावं भजते। यमेव खलु भक्तिकल्पवल्ल्या उत्फुल्लं प्रसूनमाचक्षते। श्रीमाधुर्य कादम्बिनी, ७ वृष्टि।

जैसे चन्द्र-ज्योत्स्नारूप सुधा-धाराके स्पर्शसे कुमुद-कलिका प्रस्फुटित हो उठती है, वैसे ही श्रीनामसङ्कीर्तनरूप सुधा-धारासे सिक्त होकर भाव-रूप कुमुद-कलिका (अवशिष्ट कषायोंके अपगम होनेपर) भक्तके सुनिर्मल चित्तमें प्रेम-कुसुम रूपमें शत दलोंमें प्रस्फुटित हो उठती है। इसीको 'विद्या-वधू' कहा गया है। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरायरामानन्दके मुखसे विद्याका यही अर्थ कराया है—'**श्रीकृष्णभक्ति विना विद्या नाहि आर।**' चै० च० २।८।१९९।। पुनः मुण्डक उपनिषद्के[1] श्लोकके अन्तिम चरणमें आये 'विद्वान्, शब्दका 'मुक्त-प्रग्रहा-वृत्ति' से 'प्रेमवान्' अर्थ ही प्राप्त होता है। कारण श्रीगौरांगके दर्शनोंके साथ-साथ प्रेम-प्राप्तिकी बात कहना ही उक्त श्लोकका तात्पर्य है। अतएव आलोच्य श्लोकके 'विद्या वधू, शब्दका अर्थ है 'प्रेमधन'। प्रेमको यहाँ वधू क्यों कहा गया है, प्रेमके स्वरूपकी आलोचना करने पर ही इसे समझा जा सकता है। 'प्रेम' चित्तको अतिशय स्निग्ध करता है, परमानन्द प्रदान करता है और प्रदान करता है श्रीकृष्णके प्रति अतिशय ममत्व-भाव। प्रेम 'वधू' की भांति कोमल स्वभाव, स्निग्ध, सेवा-परायण और मधुर स्वभाव वाला है।[2] प्रेमीकी क्रियाएँ, चेष्टाएँ बुद्धिके लिये अगम्य होती हैं। श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन करते-करते वह कभी हँसता है,[3] कभी रोता है, कभी गाता है और कभी पागलोंकी तरह नाचने लगता है। **यार चित्ते कृष्ण प्रेमा करये उदय। तार वाक्य क्रिया चेष्टा विज्ञे ना बुझय।।**[4] चै० च० २।२३।२१। श्रीनामके माधुर्यास्वादनकी तन्मयतामें प्रेमी बाह्य जगत्को भूलकर निरन्तर श्रीकृष्णसङ्कीर्तन करता रहता है। उसकी नामाकृष्ट रसना श्रीनाम सङ्कीर्तनको कभी नहीं छोड़ सकती।

अपने-आपमें पूर्ण होते हुए भी जैसे पूर्ण चन्द्रके आकर्षणसे समुद्र वृद्धिको प्राप्त होता है, वैसे ही प्रेमनिधि पूर्ण होते हुए भी श्रीनामसङ्कीर्तन-रूप सुधावर्षणसे उच्छलित, उद्वेलित हो उठता है। श्लोक-स्थित '**आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं**' वाक्य द्वारा यही कहा गया है। इस अवस्थामें श्रीनामका माधुर्य-अनुभव पूर्णताको प्राप्त हो जाता है। श्रीकृष्णनामके अक्षरोंसे जैसे माधुर्य

---

१—यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।

मुण्डक श्रुति, ३।१।३।।

२—सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते।। भ० र० सि० १।४।१।।

३—धन्यस्यायं नवप्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि।
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा।। वही, १।४।१७।।

४—एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः।।

(भा० ११।२।४०)





निर्झरित होने लगता है—**'यः कृष्णनामाक्षर-माधुरी-झरैरास्वाद्यते'**—श्री-गोपालचम्पू-पू०,१५।१०४॥ लगता है जैसे श्रीनामका प्रत्येक अक्षर किसी अद्भुत अमृत द्वारा निर्मित है—**'याले कृष्णेति शब्द श्रुति-पथममृतादप्यति स्वादयुक्ते'** —श्रीगोपालचम्पू-पू० १५-१०५॥ आस्वादनकी मत्ततामें प्रेमीका देह, मन, इन्द्रियां सब आनन्दमें सराबोर हो जाते हैं। श्लोकके **'प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं'** एवं **'सर्वात्मस्नपनं'** वाक्योंमें यही कहा गया है। भजनके इस स्तरपर प्रेमी भक्त श्रीनामका माधुर्य-आस्वादन करके कैसी आनन्द-चमत्कारिताका अनुभव करते हैं, श्रीगौरहरिके अन्तरङ्ग-पार्षद गोस्वामिगणोंने उसका परम सरस रूपमें वर्णन किया है।

श्रीसनातनगोस्वामिपादके श्रीश्रीबृहद्भागवतामृतमें श्रीभगवान्के पार्षद कहते हैं—

**श्रीकृष्णनामामृतमात्महृद्यं प्रेम्णा समास्वादनभङ्गिपूर्वम्।**
**यत् सेव्यते जिह्विकयाऽविरामं तस्याऽतुलं जल्पतु को महत्वम्॥**

(बृ० भा० २।३।१५६)

हे गोपकुमार! अपनेको प्रिय लगने वाले श्रीकृष्णके अमृतनामोंका रसना द्वारा, प्रेम सहित, रस-वैचित्री आस्वादन पूर्वक जो अविराम सेवन है, ऐसे नामसङ्कीर्तनके निरुपम महत्वका वर्णन कौन कर सकता है?

श्रीरूपगोस्वामिपादके श्रीविदग्धमाधवनाटकमें देवी श्रीपौर्णमासी कहती हैं—

**तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीं लब्धये**
**कर्ण क्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।**
**चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं**
**नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥**

(विदग्ध माधव १।३३)

—दो अक्षरों वाला 'कृष्ण' नाम जब मुखमें नृत्य करना आरम्भ करता है तो तुण्डावली (अनेक मुख) प्राप्त करनेके लिये रति (तीव्र वासना) का विस्तार करता है। कर्ण प्रदेशमें अंकुरित होकर अर्बुद-अर्बुद कर्णेन्द्रिय प्राप्तिकी स्पृहा जागृत करता है। चित्त-प्राङ्गणमें प्रवेश करके समस्त इन्द्रियोंके व्यापारको स्थगित कर देता है। न जाने कितने सुधासमूह द्वारा 'कृष्ण' नामके दो वर्ण उदित हुए हैं।

श्रीजीवगोस्वामिपादके श्रीश्रीगोपालचम्पू ग्रन्थमें श्रीराधाकी स्वगत उक्ति है—

**श्रव्याणां स्वादसारं श्रुतिरनुमनुते यत्तु यद्वा सुधाब्धे-**
**र्मन्थाललब्धं रसज्ञा सुखहृदिजसुखं चित्तवृत्तिर्यदेव।**

किन्तत् कृष्णेति वर्णद्वयमथवा कृष्णवर्णद्युतिना-
माजीव्यः कोऽपि शश्वत् स्फुरति नवयुवेत्यूहया मोहितास्मि ॥

(श्रीगो० च०-पू० १५।१०६)

—जो सुखप्रद शब्दसमूहका आस्वादन-सार है, जिसे सुननेके लिये कर्ण उत्कण्ठित हैं, अथवा सुधा-सिन्धु मन्थनसे लब्ध जिस वस्तुकी प्रार्थना जिह्वा करती है, अथवा चित्तवृत्ति हर्षयुक्त-हृदयमें उत्पन्न होनेवाले जिस सुखकी प्रार्थना करती है, वह क्या 'कृष्ण'—ये वर्णद्वय हैं अथवा कृष्णवर्णके ज्योतिसमूहका आश्रय कोई नवकिशोर हैं, बारम्बार किसकी स्फूर्ति हो रही है—यह वितर्क करते-करते मैं विमोहित हो रही हूँ ॥

श्रीपादरघुनाथदास गोस्वामी अपनी स्तवावलीमें कहते हैं—

**राधेति नाम नवसुन्दरसीधुमुग्धं, कृष्णेति नाम मधुराद्भुतगाढ़दुग्धम् ।**
**सर्वक्षणं सुरभिरागहिमेन रम्यं, कृत्वा तदेव पिब मे रसने क्षुधार्त्ते ॥**

—'राधा' यह नाम अभिनव सुन्दर अमृतकी भांति मनोहर है एवं 'कृष्ण' यह नाम गाढ़े दूध (अधौटा) की भांति अतिशय स्वादिष्ट है। हे मेरी क्षुधार्त रसने ! तुम इन दोनोंको सुरभित अनुरागरूप कर्पूर द्वारा रमणीय करके सर्वदा पान करो।

महाकवि कर्णपूर गोस्वामिपादके श्रीश्रीमदानन्द-वृन्दावनचम्पू ग्रन्थमें श्रीकृष्णके प्रति पूर्वरागवती गोपियां परस्पर सरस अनुलाप कर रही हैं—

**व्रीडां विलोडयति लुञ्चति धैर्यमार्यभीतिं भिनत्ति परिलुम्पति चित्तवृत्तिम् ।**
**नामैव यस्य कलितं श्रवणोपकण्ठे दृष्टः स किं न कुरुतां सखि ! मद्विधानाम् ॥**

(आ० वृ० च० ८।३८)

किन्तु हे सखि ! जिसका नाम ही हम जैसी अनुरागिणियोंके कानमें प्रवेश करने मात्रसे हमारी लज्जाका हरण कर लेता है, धैर्यको नोच लेता है, आर्यपथसे स्खलित होनेके भयको छिन्न-भिन्नकर देता है एवं चित्तको आनन्दमें सराबोर कर देता है; तब ऐसी स्थितिमें स्वयं दृष्टिगोचर होकर वह हमारी क्या दशा नहीं कर डालेगा ?

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामिपाद अपने स्तोत्र-काव्य श्रीश्री-राधारससुधानिधिमें श्रीकृष्ण-विरह-ज्वालाकी शान्तिके निमित्त श्रीकृष्णके सरस-मधुर नामोंका कीर्तन करती श्रीराधाकी छविका चित्रण कर रहे हैं—



**श्याम-श्यामेत्यनुपमरसापूर्णवर्णैर्जपन्ती,**
**स्थित्वा स्थित्वा मधुर-मधुरोत्तारमुच्चारयन्ती ।**



**मुक्तास्थूलान्नयनगलितानश्रुबिन्दून्वहन्ती,**
**हृष्यद्रोमा प्रतिपद-चमत्कुर्वती पातु राधा ॥**

—श्रीराधारससुधानिधि—२१८

—जो 'श्याम-श्याम' इन अनुपम रस पूर्ण वर्णोंका बार-बार जप कर रही हैं, बीच-बीचमें मधुरातिमधुर स्वरमें श्रीश्यामनामका उच्च-कीर्तन कर रही हैं, जो स्थूल मुक्तावलीकी भांति अपने नयनोंसे गलित अश्रुबिन्दु बहा रही हैं, जो आनन्दमें पुलकित (रोमाञ्चित) एवं प्रत्येक पदपर चमत्कृत हो रही हैं—वे श्रीराधा हमारी रक्षा करें।

श्रीनामका जितना आस्वादन किया जाता है, उसे आस्वादन करनेकी लालसा और बढ़ती जाती है। आस्वादनकी उत्कण्ठा इतनी प्रबल हो उठती है कि एक रसना अपर्याप्त प्रतीत होने लगती है। विवश होकर कीर्तनकारी भगवान्‌से अनेक रसनाओंकी याचना करने लगता है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपाद स्तवामृतलहरीमें नाम-आस्वादनकी उत्कट लालसासे अभिभूत होकर प्रार्थना कर रहे हैं—

**आत्मास्तु नित्यं शतदेहवर्ती, देहस्तु नाथास्तु सहस्रवक्त्रः।**
**वक्त्रं सदा राजतु लक्षजिह्वं, गृहणातु जिह्वा तव नामकोटिम् ॥**

(अनुरागवल्ली—३)

—हे नाथ ! मेरा जीवात्मा सैंकड़ों देहवाला हो जाय एवं मेरा प्रत्येक देह सहस्र मुखों वाला हो जाय, तथा प्रत्येक मुख लाखों जिह्वाओंसे शोभा प्राप्त करे, और मेरी प्रत्येक जिह्वा आपके करोड़ों नामोंका रस आस्वादन करती रहे। आपके चरणोंमें मेरी बस यही प्रार्थना है।

**ऐसे 'श्रीकृष्णनाम संकीर्त्तन' की जय हो।**

---

## श्रीकृष्णनाम महामन्त्र

**कृष्णनाम महामन्त्रेर एइत स्वभाव।**
**जेइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव ॥**

श्रीचै० चरि० १।७।८०॥

---

# महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव

—सप्ताचार्य डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी,
पी-एच. डी., डी. लिट्.

※

श्रीचैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्तमें भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण आराध्य हैं, वृन्दावन उनका धाम है, जो व्रजांगनावर्गके द्वारा आविष्कृत हुई है, वही सुन्दर उपासना है, श्रीमद्-भागवत विशुद्ध प्रमाण ग्रन्थ है, तथा प्रेमाभक्ति परम पुरुषार्थ है।

**आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं**
**रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।**
**श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्**
**श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥**

महाप्रभु चैतन्य गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं, साथ ही गौड़ीय वैष्णवोंके मतानुसार भगवान् श्रीराधा-कृष्णके साक्षात् स्वरूप हैं। आपका आविर्भाव १४०७ शाके फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको और तिरोभाव १४५५ शाकेमें ४८ वर्ष की वयसमें हुआ था। आपके पिताजीका नाम श्रीजगन्नाथ मिश्र और माताका नाम शचीदेवी था। आपकी जन्मभूमि नवद्वीप (बंगाल) है। आपने श्रीकृष्ण सङ्कीर्तनको सर्वाधिक महत्व दिया है। कृष्णनाम आपकी दृष्टिमें चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जित करने वाला है, संसार रूपी दावानलको बुझा देनेवाला है, कल्याण रूप कुमुदको विकसित करने वाली ज्योत्स्नाको फैलाने वाला है, परा विद्यारूपी वधूका जीवनरूप, आनन्द समुद्रको बढ़ाने वाला, पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वादन प्रदान करने वाला, सम्पूर्ण आत्माको आनन्दसे सराबोर कर देने वाला है—

**चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं**
**श्रेयः कैरव चन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।**
**आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं**
**सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥**[1]

जन्म-जन्मान्तरमें श्रीचैतन्य अकारण भक्ति चाहते हैं। धन-जन कामिनी, काव्य-पाण्डित्यकी उन्हें कोई कामना नहीं है।



---

१—कल्याण पृ० १६३ संतवाणी अंक, शिक्षाष्टक—१ श्लोक॥



'न धनं न जनं न सुन्दरीं' कवितां वा जगदीश कामये ।।
श्रीगोविन्दके विरहमें, एक एक निमेष युगके समान बिताने वाले सन्तोंमें अग्रणी हैं श्रीचैतन्य, विरहमें उनके नेत्रोंसे वर्षाकी धाराके समान अश्रु वर्षा हो रही है, सारा जगत् शून्य जान पड़ता है उन्हें—

**युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्**
**शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ।।**

शिक्षाष्टक ।।७।।

श्रीगोपीजनवल्लभके स्मरणसे उनके दोनों नेत्र सजल होते, वाग् गद्गद हो जाती, शरीर पुलकायमान हो जाता था—

**नयनं गलदश्रुधारयावदनं गद्गद रुद्धया गिरा**
**पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ।।**

शिक्षाष्टक ।।६।।

ऐसे भाव व्यक्त वही कर सकता है जो तृण की अपेक्षा भी अपनेको नीच, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु, अमानी होकर दूसरोंको मान प्रदान करे और उनकी लीलाका गान करे—

**तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।**
**अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ।।**

शिक्षाष्टक ।।३।।

नामकी महिमा—अनेक पुराणोंमें है पर पद्मपुराण में तो ऐसी शब्दावली है जिससे श्रीचैतन्यदेवका भी स्मरण आ जाता है—

**नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः**
**पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः ।।**

ऋग्वेद १।५।६।३।—ओं आऽस्य जानन्तो नाम ।। मन्त्रमें नाम माहात्म्य है ।

श्रीभागवत १२।३।५२—द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।

वृहन्नारदीयमें—हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।।

के द्वारा नाम महिमाका स्पष्ट उल्लेख है तो श्रीमहाप्रभुजी भी कहते हैं—

कुबुद्धि छाड़िया कर श्रवण कीर्तन ।
अचिरात् पाबे तबे कृष्ण प्रेमधन ।।

× × ×

कृष्णभजने नाहि जाति कुलादि विचार ॥

दीनेर अधिक दया करे भगवान् । कुलीन पण्डित धनीर बड़ अभिमान ॥

वे तर्क छोड़कर अभिमान छोड़कर कृष्णनाममें सबका अधिकार स्वीकार करते हैं और इसलिये इनके द्वार विश्वमानवके लिये खुल गये ।

महाप्रभु चैतन्यने भगवान्‌को वश करनेके लिये एक मात्र साधन 'भक्ति' को ही माना है । भक्तिके दो भेद हैं—विधि भक्ति, रुचि भक्ति । रुचि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । इसमें भक्त भगवान्‌को अपना प्रियतम मानता है । श्रीचैतन्य महाप्रभुने भारत राष्ट्रको श्रीकृष्णके प्रेम-सागरमें मग्न कर दिया था । भावात्मक कीर्तनसे जनताके हृदयको जैसा चैतन्य महाप्रभुने आकृष्ट किया वैसा किसी अन्य आचार्यने नहीं किया ।

**दर्शन**—श्रीचैतन्य इस जगत्‌को सत्य मानते हैं । प्रलय कालमें भी जगत् सूक्ष्म रूपमें रहता है और भगवान्‌में ऐसे लीन होता है जैसे पक्षी रात्रिके समय बनमें लीन रहते हैं । अनन्त शक्तिमान् भगवान्‌के कारण न तो यह जगत् उनसे नितान्त भिन्न है, और न अभिन्न ।

**ब्रह्म**—उनकी दृष्टिमें ब्रह्म-सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित है । ब्रह्म अखण्ड है सत्-चित्-आनन्दात्मक है । भगवान्‌की तीन शक्तियां हैं—स्वरूप शक्ति, तटस्था शक्ति, माया शक्ति । स्वरूपशक्तिके त न रूप हैं—सन्धिनी-संवित् और ह्लादिनी । उन तीनों शक्तियोंका समन्वय 'परा शक्ति' कहलाता है । भगवान् स्वरूप शक्तिसे जगत्‌के निमित्त कारण हैं, माया-जीव शक्तिसे उपादान कारण हैं केवल निमित्त न होकर अभिन्न-निमित्तोपादान कारण हैं । धर्म वृद्धिके लिये भक्तोंकी अभिरुचि तृप्त करनेके लिये वे भिन्न-भिन्न अवतारोंको धारण करते हैं । श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं—'एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इस भागवत वाक्यके वे पोषक हैं ।

**वैशिष्ट्य**—श्रीमहाप्रभुकी लीलामें सभी भाव परम उत्कर्षको प्राप्त हुए है[1] । उनके बाल्यावस्थाका औद्धत्य, पठनकालमें विद्यानुराग और अल्पावस्थामें अपूर्व पाण्डित्य, गया यात्राके उपरान्तकी दीनता, विवाहके कुछ काल बाद ही त्रिभुवन सुन्दरी नव-विवाहिता भार्या-श्रीमती विष्णुप्रियाका त्याग और संन्यास ग्रहण, संन्यास आश्रमके नियमोंका कठोरतासे पालन, गम्भीरामें विरह भावकी लीला आदि सभीमें चरमोत्कर्ष है । ऐसी ही कठोरतासे उन्होंने अपने अनन्य प्रियभक्त छोटे हरिदासजीका परम वैष्णवी वृद्धा माधवीदासीसे तण्डुल भिक्षा मांगकर लाने-पर प्रकृतिसे संभाषण करनेके अपराधपर सर्वदाके लिए त्याग दिया ।

श्रीचैतन्यकी भेंट श्रीवल्लभाचार्यजीसे अड़ैल (प्रयाग) में हुई थी। महाप्रभुका स्वरूप श्रीमदाचार्यने साक्षात् किया था और सत्संग किया था। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी देन आचन्द्र-तारक जगतीतलपर छाई रहेगी। ●



---

१ शिक्षाष्टक-श्रीकृष्णजन्मस्थान, मथुरा ॥



# महाप्रभु-श्रीगौरांगका नाम-प्रेम-वितरण

—श्रीरामनन्दन प्रसाद (श्रीसन्तजी महाराज)



करीव चार सौ वर्ष पूर्व बंगाल नवद्वीप ग्राममें फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाके दिन श्री-जगन्नाथ मिश्रजीकी धर्मपत्नी श्रीशचीदेवीसे पुत्ररूपमें प्रेमावतार श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ। माता-पिताने उनके बचपनका नाम 'निमाई' रखा। निमाई इतने सुन्दर और गोरे थे कि लोग उन्हें 'गौरांग' कहते थे। वे बचपनमें बहुत चंचल थे। उनकी बुद्धि अद्भुत थी। थोड़े ही दिनोंमें वे नवद्वीपके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाने लगे।

उनकी पहली पत्नी श्रीलक्ष्मीदेवी जब परलोक चली गई, तब उन्होंने विष्णुप्रियाका पाणिग्रहण किया। पिताजीके परलोकवासी होनेपर श्राद्धके लिए गया गये। वहाँसे लौटते ही वे बिल्कुल बदल गये। उनपर श्रीकृष्ण-प्रेमका अलौकिक रंग चढ़ गया। कीर्तन करते-करते मूर्च्छित हो जाना तो नित्य की साधारण बात हो गई। जिसे वे छू देते, वह श्रीकृष्णप्रेममें पागल होकर नाचने लगता और कीर्तन करने लगता।

चौबीस वर्षकी अवस्थामें ही उन्होंने श्रीकेशव भारतीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली। संन्यासका नाम उनका 'श्रीकृष्णचैतन्य' हुआ। इसीसे भक्त लोग उन्हें 'श्रीचैतन्य महाप्रभु' कहते हैं। वे भगवत्प्रेमकी साक्षात् मूर्ति थे। उनके दर्शनसे लोगोंमें श्रीकृष्णके प्रेमका संचार होता था। प्रेमकी सभी अवस्थाएँ, सभी दिव्य-भाव उनमें समय-समयपर प्रकट होते थे। 'नारद-पंचरात्र' में यह कहा गया है कि इष्टदेवका आवेश अपने भक्तमें हुआ करता है, इसी-लिए श्रीवल्लभाचार्यने 'भागवत प्रकरण' तथा 'सुबोधिनी टीका' में श्रीकृष्णका लीलावेशावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुको बताया है। 'वेदान्तरत्न मंजूषा' में श्रीपुरुषोत्तमाचार्यने भी श्रीचैतन्य-महाप्रभुको लीलावेशावतार कहा है।

अन्य अवतारोंमें दुष्ट-दमनकी बात बताई जाती है, किन्तु श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अव-तारकी यह विलक्षण विशेषता है कि वे दुष्टोंको प्रभुप्रेमरस देकर दिव्य भागवतजन बना देते हैं, जैसे जगाई-माधाईकी चर्चा आगे करेंगे।

श्रीप्रकाशानन्दजी सरस्वती, सार्वभौम वासुदेव भट्टाचार्य, एवं राजा प्रतापरुद्र आदि अनेक महानुभावोंने श्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंकी उपासना की। उनके अनुगामी समकालीन महापुरुषोंमें श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीहरिदासजी, श्रीरघुनाथदासजी,

श्रीरायरामानन्द तथा श्रीश्रीरूप-सनातन-जीव गोस्वामी प्रभृति प्रख्यात हैं। श्रीश्रीरूप-सनातन एवं श्रीजीवगोस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें महाप्रभुके द्वारा निर्दिष्ट भक्ति-सिद्धान्तोंकी व्याख्या की। 'लघुभागवतामृत' में भी श्रीमहाप्रभुके अवतारकी चर्चा है।

अपूर्व भगवन्नाम प्रचारक प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुने भगवान्‌के प्रेम सम्पादनका सर्वोत्तम साधन 'श्रीहरिनाम' बताया। 'शिक्षाष्टक में उन्होंने 'कीर्तनीयः सदा हरिः' कहा। उनकी मुख्य शिक्षा है कि तृणकी अपेक्षा अधिक नीच अपनेको मानकर और वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु बनकर, स्वयं अमानी रहकर और दूसरोंको सम्मान देकर श्रीहरिनामका कीर्तन करना चाहिए। श्रीहरिनाम सदा लेना, हर समय लेना, सर्वदा सर्वत्र नाम-कीर्त्तन करना भगवान्‌की सर्वोत्कृष्ट भक्ति है। प्रभुनाम लेनेमें तथा गानेमें देश, कालादिका कोई भी नियम नहीं है। यहाँ तक कि खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते और शुद्ध-अशुद्ध अवस्थामें भी जैसे भी हो श्रीहरिनामका कीर्त्तन करना विधिवत् ही समझा जाता है।

सच्चा नामकीर्त्तन तो वही है जिसमें कीर्त्तन करने वाला भगवत्‌प्रेम भक्तिमें पागल होकर कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी निर्लज्ज होकर जोरोंसे प्रभुका नाम लेता है और कभी नाचता है, जिसका वर्णन श्रीमद्‌भागवत (११।१४।२४) में भगवान् श्रीकृष्णने श्रीउद्धवजी को सुनाया है:—

'वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुका अवतार ही नामकीर्त्तनका प्रचार करनेके लिए हुआ। स्वयं लोगोंके घरोंपर जा-जाकर और अपने भागवतजनोंको भेज-भेजकर श्रीहरिनाम-प्रचारका कार्य किया। उनके प्रचारके प्रभावसे यत्र-तत्र-सर्वत्र आबाल-वृद्ध-नर-नारी सभी लोग नाम-ध्वनिमें मग्न दिखाई देने लगे।

महाप्रभुकी लीला अगाध तथा अवगाह्य है। इस छोटेसे लेखमें उनकी अधिक लीलाओंका वर्णन करना संभव नहीं है। जगाई-माधाईके उद्धारकी लीला संक्षेपमें कहना चाहूँगा।

जगाई और माधाई जातिके तो ब्राह्मण थे। परन्तु अपने अत्याचारसे हिरण्यकशिपु, रावण और कंसको भी मात कर रहे थे। जगत् उनको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखता था। जिधर इन नरराक्षसोंका पड़ाव था, उधरसे ही श्रीनित्यानन्दप्रभु निकल रहे थे। उन दुष्टोंने श्रीनित्यानन्दप्रभुको टोका—तुम कौन हो? कहाँ जा रहे हो? उन्होंने बड़े मधुर स्वरसे कहा—भैया! मुझे पूछकर क्या करोगे, मैं तो अवधूत हूँ। तुम लोग तो 'कहो कृष्ण, भजो कृष्ण, लहो कृष्णनाम। कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण धन प्राण॥' यह सुनकर माधाई चिढ़ गया और उस दुष्टने पासमें पड़े हुए एक घड़ेके टुकड़ेको





उठाकर श्रीनित्यानन्दप्रभुको मारा। चोट सिरमें लगी। मस्तकसे रक्तकी धार बह चली। सारा शरीर खूनमें भीग गया। इतने पर भी वे उन दुष्टोंपर दया करके रो-रोकर प्रभुसे प्रार्थना करने लगे– दयामय प्रभो! अब तो इनका उद्धार करो। मुझे अपनी चोटकी किंचित् परवाह नहीं है, इन ब्राह्मण-कुमारोंकी दुर्दशा देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। नाथ! शीघ्र इनका कल्याण करो। उनकी इस करुण प्रार्थनाको सुनकर माधाई चिढ़कर पुनः मारने ही वाला था कि जगाईने उसे रोक दिया।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी तत्काल घटना स्थलपर पहुँच गए। महाप्रभु-की अनुपम दया और प्रभुता देखकर दोनों भाई महाप्रभुके शिष्य हो गए। वे कीर्त्तन करने लगे। इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास आदिने भीषण प्रहार सहन करते हुए भी लोगोंमें श्रीहरिनामप्रेमका प्रचार किया।

श्रीचैतन्य भागवत आदि खंड ग्यारहवें अध्यायमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहाः—

'उच्च करि लइले शतगुण पुण्य हय।
दोष ते ना कहे शास्त्रे गुण से वर्णय॥
पशु पक्षी कीट आदि बलिते ना पारे।
सुनिले से हरिनाम तारा सब तरे॥
जपिले से श्रीकृष्ण नाम आपने से तरे।
उच्च संकीर्तने पर उपकार करे॥
अतएव उच्च करि कीर्तन करिले।
शतगुण फल हय सर्वशास्त्रे बले॥'

इस प्रकार श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीहरिनाम कीर्त्तन उच्च स्वरसे करनेके लिए कहा है। क्योंकि जप जितना गुप्त होता है, उतना ही उसका अधिक महत्त्व है, लेकिन कीर्त्तन जितना ही गगनभेदी स्वरमें होता है, उतना ही उसका महत्त्व अधिक होता है।

श्रीहरिनाम कीर्त्तनपरायण श्रीगौरांगमहाप्रभुके दर्शन और उच्च नामकीर्त्तनसे अनेकों जीवोंका उद्धार हो गया। श्रीमहाप्रभुके कीर्त्तनको सुनकर वनमें रहने वाले भीषण सिंह, भालू आदि पशु भी प्रेममें निमग्न होकर नामकीर्तन करते हुए नाचने लगते थे।

यह मानव-जीवन अल्प है और प्रभुका नाम-गुण अपार है। श्रीहरिनामका गुण बताते हुए श्रीश्री चैतन्यमहाप्रभुजीने 'शिक्षाष्टक' में कहा हैः—

**'चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणं,**
**श्रेयः कैरवचन्द्रिका वितरणं विद्यावधूजीवनम्।**
**आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं,**
**सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥'**

श्रीहरिनाम चित्तरूपी दर्पण निर्मल करता है, विषय-वासनाओंसे पूर्ण भवमहादावाग्नि शांत करता है, मंगल कुमुदकी ज्योत्स्नाका प्रसार करता है और यह विद्यावधूका प्राणरूप है। यह श्रीहरिनाम आनन्दसिन्धुका वर्द्धन करने वाला है तथा नामका प्रत्येक वर्ण पूर्णामृतका स्वाद देने वाला है। यह श्रीकृष्णनाम संकीर्त्तन सर्वत्र विजय प्रदान करने वाला तथा मन आदि सारी इन्द्रियोंको पूर्ण तृप्त करने वाला है।

श्रीहरिनाम संकीर्त्तन मंडल, श्रीधाम वृन्दावन सदा स्तुत्य तथा प्रशंसनीय है जो श्रीहरिनाम द्वारा जीवमात्रका कल्याण करनेके उद्देश्यसे 'श्रीहरिनाम' मासिक पत्रिका प्रकाशित करता है। इस मंडलके सदा कल्याण एवं विकाशके लिए परात्पर प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

## श्रीनामसंकीर्तन परमोपाय ?

- पूर्ण एवं असाधारण शक्ति-वैशिष्ट्य है।
- नवविधा भक्तिकी पूर्णता विधान करता है।
- परम पुरुषार्थ प्रेमको आविर्भूत करता है।
- दीक्षा-पुरश्चरणादि की अपेक्षा नहीं रखता।
- देश-काल, पात्र-अपात्र, शुद्धता-अशुद्धताके नियमसे अतीत है।
- नामीकी अपेक्षा श्रीनाममें अधिक करुणा-विकाश है।
- नामी अपराध देखता है, श्रीनाम अपराधोंका खण्डन करता है।
- नामाभास भी मुक्ति प्रदान करता है।
- सर्व वेद, तीर्थ, सत्कर्मके माहात्म्यसे कहीं अधिक महिमा-युक्त है।
- कलिका उपास्य अवतार श्रीकृष्णनाम है।





# श्रीमन्महाप्रभु-शिक्षा

पूज्यपाद श्रीचन्द्रहंसजी पाठक
भूतपूर्व प्रधानाचार्य



**गृहस्थियोंके प्रति–**

श्रीमन्महाप्रभुने अपनी गार्हस्थ्य-लीलामें प्राय: अपने आचरणसे, कभी-कभी उपदेश द्वारा भी गृहस्थियोंको अनेक शिक्षा दी है—

सूर्योदयसे पहले नित्य उठना, स्नान, तुलसी-सेवा एवं तुलसी-परिक्रमाके बाद नित्य श्रीविष्णु-मूर्त्ति पूजा करना श्रीमहाप्रभुका नित्य-नियम था, उसके बाद वे अध्ययन-अध्यापनादि कार्योंमें प्रवृत्त होते थे। अतिथि, वैष्णव-सेवा आपका आदर्श था एवं श्रीविष्णुप्रियाजीके चरित्रसे वैष्णव-गृहिणियोंका आदर्श श्रीप्रभुने स्थापित किया। पितृ-श्राद्धादि कर्त्तव्य कर्मोंको कर उन्होंने वर्णाश्रमधर्मकी शिक्षा दी। एकादशी व्रत पालनकी शिक्षा आपने माता शचीको उपलक्ष्य कर गृहस्थियोंको प्रदान की।

अध्यापन कालमें छात्रोंके माध्यमसे तिलक कण्ठी धारण करना, सदाचार-रक्षा, वैष्णव-वन्दना, सत्य-अहिंसाकी आपने शिक्षा दी। अपने औद्धत्य एवं चाञ्चल्यसे भी व्यतिरेक भावमें श्रीमहाप्रभुने जीव-जगत्को यह शिक्षा दी कि विद्वत्ताके साथ दैन्य, नम्रता न होनेपर विद्वान्-सदाचारी व्यक्ति भी निन्दनीय होने लगता है। पर-हित कामनाके लिये अप्रिय-वचनों-का, किन्तु सत्य वचनोंका प्रयोग भी हमें श्रीमहाप्रभुके जीवनवृत्तमें शिक्षारूपमें प्राप्त होता है।

दीक्षाग्रहणके द्वारा गुरुपादाश्रयकी अनिवार्यता, भक्ति-आचरण, गृहस्थ तथा संसार-को श्रीकृष्ण-परिवार जानना, हर व्यवहारमें परमार्थकी प्रधानता, हर दुख-सुखमें भगवत्कृपा-की अनुभूति, धर्मपूर्वक धन-उपार्जन, धन-उपार्जनमें भी कृष्णप्रीति कामनाका पोषण करना श्रीमहाप्रभुकी आदर्श शिक्षा है। भजनांगको बेचकर धन-सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा उपार्जनको भक्तिविरोधी कहकर श्रीमहाप्रभुने हर जगह निषेध किया है।

श्रीसत्यराज द्वारा गृहस्थियोंके लिए साधनकी जिज्ञासा करनेपर श्रीमहाप्रभुने कहा था—

**.... ..........कृष्णसेवा, वैष्णवसेवन।**
**निरन्तर कर कृष्णनाम संकीर्त्तन॥**

उसी प्रश्नके साथ-साथ जब सत्यराजने वैष्णवके लक्षण पूछे तो प्रभुने कहा—

**……………यार मुखे सुनि एकबार।**
**कृष्णनाम, पूज्य सेई श्रेष्ठ सभाकार॥**

दूसरी बार फिर जब सत्यराजने गृहस्थियोंके लिये साधनाङ्गकी जिज्ञासा की तो महाप्रभु बोले—

**…………वैष्णवसेवा, नामसंकीर्तन।**
**दुई कर शीघ्र पावे श्रीकृष्णचरण॥**

इसी सन्दर्भमें जब सत्यराजने फिर वैष्णवोंके लक्षण पूछे तो प्रभुने हँसकर कहा—

**कृष्णनाम निरन्तर याहार बदने।**
**सेई वैष्णव श्रेष्ठ, भज तार चरणे॥**

इस वैष्णव-लक्षणको सुनकर भी सत्यराजकी जब तृप्ति न हुई तो श्रीमहाप्रभु बोले—

**यांहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम।**
**ताहारे जानिस तुमि वैष्णव प्रधान॥**

श्रीमन्महाप्रभुने सर्वप्रथम तो कृष्णसेवा, वैष्णव-सेवा तथा कृष्णनाम-संकीर्त्तनको गृहस्थियोंका साधन बताया। और एकबार कृष्णनाम लेने वालेको वैष्णव कहा। दूसरी बार जिज्ञासा करनेपर श्रीमहाप्रभु जान गए कि कृष्ण-सेवा अर्थात् कृष्णमूर्त्ति-अर्चन धन-साध्य तथा विधि-विधान साध्य भजनांग है और हर गृहस्थके पक्षमें वह सम्भव नहीं। अतः उन्होंने फिर केवल वैष्णव-सेवा तथा नामसंकीर्त्तनकी आज्ञा की। वैष्णव-लक्षणमें प्रभुने जो एकबार कृष्ण-नाम उच्चारणकी बात कही, इससे भी सत्यराजका मन नहीं भरा, कारण कि एकबार कृष्ण-नाम तो आस्तिक-नास्तिक, यवन-चण्डाल, दुराचारी-व्यभिचारी आदि सब लोगोंके मुखसे निकल जाता है, उनमें वैष्णव-बुद्धि होना असम्भव है, उनकी सेवा भी कैसे सम्भव हो सकती है? इस आशंकाके उत्तरमें प्रभुने पहले तो निरन्तर कृष्णनाम उच्चारण करने वालेको श्रेष्ठ वैष्णव बताया, फिर श्रीप्रभुने उस व्यक्तिको प्रधान-सर्वोत्तम वैष्णव कहा जिसके दर्शन मात्रसे कृष्णनामका स्फुरण होता है।

सारांश यह है कि जहां तक बन सके श्रीकृष्णमूर्त्ति-सेवा गृहस्थ-साधकको करनी ही चाहिये, नहीं तो वैष्णव-सेवा तथा नामसंकीर्त्तन अवश्य ही कर्तव्य है। वैष्णव-सेवामें भी निरन्तर कृष्णनाम ग्रहण करने वाला वैष्णव पूज्य या सेवनीय है और सर्वापेक्षा श्रेष्ठ सेवनीय वह वैष्णव है जिसके दर्शनसे मुखसे कृष्णनाम उच्चारित हो उठता है। यहां वे वैष्णवजन भी अभिप्रेत हो





सकते हैं जो सामने आते ही, मिलते ही सबके सामने 'जय श्रीकृष्ण, जय राधे, जय सियाराम' आदि नाम उच्चारण करते हैं और फिर मिलने वालेको उनके जवाबमें भगवन्नामोंका उच्चारण करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसे ही वैष्णव सेवनीय हैं।

कहीं-कहीं श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाका सार इन शब्दोंमें भी व्यक्त किया जाता है—

**जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णवसेवा ।।**

**वैष्णव-सेवा** का तात्पर्य तो स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त वैष्णवों-की ही सेवा विधेय है। उस सेवाका रूप अन्न-वस्त्र ओषधादि वस्तुओंका दान करना भी है, किन्तु वास्तविक वैष्णव-सेवा वह है जिससे सेवनीय वैष्णवकी वैष्णवताकी रक्षा हो। ऐसी कोई भी सेवा हो सकती है, जिससे वह अपने भजन-साधनमें, कृष्णसेवामें अग्रसर हो सके। भजन सम्बन्धीय साहित्य, श्रीकृष्ण नामरूप-लीला गुणका उद्दीपन या स्मरण जिन वस्तुओंसे हो सके—उसके द्वारा सेवा ही वैष्णवसेवाका अभिप्राय है। लड्डू-पूड़ी-कचौड़ी तथा ऐसे पदार्थ जो वैष्णवको जिह्वारस प्रदानकर उसके स्वास्थ्यको बिगाड़ते हैं और साथ-साथ उसमें इन्द्रिय-उत्तेजना अथवा रज-तम गुणोंकी वृद्धि करें, उन पदार्थों द्वारा वैष्णव-सेवा श्रीमन्महाप्रभुका हार्द नहीं है। आजके युगमें वैष्णवसेवाका यही रूप ही प्रशस्त है।

**नाममें रुचि** का विषय तो स्पष्ट है ही, श्रीमहाप्रभुने हर अवस्थामें, हर समय कृष्ण-नाम अथवा अपनेको प्रिय लगने वाले किसी भगवन्नामको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करनेकी केवल शिक्षा ही नहीं दी, स्वयं उच्च नामसंकीर्त्तन करके उसका आदर्श भी स्थापन किया है।

**जीवे-दया** का विषय विवेचनीय है—जीवे दयामें वैष्णवको लक्ष्य नहीं किया गया है, वैष्णव शब्दका अलग प्रयोग किया गया है। हर प्राणीमात्र पर, वह नास्तिक हो चाहे आस्तिक, भगवद्विरोधी हो या भगवद्-अनुरागी, दया करनी चाहिये। श्रीमहाप्रभुने इस विषयमें कहा है—

**जीवेते सम्मान दिवे जानि कृष्ण अधिष्ठान।**

जीव मात्रपर दया या उसे सम्मान देना चाहिये, क्योंकि प्रति जीवमें श्रीकृष्ण अधिष्ठित हैं—**'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'** दयाके स्वरूपका भी विवेचन शास्त्रों-ने किया है। राजर्षि श्रीभरतने यौवनावस्थामें ही सब विषय त्याग कर दिये और निर्जन वनमें साधन-भजन करने लगे थे। नदीके किनारे बैठे भजन कर रहे थे कि एक गर्भवती हरिणीने सिंहकी आवाजसे भयभीत होकर नदीके पार जानेके लिये छलांग मारी। भयके कारण उसका गर्भ गिर गया और बच्चा नदीमें बहने लगा। हरिणी दूसरे पार जाकर गिरी और मर गई। भरत मुनिके मनमें दया आना स्वाभाविक था। उन्होंने हरिण-शिशुको गोदमें उठा लिया, आश्रममें ले आये, हर प्रकारसे उसका पालन-पोषण करने लगे। हर समय उसकी रक्षाकी

चेष्टामें रहने लगे। परिणाम यह हुआ कि वे भजन-साधनसे भ्रष्ट होगये, मरकर उन्हें हरिण योनि प्राप्त हुई—वह एक जन्म निरर्थक चला गया; ऐसा क्यों हुआ ?—इस दयाका कारण था उनकी ममता और भगवद् अस्तित्वको भूलकर अपनेको उस हरिण-शिशुका पालन-पोषण कर्त्ता और रक्षक समझना। वे उसीको ही सेवा-भजन समझने लगे थे।

अनेक लोगोंकी इसी प्रकार भ्रान्त धारणा है कि वे जीवोंपर दयाको परम साधन बनाकर भगवत् सेवासे बहिर्मुख हो जाते हैं। उनका कहना है—'Service to humanity is Service to God'—मानव या प्राणीमात्रकी सेवा ही ईश्वर-सेवा है। वास्तवमें जीव तथा ईश्वरका भेद सर्वशास्त्रमें निरूपण किया गया है। जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगता है, ईश्वर नहीं। जीव कर्मानुसार ही दुख-सुख भोगता है। उसकी सहायता करना, हर सम्भव उपायसे उसकी दुख-निवृत्तिमें सहायक होना हर मनुष्यका, हर साधक भक्तका भी कर्तव्य है, मानवताका यह अनुरोध है, किन्तु ध्यान रहे कि जीव-सेवा कभी भगवान्‌की सेवामें पर्यवसित नहीं होती। जो लोग जीव-सेवाको ध्येय बनाकर भगवत्-सेवासे विमुख हैं, उनको कभी भगवत्-प्राप्ति नहीं होती; उनका परिणाम भरतजी जैसा होता है।

विशेषत: कोई भी व्यक्ति किसी भी जीवके दुख-सुख या उसकी प्रारब्धको मिटानेमें कदाचित समर्थ भी नहीं है। थोड़े समयके लिए ही उसकी किसी कमीको पूरा कर दे सकता है। उसकी प्रारब्धको मेटनेकी किसी दातामें सामर्थ्य नहीं है।

अत: श्रीमन्महाप्रभुने 'जीवे-दया' का स्वरूप यह बताया है कि जीवको भगवत्‌के सन्मुख लानेमें, उसे भक्ति-मार्गमें प्रवेश करानेमें, उसे भक्ति-साधन सम्पन्न करनेमें जो उसके प्रति दया है, वही वास्तविक दया है। उस दयाके फलस्वरूप वह अपने प्रारब्ध-जनित दुखोंसे भी सदाके लिये मुक्त हो सकता है, शाश्वत सुख भी प्राप्त कर सकता है।

## सच्ची-दया

**भगवद् बहिर्मुख रहना अपने जीवात्माके प्रति सबसे बड़ी दुख जनक क्रूरता है। भगवत्-सान्मुख्य ही अपने जीवात्मा-के प्रति सबसे बड़ी सुखजनक दया है। भगवत्-सान्मुख्य-प्राप्त आत्मोन्नत-व्यक्ति ही दूसरों पर सच्ची-दया करनेकी योग्यता एवं सामर्थ्य रखता है।**





# अद्भुत प्रेमदानी महाप्रभु-श्रीगौरांग

--डॉ० गयाप्रसाद उपाध्याय, शास्त्री



सृष्टिके निर्माणमें ईश्वर ही उसके निमित्त और उपादान दोनों बनते हैं। सृष्टि त्रिगुणात्मक है। ये तीनों गुण अविश्रान्त भावसे एक-दूसरेको प्रभावित करते रहते हैं। वस्तुतः गुणोंकी विषमावस्था ही सृष्टि है। अतः जब सृष्टिमें तमो भावका उत्कर्ष होता है, उस समय संसारमें सर्वत्र धर्मका पराभव होता जान पड़ता है और अधर्मका अभ्युत्थान। ऐसी स्थितिमें भगवान्‌का अवतार होता है। ईश्वरकी मंगल-विधायिनी कलाका आविर्भाव होता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**<br>
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।**<br>
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**<br>
**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥**

गीताकी इस उद्घोषणापर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर दो बातें उभरकर सामने आती हैं। एक, जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तो सृष्टिकर्ता अपनी मंगल विधायिनी शक्तिसे ऐसी आत्माका सृजन करते हैं जो अपने पवित्र आचरणकी शक्तिसे धर्मको पुनः दीप्ति और शक्ति प्रदान करती है। उसके आचरणकी चुम्बकीय शक्तिसे अधार्मिक आचरण समाप्त होता है और अधार्मिक आचरण करने वाले पूर्ण धर्माचारी बन जाते हैं। इस आत्म-सृजनमें भी ईश्वरकी मंगल विधायिनी शक्ति ही स्वयं रूपायित होती है। द्वितीय, साधु-सज्जन, सन्त-धर्मात्मा जब दुष्टोंके द्वारा पीड़ित होने लगते हैं, उनका नित्य नैमित्तिक धर्माचरण भी उन दुष्टोंके कारण सम्पन्न नहीं हो सकता है, उस समय साधुओंकी रक्षा करने तथा दुष्टोंको समाप्त करने ईश्वर स्वयं उत्पन्न होते हैं। गीतामें 'संभवामि' क्रिया-पदका प्रयोग है। इसका अर्थ यह कि ईश्वरका संसारमें आना सम्भव बनता है।

हमारे विचारसे गौराङ्ग महाप्रभुके रूपमें ईश्वरकी मंगल विधायिनी शक्ति रूपायित हुई थी, इसीलिए तो महाप्रभुने अपने प्रेमके जादूसे जड़-चेतनको समान रूपसे प्रभावित करके धर्मको दीप्ति प्रदान की थी।

प्रारम्भमें इतना कहना और आवश्यक है कि कारुण्य-सिन्धु ईश्वर करुणा-प्रेरित होकर दोनों स्थितियोंका पालन करते हैं। करुणा अवतार ग्रहण करने वाली आत्माके व्यवहार-में करुणा सर्वदा और सर्वत्र विद्यमान रहती है। इन अवतारोंके सभी व्यवहार करुणा प्रेरित ही होते हैं। जिन कार्योंमें करुणाके स्पष्ट दर्शन नहीं होते हैं, उनके मूलमें भी करुणा अन्तर्निहित रहती है। यही कारण है कि गौराङ्ग महाप्रभुकी प्रेम-धारा भी करुणाके उत्ससे निसृत होती जान पड़ती है। यह निर्विवाद तथ्य है।

श्रीरूपगोस्वामीजीने श्रीश्रीगौरसुन्दरको श्रीकृष्णका प्रेमप्रदान करने वाला महावदान्य स्वीकार किया है—

**नमो महावदान्याय श्रीकृष्णप्रेमप्रदाय ते।**
**कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥** श्रीचै० च० २।१९।३

श्रीकृष्णका प्रेमप्रदान करने वाले, महान् दानी, श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी, गौरकान्ति वाले श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है। श्रीरूपगोस्वामी महाराजकी उक्ति सोलह आने सत्य है। गौरकान्ति वाले श्रीकृष्ण चैतन्यपादने जड़-चेतन सभीमें प्रेमकी स्फूर्ति जाग्रत की। वे समस्त विश्वको प्रेमसे भर देनेका संकल्प लेकर ही अवतीर्ण हुए थे। श्रीमन्महाप्रभुका एक नाम विश्वम्भर भी था। वह विश्वको प्रेमसे भरकर ही अपने नामको सार्थक करनेके इच्छुक थे। उनकी इस आन्तरिक इच्छाके सम्बन्धमें कविराज श्रीकृष्णदासने लिखा है—

**प्रभु कहे, आमि विश्वम्भर नाम धरि।**
**नाम सार्थक हय, यदि प्रेमे विश्व भरि॥** श्रीचै० च० १।९।५

यह निःसन्देह स्वीकारना पड़ता है कि श्रीमन्महाप्रभुने अपने 'हरिनाम संकीर्तन' से विश्वको प्रेमसे भर दिया था। प्रेम मानव-हृदयकी उदात्त और सात्त्विक वृत्ति है। इसमें आलम्बनके प्रति निरन्तर मंगलकामनाके साथ उसके समक्ष रहनेके संकल्पकी सत्ता भी रहती है। प्रेमके उत्कृष्ट रूपमें आश्रय आलम्बनके सुखमें ही अपना सुख मानने लग जाता है। अन्तः-करणकी यही वृत्ति भक्तिका आधार है। प्रेमके आधारके कारण इसको प्रेमा-भक्तिकी संज्ञा भी प्रदान की जाती है। ज्ञान-मार्गमें जिस प्रकार साधनाके अन्तमें ज्ञाता और ज्ञेयका अभेद स्थापित होता है, प्रेममार्गमें उसी प्रकार प्रेमी और प्रिय एकाकार हो जाते हैं।

भगवान् श्रीरामने भक्तिका माहात्म्य स्पष्ट करते हुए भाई लक्ष्मणजीसे कहा है—

**जातें बेगि द्रवऊँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।**
**सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान बिग्याना।**
**भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला।**

अरण्य काण्ड १५।२।५





भक्तिके इस महत्त्वके विषयमें तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं : एक भक्तिसे भगवान् शीघ्र द्रवित होते हैं, द्वितीय भक्ति स्वतन्त्र है, और ज्ञान-विज्ञान प्रदायिनी है और तृतीय वह अनुपम आनन्द दायिनी भी है। भक्तिकी स्वतन्त्रता इसलिए मानी जाती है, क्योंकि भक्तिकी वृत्ति भक्तके स्वायत्त है, अर्थात् वह भक्तके अपने अधीन है। इस तथ्यको गोस्वामीजीने बड़े सरल शब्दोंमें इस प्रकार कहा है 'कै तोहि लागहिं राम प्रिय' अर्थात् भक्तिका अन्तःकरणमें प्रवेश उसी क्षणसे होने लगता है जिस समयसे आश्रयके अन्तः-करणमें आलम्बनके प्रति प्रेमका उदय हो जाता है। प्रेम करना और न करना केवल आश्रयकी इच्छापर निर्भर करता है। इसीलिए भक्ति स्वाधीन स्वीकारी जाती है।

जो ईश्वरसे प्रेम करना चाहता है वह उसकी सृष्टिसे भी प्रेम ही करेगा। प्रेम ऐसी बलवती हृदय-वृत्ति है जो अन्य वृत्तियोंको अवकाश ही प्रदान नहीं करती। यदि वह अन्य वृत्तियोंको अवकाश भी देती है तो उसी आलम्बनके प्रति जो उसका अपना प्रमुख आलम्बन है। इस प्रकार प्रेमकी अनन्यतामें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती है। इस कथनसे यह स्पष्ट है कि प्रेमवृत्ति या तो अन्य वृत्तियोंको अवकाश ही नहीं देती अर्थात् सर्वदा आश्रयका अन्तःकरण प्रेम वृत्तिसे ही आपूरित रहता है अथवा अपने आलम्बनकी अनन्यताके कारण अन्य वृत्तियां भी प्रेममूला ही रहती हैं। उनमें सर्वदा सात्त्विकताकी शुभ्रता ही विद्यमान रहती है। उनमें रजोगुण और तमोगुणका तो कभी स्पर्श ही नहीं हो पाता है। प्रेमकी सार्वकालिक सातिवकताके कारण श्रीचैतन्यचरितामृतके भक्त लेखक कविराज श्रीकृष्णदासने प्रेमको कल्पतरु मानकर उसके सम्बन्धमें लिखा है—

**उडुम्बर वृक्षे जैछे फल सर्व अंगे। एइमत भक्तिकल्पवृक्षे सर्वत्र फल लागे।**

१।९।२३॥

यहाँ प्रेम और भक्ति समानार्थक हैं। कविराज कहते हैं कि जिस प्रकार गूलरके पेड़में उसकी शाखाओं और प्रशाखाओंमें फल लगते हैं उसी प्रकार भक्ति कल्पवृक्षमें भी फल लगता है। वस्तुतः हृदयमें प्रेमवृत्तिके स्थान पाते ही आश्रयमें आकर्षणका समावेश होने लगता है जो अपने सम्पर्कमें आने वालेको भी अपना-जैसा बना लेता है। भक्ति कल्पतरुमें लगने वाले फल अपनी मधुरतामें अमृतको भी पराजित करने वाले होते हैं : 'लागिल प्रेमफल अमृत के जिने।'

यह प्रेमफल अमूल्य है। त्रिलोकीकी धन-सम्पत्तिसे इसके मूल्यको नहीं आंका जा सकता है :

**त्रिजगते जत आछे धन रत्नमणि। एक फलेर मूल्य करि ताहा नाहि गणि।**

श्रीचै० च० १।९।२७

इस त्रिलोकीके समस्त धन रत्नादि भी एक प्रेम फलका मूल्य नहीं हो सकते। प्रेमकी लौकिक वैभवसे तुलना करना भी संगत नहीं है। किन्तु गौराङ्ग महाप्रभु तो इस प्रेम-फलको सर्वत्र वितरण करने हेतु ही अवतीर्ण हुए थे।

लौकिक धन-सम्पत्तिका दान देते समय देश, काल और पात्रका अत्यधिक विचार किया जाता है। इस विचारके कई कारण हैं। उनमें एक यह कि दान ग्रहण करने वाला दानका दुरुपयोग भी कर सकता है। दानमें प्राप्त धनादिकको वह पापाचारमें व्यय कर सकता है। यदि दान प्राप्तकर्त्ता दानमें प्राप्त धनसे पापाचार करता है तो उसके किये हुए कर्मका फल दाता तक भी पहुँचता है। भला ऐसा कौन सा दानी है जो धनका त्याग भी करे और उस त्यागके बदलेमें वह पाप-फल भी स्वीकार करे। अत: वह देश-काल और धनका विचार करता है। किन्तु प्रेमका दान और वितरण करनेमें यह सब विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसके भी कई कारण हैं। प्रथम यह कि यदि दानदाता महाप्रभुकी कोटिका अवतारी पुरुष है तो उसके द्वारा प्रदत्त प्रेम ऊर्जान्वित और शक्ति-सम्पन्न होगा। वह दानग्रहण करने वालेमें संक्रमण करते ही परिवर्तन कर देता है। वह भी सच्चा प्रेमी बन जाता है। गौराङ्ग महाप्रभुके जीवनमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण मिलते हैं। स्वयं गौरांग महाप्रभुके प्रधान-पार्षद गदाधरदासने एक बार प्रयत्न करके हरिनाम-संकीर्तनका उग्र विरोध करने वाले ग्राम-काजीसे हरिनाम संकीर्तन करा दिया था। श्रीचैतन्यचरितामृतके आदि लीला भागके दशम परिच्छेदमें इस इतिहासका उल्लेख है। दूसरे, उसमें भी प्रेमदान करनेकी शक्तिका समावेश हो जाता है। तीसरे, यह प्रेमदान अथवा प्रेम-संक्रमण ऐसे वृत्तका निर्माण करता है कि उससे सर्वदा आनन्द गंगा ही प्रवाहित होती रहती है।

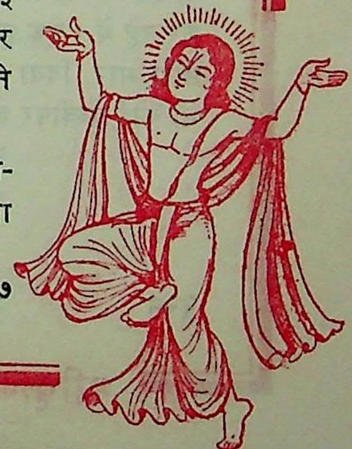
लौकिक धन-सम्पत्ति अपने पुरुषार्थसे अर्जित की जाती है अथवा दूसरेसे मांगनेसे मिलती है। लौकिक सम्पत्ति बिना मांगे कभी नहीं मिलती है। भगवान् महाप्रभुके दानमें विचित्रता थी। उनसे कोई प्रेमका दान मांगे अथवा न मांगे और वह दानका पात्र हो अथवा अपात्र हो, वे तो सभीको—जो भी संयोगसे अथवा अपने सौभाग्यसे—जो भी उनके सम्मुख आता उसे प्रेमका दान दे डालते। ऐसे वे विचित्र दानी थे :

**मांगे वा ना मागे केहो पात्र व अपात्र।**
**इहार विचार नाहि जाने 'दिव' मात्र।**

श्रीचै० च० १।९।२७

महा मूल्यवान् प्रेम फलको-चाहे किसीने मांगा चाहे न मांगा, कोई उसके पानेका अधिकारी था अथवा अनधिकारी था—इसका कुछ भी विचार किये बिना श्रीचैतन्य महाप्रभुने सभीको प्रेमका दान दिया ही दिया, उन्होंने केवल देना मात्र ही जाना।

यद्यपि यह भी बड़ी विचित्रता है कि दानी बिना मांगे तथा पात्र-अपात्रका विचार किये बिना ही अंजलि भर-भरकर प्रेम-फल फेंकता ही, देता





ही चला जाता है; किन्तु इसकी भी अपनी सीमा है। कारण, दान दाता एवं दान ग्रहीता दोनों ही शरीरधारी होनेके कारण देशकालसे सीमित रहते हैं; अतएव उनके क्रिया-कलाप सामान्य दृष्टिसे विस्तृत होते हुए भी देशकालसे परिच्छिन्न ही रहते हैं। गौरांगदेवने जिनको प्रेमदान दिया उन सबको अपनी प्रेमदान शक्तिसे पूर्ण करके आदेश दिया कि आप सब लोग भी इसी प्रकार दान देते चलो।

अतएव आमि आज्ञा दिल सभाकारे।
याहाँ ताँहा प्रेम फल देह जारे तारे॥

'अतएव मैं सबको आज्ञा देता हूँ कि जहाँ-तहाँ इस प्रेम-फलको जिस किसीको प्रदान करो।' महाप्रभुकी इस आज्ञासे प्रेमदानकी क्षेत्र परिधि व्यापकसे व्यापकतर और व्यापकतम होती दिखाई पड़ती है। श्रीचैतन्यदेवके प्रेमदानकी यही सबसे बड़ी विचित्रता और विशेषता है। इसे सामान्य बोल-चालकी भाषामें बिखेर अथवा वर्षा कहा जाता है। भक्तोंके इतिहासमें नरसीकी प्रार्थनापर उनके आराध्यदेव द्वारकानाथने सवा प्रहर सुवर्णकी वर्षा की थी जिससे काठियावाड़—आज भी अमीर देश-स्मरण किया जाता है।

वस्तुत: श्रीचैतन्य महाप्रभु वृक्ष-वृत्ति धारणकर चुके थे। जिस प्रकार वृक्ष बिना कुछ विचार किये ही फलदान करता है उसी प्रकार वे भी अपने सम्मुख उपस्थित हो जाने वालेको प्रेमका दान दे दिया करते थे। प्रेमका संक्रमण करा देते थे। वह प्रेमके विचित्र तथा अलौकिक दानी थे। उन्होंने प्रेमका वितरण करनेमें जाति-पांति, शिक्षित-अशिक्षित आदि किसी बातका विचार नहीं किया। इसके अनेक उदाहरण श्रीचैतन्यचरितामृतमें मिलते हैं।

गौराङ्ग महाप्रभुके इस प्रेमदानमें व्यापकता और विस्तार था, लेकिन फिर भी वह उनकी दृष्टिमें सीमित था। अभी तो इस प्रेमदानकी परिधि मात्र मानव तक सीमित थी। महाप्रभुकी तो इच्छा थी कि उनका विश्वम्भर नाम तब तक सार्थक नहीं हो सकता है जब तक वे इस दृश्यमान विश्वको प्रेमसे नहीं भर देते हैं। थलचारियोंमें मनुष्यके अतिरिक्त पशु भी आते हैं। एक दिन महाप्रभु पथमें जा रहे थे। जाते हुए उनका पैर एक सोते हुए व्याघ्रके शरीरसे छू गया। महाप्रभु उस समय आवेशमें थे। उनके मुखसे 'कृष्ण-कृष्ण' नाम निकला। व्याघ्र उठकर 'कृष्ण-कृष्ण' कहता हुआ नाचने लगा। एक अन्य दिन प्रभु एक नदीमें स्नान कर रहे थे, इतनेमें मतवाले हाथियोंका झुण्ड नदीपर पानी पीनेके लिए पहुँचा। श्रीमहाप्रभु जलकृत्य कर रहे थे। एक हाथी उनके सामने ही चला आया। प्रभुने कृष्ण कहकर उस हाथीपर जलका छींटा मार दिया। हाथी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने-गाने लगा। झुण्डके दूसरे हाथियोंमें से भी कोई पृथ्वीपर लोटने और कोई चीत्कार करने लगा।

**एक दिन पथे व्याघ्र करिआछे सयन॥**
**आवेशे तार गाय प्रभुर लागिल चरण॥**

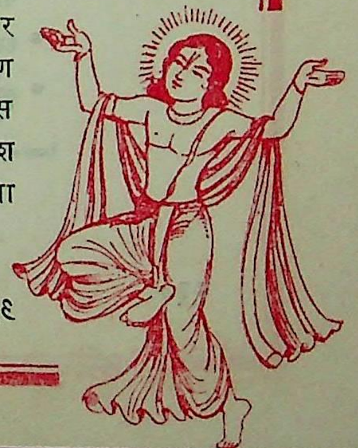
प्रभु कहे–'कृष्ण-कृष्ण' व्याघ्र उठिल।
'कृष्ण-कृष्ण' कहि व्याघ्र नाचिते लागिल॥
आर दिने महाप्रभु करे नदी स्नान।
मत्त हस्तीयूथ आइल करिते जलपान॥
प्रभु जलकृत्य करे, आगे हस्ती आइला।
'कृष्ण-कह' बलि प्रभु जल फेलि माइला॥
सेइ जल विन्दु कणा लागे जार गाय।
सेई 'कृष्ण-कृष्ण' कहे प्रेमे नाचे गाय॥
केहो भूमे पड़े, केहो करये चीत्कार। श्रीचै० च० २।१७।२७-३२

यह चमत्कार महाप्रभुके 'कृष्ण' नाम संकीर्तनके प्रभावके कारण हुआ। पशु-संसार भी प्रेमका अद्भुत दान पाकर मतवाला हो गया। पशु-संसारमें कुछ पशुओंमें निसर्ग-बैर है यथा व्याघ्र मृग। लोकमें ये निसर्ग-बैर वाले पशु एक-साथ कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते हैं, किन्तु महाप्रभुके प्रेमदानके पश्चात् तो उनकी स्थिति ही विचित्र हो जाती है। कविराज इस स्थितिका वर्णन इन शब्दोंमें करते हैं—

'कृष्ण-कृष्ण कह' करि प्रभु जबे बैल।
'कृष्ण' कहि व्याघ्र-मृग नाचिते लागिल॥
नाचे कुन्दे व्याघ्रगण मृगीगण-सङ्गे।
वलभद्र भट्टाचार्य देखे अपूर्व रङ्गे॥
व्याघ्र मृग अन्योन्ये करे आलिङ्गन।
मुखे मुख दिया करे अन्योन्ये चुम्बन। श्रीचै० च० २।१७।३७-३९

जब श्रीप्रभुने उन व्याघ्र मृगी आदिसे 'कृष्ण-कृष्ण' कहनेको कहा, तो वे सभी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगे। व्याघ्र और हरिण एक साथ नाचने कूदने लगे। इस अपूर्व लीलाको देखकर श्रीबलभद्राचार्यने आश्चर्य किया। व्याघ्र और मृग एक दूसरेका आलिंगन करने लगे और एक दूसरेको मुँहसे मुँह लगाकर चुम्बन भी करने लगे।' महाप्रभुके प्रेमदानका चमत्कार मानव संसारमें इतना आश्चर्यजनक नहीं था, जितना आश्चर्यजनक चमत्कार पशु-संसारमें दिखाई पड़ने लगा। निसर्ग वैर वाले पशु भी अपने प्राकृतिक स्वभावको भूलकर प्रेम गंगामें स्नान करके विश्वात्माकी अनुभूतिमें मग्न हो गये।

महाप्रभु गौराङ्गदेवसे प्रेमदान पाकर मानव और पशुओंकी जो दशा हो जाती थी उसका उल्लेख पीछे हो चुका है। किन्तु संसार मानव और पशुओं तक ही सीमित नहीं है। यदि पशुओंको पक्षि-जगत्का भी उपलक्षण मान लिया जाय तो भी संसारकी इयत्ताकी परिसमाप्ति नहीं होती है। इस चेतन संसारके अतिरिक्त जड़ जगत्में वृक्ष, वनस्पतियों आदि का समावेश होता है। अतः इस वानस्पतिक जगत्में महाप्रभुके प्रेमदानकी क्या प्रतिक्रिया हुई यह प्रदर्शित करना भी आवश्यक है।





भगवान् गौराङ्गपाद वृन्दावनमें विचरणकर रहे हैं। वृन्दावनकी महिमा अकथनीय है। जहाँ श्रीराधाकृष्णका निरन्तर रास होता है वहाँके पशु-पक्षियोंके साथ वहाँके लता-गुल्म भी धन्य हैं। प्रभु जहाँसे उच्चस्वरसे हरि-हरि ध्वनि करते निकलते वहाँके वृक्ष तथा लतायें जो पहलेसे मुरझा गये थे, उस 'हरि-हरि' नाम ध्वनिको सुनकर प्रफुल्लित हो जाते थे।

**'हरि बोल' बलि प्रभु करे उच्च ध्वनि।**
**वृक्षलता प्रफुल्लित सेइ ध्वनि शुनि।** श्रीचै० च० २।१७।४२

इसी प्रकार समस्त झारखण्डके स्थावर-जंगमको भी प्रेममें उन्मत्त कर दिया।

**झारखण्डे स्थावर जंगम आछे जत।**
**कृष्ण नाम दिया कैल प्रेमेते उन्मत्त।** श्रीचै० च० २।१७।४३

मनुष्योंमें विवेक विकसित होता है अतः भगवान् श्रीचैतन्यदेवके प्रेमसे उनका अन्तः-करण पवित्र होकर यदि वह प्रेममें मतवाला हो जाता है तो अधिक आश्चर्यजनक नहीं है किन्तु पशुओं और वृक्षोंकी प्रेम-प्रफुल्लताका दर्शन पाकर भगवान्‌की विचित्र प्रेमलीलाका प्रभाव स्वीकार करना पड़ता है। वस्तुतः श्रीकृष्णचैतन्यदेवका अवतार प्रेमकी अद्भुत शक्तिका प्रदर्शन करनेके लिए ही हुआ था।

## कृष्णप्रेमका स्वरूप

- **कृष्णप्रेम ह्लादिनी-संवित्-प्रधान शुद्धसत्त्वकी वृत्ति-विशेष है। कृष्णप्रेम प्राकृत मनकी वृत्ति नहीं है।**
- **कृष्ण-इन्द्रियोंकी प्रीतिकी इच्छाका नाम प्रेम है।**
- **कृष्णप्रेम चित्-वस्तु है। भुक्ति-मुक्ति वासनासे रहित निर्मल-चित्तमें शुद्धसत्त्व आविर्भूत होकर प्रेमरूपमें परिणत होता है।**
- **श्रीकृष्णमें ममता तथा कृष्णैश्वर्य-ज्ञानका अभाव कृष्णप्रेमका फल है।**
- **ध्वंसके कारण उपस्थित होनेपर भी कृष्णप्रेम ध्वंस नहीं होता।**
- **कृष्णनाम-संकीर्तन प्रेमप्राप्तिका सुनिश्चित उपाय है।**

# गौरांग-अभिन्न-विग्रह—श्रीनिताईचाँद

परात्पर परब्रह्म स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने अपने समस्त लीला-परिकरों एवं धाम-श्रीवृन्दावनके साथ प्राकृत-ब्रह्माण्डमें अवतार ग्रहण किया और हर प्रकारके प्रेमरसका निर्यास आस्वादन किया। प्रेमरस निर्यास-आस्वादनका उपक्रम या सूत्रपात तो हुआ व्रज-मण्डलमें और उपसंहाररूपमें उसकी पूर्त्ति हुई जाकर गौरमण्डलमें। समस्त परिकरोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्र श्रीगौरचन्द्ररूपसे प्रकट हुए। श्रीकृष्णका द्वितीय देह हैं श्रीबलराम। एक ही स्वरूप हैं दोनों, केवल मात्र दो शरीरोंमें लीलाविहार करते हैं। विशेषतः श्रीबलराम-स्वरूप श्रीकृष्णलीलाका सहायक मात्र है। जब नवद्वीपमें श्रीकृष्ण श्रीगौरचन्द्ररूपमें आविर्भूत हुए तो उनका अभिन्न-स्वरूप उनकी नवद्वीप लीलाके सहायक रूपमें जो वहां प्रकट हुआ, वे हैं श्रीनित्यानन्द प्रभु—

सर्व-अवतारी कृष्ण स्वयं-भगवान्।
तांहार द्वितीय देह—श्रीबलराम॥
एकइ स्वरूप, दुइ भिन्न मात्र काय।
आद्य कायव्यूह, कृष्णलीलार सहाय॥
सेइ कृष्ण नवद्वीपे श्रीचैतन्यचन्द्र।
सेइ बलराम संगे, श्रीनित्यानन्द॥

श्रीचै० चरि० ११५१३-५

श्रीमन्महाप्रभुने तो भक्तावतार या भक्तावेशावताररूप ग्रहण किया, वे मूलतः या तत्त्वतः भक्त नहीं—श्रीभगवान् हैं; किन्तु श्रीबलराम मूल-भक्तावतार हैं—

**मूल भक्तावतार श्रीबलराम।**
**कृपासिन्धु भक्तिदाता श्रीवैष्णवधाम॥**

श्रीबलराम मूल भक्त-अवतार हैं, अतः वे परम वैष्णव, कृपासिन्धु हैं। एकमात्र भक्तिप्रदाता हैं। श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्ति सन्धिनीका मूर्त्तविग्रह हैं आप। उनके चिन्मय धाम, निवास स्थान, शय्या, आसन, पादुका, बालिश, छाता, चामरादि, जितने भी सेवाके उपकरण सम्भव हैं, श्रीबलराम ही उन-उन समस्त रूपोंमें आत्मप्रकट कर श्रीकृष्ण-सेवा सम्पादन करते हैं।





**निवास शय्यासन पादुकांशुकोपधान वर्षातपवारणादिभिः ।**
**शरीरभेदैस्तवशेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीरितो जनैः ॥**

श्रीयामुनाचार्य पाद

मूल संकर्षण-श्रीबलरामके ही अंश-अंशांश हैं—पुरुषावतार—कारणसमुद्रशायी, गर्भोदशायी, क्षीरसमुद्रशायी तथा वे ही अनन्त-शेषरूप धारणकर ब्रह्माण्डोको अपने मस्तकपर धारण किये रहते हैं ।

श्रीचैतन्यलीलामें सर्वोपकरणपूर्वक नाम-प्रेम-भक्ति वितरणमें एकमात्र आपकी कृपा-शक्तिका ही विकास हुआ है । श्रीमन्महाप्रभुने श्री-मन्नित्यानन्दके प्रति स्वयं कहा है—

बुझिलाम, ईश्वरेर तुमि पूर्णशक्ति ।
तोमा भजिले से जीव पाय कृष्णभक्ति ॥
तुमि कर, चतुर्दशभुवन पवित्र ।
अचिन्त्य अगम्य गूढ़ तामार चरित्र ॥

श्रीचैं० भा० २।४।३६-३७॥

श्रीचैतन्यलीलामें यदि सबसे गूढ़ तत्त्व कोई है तो वह है श्रीनित्यानन्द-तत्त्व । राय रामानन्दने कहा था—**राधाकृष्ण लीला हय अतिगूढ़ तर** । किन्तु श्रीराधाकृष्ण मिलित-विग्रह श्रीगौरांगकी लीला गूढ़तम मानी गई है और श्रीनित्यानन्द-लीलाके विषयमें कहा गया है—

बड़ गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे ।
चैतन्य देखाय जारे से देखिते पारे ॥

श्रीचैं० भा० २।३।१७१॥

श्रीनित्यानन्दप्रभुकी रहन-सहन, आचरण, लीला, परम गूढ़तम है, जो एकमात्र श्रीचैतन्यकृपाकी प्राप्तिके फलस्वरूप ही जानी जा सकती है । परमाद्भुत लीला-कथा है आपकी—

एकचाका ग्राममें संवत् १५३० की माघ शुक्ला त्रयोदशीको आपका आविर्भाव हुआ श्रीहाड़ाई पण्डित-पद्मावतीके घर । अद्भुत अपरूप रूप सौन्दर्य था, बाल्य लीलाएं परम सुहावनीं । सखाओंके साथ श्रीरामावतारकी लीलाओंमें आप सदा लक्ष्मणजीका अभिनय करते । बालक-वृद्ध-नर-नारी इनकी भावनाओंको, परमावेशको देख चमत्कृत हो उठते ।

एक अतिथि संन्यासीके मांग ले जानेपर माता-पिताने इन्हें तीर्थभ्रमणके लिये स्वीकृति दे दी । गृह त्यागकर केवल वक्रेश्वर पर्यन्त आप उस संन्यासीके संग रहे, फिर तो स्वच्छन्दरूपसे भारतवर्षके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करते रहे । अखण्ड कृष्णावेश था, अयाचक-

वृत्ति थे, कृष्णप्रेममें कभी हँसते, कभी रोते। नाचते-कूदते महेश्वरपुर पधारे। वहां श्रीमाधवेन्द्र-पुरीपादसे इनका मिलन हुआ।

पण्डरपुरमें श्रीलक्ष्मीपति पुरीको स्वप्नादेश हुआ, कि एक ब्राह्मण-कुमार अवधूत वेशधारी कल सवेरे आपके पास आ रहा है, उसे दीक्षा मन्त्र देनेका सौभाग्य प्राप्त करो। श्रीनिताई चाँद सवेरे उनके पास पहुंचे और लौकिक लीलानुसार उनसे कृष्णनाम मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की। वहांसे विदा होनेपर श्रीलक्ष्मीपति पुरीजी इनके विरहको सहन न कर सके-शरीरका त्यागकर दिया—वे इनके वास्तव स्वरूपको जान गये थे। स्वप्नादेश करने वाले भी आप और दीक्षा लेनेवाले भी आप थे।

वहांसे व्रजमण्डल पधारे। फिर तो ये अपने प्रेमावेशका संवरण न कर सके। लीला-स्थलों, वृक्ष-लताओं यमुना-गिरिराजको देख-देखकर पछाड़ें खाने लगे। आकाशवाणी हुई—निताई चाँद! तेरा छोटा भाई श्रीकृष्ण नवद्वीपमें गौरसुन्दर विश्वम्भर—निमाई पण्डितके रूपमें अवतीर्ण हो चुका है। आश्वस्त हुए और नवद्वीपकी ओर चल पड़े। नवद्वीपमें आकर श्रीनन्दनाचार्यके घर छिपकर बैठ गये। आ गई मनमें प्रेमकी अदा—'मैं वृन्दावनसे चलकर नवद्वीप तक चला आया, अब वह भी आकर मुझे ढूँढ़े और ले जाये अपने घरमें, आखिर है तो मेरा छोटा भैया!' श्रीविश्वम्भर तो दो दिन पहलेसे ही छटपटा रहे थे बड़े भैयाके लिये। भक्तोंके साथ जाकर मिले श्रीनित्यानन्द प्रभुको अपने साथ ले आये।

अब तो एक एक दो ग्यारह वाली बात बन गई। श्रीमहाप्रभुने जीव जगत्को नाम-प्रेम दानका कार्य चालू किया। श्रीनिताई चाँदको श्रीहरिदासके साथ नवद्वीपके गली-गली, कूचे-कूचेमें नामकी भिक्षाके लिये भेजा। घर-घरमें, द्वार-द्वारपर जाकर दोनों नाम-मतवाले

**'बोल कृष्ण, भज कृष्ण, लह कृष्णनाम।**
**कृष्ण माता, कृष्ण पिता कृष्ण धनधाम॥'**

की ध्वनि करने-सुनाने लगे। प्रेमदाता निताईचाँदके विना श्रीनिमाई भी प्रेम-प्रदानताका कार्य कैसे आरम्भ करते? उधर प्रेमप्रदाता स्वयं होकर भी श्रीनिताईचाँद अपने प्रभुकी आज्ञाके विना स्वच्छन्दतासे नामदानका कार्य कैसे चालू करते? जबकि भारतके समस्त तीर्थोंमें आप भ्रमण कर आये थे, किन्तु किसीको भी आपने नामप्रेम दान नहीं किया। यही है पार्षदोंका प्रभु-आनुगत्य। श्रीहनुमानजी चाहते तो लंका जलाकर, रावणको मारकर श्रीजानकीजीको अपने साथ ले आते, किन्तु न तो ऐसी प्रभुकी आज्ञा थी और न इस महान् कीर्तिको वे अपने साथ जोड़ना चाहते थे। इसी प्रकार श्री-निताई चाँदने स्वयं प्रेमप्रदाता होकर भी यह यशसौरभ श्रीमहाप्रभुके लिये ही सुरक्षित रखा।

अक्रोध-परमानन्द परमदयालमूर्त्तिने नाम-प्रेम दानकी बोहनी की दुर्दान्त, दुराचारी व्यभिचारी, घोर पापिष्ठ जगाई-माधाई से अपना सिर





फुड़वा लिया, किन्तु उनसे श्रीकृष्णनाम कहलवाके ही नहीं छोड़ा, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके कलमष-कलापोंको आमूल विध्वंस करके उन्हें परम वैष्णव बना दिया। मद्यके मतवाले कृष्णनामसुधा पानकर उन्मत्त हो उठे और आज तक साक्षी दे रहे हैं प्रेमदाताके महावदान की। तभी तो श्रीमहाप्रभुको कहना पड़ा—निताई चाँद !

तोमार से प्रेमभक्ति तुमि प्रेममय।
विने तुमि दिले, कारो भक्ति नाहिं हय।

प्रेमभक्ति आपकी वस्तु है, आप प्रेममय हो। आपके विना दिये, किसीको भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

श्रीमहाप्रभुने सर्वप्रथम अपने संन्यासकी सूचना अपने अन्तरंग श्रीनिताईचाँदको इन शब्दोंमें दी—तात ! पीपलका सेवन किया था कफ-निवृत्तिके लिये, किन्तु फल उलटा निकला, कफ वृद्धि होगई। प्रभुपाद ! आप मेरे बड़े भाई हो, किन्तु मुझे इस कफनिवृत्तिके उपाय—गृहत्यागकर संन्यास ग्रहण करनेमें आप रोकना नहीं।' श्रीनिताईचाँद अति व्याकुल हुए किन्तु स्वतन्त्र प्रभुकी ऐसी स्वेच्छा मानकर आश्वस्त हो गये। संन्यासी होकर श्रीमहाप्रभु चले कृष्ण-आवेशमें श्रीवृन्दावनकी ओर, किन्तु गौरांग-नियामक श्रीनिताई इनकी वञ्चना कर ले आये श्रीअद्वैत-भवनमें और वहां नवद्वीपवासियोंके साथ मुण्डित-मस्तक श्रीचैतन्यको मिलाया। माता शचीसे एकबार भेंट करा दी प्रभु की।

नीलाचलकी ओर भागे जा रहे हैं प्रेमाविष्ट श्रीमहाप्रभु। भार्गी नदीपर आकर प्रभुने स्नानादि किया और अपना दण्ड पकड़ा दिया श्रीनित्यानन्द प्रभुको। भूल गये प्रभु फिर दण्ड लेना—आगे चले जगन्नाथ दर्शनोल्लासमें। श्रीनिताईचाँदने दण्ड देखा अपने हाथ में, बोले—वाह रे दण्ड वाह ! जिन्हें में हृदयमें धारण करता हूं, वे तुम्हें अपने हाथोंमें धारण करें ? कैसी अनुचित बात ? अति कठोर है तू ? अब जबकि प्रभुने ही तुम्हें भुला दिया, तुम्हारा क्या प्रयोजन ? जिस प्रेमावेशमें श्रीप्रभुने तुम्हें भुलाया है, वहां तो दैन्य एवं सौम्यका प्रयोजन है, दण्डका क्या काम ? —इतना कह उस दण्डके तीन टुकड़े कर श्रीनिताईचाँदने फेंक दिया उसे नदीमें। प्रभुने बाह्यज्ञान होनेपर पूछा, तो बोले—मैंने अपने-आप दण्ड थोड़े ही तोड़ा है, आपने तो प्रेरणा दी थी ऐसा करने की। चुप पड़ गए श्रीमहाप्रभु।

नीलाचलमें अनेक दिन आप श्रीमहाप्रभुके निकट रहे। एकदिन एकान्तमें श्रीगौरांगने कहा—प्रभुपाद ! अब आप शीघ्र नवद्वीप पधारो। मेरी प्रतिज्ञा थी आपामर-बाल-वृद्ध-वनिता सबको प्रेमभक्ति प्रदान करने की। किन्तु इस अवस्थामें मैं विवश हूँ। आप मेरी इस प्रतिज्ञा को निभाओ। आपके अवधूत बने रहनेसे काम नहीं चलेगा। संसारके पतित, त्रिताप-सन्तप्त जीवोंको जाकर नाम-प्रेमदान देकर उद्धार कीजिये। आपके और मेरे अवतारका जो प्रयोजन है—उसे पूरा कीजिये।

प्रभुकी आज्ञा थी—अपने परिकरजनोंको साथ ले गौड़देशकी ओर चल पड़े। रास्तेमें सबको प्रेमदान करते हुए पानीहाटी ग्राममें श्रीराघव पण्डितके घर आये। नामसंकीर्तनावेशमें आपने उद्दाम नृत्य किया, भक्तोंने आपका अभिषेक किया—स्वयं पधारे नीलाचलसे श्रीगौरांग वहां, किन्तु केवल श्रीनिताईचाँदने ही उनके दर्शन किये। चारों ओर भ्रमणकर समस्त गौड़-देशको आपने प्रेमवन्यामें सराबोर कर दिया। अनेक दुराचारी, डाकुओं पर्यन्त नामदान देकर उनका संसार-बन्धन काट डाला। परम वैष्णव बना दिया सबको।

श्रीगौरांगके देखे बिना जब अनेक दिन निकल जाते तो ये फिर नीलाचल रथयात्रा-महोत्सवके दिनों जा पहुँचते। अनेक दिन वहां प्रभु-लीला-दर्शनका आनन्द लेते। एक दिन प्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे कुछ एकान्तमें विचार-परामर्श किया। फिर अति विनम्र होकर श्री-निताईचाँदसे बोले—प्रभुपाद ! मेरी एक प्रार्थना है, आपसे मैं कुछ मांगता हूं, कृपाकर आप वचन दीजिये कि आप मेरे उस अभीष्टको प्रदान करोगे।'

श्रीनिताईचाँद चुप थे—जाने प्रभु क्या लीला करना चाहते हैं। इन्होंने कहा—'तात ! मैं देह हूं किन्तु आप उसमें प्राण हैं। देह-प्राण अभिन्न होते हैं। गौरसुन्दर ! आप अपनी अचिन्त्य महाशक्ति द्वारा दुष्करसे दुष्कर कार्य भी मुझसे करा सकते हैं। मेरा सब कार्य आपका कार्य है, एकमात्र आपकी सेवा ही मेरा धर्म है। जो आप मांगो, कराओ मांग सकते हो, करा सकते हो, करना न करना–मेरा कोई नियम नहीं, आप आज्ञा करो।'

यह सुनकर श्रीगौरांगने अश्रुभरे नेत्रोंसे श्रीनिताईचाँदको आलिंगन किया और बोले – 'हे प्रभुपाद ! आप अब गौड़देशमें जाकर गृहस्थ-आश्रमको स्वीकार करो। वंश परम्परा-से कलिहत जीवोंको नामप्रेम देकर आप एक सुव्यवस्थित श्रृङ्खला गठित कर मुझे आभारी कीजिये।'

श्रीनिताईचाँदने कहा—'हे विश्वनियंता ! जिसे आपने आज तक अवधूत बनाकर सारे संसारमें घुमा डाला, अनेक नाच नचाये, जीवोंके संसार-बन्धन तोड़नेके लिये जिसे सबसे आगे रखा, अब उसे संसारमें आप प्रवेश कराना चाहते हो ? यह आपका मुझपर अनुग्रह है या निग्रह ?—यह भी तो मैं कुछ नहीं जानता। सबसे कठिन है दास-धर्म। मेरे लिये आज्ञा-पालनको छोड़कर शुद्ध-अशुद्ध, उचित-अनुचित कुछ भी विवेचनीय नहीं है। मेरा परम धर्म है आपकी आज्ञा-डोरीमें बँधकर नाचना ! केवल नाचना।

'प्रभो ! नीलाचल भी फिर न आऊं, गृहस्थाश्रम भी स्वीकार करूं, तो क्या आजीवन आप मुझे अपने दर्शनोंसे वञ्चित करना चाहते हैं ?'—श्रीनिताईचांदने पूछा। श्रीगौरांगने कहा—'तात ! आप जब भी मेरा स्मरण करोगे, मैं आपके सामने हूंगा। आपके नृत्यगानमें अवश्य उपस्थित रहूंगा, जैसे मां शचीके रंधन-समय मैं उसके पास अवश्य रहता हूं।'



श्रीनित्यानन्दप्रभुने विवाह-लीला सम्पन्न की प्रभु आदेशसे, फिर केवल जीवोंके उद्धार निमित्त। यदि श्रीप्रभुपाद ऐसा न करते, उनका वंश-



विस्तार इस धरणीतलपर प्रकाशित न होता, तो वस्तुत: नामप्रेम तथा श्रीगौरांग-भक्तिके आस्वादनसे सारा संसार वञ्चित रह जाता। गौरतत्त्वके रहस्यको आज कोई जान ही नहीं पाता। श्रीगौड़ीय गोस्वामिवृन्द तो विरक्त थे। अनेकोंने तो दारा-परिग्रह किया ही नहीं, उनके वंश-परिवारोंके विस्तार-की बात ही नहीं उठती। एकमात्र परमकृपालु प्रेममूर्ति श्रीमन्नित्यानन्दका वंश विस्तार हुआ और उस प्रभु-सन्तान द्वारा बंगाल, व्रजमण्डल ही नहीं पंजाब, उड़ीसा आदि समस्त प्रदेश श्रीनामप्रेमको परम साध्य-साधनरूपमें प्राप्तकर धन्य हो गये।

सर्वथा अनिन्दनीय है श्रीनित्यानन्द प्रभुपादकी यह लीला, जो एकमात्र श्रीगौरांग आदेशकी दृढ़ भित्तिपर प्रतिष्ठित है, श्रीचैतन्य भागवतके व्यास श्रीवृन्दावनदासने स्पष्ट कहा है—

**नित्यानन्द निन्दा करे जे पापिष्ठजन।**
**गंगाओ ताहारे देखे करे पलायन॥** चै० भा० २।११।६६०

श्रीनित्यानन्दप्रभुकी जो निन्दा करते हैं, वे घोर पापी हैं। उनको देखकर श्रीगंगा भी भाग जाती है अर्थात् त्रिभुवन-पावनि श्रीगंगा भी उनके पाप ध्वंस करनेमें असमर्थ है।—श्रीमहाप्रभु गौरांगने बार-बार यह घोषणा की है—

**नित्यानन्दे जाहार तिलेक द्वेष रहे।**
**भक्त हइलेओ से आमार प्रिय नहे॥**

जिस व्यक्तिका श्रीमन्नित्यानन्दप्रभुके प्रति तिलमात्र, अति अल्प भी द्वेष है, कुभाव है, भले वह मेरा भक्त बना करे, वह व्यक्ति मुझे कभी प्रिय नहीं है।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने अनेक बार घर-द्वार छोड़कर श्रीमहाप्रभुका सान्निध्य प्राप्त करनेका, उनकी कृपा-प्राप्तिका यत्न किया, किन्तु जब तक श्रीनिताईचाँदकी कृपा प्राप्त न हुई तब तक वे श्रीमहाप्रभुको प्राप्त न कर सके। पानिहाटी ग्राममें जब सर्वप्रथम श्रीरघुनाथने आकर दूरसे श्रीनिताईचाँदको प्रणाम किया तो इन्होंने कहा—'अरे चोर! आज तूने दर्शन दिये, आ-आ! आज तुम्हें दण्ड दूंगा। मेरे निकट न आकर अब तक दूर-दूर भागता रहा है तू—**शुनि प्रभु कहे, चोरा! दिल दरशन। आय आय आजि तोर करिमु दण्डन॥** श्रीचै० च० २।६।४६॥ प्रभुने श्रीरघुनाथको 'चोर' कहा अर्थात् मेरी सम्पत्ति, मेरे सर्वस्वधन श्रीगौरांगको मेरी अनुमति, मेरी स्वीकृति प्राप्तिके विना पाना चाहता है—तू चोर है। वस्तुत: जो व्यक्ति श्रीगौरांग-कृपा तो प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु श्रीनित्यानन्दप्रभुका आनुगत्य स्वीकार नहीं करते, श्रीनित्यानन्द-परिवारसे द्वेष रखते हैं, वास्तवमें वे चोर हैं, पाषण्डी हैं, उन्हें कभी गौर-कृपा प्राप्त नहीं हो सकती।

श्रीरघुनाथके लिये दण्ड यही दिया गया कि चिड़ा महोत्सव करवाया गया उनकी अर्थ-व्यवस्थासे। समस्त वैष्णवोंने प्रसाद ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभुने साक्षात् वहां आकर दधि-चिड़वा भोग लगाया—

**नित्यानन्द प्रभु महा कृपालु उदार।**
**रघुनाथेर भाग्ये एत कैल अङ्गीकार॥**
**नित्यानन्द प्रभाव कृपा जानिवे कोन जन ?**
**महाप्रभु आनि कराय पुलिन-भोजन॥** श्रीचै० च० २।६।८७-८८

महोत्सवके अन्तमें जब श्रीरघुनाथने कहा—

**तोमार कृपा विने केहो चैतन्य न पाय।**
**तुमि कृपा कैले तांरे अधमेहो पाय॥**

हे निताईचाँद ! आपकी कृपाके विना कोई भी श्रीचैतन्यकी प्राप्ति नहीं कर सकता। आपकी कृपा होनेपर एक अधम जीव भी श्रीचैतन्यको प्राप्त कर लेता है, तब स्वयं श्रीनिताई-चाँदने कहा—रघुनाथ ! तुम्हारे ऊपर श्रीचैतन्य-कृपा हो चुकी है। उन्होंने तुम्हारे इस महोत्सवमें प्रत्यक्ष आकर दधि-चिड़वा खाया है। तुम्हारा उद्धार करनेके लिये श्रीमहाप्रभु नीलाचलसे यहां भागे आये। जा ! अब सब विघ्नबाधा दूर हुए। निश्चिन्त होकर अपने घर लौट जाओ और अति शीघ्र तुम्हें श्रीचैतन्यचरणोंकी प्राप्ति होगी—ऐसा ही हुआ, थोड़े दिनों बाद श्रीरघुनाथ भागकर नीलाचल पहुंचे और श्रीचैतन्यने उनको आत्मसात कर लिया।

श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, श्रीकविराज कृष्णदास गोस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी, श्री-नरोत्तम ठाकुर महाशय आदि अनेक महानुभावोंको श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुकी प्रत्यक्ष कृपा प्राप्त हुई और उन्होंने उनके अभिन्न-स्वरूप श्रीचैतन्यचन्द्रकी प्राप्ति की।[1]

परम पूज्यपाद बाबा श्रीरामदासजी महाराजकी **'गुरुकथा प्रसंग'** में एक अद्भुत प्रसंग आया है। —एक भक्त श्रीनिताई-गौर-लीलाके रहस्यको जाननेकी इच्छासे बाबा महा-राजके पास प्रातःकाल आया। प्रणाम कर बाबाके पास बैठा। बाबा भी जान गये उसके हृदय-की लालसा। अतः उससे बोले कहो भाई ! कैसे आये तुम सवेरे-सवेरे ?

भक्तने कहा—बाबा ! आपके श्रीमुखसे मैंने अनेक बार सुना है कि 'निताई-निताई' कहने-सुननेसे हृदयमें श्रीगौर आविर्भूत हो उठते हैं। फिर बाबा ! यह भी आपके श्रीमुखसे सुनता आ रहा हूं कि नाम-नामी अभिन्न हैं। तो बाबा ! यह बताइये, यदि नाम-नामी अभिन्न हैं तो 'निताई-निताई' कहने-सुननेसे हृदयमें श्रीगौर क्यों उदित हो उठते हैं ? —नित्यानन्द ही हृदयमें उदित होने चाहियें ?॥



१—श्रीमन्नित्यानन्दप्रभुका विस्तृत चरित्र, उनके पार्षदोंके अद्भुत चरित्र तथा अनेक निताई-भक्तोंके चरित्र श्रीनिताईचाँद पुस्तकमें आस्वादनीय हैं।



बाबा थोड़े मुसकराये और बोले—'सुना तो तुमने ठीक है, किन्तु समझनेमें थोड़ी भूल है। फिर सुनो—श्रीनित्यानन्दप्रभु सत्स्वरूप हैं। उनकी सत्तासे ही समस्त विश्वकी सत्ता है। श्रीनिताईचाँदके उपादानसे ही श्रीगौर गठित हैं, और श्रीगौररसमें ही गठित है श्रीनिताई-कलेवर। अभिन्न हैं दोनों, एक को छोड़कर दूसरे की स्वतन्त्रता ही नहीं है। बाबाने आगे कहा—'व्रजके आश्रय-विषय तत्त्वोंका विवर्त है श्रीगौरांगस्वरूप और श्रीगौरांगस्वरूपका विवर्त्त है श्रीनित्यानन्द स्वरूप।'

भक्त अवाक् रह गया एवं बाबाके चरणोंमें प्रणामकर घर चला गया एवं इस रहस्यवाक्यका चिन्तन-मनन करता रहा।

वस्तुत: श्रीनित्यानन्द प्रभु अभिन्न-विग्रह हैं श्रीगौरांग महाप्रभुके। अति गूढ़तम तत्त्व है। श्रीगौर कृपाके विना इस तत्त्वका जानना जैसे कठिन है, उसी प्रकार श्रीनिताई-कृपाके विना श्रीगौरतत्त्वका जानना भी नितांत असम्भव है।

**श्रीमन्नित्यानन्दचन्द्रं करुणामयविग्रहम्।**
**चैतन्याभिन्नदेहं तं वन्दे सर्वजनप्रियम्॥**

---

## श्रीचैतन्यकृत स्तुति

**नाम रूपे तुमि नित्यानन्द मूर्तिमन्त।**
**श्रीवैष्णव-धाम तुमि ईश्वर अनन्त॥**
**जत किछु तोमार श्रीअंगे अलंकार।**
**सत्य सत्य सत्य भक्तियोग अबतार॥**
**स्वर्ण-मुक्ता-रूपा-कासा-रुद्राक्षादि रूवे।**
**नवविधा-भक्ति धरि आछ निज सुखे॥**
**नीच जाति पतित अधम जत जन।**
**तोमा हैते सभार हइल विमोचन॥**
**जे भक्ति दियाछ तुमि वणिक-सभारे।**
**ताहा वाञ्छे सुर-सिद्ध-मुनि योगेश्वरे॥**
**स्वतन्त्र करिया वेदे जे कृष्णेरे कहे।**
**हेन कृष्ण पार तुमि करिते विक्रय॥**

श्रीचैतन्य भागवत

---

# गौरांग-धाम—श्रीनवद्वीप

—आचार्य श्रीवासुदेवशरणजी 'विरही'

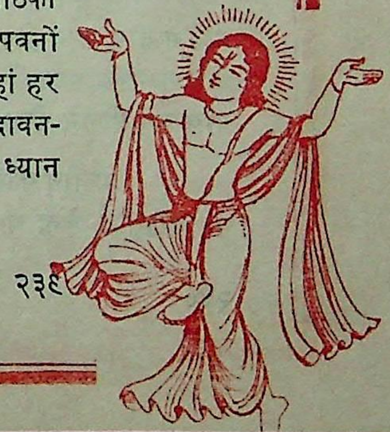


समस्त भगवत्-स्वरूप चिन्मय परव्योममें अपने-अपने धामोंमें अपने परिकरोंके सहित नित्य-लीला-परायण हैं। जब भी किसी भगवत्-स्वरूपका पृथ्वी लोकपर अवतार होता है, उस स्वरूपका धाम सर्वप्रथम आकर पृथ्वी तलपर अवतीर्ण होता है। क्योंकि चिन्मय-विभु-सर्वाधार श्रीभगवान्को धारण करनेकी शक्ति प्राकृत पञ्चभूतोंमें नहीं है। भगवद्धाम तत्त्वतः श्रीभगवान्की सदंश प्रधान सन्धिनी-शक्ति वृत्तिका विलास है। सर्वावतारी स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जब अवतीर्ण होते हैं, तब परव्योममें सर्वोपरि विराजमान श्रीकृष्णलोक भी पृथ्वीपर स्वयं रूपमें प्रकटित हुआ करता है। द्वारका, मथुरा एवं गोकुल—इन तीन नामोंसे वह अभिव्यक्त होता है। गोकुलका नाम है व्रज। उसे गोलोक, वृन्दावन एवं श्वेतद्वीप भी कहा जाता है।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण व्रजलीलामें प्रेम रसनिर्यासमें अपूर्ण रहीं तीन अभिलाषाओंकी पूर्त्तिके लिये जब शचीनन्दन श्रीगौर-सुन्दररूपमें अवतीर्ण होते हैं, तब उनका व्रजधाम भी श्रीनवद्वीपधाम नामसे गौड़देशमें प्रकटित होता है; अर्थात् श्रीवृन्दावनधाम ही श्रीनवद्वीपधाम रूपमें प्रकटित होकर श्रीगौरसुन्दर लीलोपयोगी उपादानोंको धारणकर सुशोभित होता है, जैसा कि श्रीनवद्वीपधामके ध्यानमें वर्णन किया गया है –

स्वर्धुन्याश्चारुतीरे स्फुरितमतिबृहत्कूर्मपृष्ठाभगात्रं
रम्यारामावृतं सन्मणिकनक-महासद्मसंघैः परीतम्।
नित्यं प्रत्यालयोद्यत्-प्रणयभर-लसत् कृष्णसंकीर्तनाढ्यं
श्रीवृन्दाटव्यभिन्नं त्रिजगदनुपमं श्रीनवद्वीपमीडे ॥

—श्रीगंगाके मनोहर तीरपर जो अति विशाल कच्छपकी पीठकी भांति हरित-कान्तिसे प्रकाशित हो रहा है, जो चारों ओर सुन्दर उपवनों तथा श्रेष्ठ मणिजटित सुवर्णमय भवनोंसे आवृत हो रहा है और जहां हर एक भवन नित्य प्रेमपूर्ण श्रीकृष्णनाम-संकीर्तनसे गूंज रहा है, श्रीवृन्दावनधामसे सर्वथा अभिन्न, त्रिलोकमें अनुपम उस श्रीनवद्वीपधामका मैं ध्यान करता हूं।





श्रीपाद रूपगोस्वामीने भी स्वरचित 'श्रीनवद्वीपाष्टक' में श्रीनवद्वीपधामको श्रीगोलोक या श्रीवृन्दावनधाम ही कहकर वर्णन किया है —

**यस्मै परव्योम वदन्ति केचित् केचिच्च गोलोक इतीरयन्ति ।**
**वदन्ति वृन्दावनमेव तज्ज्ञास्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ।।**

नाम-नामीकी भांति धाम तथा धामी अभिन्न होते हुए भी धामका एक असाधारण वैशिष्ट्य यह है कि धाम धामीको आश्रय देकर, तल्लीलाके उपयुक्त उपादानोंको यथा समय उपस्थित करता है । अनेक ऐसी लीलाएं रहस्यमयी श्रीभगवान् करते हैं, जिन्हें उनके सब परिकर भी नहीं जान पाते, किन्तु कोई भी लीला लीलाधारीकी धामसे छिपी नहीं रहती । श्रीनवद्वीपधामकी एक अपनी विशिष्टता यह है कि इस धाममें स्वयं श्रीभगवान्ने अवतीर्ण होकर अपनी मधुर नामावलीका प्रेमविह्वल होकर, ऊर्ध्वबाहु हो उच्चस्वरसे आस्वादन करते हुए इसकी पावन रजमें असंख्य पछाड़ें खाई हैं एवं न जाने कितनी अजस्र अश्रुधाराओंसे इस धामकी धरणीको अभिषिक्त किया है, कर रहे हैं ।

कलिहत जीवोंको तो कलिमें दुरूह भवसागरसे अनायास उत्तीर्ण होनेका परमोपाय या साध्य-साधन रूपमें श्रीकृष्णनामसंकीर्तनका मधुरातिमधुर सन्देश इस नवद्वीपधामने ही दिया है । विशेषत: नवद्वीपविहारीकी कृपा-शक्ति प्राप्तकर गौड़ीय गोस्वामिवृन्दने व्रजमण्डलमें आकर व्रजविहारीकी लुप्त प्राय लीलास्थलियोंको प्रकाशित कर, व्रजलीलारसमय शक्तिसाहित्यकी रचना कर जीवजगत्को व्रजधामके उत्कर्षकी प्रथम सूचना दी है, व्रजगौरव प्रसारित किया है ।

नवद्वीपधाम नित्य चिन्मय धाम है । गौर-हरि-गुरुकृपाजन पूत-नेत्रोंसे इसके स्वरूपदर्शन सम्भव हैं, प्राकृत-नेत्रोंसे इसको देखना नितान्त असम्भव है । एक्सरे मशीनमें लगे लैन्स जैसे बाहरी अंगोंका चित्र न लेकर भीतरी अवयवोंका चित्र प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार भगवत्कृपा-तादात्मता-प्राप्त नेत्र भी बाहरी रूप-रेखाओंको न देखकर धामके अन्दरूनी उपकरणों— धामी, उसके परिकर, तद्वर्ती लीलादिका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ।

### श्रीनवद्वीपका प्रचीन इतिहास--

त्रिभुवन-पावनी श्रीगंगाके पूर्व तथा पश्चिमपारमें अवस्थित नौ द्वीप हैं—सीमन्तद्वीप, गोद्रुम द्वीप, मध्य द्वीप, कोल द्वीप, ऋतु द्वीप, जह्नु द्वीप, मोदद्रुम द्वीप, रुद्र द्वीप–इन आठ द्वीपोंके बीच कमलके मध्यकी पुष्पकर्णिकाके समान सर्वश्रेष्ठ अन्तर्द्वीप-नवद्वीप अवस्थित है । यह लग-भग पांच वर्ग मीलमें फैला हुआ है ।

प्राचीन कालमें सेनराज-वंशकी यह राजधानी रही और बंगालमें संस्कृत शिक्षाका यह अद्वितीय केन्द्र था । राज-महल तो ब्राह्मण पुकुर (सिमुलिया) में था, किन्तु सभासदगण

नवद्वीपमें ही निवास करते थे। श्रीलक्ष्मणसेनके सभासद महा मनस्वी थे। इनके ही राज्यकालमें श्रीकृष्णलीला-विषयक रचनाओंका उत्कर्ष स्थापन हुआ। स्वयं लक्ष्मणसेन तथा उसका पुत्र भी कवि थे। सभासदगण कृष्णलीला वर्णन करते और राजा उत्कण्ठित होकर उसे सुनता। व्रज-लीलाकी सर्वोत्कृष्टता तथा वैष्णव-पदावलीकी आधार शिला लक्ष्मणसेनके समयमें ही रखी गई। धीरे-धीरे नवद्वीपका विद्यागौरव समस्त भारतमें छा गया। विद्या-चर्चाका प्रधानतम केन्द्र हो उठा नवद्वीप। स्मृति, न्याय तथा तन्त्रशास्त्रमें नवद्वीपकी प्रधानता तो लग-भग १६०० ईसवी सन् तक अक्षुण्ण बनी रही। नव्य न्यायकी पाठ-समाप्ति तो नवद्वीपमें ही मानी जाती थी।

श्रीमहाप्रभु गौरांगके आविर्भावके पश्चात् तो सबको मुक्त-कण्ठसे कहना पड़ा— **'भूमिस्वर्ग नवद्वीप पृथिवीमण्डले॥'** श्रीजयानन्द॥ **'सप्तद्वीपमध्ये सार नवद्वीपधाम'**—॥ श्री-कृत्तिवास॥ **'नवद्वीप हेन ग्राम त्रिभुवने नाइ॥** कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामी॥

**नौ द्वीपोंकी अवस्थिति—**

१. **अन्तर्द्वीप**—इसके अन्तर्गत प्राचीन मायापुर, भारुइ भांगा, (यहां देवयान गंगा गोविन्दसिंहका प्राचीन मन्दिर था) तथा निदया घाट है—इसी घाटसे गंगा पार होकर श्रीमहा-प्रभु कोटाया गये थे।

२. **सीमन्त द्वीप**—में वामुनपुकुर, सरडांगा, बल्लालदीघि, सिमुलिया-सीमन्तिनीदेवी आदि आते हैं।

३. **गोद्रुम-द्वीप**—में गादिगाछा, सुवर्ण विहार, स्वरूप गंज हैं।

४. **मध्यद्वीप**—में माजिदा, पान शिला एवं भालुकादि हैं।

५. **कोलद्वीप**—में (गङ्गाके पश्चिम पार नवद्वीप शहरकी ओर) कुलिया या कोवला, तेवरिका दक्षिण तथा समुद्रगड़ और चांपाहाटि आते हैं।

६. **ऋतु द्वीप**—राहुतपुर तथा विद्यानगर तक माना गया है।

७. **मोदद्रुम द्वीप**—में मामगाछि, महतपुर तथा ब्राह्मणीतला हैं।

८. **जह्नु द्वीप**—में जाह्नगर, पारुलिया तथा सुलुण्ठ आते हैं।

९. **रुद्रद्वीप**—में रादुपुर (रुद्रडाङ्गा), शंकरपुर तथा पूर्वस्थली हैं। महत्पुर या मातापुरका वर्तमान नाम है माधाई पुर। रुद्रद्वीप, बेलपुकुरमें श्रीमहाप्रभुके नाना श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीका निवासस्थान था तथा ब्राह्मण-पुकुरमें चाँदकाजीका भवन था।





## श्रीनवद्वीपके प्राचीन स्थान--

**१. ब्राह्मण पुकुर**—इस ग्रामके उत्तरमें सीमन्तदेवीका पीठस्थान है। यहां बल्लालसेनके राजमहल थे। बल्लाल टीला और बल्लाल बावरी उसका साक्ष्य दे रही हैं।

**२. सुवर्ण विहार**—ग्राममें श्रीसुवर्णसेन राजाके महल चिह्न हैं। पालवंशीय राजाओंका राजत्व यहां था।

**३. माजिदा**—ग्रामके पास हंसवाहन-विलमें श्रीहंसवाहन शिव विराजमान हैं, जो चैत्री-संक्रान्ति पर तीन दिन तक ऊपर आकर दर्शन देते हैं।

**४. ब्राह्मण पाड़ा**—ग्रामके दक्षिण स्थित देवपल्ली ग्राममें प्राचीन श्रीनृसिंहदेव दर्शनीय हैं।

**५. विद्यानगर**—यहां श्रीवासुदेव सार्वभौम तथा गङ्गादास पण्डित निवास करते थे।

**६. रामपुर**—यहां विश्राम तलापर श्रीमहाप्रभु विश्राम करते थे। यहां श्रीमहाप्रभु-श्रीविग्रह दर्शनीय है।

**७.मामग्राछि**—यह जान्नगरके उत्तरमें स्थित है। यहां तीन श्रीपाट हैं--(१) श्रीश्री-राधागोपीनाथ सेवित हैं, एवं यहां एक प्राचीन गकुल वृक्ष है। (२) श्रीमती नारायणीदेवीका श्रीपाट है एवं (३) श्रीवासुदेवदत्तका श्रीपाट है। दत्त ठाकुरके सेवित श्रीराधामदनगोपाल-श्रीविग्रह श्रीसारंग मुरारि प्रभुके श्रीपाटमें दर्शनीय हैं।

**८. जान्नगर**—की पूर्व दिशामें भागीरथी बहती थी। उसके उत्तरमें मोदद्रुम द्वीप है। इस स्थानपर जह्नु मुनिने एक चुल्लूमें समस्त गङ्गाका पान किया था। सन् १८४६ तक यहां विशाल दस मन्दिर थे और १०० संस्कृत विद्यालय थे।

**९. सरडांगा**—काजी नगरके उत्तरमें राजापुर नामसे विख्यात है। यहां श्रीजगन्नाथ सेवित हैं। सूरवंशीय राजाओंका निवासस्थान था। कालापहाड़ने यहां उपद्रव किये थे।

**१०. काजी-समाधि**—यहां काजीकी समाधिके पास प्राचीन गूलरका वृक्ष (श्रीमहा-प्रभुके समयका) अभी मौजूद है।

**११. मालञ्च पाड़ा**—यहां श्रीसनातनमिश्र वास करते थे। श्रीविष्णुप्रियादेवीका यह पावन जन्मस्थान है।

**१२. श्रीधर-वाड़ी**—द्वादश गोपालोंमें एक श्रीश्रीधर खोला बेचाका यह निवास-स्थान है।

**श्रीनवद्वीपमें प्रचीन श्रीविग्रह--**

बूड़ा शिव, योगनाथ शिव, एलाने शिव, बालकनाथ शिव--ये चार शिव-विग्रह हैं। सिद्धेश्वरी पोड़ा मां, विदग्धजननी, ओलादेवी, पाड़ार मां देवी, आगमेश्वरी, मङ्गलचण्डी, सिमलादेवी, मनसादेवी, सीमन्तदेवी, सिद्धेश्वरी (समुद्रगड़)—ये १० देवी-विग्रह हैं। श्रीश्री-रामसीता, श्रीश्रीराधावल्लभ, श्रीवृन्दावनचन्द्र, श्रीनवद्वीपनाथ आदि श्रीविग्रह दर्शनीय हैं। इस प्रकार श्रीनवद्वीपधाममें अनेक सिद्ध पुरुषोंकी समाधियां एवं आश्रम भी दर्शनीय हैं।

मणिपुर राजबाड़ीमें मणिपुरके राजा भाग्यचन्द्र सिंह द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौराङ्ग-मूर्ति—'श्रीअनु-महाप्रभु' नामसे विराजमान है तथा रानी धनमञ्जरीदेवी द्वारा सुवर्णमय मन्दिरमें श्रीकृष्णचन्द्र सेवित हैं। श्रीहरिभक्ति प्रदायिनी सभा-स्थलमें श्रीव्रजनाथ विद्यारत्न द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौरमूर्ति सेवित है। श्रीधामेश्वरमें, श्रीवासआंगनमें, समाजबाड़ीमें, गोविन्द-बाड़ीमें, इत्यादि अनेक स्थलोंपर श्रीश्रीमन्नित्यानन्द-गौरांग, श्रीगौरांग-विष्णुप्रिया-लक्ष्मीप्रिया तथा श्रीगौरगोविन्दके श्रीविग्रह दर्शनीय हैं।

ऐसे नित्यधाम श्रीनवद्वीपको निम्नलिखित शब्दोंमें हम नमस्कार करते हैं--

**श्रुतिश्छान्दोग्याख्या वदति परमं ब्रह्मपुरकं**
**स्मृतिर्वैकुण्ठाख्यं वदति किल यद्विष्णुसदनम्।**
**सितद्वीपञ्चान्ये विरलरसिकोऽयं व्रजबनं**
**नवद्वीपं वन्दे परमसुखदं तं चिदुदितम्॥**

---श्रीनवद्वीप शतक, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती

'छान्दोग्य नामक उपनिषद्में जिसे ब्रह्मपुर नामसे कहा गया है, स्मृति जिसको विष्णु-सदन वैकुण्ठ कहकर कीर्त्तन करती है, अपरापर महाजन जिसे श्वेतद्वीप एवं विरले रसिक भक्त जिसको व्रजवृन्दावन नामसे अभिहित करते हैं, उस चिच्छक्तिसे प्रगटित परम सुखद श्रीनवद्वीप धामकी मैं वन्दना करता हूँ।'







# श्रीगौरांग एवं श्रीधाम-वृन्दावन



महाप्रभु श्रीगौरांगदेवका वृन्दावन-धामसे वैसा और उतना ही अखण्ड, अविच्छेद्य सम्बन्ध है, जैसा और जितना व्रजेन्द्रनन्दन व्रजविहारी श्रीकृष्णका। वृन्दावन-धामकी लीला-पूर्त्तिके लिये ही श्रीकृष्ण नवद्वीपमें श्रीकृष्णचैतन्यरूपमें अवतीर्ण हुए—

**नन्दसुत बलि जारे भागवते गाई।**
**सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्यगोसाञि ॥** श्रीचै० च० १।२।६॥

जब व्रजविहारी श्रीकृष्ण श्रीचैतन्यरूपमें लीला करते हैं, तब उनका नित्यधाम श्रीवृन्दावन भी श्रीनवद्वीपधाम रूपमें आत्म-प्रकट करता है। दोनों लीलाधारी नायक अभिन्न हैं, दोनों लीला-स्थलियां अभिन्न हैं तथा व्रजपरिकर ही नवद्वीप लीलाके परिकर रूपमें अपने नित्य-नायकको अशेष-विशेष लीलारस आस्वादन कराते हैं। भेद केवल इतना है, व्रजमें व्रज-विहारी श्रीकृष्ण राधाप्रेमके विषयरूपसे रसास्वादन करते हैं और नवद्वीपमें नवद्वीपविहारी श्रीचैतन्यदेव राधाप्रेमके आश्रयरूपमें रसास्वादन करते हैं अथवा जिस रसका आस्वादन व्रजमें विषय होनेके कारण श्रीकृष्ण न कर सके, उस रसके नवद्वीपमें उन्होंने आश्रय बनकर अपनी चिर आस्वादन आकांक्षाओंको पूर्ण किया।

यदि श्रीगौरांगदेवके चरित्रपर हम ध्यान दें तो आदि-लीला, मध्य-लीला तथा अन्त्य-लीलामें वे कभी वृन्दावनको भुला न सके, सदा कृष्ण-स्फूर्त्तिके साथ वृन्दावनकी अनुभूति, वृन्दावनकी तीव्र उत्कण्ठा, उत्कट-विरह उन्हें बेचैन करता रहा। अन्त्य-लीलामें तो राधा-भावाविष्ट अवस्थामें वे ये प्राय भूल ही गये कि वे नीलाचलमें रह रहे हैं या वृन्दावनमें। कृष्णप्रेम-का अंकुर उदित होनेपर ही कृष्णधामकी प्रीति उमड़ पड़ती है और उसमें ऐसी आसक्ति उत्पन्न हो उठती है कि शरीर चाहे जहां रहे, मन वृन्दावनसे बाहर नहीं जा सकता। कृष्णप्रेमांकुर उदित होनेका ऐसा अनुभाव या लक्षण ही है। विशेषतः जब कृष्णनाम-गानमें रुचि उदित होती है, फिर नामीके नाम-गुणमें आसक्ति तथा कृष्णधाममें प्रीति उभरे विना रह ही नहीं सकती। श्रीरूपगोस्वामिपादने उन भक्तोंके लक्षणोंका इस प्रकार वर्णन किया है, जिनमें प्रेमांकुर उत्पन्न होता है—

**क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।**
**आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ॥**

**आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ।**
**इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावांकुरे जने ।।**

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः १।३।२५-२६

—जिनके चित्तमें कृष्णप्रेमका अंकुर मात्र उत्पन्न होता है, उनमें क्षोभ-शून्यता, अव्यर्थकालता (किसी क्षणको भी भगवन् विषयको छोड़कर व्यर्थ प्रयोग न करना) विराग, मान-शून्यता, सदैव भगवत्कृपाकी प्राप्तिकी आशा, भजनमें उत्कण्ठा, नाम-गानमें सदा रुचि, भगवद्गुण-लीला कथा कहनेमें आसक्ति, भगवद्धाम—श्रीवृन्दावनमें प्रीति इत्यादि ये सब लक्षण होते हैं।

प्रेमाकुंर-जात भक्तोंमें जब धामके प्रति प्रीति स्वाभाविक जागरूक हो उठती है, फिर प्रेमावतार, प्रेम-मूर्त्ति श्रीमहाप्रभु श्रीवृन्दावनको, विशेषतः अपनी लीलास्थलीको कैसे भूल सकते हैं ?

लोक-शिक्षा हित श्रीमहाप्रभु गया पधारे, श्राद्धादिका तो उपलक्ष्य था। वस्तुतः प्रेम-प्रकाश-विकाशके लिये श्रीगुरुपादाश्रयकी अनिवार्यता तथा दीक्षाके महत्वको प्रकाशित करनेके लिये आप गया पधारे, क्योंकि व्रजप्रेम कल्पतरुके प्रथम अवतार श्रीपाद-माधवेन्द्रपुरी महाराज, जिनके आनुगत्यमें चैतन्य-सम्प्रदायका प्रवर्तन श्रीमहाप्रभुका अभीष्ट था, उनके परम कृपापात्र श्रीपाद ईश्वरपुरी उन दिनों गया पधारे हुए थे। श्रीमहाप्रभु तो सर्वज्ञ हैं ना ! आपने वहां जाकर श्रीपाद ईश्वरपुरीजीसे मन्त्र दीक्षा-लीला सम्पन्न की। प्रभुने श्रीगुरुदेवसे कृष्णप्रेमकी प्रार्थना की—

**हेन शुभदृष्टि तुमि करह आमारे।**
**येन आमि भासि कृष्णप्रेमेर सागरे।।** श्रीचै० भा० १।१२।१०८

कुछ दिन दीक्षा-मन्त्रका ध्यान-चिन्तन करनेके बाद प्रेमाविष्ट हो उठे और उच्चस्वरमें रोदन करते हुए यही कहने लगे—'मेरे जीवन-प्राण श्रीकृष्ण कहां चले गये ? मेरे प्राणोंके चोर कृष्ण किधर गये हैं ?' शिष्यसमाज प्रभुकी यह अवस्था देखकर अति विस्मित हो उठा। अनेक यत्न करनेपर उन्होंने प्रभुको स्वस्थ किया। झट ही उसी समय सबने प्रभुको नवद्वीप चलनेकी प्रार्थना की, ताकि कहीं ये फिर न विरह-व्याकुल या अस्थिर हो उठें। किन्तु उस प्रेमके प्रथम-प्रकाशमें ही श्रीप्रभुने कहा—'आप सब लोग घर लौट जाइये, मैं अब संसारमें प्रवेश न करूंगा। मथुरा-व्रजमण्डलमें ही मैं निश्चित जाऊंगा, जहां मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र मिलेंगे—

**प्रभु बोले-तोमरा सकले याह घरे।**
**मुञि आर न याइमु संसारभितरे।।**
**मथुरा देखिते मुञि चलिव सर्वथा।**
**प्राणनाथ मोर कृष्णचन्द्र पाङ यथा।।**

श्रीचै० भा० १।१२।१२२-२३





शिष्यगण कब इन्हें छोड़कर जाने वाले थे, किन्तु श्रीवृन्दावनकी तीव्र उत्कण्ठाका प्रभुमें सम्वरण कहां ? बहुत ही सवेरे अँधेरेमें चोरी-चोरी आप मथुराकी ओर प्रेमावेशमें दौड़ चले। काफी दूर निकल गये। तब आकाश-वाणी हुई कि 'हे द्विजमणि ! अभी मथुरा जानेका समय नहीं आया है। समय आनेपर आप मथुरा जाना। अब तो आप नवद्वीप अपने घर पधारें।' आकाशवाणी सुनकर श्रीमहाप्रभु निवृत्त हुए और निवासस्थान पर लौट आये। आप शिष्योंके साथ नवद्वीप लौट आये।

गयासे नवद्वीप लौटनेपर तो जो प्रेमावेश श्रीमहाप्रभुमें उदित हुआ, कृष्ण-मिलन विरह-वेदनामें जो आपकी असाधारण दशाएं सामने आई, एक लम्बी कथा है। एकमात्र यह धुन सवार थी—'**कोथा गेले पाइब से मुरलिवदन।।**' हर भक्तसे, हर मिलने वाले से यही पूछते थे—'कृष्ण कहाँ गये ?' दिन रात श्रीकृष्णको वृन्दावनमें पानेके लिये व्याकुल रहते, तड़पते रहते।

'संसारमें अब मैं प्रवेश नहीं करूंगा।' गृहस्थमें रहकर भी, वैष्णव मण्डलीमें रहकर भी इस बातको भूले नहीं गौरसुन्दर। नवविवाहिता किशोरी श्रीविष्णुप्रियाजीको बिलखता, तड़फता छोड़कर, असहाय वृद्धा माताको मरणतुल्य वेदना-सागरमें ढकेलकर आप संसारको त्यागकर चल ही दिये आधी रातको।

कोटायामें जाकर श्रीपाद केशवभारतीसे संन्यास ग्रहण किया। विश्व-विमोहनकारी कारी-घुंघरारी-सटकारी अलकावलीको तिलांजली दे मुण्डित मस्तक हो गुरुदेवसे आज्ञा ले प्रेमावेशमें भाग चले, किधर ?—उधर, अपने घरकी ओर !

**संन्यास करि प्रेमावेशे चलिला वृन्दावन।**
**राढ़ देशे तिन दिन करिला भ्रमण।।**

वृन्दावनकी ओर 'कृष्ण-कृष्ण' 'हरि-हरि' बोलते हुए भागे जा रहे हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु, आचार्य चन्द्रशेखर तथा श्रीमुकुन्द पीछे-पीछे भाग रहे हैं। चैतन्य-लीलाके सम्पादक श्री-नित्यानन्द प्रभु कुछ और चाह रहे हैं—एक बार ले जाना चाहते हैं अभागिनी शची माताके सामने उसकी प्राण-रक्षाके लिये, एकबार नवद्वीप-वासियोंके क्रन्दन-कोलाहलकी वज्रपात-गर्जनमयी अजस्र अश्रुधाराओंकी मूसलाधार वर्षामें मुण्डनके बाद स्नान करानेके लिये। उपाय न था वञ्चनाके विना। गैया चराते गोप-बालकोंसे कहलवाकर श्रीमहाप्रभुको वृन्दावनके पथसे हटा गङ्गाके पथपर ले आये। जब इन्हें कुछ बाह्य-ज्ञान हुआ, मुड़कर देखा, तो श्रीनित्यानन्द पास खड़े हैं। पूछा—'श्रीपाद ! आप कहां चल रहे हैं ?' श्रीनित्यानन्दने कहा—'प्रभो ! आपके साथ वृन्दावन। प्रभुने जब यह पूछा कि वृन्दावन कितनी दूर है, तब श्रीनिताईचाँदने गङ्गाको यमुना बताकर प्रभुको वृन्दावन निकट होनेकी ढाढस बँधाई।

अहो ! वृन्दावन-आवेश ! गङ्गास्नान कर रहे हैं प्रभु और स्तवपाठ कर रहे हैं श्रीयमुना का। स्नानकर चुके कि श्रीअद्वैताचार्य दूसरी (सूखी) कौपीन ले आकर नौकासे उतरे। श्रीअद्वैताचार्यने प्रणाम किया। श्रीमहाप्रभु बोले—'आप अद्वैताचार्य हैं ना ? आप यहां कैसे ? आपने कैसे जाना कि मैं वृन्दावनमें हूं ? श्रीआचार्यने कहा—आप जहां रहो, वहीं तो है वृन्दावन।'

श्रीमहाप्रभुका आवेश हलका हुआ, जान गये कि श्रीनिताईचाँदने मेरी वञ्चना की है। श्रीअद्वैतके घर पधारे। शची माता, नवद्वीपवासी वहां आये प्रभुको देखने-मिलनेके लिये। अद्भुत कथा है महान्-व्यथा भरी। माता शची तथा समस्त भक्तगण अति व्याकुल थे कि प्रभु अब शान्तिपुरसे कहीं अन्यत्र जाना चाहते हैं। श्रीमहाप्रभुने सबको एक साथ बैठाया और बोले—

**तोमा सभार आज्ञा विने चलिलाङ वृन्दावन।**
**याइते नारिल, विघ्न कैल निवर्त्तन॥**

हे माता ! हे वैष्णववृन्द ! देखो, मैं आपकी आज्ञा लिये विना ही वृन्दावन चल पड़ा था, इसलिये विघ्न आ पड़ा और मैं वहां नहीं जा सका। वृन्दावन जानेसे पहले माता तथा वैष्णववृन्दकी आज्ञा मुझे अवश्य लेनी चाहिये थी।'

माता शचीने सर्वज्ञ प्रभुकी अन्तर-प्रेरणा पाकर उन्हें नीलाचल—श्रीजगन्नाथपुरीमें निवास करने की आज्ञा दी। युक्त भी थी क्योंकि वृन्दावन तो कृष्णप्रेमविषय-प्रधान धाम है। वहां रहकर श्रीगौरकृष्ण कृष्णप्रेमाश्रय-प्रधान रसका आस्वादन कैसे कर पाते ? श्रीमहाप्रभु नीलाचलकी ओर चले। प्रेमावेश तथा कृष्णदर्शन-लालसा अस्थिर कर रही है आपको। श्रीनित्यानन्दादि भक्तगण पीछे-पीछे हैं। रास्तेमें वृन्दावनके श्रीसाक्षी गोपालका चरित्र तथा श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी द्वारा श्रीगिरिराज तलहटीसे श्रीगोपाल ( श्रीनाथजी ) के आविर्भावका बखान करते जा रहे हैं श्रीमहाप्रभु वृन्दावन-स्मृति-सन्दर्भ में।

श्रीप्रभु नीलाचल रहे, फिर दक्षिण यात्रा समाप्तकर नीलाचल लौट आये। प्रभुने आते ही वृन्दावन जानेकी इच्छा प्रकट की। श्रीसार्वभौम, श्रीरायरामानन्दके अनुरोधसे रुक गये। दो वर्ष निकल गये, फिर महाप्रभु वृन्दावनकी ओर चल पड़े। यह दिन था विजयादशमी संवत्-१५७१ का। रास्तेमें निवास-प्रसादादिकी सब व्यवस्था राजा प्रताप-रुद्रने की। श्रीगदाधर पण्डित गौर-गत प्राण थे, वे भी साथ चल रहे थे। जब चित्रोत्पला नदीसे नौकापर बैठकर पार होने लगे, महाप्रभुने पण्डित गदा-धरको साथ चलनेसे निषेध किया। उन्हें मूर्छित अवस्थामें छोड़कर प्रभु चले गये। अनेक भक्त-शिष्यगण प्रभुके साथ थे। उड़िया देशके सीमाधिकारी मद्यप मलेच्छ यवन-राजको दर्शन दे प्रभुने उसका उद्धार किया। रामकेलि ग्रामसे कनाई नाटशाला होकर प्रभु वृन्दावन न जाकर नीलाचल लौट आये।





नीलाचल वासी भक्तोंने जब वृन्दावन न जाकर लौट आनेका कारण पूछा, तब आपने रामकेलि ग्राममें श्रीश्रीरूप-सनातनके मिलनकी बात सुनाई और यह भी कहा कि श्रीसनातनने मुझे एक शिक्षा दी, जिसे विचारकर मैं लौट आया, वह शिक्षा थी—

**यार संगे हय एइ लोक लक्ष कोटि।**
**वृन्दावन यावार एइ नहे परिपाटी ॥**

श्रीचै० च० २।१६।२६४

'प्रभो ! आपके पीछे-पीछे असंख्य लोग चल रहे हैं, वृन्दावन जानेकी यह परिपाटी नहीं है। वृन्दावनका रस तो अकेले या दो-एक सजातीय साथियोंके साथ जानेपर आस्वादित होता है।' श्रीसनातनके ये वचन मेरे मन लगे। अत: मैं लौट आया, अब जब वृन्दावन जाऊंगा तो अकेला ही जाऊंगा। श्रीमहाप्रभुने यह भी कहा कि पण्डित गदाधरको मैं छोड़ गया था, उसको बहुत दुख हुआ। अत: मैं वृन्दावन न जा सका, विघ्न पड़ गया। श्रीगदाधरजीने प्रभुके चरण पकड़ लिये और कहा—

**तुमि याहां याहां रह, ताहां वृन्दावन।**
**ताहां जमुना गंगा सर्वतीर्थगण ॥**
**तभु वृन्दावन जाह लोक शिखाइते।**
**सेइ त करिवे तोमार येइ लय चित्ते ॥**

'करुणामय ! आप जहां भी रहो, वहीं वृन्दावन है। वहीं जमुना-गङ्गा तथा समस्त तीर्थ निवास करते हैं। फिर भी प्रभो ! आप बार-बार जो वृन्दावन जानेका यत्न करते हैं, साधक-समाजको वृन्दावन-जानेकी शिक्षा देना ही आपका प्रयोजन है। वृन्दावन जानेके लिये कितनी उत्कण्ठा होनी चाहिये, वैष्णव-आशीर्वादकी कितनी आवश्यकता है उसमें तथा फिर वृन्दावन जानेकी परिपाटी क्या है—ये सब आप अपने आचरण द्वारा ही जगत्को शिक्षा दे रहे हैं।' श्रीपण्डितने आगे कहा—'प्रभो ! मैं जान गया हूं, आप अपने प्रिय पार्षदों—रूप-सनातनको मिलने गये थे। आप स्वतन्त्र हो। जब वृन्दावन जाना चाहोगे, कौन रोक सकता है आपको ? कैसी विघ्न-बाधा ?

वह समय (१५१४ सन्) आ पहुँचा, कि महाप्रभु एक ब्राह्मण बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर वृन्दावनकी ओर रवाना हुए। एक दिन पहले शामको श्रीजगन्नाथके दर्शन कर उनसे आज्ञा मांग ली थी। झाड़खण्डके मार्गसे झुण्डोंके झुण्ड व्याघ्र, गेंडा, हाथी आदि हिंसक जंगली पशुओंको भी नाम-प्रेमदान करते हुए, काशी होते हुए मथुरा पहुँचे। दूरसे मथुरा नगरीको दण्डवत् प्रणाम किया। विश्रान्तघाट पर स्नानकर जन्मस्थान पर श्रीकेशव भगवान्के दर्शन कर प्रेमाविष्ट हो उठे। श्रीमहाप्रभुके सात्त्विक-प्रेमविकारोंको देख-देखकर मथुरावासी आश्चर्य-चमत्कृत हो उठे। श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीके कृपापात्र एक वृद्ध ब्राह्मणसे भेंट हुई। दोनों मिलकर अति आनन्दित हुए।

उस ब्राह्मणके साथ श्रीमहाप्रभुने यमुनाके चौबीस घाटोंपर स्नान किया। मथुराके समस्त तीर्थ स्थानोंके दर्शन किये। श्रीमहाप्रभुके अपरूप रूप एवं प्रेमावेशको देखकर असंख्य लोग आपके पीछे-पीछे चलते थे। मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावनादि सब स्थानोंपर प्रभु पधारे और उन स्थानोंको देख-देखकर प्रेमाविष्ट होकर उच्च हुंकार करते। वनके पशु-पक्षी, गाँए श्रीमहाप्रभुको घेर लेतीं। इनके श्रीअंगको चाटने लगतीं।

जब आप वृन्दावन आये, तो अपने भावावेशका संवरण न कर सके। यहांके स्थावर-जंगमोंको अपने बन्धु-बान्धवोंके समान आलिंगन कर-कर रोते-रोते ये मिले। उच्च कृष्णध्वनि जब करते तो यहांके वृक्ष-लतादि प्रतिध्वनि रूपमें कृष्ण-ध्वनि करते। —

**प्रभु देखि वृन्दावनेर स्थावर जंगम।**
**आनन्दित बन्धु जेन देखे बन्धुगण।।**
**स्थावर जंगम मिलि करे कृष्णध्वनि।**
**प्रभुर गम्भीर स्वरे जेन प्रतिध्वनि।।**
**मयूरेर कण्ठ देखि कृष्ण स्मृति हैला।**
**प्रेमावेशे महाप्रभु भूमिते पड़िला।।**

श्रीचै० च० २।१७ परिच्छेद

मोरकण्ठको देखकर श्रीमहाप्रभु मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर जाते। नवद्वीप-नीलाचलादि अन्य स्थानोंपर 'वृन्दावन' का नाम सुनते ही श्रीमहाप्रभु प्रेमाविष्ट हो उठते थे, आप अब साक्षात् वृन्दावनमें भ्रमण कर रहे हैं, इनकी प्रगाढ़ प्रेमाविष्टता, व्याकुलता, सात्त्विक विकारोंकी बाढ़ग्रस्त दशाका कौन अनुमान कर सकता है, कौन उल्लेख कर सकता है ? केवल दिग्दर्शन मात्र ही किया-कराया जा सकता है —

**वृन्दावने हैल प्रभुर यतेक विकार।**
**कोटि ग्रन्थे अनन्त लिखे ताहार विस्तार।।**
**तबु लिखिबारे नारे तार एक कण।**
**उद्देश करिते करि दिग्दर्शन।।**

श्रीचै० च० २।१७।२१७-१८

श्रीवृन्दावन-भ्रमणके बाद श्रीमहाप्रभु आरिट ग्राम में आये और लोगोंसे राधाकुण्ड एवं श्यामकुण्डका पूछा। किन्तु वहां कोई भी इन कुण्डोंको न जानता था। मथुरावासी वह सुनौड़िया ब्राह्मण भी इस बारेमें कुछ न जानता था। श्रीमहाप्रभु जान रहे थे कि राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड तीर्थ लुप्त हो गये हैं। आप सर्वज्ञ हैं, झट एक धानके खेतमें आप घुस गये। वहां थोड़ा जल विद्यमान था। आपने उस जलमें स्नान किया और राधाकुण्डकी स्तुति करने लगे। आपने वहांकी रज लेकर तिलकरूपमें धारण की और कुछ रज





उठाकर भट्टाचार्यको दी कि साथ ले चलो। इस प्रकार आपने राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड इन दोनों तीर्थोंको प्रकटित किया, जो आज एक महान् कुण्डोंके रूपमें व्रजके मुख्य तीर्थ हैं।

इस प्रकार व्रजके समस्त तीर्थोंका दर्शनकर फिर मथुरामें आकर उसी ब्राह्मणके घर निवास किया। मथुरामें असंख्य लोग आकर श्रीमहाप्रभुको घेरे रहते। अतः आपने अक्रूरघाटपर जाकर निवास किया। वहांसे भी सवेरे वृन्दावन चले आते, कभी इमलीतलापर, कभी चीरघाट, कभी केशीघाट इन स्थानोंपर एकान्तमें बैठ नाम-संकीर्तन करते और वृन्दावनकी शोभाको देखकर लीलामाधुरी-स्फूर्तिके आनन्दमें विह्वल हो उठते।

उन दिनों वृन्दावन एकमात्र निर्जन वन था। कहीं-कहीं कोई खेतिहर, ग्वालोंकी एक-आध झौंपड़ी थी। समस्त तीर्थ स्थान लुप्त हो चुके थे। श्रीमहाप्रभुके दर्शनकर मथुरा एवं व्रजमण्डलके लोग ऐसा अनुभव करने लगे थे कि श्रीकृष्ण ही फिर आविर्भूत हो गये हैं। सब श्रीमहाप्रभुको देखते ही इनके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर देते। प्रभुको भिक्षा करानेके लिये ब्राह्मणके घर भीड़ लगी रहती और रोज ब्राह्मणके साथ लोगोंकी कहन-सुनन हो जाती। ब्राह्मणके लिये बड़ी समस्या सी खड़ी होगई।

एक दिन प्रभु प्रेमाविष्ट होकर अक्रूरघाटपर वैकुण्ठ दर्शन-लीलाका स्मरणकर यमुनामें कूद पड़े। अथाह जल था। ब्राह्मण चिल्लाने लगा, तब भट्टाचार्यने जाकर प्रभुको पकड़ा और बाहर ले आया। अब तो ब्राह्मण भयभीत हो उठा और सोचने लगा कि प्रभुका मन तो वृन्दावन छोड़कर जानेको नहीं, किन्तु अब इनका यहांसे चला जाना ही उचित है, क्योंकि प्रेमाविष्ट दशामें इनको सम्भालना हम लोगोंके लिये कठिन है।

भट्टाचार्यसे सलाह कर, कृष्णदास, जो इमलीतलापर आकर प्रभुके शरणापन्न हुआ था, उन दोनके साथ प्रभुको सोरों क्षेत्रमें गंगास्नानके लोभसे रवाना किया। अति विरहातुर हो, प्रभु वृन्दावनमें मनको रखकर प्रयाग आये। श्रीरूपगोस्वामीको दस दिन रहकर शिक्षा दी। जब आप नीलाचल जानेको तैयार हुए तो आपने श्रीरूपगोस्वामिको कहा—रूप! तुम अब वृन्दावन जाओ, फिर नीलाचल आकर मुझसे मिलना। श्रीरूप प्रभु-आज्ञा पाकर (सन् १५१५) वृन्दावन चले आये।

काशीमें श्रीसनातन गोस्वामी भी आकर मिले और महाप्रभुने उन्हें साध्य-साधन, अभिधेय, प्रयोजन तथा सम्बन्ध तत्त्वादिकी शिक्षा दी, जिसका विशद वर्णन मिलता है श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्य लीलामें। श्रीप्रभुने श्रीहरिभक्ति विलासका समस्त वर्णनीय विषय श्रीसनातनको संक्षेपसे कहा। फिर उन्हें भी वृन्दावन जानेका आदेश दिया—

सनातने कहिल—तुमि याह वृन्दावन।
तोमार दुई भाई तथा करियाछे गमन॥

कांथा करंगिया मोर कांगाल भक्तगण।
वृन्दावने आइले तार करिह पालन॥

सनातन ! तुम्हारे दो भाई—रूप और अनुपम वृन्दावन पहुँच चुके हैं, तुम भी वहां जाओ। कंथा-कड़वाधारी मेरे भक्त जो वृन्दावन आवें, तुम मिलकर उनकी निवास एवं प्रसाद-की व्यवस्था करना। वहां जाकर भक्ति-शास्त्रोंके आधारपर व्रजमण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करो एवं व्रजभक्ति-रस शास्त्रोंकी रचना कर व्रजका सर्वोत्कर्ष स्थापन करो। महाप्रभुके वचन सुनकर श्रीसनातन विरह-व्याकुल हो मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीमहाप्रभुने उन्हें उठाकर आलिंगन किया, आश्वस्त किया और उन्हें वृन्दावनकी ओर विदा किया। श्रीसनातन वृन्दावन चले आये, सन् था १५१६। श्रीश्रीरूप-सनातनसे पहले श्रीमहाप्रभु अपने मित्र श्रीलोक-नाथ गोस्वामी तथा श्रीभूगर्भ गोस्वामीको सन् १५०८ में वृन्दावन भेज चुके थे। उस समय एकमात्र भयानक जंगल था वृन्दावन। श्रीमहाप्रभुने उक्त सब अनुयायियोंको वृन्दावनके प्रका-शित करनेके लिये भेजा। भक्तिशास्त्रोंके आधारपर व्रजमण्डलके समस्त लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेकी आज्ञा दी। श्रीश्रीरूप-सनातनपादके आ जानेपर तो व्रजमण्डलका स्वरूप निखर उठा और अनेक प्राचीन श्रीविग्रहोंका प्राकट्य तथा अनेक मन्दिरोंका निर्माण हुआ। वस्तुतः श्री वृन्दावनके उद्धार एवं निर्माणका एकमात्र श्रेय गौड़ीय गोस्वामीवृन्दको ही है।[1] श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी इत्यादि समस्त गौड़ीय गोस्वामिवृन्दने व्रजमण्डलमें आकर अनेक कष्ट उठाकर अपनी-साधना सिद्ध की तथा व्रजभूमिके सर्वोत्कर्षके साथ-साथ व्रजकी रागात्मिका-भक्ति एवं रागानुगा-भक्तिको परमोत्कृष्ट साध्यरूपमें प्रतिष्ठापित किया।

---

1—'Till the close of the 16th Century, except in the neighbourhood of the great thoroughfare there was ( in Brijmandal ) only here and there a scattered hamlet in the midst of unclaimed woodland. The vaishnava culture there first developed into its present form under the influence of Rupa and Sanatan, the celebrated Bengali Gosains of Brindaban.'

'The first named community (Gauriya-Vaishnavas) has had a more marked influence on Brindaban than any of the others, since it was Chaitanya, the founder of the sect, whose immediate disciples were its first temple builders.'

By Growse:—

(Mathura : A District Memoir, 3rd Ed, P. 75, P. 197)





इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुके कृपापात्र गौड़ीयगोस्वामिवृन्द द्वारा उद्धारित एवं उज्ज्वलीकृत व्रजमण्डलके उत्कर्षको जानकर अन्यान्य सम्प्रदायके वैष्णवाचार्योंने भी व्रजमण्डलके विकासमें प्रशंसनीय योगदान किया। श्रीगौड़ीय-गोस्वामियों द्वारा रचित उज्ज्वलरसमयी व्रजभक्तिके लीलाग्रन्थ तथा भक्तिरस सिद्धान्तोंके मौलिक संस्कृत एवं बंगला भाषाके ग्रन्थोंके आधार पर उन्होंने हिन्दी भाषामें अनेक रसमयी वाणियोंकी रचना कर इस दिशामें वैष्णव समाजका पथ प्रशस्त किया।

गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी सन् १५३३ में सर्वप्रथम अपने परिवार को लेकर यहां आकर बसे। इनके वाद श्रीहरिरामजी व्यास सन् १५३४ में और स्वामी श्रीहरिदासजी सन् १५३७ में वृन्दावन पधारे।[1] ऐसे ही फिर निम्बार्क, रामानुज तथा रामानन्द सम्प्रदायाचार्योंने आकर अपनी-अपनी रसोपासना तथा साधनाका केन्द्र वृन्दावनको बनाया।

श्रीमहाप्रभुने जो अन्तके छः वर्ष नीलाचलमें बिताये, वे तो उनके वृन्दावनमें ही बीते। अहर्निश कभी गोपीभावमें, तो कभी मञ्जरीभावमें और कभी राधाभावमें आविष्ट रहनेके कारण उनका मन वृन्दावनसे एक क्षणके लिये भी वाहर नहीं गया। गीतगोविन्द, श्रीमद्भागवत वर्णित वेणुगीत, गोपीगीत आदि का रायरामानन्द तथा श्रीस्वरूप दामोदरके साथ आस्वादन करते और वृन्दावन-रसमें डूबे रहते। श्रीराधाजीकी भांति दिव्योन्मादमय प्रलाप-कलाप करते, जो उन्होंने श्रीउद्धवजीके व्रजमें आनेपर किया था। श्रीमहाप्रभुको अपना स्वरूप विस्मृत रहता और रायरामानन्द तथा स्वरूपदामोदरको अपनी प्रिय व्रजसखियां जानकर स्वयं राधाभावमें यही पूछते रहते—

**कह सखि ! कि करि उपाय ?**
**कृष्णेर से शब्दगुणे, हरिले आमार काणे, एब न पाय, तृष्णाय मरि जाय ।।**
**हा हा सखि ! कि करि उपाय ?**
**काहा करों, काहां जाङ, काहां गेले कृष्ण पाङ, कृष्ण विनु प्राण मोर जाय ।।**

इस प्रकार रात-दिन श्रीकृष्णविरहमें प्रलाप करते-करते उन्माद-अवस्थामें ग्रस्त हो जाते। एक-एक दिनमें असंख्य भावोंके विकार उनमें उदित हो उठते। अपने सेवक श्रीगोविन्दके साथ जब श्रीजगन्नाथ दर्शन करने जाते, तो आश्चर्यमें पड़ जाते और सोचते कि श्रीजगन्नाथ, बलराम एवं सुभद्रा यहां कैसे ? क्या मैं कुरुक्षेत्रमें आ गयी हूं ? वृन्दावनसे मुझे यहां कौन ले आया ?—

---

१—व्रजके रसिकाचार्य ( खण्ड १ एवं २, लेखक—डॉ० अवधविहारीलाल कपूर। श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंस्थान, मथुरा द्वारा प्रकाशित) द्रष्टव्य है।

**'कुरुक्षेत्रे देखि कृष्ण,' ऐसे हैल मन।**
**काहां कुरुक्षेत्र आइलाङ, काहां वृन्दावन ।। श्रीचै० च० ३।१४।३२।।**

व्रजगोपियोंकी जो विरह दशा वृन्दावनमें श्रीकृष्णके मथुरा जानेपर थी, वही दशा श्रीमहाप्रभुकी नीलाचलमें थी। कभी बाह्यज्ञान आनेपर वे भलें ही नीलाचलमें अपनेको देखते-जानते, नहीं तो दिन-रात राधाभावाविष्ट होकर वे अपनेको वृन्दावनमें ही पाते थे। समुद्रको यमुना, चटक-पर्वतको गोवर्धन एवं वन-उपवनोंको वृन्दावनकी निकुञ्जें ही देखते थे। श्रीजगन्नाथजीका साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दनरूपमें दर्शन करते। श्रीश्यामसुन्दरकी वेणुध्वनि उन्हें सुनाई देती। उसे सुनकर भक्तमण्डलीको सम्बोधित कर-कर कहते—

**गोपीगण ! कह सभे करिया विचारे।**
**कोन् तीर्थ, कोन तप, कोन सिद्ध मन्त्र जप, एइ वेणु कैल जन्मान्तरे ?**
**हेन कृष्णाधर-सुधा, जे कैल अमृत मुधा, जार आशाय गोपी धरे प्राण।**
**ए वेणु अयोग्य अति, एके स्थावर पुरुष जाति, सेई सुधा सदा करे पान ।।**

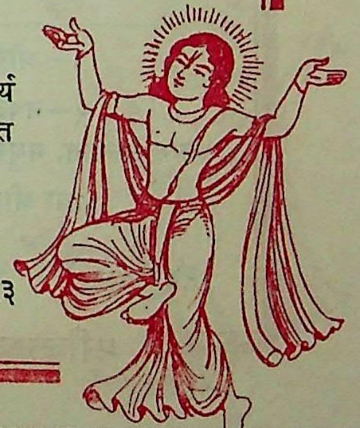
श्रीचै० च० ३।१६।१३३-३४

हे गोपियो ! जरा विचार तो करो, इस वेणुने जन्म-जन्मान्तरमें किस तीर्थमें जाकर क्या तपस्या की है ? किस सिद्ध मन्त्रका जप किया है, जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्णाधर-सुधाका यह निरन्तर पान करता है। अधर सुधा ! हाय हाय !! जिसने अमृतको मात कर रखा है, इस अधर सुधाको पान करनेकी आशामें तो हम गोपीजन प्राण धारण कर रही हैं। कितना अन्याय ! एक तो स्थावर, दूसरे पुरुष जाति ! इसका अधरसुधा पान करनेका अधिकार कहां से आया ? हमारे ही दुर्भाग्य हैं, जो यह सदा कृष्णाधर-सुधाका पान करता रहता है।

इस प्रकार नोलाचल-निवासके समय श्रीमन्महाप्रभु राधा-भावाविष्ट होकर श्रीवृन्दावनमें ही निवास करते थे। उन्हें नवद्वीपधाममें जैसे वृन्दावनकी स्फूर्त्ति होती थी, उसी प्रकार नीलाचलमें भी उन्हें श्रीवृन्दावन धामकी अखण्ड स्फूर्त्ति होती थी। वस्तुतः जहां श्रीकृष्ण-लीला करते हैं, वह स्थल श्रीवृन्दावनके अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता। वह किसी रूपमें कहीं भी क्यों न दीखे, वह है श्रीवृन्दावन। श्रीकृष्णस्वरूप श्रीगौरकृष्णने जहां-जहां भी लीला की, वहां वहां श्रीवृन्दावनने ही आत्मप्रकट कर उनकी लीलाकी सम्पूर्णता सम्पादन की। चैतन्य-लीला तथा कृष्णलीला सर्वथा अभिन्न हैं। इन दोनोंके युगपत् चिन्तन-मननमें एक अनिर्वचनीय माधुर्य है। यही बात श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य-चरितामृतमें कही है—श्रीचै० च० २।२५।२२९

**चैतन्यलीलामृतपूर, कृष्णलीला सुकर्पूर, दोंहे मिलि हय सुमाधुर्य।**
**साधु-गुरु प्रसादे, ताहा जेइ आस्वादे, सेइ जाने माधुर्य प्राचुर्य्य ।।**

किन्तु इन लीलाओंके युगपत् आस्वादनका जो अद्भुत प्रचुर माधुर्य है, उसे महत् पुरुषों—गौरकृष्ण-भक्तों तथा श्रीगुरुदेवकी कृपाके विना प्राप्त नहीं किया जा सकता।





# श्रीमहाप्रभु-गौरांग-ग्रन्थावली

श्रीभागवत कृष्ण



श्रीमहाप्रभु गौरांगका 'शिक्षाष्टक' सर्वजन विदित है। किन्तु साधारण लोगोंकी यह धारणा है कि उनकी और कोई रचना नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुकी और भी सात रचनाएं हैं, जिनमें से शिक्षाष्टकके साथ चार रचनाएं आजसे ३१ वर्ष पहले हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित की जा चुकी हैं।[1] उनके अतिरिक्त और रचनाओंका भी सप्रमाण अनुसन्धान मिला है।[2] एक अपनी रचना 'न्याय-शास्त्र टिप्पणी' श्रीमहाप्रभुने स्वयं गंगामें बहा दी थी। इस प्रकार श्रीगौरांगकी आठ रचनाएं हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है—

१. **शिक्षाष्टक**—इसमें आठ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक **'चेतो-दर्पणमार्जनं'**—इत्यादिमें श्रीकृष्णनामसंकीर्त्तनकी महिमा-वर्णनके साथ उसके सात गुणोंका अद्‌भुत वर्णन किया गया है। दूसरे श्लोक **'नाम्नामकारि बहुधा'**—इत्यादिमें भक्तभावाविष्ट महाप्रभुने श्रीनाममें अपने अनुरागका अभाव जताते हुए अपने विषाद एवं दैन्यको प्रकाशित किया है। तीसरे श्लोक ,**तृणादपि सुनीचेन'**—इत्यादिमें कृष्णप्रेम प्राप्तिके लिये किस रीतिसे एवं किस भावनाको हृदयमें पोषण कर श्रीकृष्णनामसंकीर्त्तन करना चाहिये, उसका उपदेश श्रीगौरांगने दिया है। चौथे श्लोक **'न धनं न जनं'**—इत्यादिमें तथा पांचवे श्लोक **'अयि नन्दतनुज'** इत्यादिमें पूर्वोक्तरीति एवं भावनासे श्रीनामसंकीर्त्तन करते-करते जब प्रेम उदित हो उठता है और प्रेमके स्वरूपगत धर्म—प्रेमके अभाव-ज्ञानमें प्रेमी भक्त श्रीकृष्णसे क्या चाहता है, उसका महाप्रभुने परिचय दिया है। छठे श्लोक **'नयनं गलदश्रुधारया'**—इत्यादिमें श्रीमहाप्रभुने श्रीकृष्णप्रेम एवं प्रेमपूर्वक श्रीनाम-संकीर्त्तनके सौभाग्यकी प्रार्थना करते हुए जीवकी प्रार्थनीय वस्तुकी सूचना दी है। सातवें श्लोक **'युगायितं निमेषेण'**—इत्यादिमें कृष्णविरह-कातरा श्रीराधाजीके भावमें आविष्ट होकर श्रीमन्-महाप्रभुने अपनी आन्तरिक अवस्थाका दिग्दर्शन कराया है। आठवें श्लोक **'आश्लिष्य वा पादरतां'** इत्यादिमें राधाभावाविष्ट श्रीमहाप्रभुने स्वसुखगन्धलेश-शून्य कृष्ण-सुखैकतात्पर्यमय स्वभाव-सिद्ध या नित्य सिद्धप्रेमका समुज्ज्वल स्वरूप प्रकाशित किया है।

---

१—श्रीमहाप्रभु ग्रन्थावली—प्रकाशक बाबा कृष्णदास, कुसुम सरोवर।

२—नवद्वीप-लीला—श्रीहरिदास गोस्वामि रचित हिन्दी संस्करण, प्रकाशक श्रीकृष्ण-जन्म संस्थान, मथुरा।

तथा श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान खण्ड ३, प्रकाशक श्रीहरिदासदास, नवद्वीप।

**२—प्रेमामृत रसायन स्तोत्रम्**—इसमें कुल ३५ श्लोक हैं। यह ग्रन्थ पञ्चप्राणान्वित या पाँच अष्टकोंमें परिपूर्ण हुआ है—१-श्रीभावताष्टकम्, २-श्रीकिशोराष्टकम्, ३-श्रीविश्वमोहनाष्टकम्, ४-श्रीकृष्णन्युताष्टकम् एवं ५-श्रीप्रेमरसायनम्। प्रथम श्लोक तथा अन्तिम श्लोक और समाप्ति-वाक्य इस प्रकार हैं—

**एकदा कृष्णविरहाद्ध्यायन्ती प्रियसंगमम्।**
**मनोवाष्पनिरासार्थं जल्पतीह मुहुर्मुहुः ॥१॥**

**इत्येवं प्राणनाथस्य प्रेमामृतरसायनम्।**
**यः पठेच्छ्रावयेद्वापि स प्रेम्णि प्रमिलेद्ध्रुवम् ॥३५॥**

इति श्रीचैतन्यचन्द्रविरचितं प्रेमामृत रसायनं स्तोत्रम् ॥

—इस ग्रन्थकी प्राचीन प्रतियां (१) काशी सरस्वती विद्यापीठ न० ६४६ (१३), (२) वराहनगरमें श्रीभागवताचार्य पाटवाड़ी ग्रन्थागार न० ४७, (३) काशीमें नागरी प्रचारिणी सभा न० १७।२ तथा (४) वृन्दावनमें श्रीराधारमण मन्दिर गोस्वामी श्रीमधुसूदन सार्वभौम ग्रन्थागारमें (५) जयपुरमें श्रीसरसमाधुरीजी द्वारा प्रकाशित नित्यपाठ संग्रहमे है। इस ग्रन्थकी सुन्दर सुविस्तृत व्याख्या भी श्रीपाद वल्लभाचार्यजीके आत्मज श्रीपाद विट्ठलेशजीने लिखी है जो उपलब्ध है।

**३—श्रीराधारसमञ्जरी**—इस स्तवमिश्रित रचनामें कुल ३० श्लोक हैं। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

**कुचकलस भराढ्या केसरीक्षीण मध्या**
**विपुलतरनितम्बी पक्वबिम्बाधरोष्ठी।**
**प्रणयतर वयस्या स्कन्धविन्यस्त हस्ता**
**निधुवन रसपुञ्जं याति राधा निकुञ्जम् ॥**

अन्तिम श्लोक तथा समाप्ति वाक्य इस प्रकार है—

**लीलालोलतरङ्गिणी नयनयोरानन्दकल्लोलिनी**
**कन्दर्पोद्गम धारिणां रसवती काञ्चीरणन्नूपरा।**
**कृष्णाशक्तविलोचना सपुलका प्रोद्यत्कुचा शोभिता**
**गोपालीगणसेविता विजयते राधा सुधावर्षिणी ॥**

इति श्रीमच्चैतन्यचन्द्र विरचिता श्रीसुधारसमञ्जरी समाप्ता ॥

**४—श्रीमद्राधाकृष्ण युगलपरिहार स्तोत्रम्**—इसमें कुल ९ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

**हे सौन्दर्यनिदान रूपगरिमन् माधुर्यलीलानट!**
**हे आश्चर्यविशेषवेशधर हे हे वंशिभूषविभो!**





**हे वृन्दाटवि भूविलासिनि ! लसत्केलिकला कौमुदि !**
**हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ।।**

अन्तिम श्लोक तथा समाप्ति वाक्य इस प्रकार है—

**हे हे कृपालुचरित ! व्रजकल्पवृक्ष !**
**कारुण्यलेशकृत वारत लोकरक्ष !**
**हे कृष्ण ! हे रमण ! हे भुवनैकनाथ !**
**हा हा कदाति करुणा भवतो भवेन्मे ।।**

इति श्रीमन्महाप्रभुमुखोद्‌गीर्णं श्रीयुगलपरिहारस्तोत्रम् ।।

**५—श्रीगोपाल-चरित**—श्रीमन्महाप्रभुकी यह बाल्यकालकी रचना है, जिसमें चार खण्ड हैं। प्रथम खण्डमें चीरहरण लीला तथा शेषके तीन खण्डोंमें दानलीलाका वर्णन है।

वन्दनात्मक मंगलाचरणमें सर्वप्रथम श्रीमद्‌भागवत (१२।१३।१) का 'यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र'—इत्यादि श्लोकका उल्लेख है और आरम्भ-वाक्य इस प्रकार है—

तत्र तावदेकदा राधा यमुनां गन्तुकामा रामा समाह कर्पूरमञ्जरि !
कलावति ! चन्द्रलेखे ! मुग्धानने ! सुमुखि ! कम्बुकण्ठि !
आगच्छताम्बुहरणाय गृहीतकुम्भाः सम्भूयमन्द पवनां युमनां व्रजामः ।।

अन्तमें समाप्ति वाक्य इस प्रकार है—

इति श्रीचैतन्यचन्द्रविरचितं श्रीगोपालचरितं समाप्तम् ।।

**६—विद्यासागर**—श्रीमन्महाप्रभुके अध्यापन-कालका नाम था पं० विश्वम्भर विद्यासागर। यह ग्रन्थ कलाप-व्याकरणकी टीका है। नवद्वीप निवासी गोपीनाथ तर्काचार्यने श्रीपतिदत्तकृत परिशिष्ट ग्रन्थकी एक टीका लिखी। उसमें अनेक स्थलोंमें कलाप-व्याकरणके टीकाकार व्याकरण-प्रवर महात्मा दुर्गासिंहके मतका खण्डन किया। कलाप-व्याकरणके अध्यापक पण्डित श्रीगौरांगने उस महात्मा दुर्गासिंहके अपमानको न सहन करके गोपीनाथ तर्काचार्यके गर्वको खर्व करनेके लिये बद्ध परिकर होकर इस ग्रन्थमें उनके मतका खण्डन करके प्राचीन दौर्ग-मतका ही संस्थापन किया है। इस ग्रन्थका आदि श्लोक इस प्रकार है—

**विकसतु नखकुसुमाली मम हृदि हरिपाद पारिजातस्य।**
**राहुभयादिव विधुना कायव्यूहो विनिर्मितो वियति ।।**

**७—श्रीराधिकाष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र** तथा **८—श्रीजगन्नाथाष्टक** ये दोनों ग्रन्थ भी श्रीमहाप्रभु द्वारा रचित कहे जाते हैं किन्तु प्रचलित नहीं।

**९—न्याय-शास्त्र टिप्पणी** - श्रीमन्महाप्रभुने विद्या-विलासके समय न्याय-शास्त्रपर एक टिप्पणी लिखी थी। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके एक छात्र थे श्रीरघुनाथ शिरोमणि। वह

नवद्वीपमें पाठाभ्यास करते थे और न्याय शास्त्रमें इतने प्रतिभाशाली थे कि उन्हें मिथिलामें निमन्त्रित किया जाता था। उन्होंने नवद्वीपमें सर्वप्रथम न्यायकी पाठशाला स्थापित की। उन्होंने भी न्याय शास्त्रपर एक ग्रन्थकी रचना की।

एक दिन उनका श्रीमहाप्रभु विश्वम्भरजी से मिलन हुआ और उन्होंने महाप्रभुसे उनकी न्याय-शास्त्रकी टीकाको देखनेकी प्रार्थना की। श्रीमहाप्रभुने उन्हें सहर्ष वह दिखा दी। श्रीरघुनाथ शिरोमणि उसे देखकर चमत्कृत हो उठे और चित्तमें बहुत दुखी भी। श्रीमहाप्रभुने उस दुखका कारण पूछा। उन्होंने कहा—द्विजवर ! मैंने जो न्यायपर व्याख्या लिखी है वह तो अति फीकी पड़ गई है आपकी ठीकाके सामने। मेरी रचना का कोई भी आदर न करेगा। आपकी टीका अतिशय श्रेष्ठ है। श्रीमहाप्रभुने उनके देखते-देखते अपनी वह टीका-पोथी गंगाजी में फैंक दी। यह देखकर श्रीरघुनाथको तो महान् दुख हुआ, परन्तु करुणामयके मुखपर हर्ष था। बोले, रघुनाथ ! अब तुम्हारी ही टीकाका सर्वत्र सम्मान होगा। वह श्रीमन्महाप्रभुकी एक रचना थी, जो सुरसरि की पावन तरङ्गोंमें आज तक हिलोर ले रही होगी।

**श्रीगौरांग-श्रीमुखोद्‌गीर्ण श्लोकावली**

अम्बुजमम्बुनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुजादम्बु।
मुरभिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान्महानदी जाता ॥१॥

—जलसे ही कमलकी उत्पत्ति होती है, कमलसे जल कभी पैदा नहीं होता, किन्तु कितना आश्चर्य है कि श्रीविष्णुमें इसके विपरीत दीखता है, उनके चरणकमलसे महानदी गंगा उत्पन्न हुई है। [ दिग्विजयी श्रीकेशव काश्मीरीके साथ विचार-गोष्ठीमें श्रीमहाप्रभुने इस श्लोक को उच्चारण किया था। ] ॥१॥

आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां विषयिणामपि।
यथाहेर्मनसः क्षोभस्तथा तस्याकृतेरपि ॥२॥

जैसे सर्प तथा उसकी आकृति देखनेसे मनमें क्षोभ पैदा होता है, उसी प्रकार स्त्री तथा विषयी-लोगोंकी शकल देखते ही भय हुआ करता है। [ श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने जब श्री-महाप्रभुको राजा प्रतापरुद्रको दर्शन देनेकी प्रार्थना की, तब श्रीप्रभुने इस श्लोकका उच्चारण किया था ] ॥२॥

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्दपूर्णामृताब्धे
गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥३॥

—मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं और न ही शूद्र हूं। मैं ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थी नहीं, वानप्रस्थी तथा संन्यासी भी नहीं हूं। किन्तु मैं प्रकटरूपसे प्रकटित निखिल परमानन्दसे पूर्ण अमृत सागरके समान गोपीवल्लभ





जो श्रीकृष्ण हैं, उनके चरणकमलोंके दासोंके दासोंका दास ही हूं। [श्रीजगन्नाथजी के रथके आगे नृत्य करते-करते श्रीमहाप्रभु इस श्लोकका गान करते थे। मानों जीवको उसके स्वरूप–कृष्णदासानुदासके दास का उपदेश देते थे। [ ॥३॥

**न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम् ।**
**वंशीविलासानन-लोकनं विना विभर्मि यत् प्राणपतङ्गकान् वृथा ॥४॥**

—(विशुद्ध प्रेमकी बात तो दूर रही) मुझमें तो श्रीकृष्णके प्रति प्रेमकी लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। केवल अपने सौभाग्य को प्रकाशित करने के लिये मैं रोता हूं। वंशी-विलासी श्रीकृष्णचन्द्रके मुखचन्द्रका दर्शन मुझे प्राप्त नहीं हुआ, मैं तो अपने प्राण-पतंगोंको वृथा ही धारण कर रहा हूँ। [ श्रीकृष्णविरहमें कातर होकर दैन्यभरे आलापों में इस श्लोकको श्रीमहाप्रभुने श्रीस्वरूपदामोदर-रायरामानन्द को कहा था ] ॥४॥

**परव्यसनिनी-नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु ।**
**तदेवास्वादयत्यन्तर्नव सङ्गरसायनम् ॥५॥**

पर-पुरुषमें आसक्त-नारी अपने घरके अनेक कार्योंमें व्यग्र रहने पर भी पर-पुरुषके साथ आस्वादन किये हुए उस नवसङ्गम-सुख का मन-ही-मन आस्वादन करती रहती है। —[श्रीश्रीरूप-सनातन गोस्वामी का मन जब शाह हुसैन की नौकरी से उचाट हो गया और श्रीमहाप्रभुके दर्शन हित छटपटाने लगा, तो उन्होंने श्रीमहाप्रभुको अनेक पत्र भेजे। उनके पत्रोंके उत्तरमें श्रीमहाप्रभुने यह श्लोक रचकर भेजा—अर्थात् घरपर रहकर भी आप श्रीभगवत्सेवा-सुखका चिन्तन कर सकते हैं] ॥५॥

**अयमागच्छति अयं दास्यति अनेन दत्तं अयमपरः ।**
**समेत्ययं दास्यति अनेनापि न दत्तमन्यः समेष्यति स दास्यति ॥६॥**

—यह व्यक्ति आ रहा है, यह मुझे कुछ देगा, इसने दिया है। एक और व्यक्ति आ रहा है, यह देगा, यह जो चला गया इसने नहीं दिया, एक और आयेगा वही देगा। [नीलाचलमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामी वैरागी होकर सिंहद्वार पर भिक्षा की आशा में खड़े रहते थे। श्रीमहाप्रभुने कहा यह वृत्ति वैरागी-वैष्णवके उपयुक्त नहीं है—यह वैश्या-वृत्ति है—इस भावको श्रीमहाप्रभुने इस श्लोक द्वारा बताया था] ॥६॥

**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ॥**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम् ।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम् ॥**

**राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।**
**कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥७॥**

[दक्षिण-यात्राके आरम्भसे लेकर अन्त पर्यन्त सदा श्रीमन्महाप्रभु इस श्लोकका गान करते थे]॥७॥

अनुसन्धान करनेपर श्रीमन्महाप्रभु द्वारा और भी रचे हुए अनेक श्लोक प्राप्त किये जा सकते हैं।

## अब भी दर्शन कर सकते हैं

**श्रीमहाप्रभुके**

* **कन्था, पादुका एवं जलपात्रके**—गम्भीरा मठ, जगन्नाथपुरीमें तथा ग्रन्थमन्दिर, वराह-नगरमें।
* **वस्त्र**—साईथिया श्रीमदनमोहन मन्दिर भद्रकमें।
* **हस्ताक्षर**—देनुड़ तथा ग्रन्थ-मन्दिर, बराहनगरमें।
* **श्रीहस्तलिखित चण्डी-ग्रन्थ**—बुरङ्गा, श्रीहट्टमें।
* **आसन व श्रीगीता**—श्रीहरिदास-मन्दिर, कालनामें।
* **लेख**—श्रीगदाधर-लिखित गीतान्तर्गत, भरतपुरमें।
* **आसन, चौकी**—श्रीराधारमण-मन्दिर, वृन्दावनमें।
* **श्रीचरणचिह्न-अंगुलीचिह्न**—श्रीजगन्नाथ-मन्दिर, पुरीमें।
* **सर्वाङ्ग-चिह्न**—आलालनाथ-मन्दिरमें।
* **प्राचीन चित्र**—कुन्जघाटा राजबाड़ीमें, श्रीदास गोस्वामी समाधि, राधाकुण्डमें, भौंसला हाऊस, बम्बईमें तथा राज-बाड़ी पुरीमें।





# श्रीगौरांग महाप्रभुके जीवन-लीला ग्रन्थ

डॉ. प्रभुदयाल मीतल

डी. लिट्., साहित्य-वाचस्पति



**उपक्रम—**

श्रीगौरांग महाप्रभुजीका प्राकट्य पूर्वांचलके गौड़ प्रदेश (बंगाल) में उस समय हुआ था, जब वहाँ की राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। वहाँ के निवासी हिन्दु एक ओर असहिष्णु विधर्मी शासकोंके अत्याचारोंसे आक्रांत थे; तो दूसरी ओर वे विविध धर्म-संप्रदायोंमें विभाजित होकर हिंसा, पाखंड तथा वामाचारके त्रिदोषसे उत्पीड़ित थे। ऐसी विषम परिस्थितिसे बंगाली जनताका परित्राण करनेके लिए ही मानो श्रीगौरांगप्रभु का अवतार हुआ था। उन्होंने दिव्य प्रेमका संदेश सुनाकर और भगवन्नाम-कीर्तनकी मधुर ध्वनिसे आकाशको गुंजायमान कर निराश जनतामें आशाका संचार किया। वहाँके धर्मांध व्यक्तियोंको उनकी विकृत तामसी साधनासे बहिर्मुख और उन्हें वैष्णव धर्मकी सात्विकी भक्ति-भावनाकी ओर उन्मुखकर श्रीगौरांगने बंगालमें युगांतर ही उपस्थितकर दिया था।

श्रीगौरांग महाप्रभुके आकर्षक व्यक्तित्व और अलौकिक कार्य-कलापका बंगाली जनतापर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें परब्रह्मका अवतार और साक्षात् भगवान् माना जाने लगा। श्रद्धालु भक्तोंकी मान्यता थी कि उनमें भगवान् श्रीकृष्णके 'रसराज' भगवती श्रीराधिका के 'महाभाव' इन दोनों दिव्य रूपोंका प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिए वे उन्हें श्रीराधा-कृष्णके सम्मिलित स्वरूप मानकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उनकी उपासना करने लगे थे। इस प्रकार का अभूतपूर्व सम्मान उन्हें अपने जीवन-कालमें ही प्राप्त हो गया था और अब भी है. यह उनके महत्त्वकी बहुत बड़ी बात है।

**जीवन-लीलाओंका कथोपकथन**—श्रीगौरांग महाप्रभुके अलौकिक महत्त्व और उनकी जीवन-लीलाओंके अद्भुत प्रभावका कथोपकथन उनकी विद्यमानता कालमें ही होने लगा था, जो उनके पश्चात् उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता गया। उनसे सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ पहले संस्कृत और बंगला भाषाओंमें रचे गये। फिर उनके अनुवाद अथवा स्वतंत्र ग्रन्थोंके रूपमें अन्य भाषाओंकी रचनाएँ भी विपुल परिमाणमें प्रस्तुत हुईं, जिनका क्रम अभी तक चल रहा है। इन सबसे ज्ञात होता है कि वे वैष्ण व जनतामें कितने अधिक लोकप्रिय रहे हैं।

यहाँ पर उनकी जीवन-लीलाओंके प्रमुख ग्रन्थों और उनके रचयिताओंके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालते हैं —

**श्रीमुरारि गुप्त कृत 'श्रीकृष्णचैतन्य-चरितामृत'**— यह संस्कृत काव्य-कृति 'कड़चा' के नामसे प्रसिद्ध है। 'कड़चा' का अभिप्राय है, 'सूत्र रूपमें लिखित टिप्पणियोंका संग्रह। फलतः यह श्रीगौरांगकी प्रारम्भिक जीवन-लीलाओंसे सम्बन्धित टिप्पणियोंका संक्षिप्त संकलन है। इसका रचनाकाल सं० १५७० है।

इस 'कड़चा' के रचयिता श्रीमुरारि गुप्तका जन्म पूर्वांचलके सिपहट नगरमें सं० १५२७ में हुआ था। बादमें उनके घर वाले सिपहटको छोड़कर नवद्वीपमें जा कर बस गये थे। उनका मकान श्रीगौरांगके निवास-स्थलके निकट ही था। अतः श्रीमुरारि गुप्तको श्री-गौरांगकी प्रारम्भिक जीवन-लीलाओंसे परिचित होनेका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था, जिसका उपयोग उन्होंने अपनी 'कड़चा' के लिखनेमें किया था। श्रीमुरारि गुप्त सद्गृहस्थ, विद्वान् भक्त और भक्तिके संस्कृत सुकवि थे। श्रीगौरांगके प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। केवल श्रद्धा नहीं उन्होंने श्रीगौरांगमें अपने इष्ट श्रीरामके प्रत्यक्ष दर्शन किये। श्रीमुरारि गुप्तके कड़चाका इसलिए बड़ा महत्त्व है कि वह श्रीगौरांगके जीवन-कालमें रचा हुआ उनकी जीवन-लीलाओंसे सम्बन्धित सर्वप्रथम काव्यग्रन्थ है। कालांतरमें उसकी सूचनात्मक टिप्पणियोंका उपयोग गौरांग-लीलाओंके कई ग्रंथोंकी रचनामें किया गया।

**श्रीस्वरूप दामोदर कृत 'कड़चा'**— इसकी रचना मुरारिगुप्त कृत 'कड़चा' के पश्चात् सं० १५७४ के लगभग हुई। इन दोनों काव्य-कृतियोंमें श्रीगौरांगदेवकी जीवन-लीलाओंके प्रमुख सूत्रोंका कथन किया गया है। इसका उल्लेख कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' में इस प्रकार हुआ है—

**दामोदर स्वरूप आर, गुप्त मुरारि।**
**मुख्य-मुख्य लीला-सूत्र, लिखेछे विचारि॥**

श्रीस्वरूप दामोदर श्रीगौरांगके समव्यस्क और निकटतम साथी तथा निष्ठावान सेवक थे। उनका जन्म श्रीगौरांगसे केवल एक वर्ष पूर्व सं० १५४१ में हुआ; और उनका निधन श्रीगौरांगके अंतर्धान होनेके वर्ष सं० १५९० में ही हुआ। वे नवद्वीपसे नीला-चल तक सदैव छायाकी तरह उनके साथ रहे थे; और अनुचरके रूपमें उन्होंने सदा उनकी सेवा की थी। उनका प्रारम्भिक नाम पुरुषोत्तम आचार्य था। जब श्रीगौरांग संन्यासी होकर नीलाचल चले गये, तब उन्होंने भी संन्यास ग्रहण कर नीलाचलमें निवास किया। तब वे श्रीस्वरूप दामोदरके नामसे प्रसिद्ध हुए। जब श्रीरघुनाथदास गोस्वामी नीलाचल आकर श्रीगौरांगके शरणागत हुए, तब उन्हें श्रीस्वरूप दामोदरके संरक्षणमें रखा गया था, ताकि वे उनसे भक्ति-तत्त्वकी समुचित शिक्षा प्राप्त कर सकें। उन्होंने श्रीस्वरूप कृत 'कड़चा को कंठस्थ कर लिया था, जिसका उपयोग श्रीकृष्णदास कविराजने





अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चैतन्य-चरितामृत' की रचना करनेमें किया।

श्रीस्वरूप दामोदर श्रीगौरांगके साथ दिन-रात जीवन पर्यन्त रहनेसे उनकी जीवन-लीलाओंके साथ ही साथ उनके गूढ़तम भक्ति-सिद्धांतोंके भी अनुपम ज्ञाता हो गये थे। श्रीकृष्णदास कविराजने उनके संबन्धमें ठीक ही लिखा है—

**अत्यन्त निगूढ़ एइ रसेर सिद्धांत।**
**स्वरूप गोसाञि मात्र, जानेन एकांत ॥**

**(३) श्रीलोचनदास कृत 'चैतन्य मङ्गल** —इस काव्य कृतिकी रचना मुरारि गुप्त कृत 'कड़चा' के आधारपर हुई। इसमें ४ 'खण्ड' हैं, जिनके नाम क्रमशः सूत्र खण्ड, आदि खण्ड, मध्य खण्ड और शेष खण्ड हैं। यह बंगीय भाषा का पांचाली काव्य (लोक काव्य) परम्पराका सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें श्रीगौरांगकी जीवन-लीलाओंका कथन लोक शैलीमें किया गया है। इसमें कई प्रकारके छंद मिलते हैं।

श्रीलोचनदासका जन्म वर्धमान जिला में कोग्राममें हुआ था। उनकी विद्यमानताका काल सं० १५८० से सं० १६४६ के लगभग माना गया है। उनके पिताका नाम कमलाकर दास था; और उनके गुरु श्रीनरहरि सरकार थे। अपने गुरुके आदेशसे ही उन्होंने 'चैतन्य मङ्गल' की रचना की थी।

**(४) कवि कर्णपूर कृत काव्य ग्रन्थ**—कवि कर्णपूर संस्कृत भाषाके विख्यात कवि थे। उनकी रचनाएँ गौड़ीय भक्ति-साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे निम्नांकित दो ग्रंथ श्रीगौरांग प्रभुकी जीवन-लीलाओंसे सम्बन्धित हैं—

**क. चैतन्य-चरितामृत महाकाव्य**—इसकी रचनाका आधार-सूत्र मुरारि गुप्त कृत 'कड़चा' है। इसमें २० सर्ग हैं, जिनमें श्रीगौरांगकी जीवन-लीलाओंका सरस कथन है। इसका रचना-काल सं० १६२७ के लगभग है।

**ख. चैतन्य-चंद्रोदय नाटक**—इसमें १० अङ्क हैं, जिनमें श्रीगौरांगप्रभुकी जीवन-लीलाओंका नाटचात्मक कथन हुआ है। इसका गौड़ीय भक्तोंमें अभिनय भी किया जाता था। इसका रचना-काल सं० १६२६ है।

कवि कर्णपूरका जन्म नदिया जिलाके कांचरापाड़ा ग्राममें हुआ था। उनकी विद्यमानता का काल सं० १५८१ से सं० १६४० तक है। उनके पिता-माता आदि सभी श्रीगौरांगप्रभुके परमभक्त थे। उनका वास्तविक नाम पुरीदास अथवा परमानन्ददास था। किन्तु श्रीगौरांगने उनकी काव्य-प्रतिभासे प्रसन्न होकर उन्हें कर्णपूरके नाससे संवोधित किया था। कालांतर में वे इसी नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके रचे हुए ग्रन्थोंमें सर्वाधिक प्रसिद्ध आनन्द-वृन्दावन चम्पू है, जिसमें २२ स्तवक हैं। इस गद्य-पद्यात्मक ग्रंथमें भागवत-दशम स्कंधमें वर्णित श्रीकृष्ण-चरित्र का रसपूर्ण कथन किया गया है।

(५) **श्रीवृन्दावनदास ठाकुर कृत 'चैतन्य भागवत'** - यह ग्रंथ श्रीगौरांग महाप्रभुजीकी जीवन-लीलाओंसे संबन्धित बंग भाषामें लिखा हुआ सर्वप्रथम सुव्यवस्थित काव्य है। अब तक जिन ग्रन्थोंके विषयमें लिखा जा चुका है, उनमेंसे किसीमें भी गौरांग-लीलाओंका आद्योपांत सुव्यवस्थित कथन नहीं हुआ है। उनमें तत्सम्बन्धी कतिपय सूत्रोंका ही उल्लेख किया गया है।

इस ग्रंथके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके विषयमें केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे श्रीगौरांगप्रभुके प्रारम्भिक भक्त श्रीवास पंडितकी भतीजी नारायणीदेवीके पुत्र थे और श्रीगौरांगजीके ज्येष्ठ भ्राता श्रीनित्यानन्दप्रभुके अन्यतम कृपापात्र शिष्योंमें से थे। उनकी विद्यमानताका काल सं० १५७० से सं० १६४६ के लगभग है। उनका प्रारंभिक जीवन नवद्वीपके निकटवर्ती मामगाछी नामक ग्राममें बीता था, और उसी स्थलपर उन्होने अपनी शिक्षा प्राप्त की थी। उसके अनंतर वे श्रीनित्यानन्दप्रभुके सत्संगमें रहे थे; और उन्हीसे उन्होंने श्रीगौरांग-प्रभुकी जीवन-लीलाओंका विशद परिचय प्राप्त किया था। 'चैतन्य भागवत' की रचना भी उन्होंने श्रीनित्यानन्दप्रभुके आदेशानुसार की थी। इसका उल्लेख उन्होंने उक्त ग्रंथके आरम्भमें ही इस प्रकार किया है—

**अन्तर्यामी नित्यानन्द बलिला कौतुके।**
**चैतन्य-चरित किछु लिखिते पुस्तके॥** आदि खण्ड, १-७३

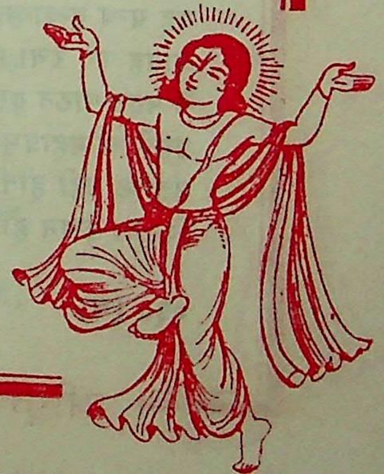
श्रीवृन्दावनदासके वैवाहिक जीवनका उल्लेख नहीं मिलता है। इससे समझा जाता है, वे जीवन पर्यत नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे थे। उनका अन्तिम जीवन देनुड़ ग्राममें व्यतीत हुआ था। वहाँ ही उनकी पाटबाड़ी है। कहते है, स्वयं उनके द्वारा लिपिवद्ध 'चैतन्य भागवत' की मूलप्रति वहाँ सुरक्षित है। उनका कोई अन्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। उनके रचे हुए कुछ पद अवश्य मिलते है।

'चैतन्य भागवत' का पूर्वनाम 'चैतन्यमंगल था। स्वयं श्रीवृन्दावनदासने ग्रंथके प्रारंभिक अध्यायकी समाप्ति पर 'चैतन्य मङ्गल' नाम ही लिखा है।[1] 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'–कार श्रीकृष्णदास कविराज महोदयने इसकी प्रशस्ति 'चैतन्य मङ्गल' नामसे ही की है।[2] ऐसा ज्ञात होता है कि इसे श्रीलोचनदास कृत 'चैतन्य मङ्गल' से पृथक् करनेके लिए 'चैतन्य भागवत' कहा जाने लगा। इसका यह नाम भी कविराज द्वारा वृन्दावनदासजीकी महत्ता बतलानेसे ही अधिक प्रसिद्ध हुआ है। उन्होंने 'श्रीचैतन्य-चरितासृत' में लिखा है, जिस प्रकार भागवतकी श्रीकृष्ण-लीलाके व्यास वेदव्यास हैं, उसी प्रकार चैतन्य-लीलाके व्यास वृन्दावनदास हैं—

---

(१) **चिंतिया चैतन्य चाँदेर चरण कमल।**
**वृन्दावनदास गान 'श्रीचैतन्य मंगल'॥** आदि खण्ड १-१७९

(२) **वृन्दावनदास कैल 'चैतन्य मंगल'।**
**जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमङ्गल॥**





**कृष्ण-लीला भागवते कहे वेदव्यास।**
**चैतन्य-लीलार व्यास वृन्दाबनदास॥**

श्रीयदुनाथ सरकारके मतानुसार 'चैतन्य भागवत' की रचना सं० १६३२ में हुई थी, किन्तु इसका रचना-काल इससे पूर्वका अनुमानतः सं० १६२५ से सं० १६३० के बीचका ज्ञात होता है। इसमें आदि, मध्य और अन्त्य नामक तीन खंड है। प्रथम दो खंडोंमें श्रीगौरांगप्रभुके जीवनकी आदि और मध्यकी लीलाओंका विस्तार पूर्वक कथन है, किन्तु अन्तिम खंडमें वर्णित उनके नीलाचल-निवासकी लीलाएँ संक्षिप्त ही नहीं, अपूर्ण भी हैं। इस खंडके अंतिम परिच्छेदोंमें श्रीचैतन्यदेवकी शेष लीलाओंका कथन न कर श्रीनित्यानंदजीका वृत्तांत लिखा गया है। इससे ज्ञात होता है कि वृन्दावनदासजीको श्रीगौरांगमहाप्रभुकी अंतिम लीलाओंके वर्णनका अवकाश नहीं मिला, वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके लीला-रस प्रवाहमें बह गये।

(६) **श्रीकृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत'**—यह ग्रंथ श्रीगौरांग प्रभुकी जीवन-लीलाओंसे संबंधित काव्योंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी प्रसिद्धि भी अत्यधिक है। इसके रचयिता श्रीकृष्णदास कविराज वर्धमान जिलाके झामटपुर ग्राममें सं० १५७३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। उनके माता-पिताका देहांत उनकी बाल्यावस्थामें ही हो गया था, अतः उनकी भुआने उनका पालन-पोषण किया था। उन्होंने आरम्भमें फारसी पढ़ी थी। बादमें उन्होंने संस्कृतका अध्ययन इस विचारसे किया कि वे अपने पैतृक व्यवसाय आयुर्वेदिक चिकित्सामें निपुणता प्राप्त कर सकेंगे; किन्तु वे पूर्व संस्कार वश एवं श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा प्राप्त कर भक्ति-मार्गकी ओर उन्मुख होकर निष्ठावान कृष्ण-भक्त हो गये।

वे आरम्भसे ही विरक्त स्वभावके थे, अतः उन्होंने अपना विवाह नहीं किया। जब वे १६-१७ वर्ष के थे, श्रीनित्यानन्द प्रभुके स्वप्नादेशसे ब्रजकी ओर चल दिये। वे सं० १५९० के लगभग वृन्दावन पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने श्रीरूप गोस्वामीजीसे वैष्णव धर्म-ग्रन्थोंकी शिक्षा प्राप्त की। वे गौड़ीय भक्तोंके साथ वृन्दावन और राधाकुंडमें निवासकर भगवद्भजन और शास्त्र-चर्चामें सदैव व्यस्त रहते थे। उनकी रचनाओंसे ज्ञात होता है कि वे वैष्णव धर्म ग्रन्थके मार्मिक विद्वान थे। अपने अन्तिम कालमें वे श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके साथ राधाकुंडमें निवास करते थे। वहाँ पर ही उन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'चैतन्य चरितामृत' की रचना की। यह ग्रन्थ वृन्दावन-राधाकुंड आदि ब्रजके विभिन्न स्थानोंमें निवास करने वाले गौड़ीय भक्तोंके आग्रह पर रचा गया था। वे भक्त-जन सायंकालमें एकत्र होकर वृन्दावन कृत 'चैतन्य भागवत' के पठन-पाठन द्वारा अपने—उपास्य श्रीगौरांग महाप्रभुजीका गुणानुवाद किया करते थे। किन्तु उसमें श्रीमहाप्रभुजीकी समस्त लीलाओंका विस्तार पूर्वक वर्णन न होनेसे उन भक्तजनोंकी संतुष्टि नहीं होती थी। वे ऐसा ग्रंथ चाहते थे, जिसमें श्रीमहाप्रभुजीकी समस्त लीलाओंका विस्तृत कथन हो। इसके लिए उन्होंने श्रीकृष्णदास कविराजसे प्रार्थना की। कविराज महोदय

बड़े विद्वान और उच्चकोटिके भक्त-कवि थे। वे तब तक संस्कृत भाषामें उत्कृष्ट ग्रंथोंकी रचना कर चुके थे और श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके साथ ब्रजके राधाकुंड नामक तीर्थ स्थलमें निवास करते थे। किन्तु उस समय वे अत्यन्त वृद्ध और अशक्त थे। उनके नेत्रोंकी ज्योति मंद हो गयी थी; और शरीरकी सभी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयी थीं। ऐसी स्थितिमें उन्हें विश्वास नहीं होता था कि वे श्रीगौरांग महाप्रभुकी समस्त लीलाओंका यथोचित रूपमें कथन कर सकेंगे। गौड़ीय भक्तजनोंके प्रबल आग्रहसे वे महाप्रभुजीकी समस्त लीलाओंका आद्योपांत कथन करनेमें प्रवृत्त तो हो गये; किन्तु उन्हें सदैव यह चिंता रहती थी कि वे अपने जीवन-कालमें उस महान् कार्यको सम्पन्न भी कर सकेंगे, या नहीं। उन्होंने अपनी तत्कालीन स्थितिके सम्बन्धमें लिखा है—

आमि वृद्ध जरातुर, लिखिते कांपये कर,
मने किछु स्मरण ना हय।
ना देखिये नयने, ना शुनिये श्रवणे,
तभु लिखिए, बड़ विस्मय ॥७९॥
यदि ततदिन जीये, महाप्रभु कृपा हये,
इच्छा भरि करिव विचार ॥८१॥

—मध्य लीला, द्वितीय परिच्छेद

अर्थात्—मैं वृद्ध हूँ; और जराजीर्ण हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं। कोई बात मुझे याद भी नहीं रहती है। मैं न तो नेत्रोंसे अच्छी तरह देख पाता हूँ, और न कानोंसे भली प्रकार सुन सकता हूँ। तब भी इस ग्रंथको लिख रहा हूँ। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। यदि महाप्रभुजीकी कृपासे कुछ समय तक और जीवित रहा, तब अपनी इच्छानुसार ग्रंथकी पूर्ति कर सकूँगा। उस समय कविराज महोदयकी शारीरिक स्थिति जैसी शोचनीय थी, उसे देखते हुए उनकी चिंता स्वाभाविक थी। किन्तु उन्हें श्रीचैतन्यदेवकी कृपाका भरोसा था। वे महाप्रभुजी पर आश्रित होकर ग्रंथ-रचना करते रहे; और दिन-रात कठिन परिश्रम करनेके उपरांत उन्होने कई वर्षोंमें इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथको पूर्ण कर लिया। तभी उन्होंने संतोषकी श्वाँस ली।

इस ग्रंथमें 'आदि लीला', 'मध्य लीला' और 'अन्त्य लीला' नामक तीन खंड हैं। इसके प्रथम और द्वितीय खंडोंकी रचनामें वृन्दावनदास कृत 'चैतन्य भागवत' से पर्याप्त सहायता ली गई है; किन्तु तृतीय खंडकी रचनामें वह अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुई। कारण यह है कि उसमें श्रीगौरांग महाप्रभुकी अतिम लीलाआका पूर्णतया कथन नहीं हो सका था। इस तृतीयखंड की सम्यक् पूर्ति करनेमें कविराज महोदयको श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कृत 'कड़चा' के साथ-साथ उनकी व्यक्तिगत जानकारीसे बड़ी सहायता प्राप्त हुई थी।

जिस समय श्रीमहाप्रभुजी नीलाचल ( जगन्नाथपुरी ) में अपनी





अंतिम लीलाएँ कर रहे थे, तब श्रीरघुनाथदासजी उनकी सेवामें रहते थे। उसी कारण वे महाप्रभुजीकी अनेक लीलाओंसे सुपरिचित थे। उनके अतिरिक्त महाप्रभुजीके अंतरङ्ग पार्षद श्रीस्वरूप दामोदरजीसे भी उन्होंने अनेक बातें सुनी थीं। उन सबका परिज्ञान श्रीरघुना दासजीने श्रीकविराजजीको करा दिया था, जिनका भरपूर उपयोग उन्होंने अपने ग्रंथको प्रामाणिक बनानेमें किया था।

'चैतन्य-भागवत और 'चैतन्य-चरितामृत' दोनों ही श्रीगौरांग महाप्रभुजीकी जीवन-लीलाओंके प्रमुख ग्रंथ हैं। यदि इनकी तुलनात्मक समीक्षाकी जाय, तो इनके स्वरूप और महत्त्वका समुचित बोध हो सकेगा। 'चैतन्य भागवत' में महाप्रभुजीकी प्रारंभिक लीलाओंका विस्तृत वर्णन है; 'चैतन्य-चरितामृत' में उन्हें कुछ संक्षिप्त रूपमें लिखा गया है। 'चैतन्य-भागवत' में महाप्रभुजीकी मध्य लीलाओंका जितना वर्णन है, उससे कुछ अधिक 'चैतन्य चरितामृत' में है। किंतु 'चैतन्य-भागवत' में महाप्रभुजीकी अंतिम लीलाओंका अपेक्षाकृत संक्षिप्त और कुछ अपूर्ण कथन किया गया है; जब कि 'चैतन्य-चरितामृत' में उनका विस्तृत और पूर्ण वर्णन उपलब्ध है। इस प्रकार ये दोनों ग्रंथ एक-दूसरेके पूरक हैं। श्रीमहाप्रभुजीकी संपूर्ण जीवन-लीलाओंसे परिचय प्राप्त करनेके लिए इन दोनों ग्रंथोंका अध्ययन करना आवश्यक है। जहाँ तक दोनोंके आकारका सम्बन्ध है, 'चैतन्य-भागवत' से चैतन्य चरितामृत बड़ा है।

'चैतन्य-चरितामृत ग्रंथकी बड़ी विशेषता यह है कि इसमें श्रीगौरांग महाप्रभुजीकी समस्त जीवन-लीलाओंका विस्तृत एवं प्रामाणिक कथन होनेके अतिरिक्त इसमें प्रासंगिक रूपमें षट्दर्शन उपनिषद्, भगवद्गीता और श्रीभागवत सहित विविध पुराणोंके मूल तत्त्वों तथा श्रीरूपगोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृतसिन्धु' एवं 'उज्ज्वलनीलमणि ग्रंथोंका सार भी संकलित है। इससे यह श्रीमहाप्रभुजी द्वारा प्रवर्तित और गोस्वामियों द्वारा प्रचारित 'गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय' का प्रमुख सिद्धांत ग्रंथ ही बन गया है।

इस ग्रंथ रचनाका स्थल ब्रजका धार्मिक एवं तीर्थस्थान राधाकुंड है और इसका रचना-काल सं० १६३९ के लगभग है। इसकी भाषा बंगला है, जिनमें संस्कृत और ब्रजभाषाके कुछ शब्द भी मिश्रित हैं। इस मिश्रणका कारण यह है कि बंगला कविराजजीकी मातृ बोली बंगला संस्कृत उनके अध्ययनकी भाषा और ब्रजो उनके दैनिक व्यवहार एवं बोलचालकी भाषा थी। चैतन्य सम्प्रदायियोंके साथ-साथ सभो भक्तजनोंमें इस ग्रन्थका आरम्भसे ही बड़ा प्रचार रहा है। इसकी सहस्रों हस्तप्रतियाँ समय-समयपर तैयारकी जाती रही हैं। मुद्रणालयोंका प्रचलन हो जानेपर इसके बहुसंख्यक मुद्रित संस्करण किये गये हैं। ब्रजभाषामें इसका पद्यानुवाद किसी सुबलश्याम नामक भक्त-कवि द्वारा किया हुआ बाबा श्रीकृष्णदासने प्रकाशित कराया था। इस ग्रन्थका हिन्दी भाषामें अनुवाद और विस्तृत टीका सहित सर्वप्रथम संकलन श्रीश्यामदास (श्यामलाल हकीम) द्वारा सन् १९६२ में किया गया और इसका प्रकाशन श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन मण्डल द्वारा हुआ। उसका तीसरा संस्करण अब भी उपलब्ध है। स्वामी भास्करानन्द सरस्वतीने इस ग्रन्थका सहजबोध संस्कृतानुवाद प्रकाशित किया है।

इस ग्रंथकी कुछ हस्तप्रतियोंमें एक श्लोक मिलता है, जिसमें इसका रचना-काल सं० १६७२ लिखा गया है। यह श्लोक प्रक्षिप्त मालूम होता है; और सब प्रतियोंमें यह मिलता भी नहीं है। ऐसी मान्यता है कि इस ग्रन्थकी पूर्ति श्रीरघुनाथदास गोस्वामी की विद्यमानतामें हुई थी, जिनका निधन सं० १६३९ की आश्विन शुक्ला १२ को हुआ था। ऐसी स्थितिमें इस ग्रन्थका रचना-काल सं० १६३९ के पश्चात् माननेकी कोई सार्थकता नहीं है।

इस ग्रन्थके पूर्ण हो जानेसे श्रीकृष्णदास कविराजका संकल्प भी पूरा हो गया। उसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपना नश्वर शरार छोड़ दिया। उनकी भजन-कुटीर एवं समाधि राधाकुंडके तटपर है।

## प्राचीन स्मृति चिह्न

१—श्रीमन्नित्यानन्दप्रभुके—

(क) श्रीअनन्तशिला, त्रिपुरासुन्दरी यन्त्र, लाठी, एवं भागवत, खड़दह मन्दिरमें और पाणिहाटि ग्रन्थमन्दिरमें।

(ख) जपमाला —श्रीगौरेन्द्रमोहन गोस्वामीके घर कलकत्ता में।

(ग) पगड़ी—दोगाछिया मन्दिरमें एवं पाणिहाटि ग्रन्थ मन्दिर में।

२—श्रीअद्वैतप्रभुके

(क) चरणचिह्न —झाड़ु मण्डल, वृन्दावनमें।

(ख) नृसिंह शिला—बड़ी गोस्वामि-बाड़ी, शान्तिपुरमें।



श्रीसनातन गोस्वामीका भोटकम्बल, यमुना तीरस्थ हरोजा मन्दिरमें। श्रीहरिदास ठाकुरकी माला झोली एवं लाठी श्रीहरिदास ठाकुर समाधि मन्दिर, स्वर्णद्वार पुरीमें, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर हस्तलिखित श्रीचैतन्यभागवत, देनुड़ मन्दिरमें, श्रीअभिराम गोस्वामीका जय-मंगल चाबुक कृष्णनगर-मन्दिर, खानाकुलमें। श्रीवासपण्डित सेवित श्रीविग्रह हुगली में। श्रीरघुनाथदास गोस्वामि सेवित गोवर्धन शिला, भागवत निवास, वृन्दावनमें। कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामिकी पादुका झामटपुरमें तथा श्रीनिवासाचार्य प्रभुकी पादुका बांकुड़ा विष्णुपुरमें दर्शनीय हैं।





# श्रीनामसंकीर्तन-पिता—श्रीगौरांग

सङ्कीर्तन—

श्रीमन्महाप्रभु गौरांगको संकीर्तनका पिता या स्रष्टा अथवा प्रवर्त्तक कहा जाता है—

**'चैतन्येर सृष्टि एइ प्रेमसंकीर्तन ।।'** चै० चरि०, २।११।८६

संकीर्तनका लक्षण करते हुए श्रीपाद जीवगोस्वामिजीने लिखा है—**'सङ्कीर्तनं बहुभिर्मिलित्वा तद्गानसुखं श्रीकृष्णगानम् ।।'** क्रमसन्दर्भ ।।—अनेक व्यक्तियों द्वारा मिलकर ( सुर-ताल-वाद्यादिके साथ ) श्रीकृष्णके प्रीतिजनक कृष्णकीर्तनको 'संकीर्तन' कहते हैं । उस संकीर्तनका लक्ष्य एकमात्र कृष्णप्रेम होने से उसे 'प्रेमसंकीर्तन' कहा गया है, जिसके प्रवर्त्तक या स्रष्टा हैं महाप्रभु-श्रीगौरांग । श्रीमहाप्रभुके आविर्भावसे पहले कीर्तन था । नवविधा भक्तिमे दूसरे स्थानपर अर्थात् श्रवणके बाद कीर्तनका उल्लेख श्रीमद्भागवतादि अनेक भक्तिशास्त्रोंमें मिलता है और वह कीर्तन अनेक स्थलोंपर प्रचलित भी था । किन्तु उस कीर्तनके अन्तरालमें भुक्ति-मुक्तिकी वासनाएं रहती थीं । अपने मनोभीष्टकी पूर्त्तिके लिये अनेक स्थलोंपर कीर्तन अनादिकालसे प्रचलित था । परन्तु कृष्णप्रेम-मूलक कृष्णसंकीर्तनका प्रचार श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावसे पहले प्रचलित न था ।

**कीर्तन—**

कीर्तनका अर्थ है नाम-रूप-गुण-परिकर एवं लीला-कथाका कथन—'कीर्तनम् कथनम् ।' साधारणत: किसी विषयमें, किसीके विषयमें कुछ कहना ही कीर्तन कहलाता है । ऐसा कीर्तन धीमी स्वरमें हो सकता है, उच्चस्वरमें भी । सुर-ताल लय-वाद्यादिके साथ भी हो सकता है, एक व्यक्ति भी कर सकता है. अनेक व्यक्ति मिलकर भी कर सकते हैं ।

**श्रीनामसंकीर्तन—**

संकीर्तन उपर्युक्त कीर्तनका एक प्रकार-भेद होते हुए भी एक विशेष अर्थ रखता है - **'सम्यक्प्रकारेण देवतानामोच्चारणम् ।।'** शब्दकल्पद्रुम ।। अपने इष्टदेवके नामका सम्यक् प्रकारसे उच्चारण करना ही संकीर्त्तनका मुख्य अर्थ है । श्रीश्रीधरस्वामीने कलिके उपास्य तथा उपासना सम्बन्धी 'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं—(भा० ११।५।३२) इत्यादि श्लोकके-'यज्ञैः संकीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः' में वर्णित 'संकीर्तन'—शब्दकी व्याख्यामें कहा है - **'संकीर्तनम् नामोच्चारणम् ।'** श्रीजीव गोस्वामिपादने कहा है—**नामकीर्तनञ्चेदमुच्चैरेव प्रशस्तम् ।।** अर्थात् सम्मिलित

भावसे अनेक व्यक्तियों द्वारा जो उच्च स्वरमें नाम-कीर्तन करना है, वही नाम-संकीर्तन है। श्रीसनातन गोस्वामिपादने उक्त भागवतीय श्लोक (११।५।३२) की व्याख्यामें कहा है—**'एवमपि कलौ पूजातः श्रीमन्नामसंकीर्तनस्य माहात्म्यमेव सिद्धं-द्रव्यशुद्धयादेरसम्भवात् लिखतन्यायेन माहात्म्यविशेषाच्चेति दिक ॥'** श्रीहरिभक्तिविलास, ११।२४१॥ अर्थात्—इससे सिद्ध होता है कि कलियुगमें पूजासे भी श्रीनामसंकीर्त्तनका माहात्म्य अधिक है क्योंकि पूजादिके उपकरणोंकी शुद्धि कलियुगमें असम्भव है। श्लोकमें लिखित न्यायानुसार भी नामसंकीर्त्तनका माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट है, क्योंकि यह भगवत्प्रेम उदय करता है।

इस प्रकार भगवन्नामका उच्च संकीर्त्तन, चाहे वह एकाकी हो अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा सम्मिलितरूपसे हो, इसके प्रवर्त्तक, आदर्श-स्थापक तथा स्रष्टा एकमात्र श्रीमन्महाप्रभु गौरांग हैं--इसलिये उन्हें श्रीनामसंकीर्त्तन का पिता या स्रष्टा कहा गया है।

**वेदोंमें श्रीनामसंकीर्तन--**

**विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचन् ॥ ऋक्वेद ॥** १।१५४।१॥ —मैं अब श्रीविष्णुके लीला-नामादिका कीर्त्तन करता हूं।

**तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीलहुषः ॥ --ऋक् ॥ १।१५५।४ ॥** त्रिभुवनेश्वर, जगद्रक्षक, कृपालु, सर्वेच्छा-परिपूरक भगवान् विष्णुके चरित्रका मैं कीर्तन करता हूं ॥

**ॐ आहस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन् महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ऋक्,** १।१५६।३॥ हे विष्णो ! आपका नाम चित्स्वरूप है, स्वप्रकाशरूप है, इसलिये आपके नामके सम्बन्धमें किञ्चिन्मात्र जानकर केवल नामके अक्षर मात्रोंके उच्चारणके प्रभावसे भी आपकी भक्तिको प्राप्त कर सकूंगा ॥

परब्रह्मके वाचक अर्थात् नाम प्रणवके सम्बन्धमें कठोपनिषद् कहता है-**'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म।'** ब्रह्मका नाम यह प्रणव (ॐ) ही ब्रह्म है। नाम-अक्षर ही ब्रह्म है।

इस प्रकार श्रीनामकी अशेष-विशेष महिमा वेदोंमें वर्णित है। सर्वोत्कृष्ट फल है भगवत्-प्रेम-प्राप्ति। अपौरुषेय शास्त्रों अर्थात् वेदों-पुराणों में, विशेषतः समस्त वेद ब्रह्मसूत्रार्थ निर्णायिक-गायत्री भाष्यस्वरूप श्रीमद्भागवतमें नाम-माहात्म्य तथा उसके प्रेम फलका बार-बार वर्णन किया गया है। केवल कलियुगका ही नहीं, समस्त युगोंमें श्रीनामसंकीर्त्तको सर्वसाध्य-साधन-शिरोमणि कहकर शास्त्रोंने निरूपण किया, किन्तु इस रहस्यकी ओर ध्यान तथा मनोवृत्तिको आकर्षित किया है श्रीमन्महाप्रभुने। उन्होंने स्वयं श्रीनामसंकीर्त्तनका आस्वादन किया, समस्त जीव-जगत्को श्रीनामसंकीर्त्तनमें प्रवृत्त कराया तथा उसके परमफल कृष्णप्रेमका भी समस्तको अनुभव कराया एवं तज्जनित परम आनन्दरसका आस्वादन कराकर कृतकृत्य कर दिया।





**श्रीनामास्वादन एवं प्रचारका संकल्प—**

व्रजलीलामें श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधाजीके प्रेमको देखकर उन्मत्त हो उठते, पूर्णानन्दमय होकर भी सर्वदा उनके प्रेममें विह्वल रहते। वे सदा यह सोचते थे कि राधाप्रेम क्या वस्तु है ? कितना बल है इसमें ? इसी प्रकार अपने माधुर्य आस्वादनमें श्रीराधाजीकी जो दिव्योन्माद भावदशा वे देखते तो अवाक् रह जाते. अनुमान ही न कर पाते कि प्रियतमा किस आनन्दसागर-में डूब जाती हैं—कैसा सुख मिलता है श्रीराधाको ? और फिर न जाने मेरा माधुर्य ही कैसा जादू भरा है जो एक तमाल वृक्षको घंटों लिपटी रह जाती हैं, केवल उसीमें मेरी नीलिमा देखकर ? मेरा नाम सुनते ही जाने राधाको क्या हो जाता है कि अति व्याकुल हो उच्चस्वरमें क्रन्द्रनकर पछाड़ें खाने लगती हैं ? मेरे श्याम नामकी रट लगाते-लगाते आत्म-विस्मृत हो जाती हैं और पास खड़ी सखियोंसे पूछने लगती है--सखि ! राधा कहां है ?

**श्याम श्याम रटत प्यारी आप ही श्याम भयी ।**
**पूछत फिरत अपनी सखियन सौं राधा कहां गयी ।।**

मेरे नाममें यह कैसा जादू ? कैसा आनन्द ? —राधाप्रेमकी क्या महिमा है ? उस प्रेम द्वारा आस्वादित मेरा माधुर्य कैसा ? उस माधुर्य-आस्वादनमें कैसा सुख है ?—इन तीनों बातोंका समाधान श्रीकृष्ण व्रजलीलामें न कर पाये। कर भी कैसे पाते ? वहां तो आप थे राधाप्रेमके विषय। राधाप्रेमके आश्रय बनें, स्वयं राधा बनें, एवं श्रीराधा इन्हें अपनी प्रेम-सम्पति प्रदान करें, तभी तो श्रीकृष्ण अपने माधुर्यका अनुभव करें और फिर उसमें क्या सुख भरा है—उसे आस्वादन करें।

इस अपने माधुर्य-आस्वादनकी वासनाकी पूर्त्तिके लिये उन्होंने पराठाकुरानी महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधाजीसे उनके प्रेम (महाभाव) की याचना की। परमोदार कृष्णप्राण-वल्लभाने अपने महाभावके साथ अपनी कान्ति भी प्रदानकर श्यामसुन्दरको गौरसुन्दर रूपमें सजा दिया—भीतर कृष्ण, बाहर गौर, महाभाव-रसराज एक जगह मिलित हुए।

नाम-रूप-गुण-लीलात्मक निज माधुर्यके आस्वादन पूर्त्तिके संकलपको लेकर श्रीमन्महा-प्रभुने राधाभावाविष्ट होकर अपने नामका अशेष रूपसे आस्वादन किया। अश्रु-पुलक-सात्विक भावोंमें विभूषित हो कृष्ण-कृष्ण रटते-रटते श्रीराध.जी की तरह आत्मविस्मृत हो जाते। स्वयं श्रीकृष्ण होकर भी श्रीकृष्णके विरहमें अतीव व्यग्र हो जाते। राय रामानन्द तथा श्रीस्वरूप दामोदर हैं तो पुरुष, किन्तु उन्हें सदा वे सखी जानकर बार-बार यही पूछते—

**कह सखि ! कि करि उपाय ?**
**कृष्णाद्भुत बलाहक, मोर नेत्र चातक, ना देखि पियासे मरि याय ।।**

हे सखि ! अद्भुत श्यामघन श्रीकृष्णको देखे विना मेरे नेत्र-चातक प्यासमे मरे जा

रहे हैं, बोलो तो, क्या उपाय करूं मैं ?—श्रीराधाजी कृष्ण-कृष्ण रटते अपनेको कृष्ण जानने लगती थीं ठीक उसी प्रकार श्रीगौरकृष्ण कृष्ण-कृष्ण रटते अपनेको राधा जानकर उनके विरहमें प्राण-विसर्जनका दुख अनुभव करते, किन्तु यह विरह-दुख एक अनिर्वचनीय मिलन-सुखकी सृष्टि करता संयोगसे वियोगका अत्यधिक उत्कर्ष सब रसिकोंने निरूपण किया ही है।

श्रीगौरांगने हुंकार-गर्जन-क्रन्दनभरी शत-शत पछाड़ें खाकर स्वस्वरूप-अभिन्न अपने कृष्णनामका मजा देखा और अन्तमें उन्हें कहना पड़ा—

आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्।
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

अहो ! श्रीकृष्णनाम संकीर्त्तन तो हृदयमें आनन्दसागरको तरङ्गायित करने वाला है, इस नामका प्रतिपद, नहीं-नहीं प्रति अक्षर ही अमृतसे लबालब भरा है। मेरे शरीर-मनका प्रति अणु-परमाणु प्लावित हुआ जाता है इसकी रसीली-स्निग्धता में ! जय हो, जय हो इस श्रीकृष्णनाम संकीर्त्तनकी।

व्रजलीलामें उठी स्वमाधुर्यास्वादनकी लालसाकी पूर्त्ति रसिक-चूड़ामणि श्रीराधा-वल्लभ नन्दनन्दनने श्रीकृष्णचैतन्यरूपसे इस प्रकार की।

व्रजलीलाके ठीक समाप्त होनेपर कलियुगका प्रवेश होना था। हर युगमें श्रीभगवान् युगधर्मके स्थापनके लिये अवतीर्ण होते हैं; जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्णचैतन्यरूपमें कलिमें अवतीर्ण होने जा रहे थे; उन्होंने आनुषङ्गिकरूपमें कलियुगके धर्म-प्रचारका भी संकल्प किया—(श्रीचै० चरि० १।२।१७।१९)—

युगधर्म प्रवर्त्ताइमु नामसंकीर्तन।
चारि भाव-भक्ति दिया नाचाइमु भुवन॥
आपनि करिव भक्त-भाव अङ्गीकारे।
आपनि आचरि भक्ति शिखाइमु संसारे॥
आपनि ना कैले धर्म शिखान ना जाय।
एइ त सिद्धान्त गीता-भागवते गाय॥

'कलियुगके धर्म—भगवत्-प्राप्तिके परमोपाय श्रीनामसंकीर्त्तनका मैं प्रचार करूंगा एवं दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर—इन चारों भावोंसे युक्त व्रजकी जो प्रेम-भक्ति है, उसे भी समस्त जगत्को दानकर सब जीवोंको प्रेमोन्मत्तकर नचाऊंगा। मैं स्वयं ही भक्तभावको अङ्गीकार करके भक्तिका आचरणकर जीव-जगत्को भक्तिकी शिक्षा दूंगा, क्योंकि जब तक किसी धर्मका स्वयं आचरण करके न दिखाया जाय, तब तक उस धर्मकी शिक्षा दूसरेको नहीं दी जा सकती। श्रीगीता-भागवतमें भी यही सिद्धान्त वर्णित हुआ है। इस प्रकारका संकल्प श्रीकृष्णने किया।





**कलियुग-धर्म श्रीनामसंकीर्तन—**

श्रीनामसंकीर्त्तन अथवा श्रीभगवन्नामकी सदा, सर्वदा—हर युगमें हर साधनपर सर्वतोभावसे व्याप्ति है। कर्म-योग एवं ज्ञानादि साधनोंपर साहचर्य दानरूपमें व्याप्ति है अर्थात् भक्ति तथा भक्तिमें सर्वसाधन श्रेष्ठ श्रीनामकी सहायताके विना कर्म-योग-ज्ञानादि अपना फल प्रदान करनेमें नितान्त असमर्थ हैं। विशेषत: उक्त समस्त साधनोंको किये विना केवल श्रीनामसंकीर्त्तन द्वारा ही उनके फल या साध्यको अनायास प्राप्त किया जा सकता है। अत: श्रीनामसंकीर्त्तनकी स्वतन्त्ररूपमें समस्त साधनोंपर व्याप्ति है अर्थात् परिपूर्णरूपसे उनपर हावी है। श्रीनाम-माहात्म्यका वेदपुराण एवं भक्तिशास्त्रोंमें अनन्त निरूपण किया गया है। तो क्या वह माहात्म्य कलियुगके लिये ही निर्धारित है ?—ऐसी बात नहीं है। नामी भगवान् सच्चिदानन्दघनकी भांति अभिन्न स्वरूप उनका नाम भी नित्य, सत्य एवं आनन्दस्वरूपमें विराजमान है। केवल कलियुगके लिये ही उसका अनन्त-अप्रतिम प्रभाव सीमित नहीं है।

महाराज परीक्षित् जब आमरण अनशनका व्रत निश्चयकर गङ्गाके किनारे आकर बैठे, उस समय अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र आदि अनेक त्रिकालज्ञ ऋषि मुनि वहां एकत्रित हुए। उनमें भगवान् व्यास एवं श्रीनारद भी उपस्थित थे। राजाने उन सबसे निवेदन किया—हे महात्मावृन्द ! आप सत्यलोकमें रहने वाले मूर्तिमान् वेदोंके समान हैं। जीवोंपर अनुग्रह करना आपका सहज स्वभाव है। अत: मैं आपपर विश्वासकर आपसे यह जानना चाहता हूं कि सबके लिये, सब अवस्थाओंमें, सदाके लिये विशेषकर उन पुरुषोंके लिये, जिनकी मृत्यु थोड़े ही समयमें होने वाली हो, अन्त:करण और शरीरसे कौन सा विशुद्ध साधन करने योग्य है, जिससे उनका संसार-सागरसे उद्धार होकर उन्हें परमपदकी प्राप्ति होती है ?

इतनेमें महामुनि श्रीशुकदेवजी वहां पधारते हैं सबने उनका समादरकर उन्हें आसन दिया। और यही प्रश्न राजा परीक्षित्ने उनके सामने दुहराया। श्रीशुकदेव मुनि शिरोमणिने कहा—

**एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।**
**योगीनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ।।** श्रीभा० २।१।११।।

हे राजन् ! जो लोग इस लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी कामना रखते हैं, या इसके विपरीत संसारमें दुखका अनुभव करके जो लोग संसारसे विरक्त होगये हैं और निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, तथा जो लोग योग-सम्पन्न, सिद्ध ज्ञानी हैं—उन सबके लिये समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे श्रीहरिनामका प्रेमसे संकीर्तन करें।

इन वचनोंसे स्पष्ट है कि सकाम, मुमुक्षु तथा सिद्ध योगियोंके लिये उनकी अभीष्ट-प्राप्तिके विषयमें एकमात्र श्रीहरिनाम संकीर्तन ही निरापद साधन है—यह निर्णय समस्त युगोंके लिये ही है, केवल कलियुगके लिये नहीं।

फिर भी श्रीनामसङ्कीर्त्तनको कलिका धर्म-विशेष कहा गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ बृहन्नारदीय ।३८।१२६।

कलियुगमें एकमात्र श्रीहरिनाम ही परमधर्म है। इसके अतिरिक्त और कोई भी गति—भगवत् प्राप्तिका उपाय नहीं हैं, नहीं है, नहीं है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥
कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वस्वार्थोऽभिलभ्यते ॥

श्रीभा०, १२।३।३१, ११।५।३६।

श्रीशुकदेवजीने कहा है—हे परीक्षित् ! कलियुग दोषोंका भण्डार है, किन्तु एक महान् गुण इसमें यह है कि श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्त्तनसे हो जोव संसार-बन्धनसे मुक्त होकर परम-धामको प्राप्त करते हैं। इस गुणको देखकर जो गुण-ग्राही तथा सार-ग्राही लोग हैं, वे चारों युगोंमें कलियुगको ही श्रेष्ठ मानते हैं और इनकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि कलियुगमें कर्म, योग, ज्ञान, ध्यान, यज्ञ एवं पूजादि समस्त साधनोंका फल एकमात्र श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तनसे ही प्राप्त हो जाता है। श्रीमद्भागवत (११।५।३२) में विशेषतः राजा निमिके प्रति योगेश्वर करभाजनने कहा है कि कलियुगके उपास्य वे हैं जो श्रीकृष्णका सदा वर्णन करते हैं, जिनकी अङ्ग-कान्ति गौरवर्णकी है और जिनके अङ्ग-उपांग ही अस्त्र तथा पार्षद हैं। उनकी सुबुद्धिमान् व्यक्ति सङ्कीतन-प्रधान यज्ञ या पूजाके द्वारा अर्चना करते हैं। अर्थात् कलिका धर्म या भगवत्प्राप्तिका उपाय है श्रीनामसङ्कीर्तन।

कलिके उपास्य हैं श्रीगौरांगसुन्दर जिन्होंने अपने अङ्गस्वरूप श्रीमनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु तथा अपने उपांगस्वरूप, श्रीवासादि पार्षदोंके साथ कलिके परमधर्म श्रीनाम-सङ्कीर्त्तनका प्रवर्तन किया। उसके लिये स्वयं भी भक्तभाव अङ्गीकार करके श्रीनामसङ्कीर्तनका माधुर्य आस्वादन किया और जीव-जगत्‌को इस सर्वश्रेष्ठ भक्ति-अङ्गकी शिक्षा प्रदान की।

**कलिमें श्रीनामसङ्कीर्तनकी प्रशस्तताके कारण—**

श्रीजीवगोस्वामिपादने कहा है—**सर्वत्रैव युगे श्रीमत्कीर्तनस्य समानमेव सामर्थ्यं कलौ तु श्रीभागवता कृपया तद् ग्राह्यते, इत्यपेक्षयैव तत्तत्-प्रशंसेति स्थितम् ॥** क्रमसन्दर्भः ॥ समस्त युगोंमें ही श्रीनामसङ्कीर्तनकी समान सामर्थ्य है, कलियुगमें श्रीभगवान् स्वयं ही कृपाकर उसे ग्रहण करते हैं—इसी लिये ही कलिमें श्रीनामसङ्कीर्तनकी विशेष महिमा है—श्रीभगवान् कलियुगमें निम्न भावोंसे नामप्रचार करते हैं—





**प्रथमतः**—युगावताररूपमें। कलियुगका धर्म ही है नामसङ्कीर्तन, इसलिये साधारण कलियुगमें युगावतार रूपसे भगवन्नाम-सङ्कीर्तनका प्रचार किया करते हैं—नाम वितरण करते हैं। **द्वितीयतः**—विशेष-कलिमें अर्थात् जिस द्वापरमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अवतीर्ण होते हैं, उस द्वापरके ठीक बाद कलिमें अर्थात् वर्तमान कलिमें व्रजेन्द्रनन्दन अपनी कृपाशक्तिको पूर्णतमरूपमें विस्तारित कर श्रीगौरसुन्दररूपमें अवतरित होते हैं। वे इस कलिमें चाण्डाल पर्यन्त साधारणको श्रीहरिनाम ग्रहण कराते हैं। और किसी भी युगमें ऐसा नहीं होता। अतः वर्तमान विशेष कलिमें श्रीहरिनामका अपूव वैशिष्ट्य है। **तृतीयतः**—परमकृपालु श्रीमन्महाप्रभु स्वयं तथा अपने पार्षदों द्वारा आपामर साधारणको नामग्रहण कराते समय नामके साथ नामग्रहणकारीमें अपनी कृपा-शक्ति भी सञ्चारित करते हैं, जिसके प्रभावसे नामग्रहणकारी शीघ्र ही श्रीनामके मुख्य फलको अनुभव कर सकता है। ऐसा सुयोग और किसी युगमें सम्भव नहीं है। **चतुर्थतः**—प्रेम-भण्डार-की स्वामिनी हैं एकमात्र महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधाजी। विशेष कलिमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण उस प्रेमभण्डारको श्रीराधाजीसे मांगकर राधा-कृष्ण युगलित विग्रह या,श्रीगौरसुन्दररूपसे नाम-प्रदान करते समय उसे प्रेममण्डित कर दिया करते हैं। प्रेममय-विग्रह श्रीमहाप्रभुके श्रीमुखसे उच्चारित श्रीनाम प्रेम-विमण्डित होकर परममधुर, अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हो उठता है और श्रीमहाप्रभुके अप्रकट हो जानेपर भी जीवोंके मंगल निमित्त प्रचारित वह प्रभु-मुख निसृत श्रीनाम परमशक्तिशाली होकर प्रभाव विस्तार करता है। ऐसा और किसी युगमें नहीं होता।

इन समस्त कारणोंसे कीर्तनकारीके प्रति श्रीनामकी कृपा कलिमें जैसे सहज होती है, और किसी युगमें उतनी सहज नहीं होती। इसलिये श्रीजीवगोस्वामि पादने यह स्पष्ट उद्घोष किया है कि—**'अतएव अन्यथा भक्तिः कलौ कर्त्तव्यः, तदा तत्संयोगेनैवेत्युक्तम्।'** अर्थात् कलिमें यदि और कोई भी भजनाङ्ग करना ही पड़े, तो उसे श्रीनामसङ्कीर्तनके संयोगसे ही करना चाहिये।

**उच्च-स्वरमें नामसंकीर्तन-महिमा—**

अनेक लोगोंकी धारणा है कि उच्चस्वरमें नामकीर्त्तन क्यों किया जाये? यह एक-मात्र लोक दिखावा है। भगवानका नाम मनमें ही ग्रहण करना चाहिये। वास्तवमें इस धारणा का आधार है उन लोगोंमें लोक-लज्जा; अथवा उच्चकीर्त्तनके महत्वकी उनमें अनभिज्ञता। कीर्त्तन अथवा सङ्कीर्त्तनका अर्थ ही है—श्रीनामकीर्त्तनको उच्चस्वरसे करना—**'नामकीर्तनञ्चेदमुच्चैरेव प्रशस्तम्॥'** पद्मपुराण (२४।१५) में कहा गया है—

**हरेः प्रदक्षिणं कुर्वन्नुच्चैस्तन्नामकृन्नरः।**
**करतालादि-सन्धानं सुस्वरं कलशब्दितम्॥**

साधकको करतालादि बजाते हुए मधुर एवं मृदु शब्दोंसे श्रीहरि-विग्रहकी प्रदक्षिणा

करते हुए उच्चस्वरमें नामसङ्कीर्तन करना चाहिये । गोपीप्रेमामृत (११) में कथित है ।

**हरिनाम्नो जपात् सिद्धिर्जपाद् ध्यानं विशिष्यते ।**
**ध्यानाद् गानं भवेच्छ्रेयः गानात् परतरं न हि ॥**

श्रीहरिनामके जपसे सिद्धि होती है जपसे ध्यानकी विशेषता है, अर्थात् नाम जपके साथ-साथ नामीका ध्यान भी चले तो उत्तम है । ध्यानसे गान-उच्चस्वरमें नामजप या कीर्तन श्रेष्ठ है, किन्तु नामगानसे बढ़कर उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है ।

जीवका चित्त चंचल है । अत. उसमें भगवत्-स्मृति पूरी तरह जम नहीं पाती । स्थिर चित्तपूर्वक स्मृतिका ही फल है । अत: स्मृतिका फल पानेके लिये चित्तको संयत करनेकी जरूरत है । चित्तको संयत करनेके लिये वागेन्द्रियको संयत करना आवश्यक है, क्योंकि वागेन्द्रिय बाहरली और चित्तादि अन्दरूनी समस्त इन्द्रियोंकी चालक है । नामसंकीर्तन वागेन्द्रियको संयतकर चित्तको भी संयत करता है । उच्चकीर्तन ध्वनि कीर्तनकारीके कानों (श्रवणेन्द्रिय) को संयतकर सुनने वालोंका भी उद्धार करती है ।

लीला-स्मरण करने वाले साधकोंके लिये भी नामसंकीर्तन उत्तम साधन है; क्योंकि चित्तस्थिर न होनेपर लीला-स्मरण सम्भव नहीं और चित्तकी स्थिरता का सर्वश्रेष्ठ साधन है उच्च श्रीनामसंकीर्तन, एक इन्द्रियमें आविर्भूत होकर अपने माधुर्यरससे नामामृत समस्त इन्द्रियोंको प्लावित कर देता है—

**एकस्मिन्निन्द्रिये प्रादुर्भूतं नामामृतं रसैः ।**
**आप्लावयति सर्वाणीन्द्रियाणि मधुरै निजैः ॥**

श्रीवृहदभागवतामृतम्, २।३।१६२॥

श्रीहरिदास ठाकुर उच्चस्वरसे ही नामकीर्तन करते थे । श्रीरूपगोस्वामिपादने श्रीमन्महाप्रभुके विषयमें स्तवमालामें लिखा है कि वे उच्चस्वरसे ही तारकब्रह्म हरिनाम (महामन्त्र)-का कीर्तन करते थे—'**हरेकृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनः**'—इत्यादि । श्रीमन्महाप्रभुने एकदिन श्रीहरिदासजीसे पूछा था—(श्रीचै० च०, ३।३।६२॥)

**पृथिवीते बहु जीव स्थावर-जंगम ।**
**इह सभार कि प्रकारे हइबे मोचन ॥**

'हरिदास ! पृथ्वीपर तो असंख्य जीव हैं । उनमें जो पशु-पक्षी जंगम जीव हैं, और वृक्षादि स्थावर जीव हैं, उन सबका उद्धार कैसे होगा ? आपामर मनुष्य जातिका तो नामद्वारा उद्धार हो जायेगा ।' तब श्रीहरि-दासजीने कहा—श्रीचं० च० ३।३।६३-६१॥

**हरिदास कहे, प्रभु ! जाते कृपा तोमार ।**
**स्थावर जंगमेर प्रथम करियाछ निस्तार ॥**





तुमि जेइ करियाछ उच्च सङ्कीर्तन।
स्थावर-जंगमेर सेइ हय त श्रवण॥
शुनितेइ जंगमेर हय संसार क्षय।
स्थावरे से शब्द लागे, ताते प्रतिध्वनि हय॥
प्रतिध्वनि नहे सेइ, करये कीर्तन।
तोमार कृपाय एइ अकथ्य-कथन॥
सकल जगते हय उच्च सङ्कीर्तन।
शुनि प्रेमावेशे नाचे स्थावर-जंगम॥

'प्रभो ! आपकी कृपाने तो स्थावर-जंगम सब प्रकारके जीवोंका पहले ही निस्तारकर दिया है। आपने जो उच्चस्वरमें श्रीनामसंकीर्तनका प्रवर्तन किया है। उसे स्थावर और जङ्गम दोनों श्रवण करते हैं। मनुष्य, पशु पक्षी—जङ्गम जीवोंका नाम सुनते ही संसार-बन्धन टूट जाता है। और वृक्षादि जो स्थावर जीव हैं; उनसे जाकर जब उच्चनाम ध्वनि टकराती है, उनसे प्रतिध्वनि निकलती है। वह वास्तवमें प्रतिध्वनि नहीं, वही उनका कीर्तन है। एकमात्र यह आपकी ही कृपा है कि बोल न सकने वाले स्थावर भी कृष्णनाम कीर्तन करते हैं। समस्त जगत्में जब उच्चसङ्कीर्तन होता है, उसे सुनकर स्थावर-जंगम समस्त जीव प्रेमाविष्ट होकर नाचते हैं।' —अतः उच्चनाम सङ्कीर्तनमें जहां कीर्तनकारीका अपना निस्तार होता है, वहां वह दूसरे अनेक जीवोंका भी हरिनाम सुनाकर निस्तार करता है।

**नाम-संख्या-रक्षण**

दीक्षा-मन्त्रके जपमें संख्या-रक्षा की आवश्यकता है, क्योंकि असंख्या-पूर्वक-जप निष्फल हो जाता है, विशेषत: वह मन्त्र जप जब किसी फलकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। ऐसे मन्त्रजपमें संख्या, देश-कालादिकी पवित्रताकी भी अपेक्षा है। किन्तु जहां निष्काम मन्त्रजप हो। केवल मन्त्र-देवताके दर्शनके लिये जप किया जा रहा हो, वहां न तो सख्याकी आवश्यकता है, न देशकालादिकी अपेक्षा। केवल जपकर्ताका संयत चित्त होना आवश्यक है।

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा ;
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेनाम्निलुब्धक॥
श्रीहरिभक्तिविलास, ११।२०२

श्रीहरिनाम महामन्त्र है। दीक्षा-देशकालादिकी सीमाओंसे परे है। हरिनामसे कोई भी भगवन्नाम अभिप्रेत है, जो अपनेको प्रिय लगे। जहां शास्त्रोंमें किसी विशेष भगवन्नामके ग्रहण करनेकी आज्ञा है वहां केवल श्रद्धाके वढ़ानेका प्रयोजन है। जो साधक विशेष कामना-पूर्तिके लिये नामग्रहण करते हैं, उनके लिये संख्या, देश कालादिकी अपेक्षा शास्त्रोंमें दीखती है, अर्थात् जो व्रत रूपमें नामग्रहण करते हैं, उन्हें संख्यापर ध्यान देना आवश्यक है। परन्तु पारमार्थिक फल-प्राप्तिके लिये अर्थात् भगवत्-प्रेम, भगवत्-दर्शनके लिये एकमात्र अपराधोंसे बचनेपर श्रीमन्महाप्रभुने तथा गोस्वामिवृन्दने जोर दिया है। संख्याकी रक्षाके सम्बन्धमें

शास्त्रोंने चुप ही साधी है। अतः संख्यापूर्वक नाम-ग्रहण करना या असंख्य नामग्रहण करना— यह बात साधकपर ही छोड़ दी है शास्त्रोंने।

परन्तु ध्यातव्य है कि समस्त गौड़ीय वैष्णवोंमें संख्यापूर्वक नामग्रहण करनेकी रीति प्रचलित है, उससे निर्धारित नामग्रहण करनेका उत्साह, आग्रह एवं उत्कण्ठा साधकमें बनी रहती है। संसारासक्त जीव यदि रात न हो तो वे सोवें भी नहीं, दुनियांके काम-काजको न छोड़ें। रात आनेपर उन्हें सब काम बन्द करना ही पड़ता है। उसी प्रकार नामकी संख्याको पूरा करनेके लिये साधकको निर्धारित समयके लिये सांसारिक कामोंको छोड़ना ही पड़ता है। यदि संख्यारहित नाम हो तो कभी एक माला, कभी आधी और कभी हाथपर दस बार ही नाम लेकर संसारासक्त साधक सन्तोष कर लेता है। अतः संख्यापूर्वक नाममें साधक अपनेको एक नियम-बद्ध कर लेता है। उससे उस संख्याको पूरा करने तक के समयके लिए वह अपनेको संसार-भारसे मुक्तकर प्रभु-सम्बन्धमें जोड़ लेता है।

संख्या-रक्षणका विशेष प्रयोजन यह भी है कि नाम-अपराधोंका खण्डन नियमित नामग्रहणसे होता है। संख्या-रक्षणसे नामग्रहण एक व्रतरूप धारणकर लेता है। अतः नाम-ग्रहणकारी उसमें तत्परता लाभ करता है।

संख्या-रक्षण नामसङ्कीर्तन-भजनका अङ्ग नहीं है। नामैकतत्परताके लिए ही वैष्णवों में संख्या-रक्षण प्रचलित है, जो साधक पक्षमें लाभप्रद ही है। श्रीकविराजने श्रीमहाप्रभु-श्रीमुखनिसृत 'नाम्नामकारि बहुधा' श्लोककी व्याख्या करते हुए कहा है—

**खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।**
**देश-काल नियम नाइ सर्वसिद्धि हय॥**

श्रीचै० च० ३।२०।१४

श्रीमहाप्रभुने हर समय, खाते-पीते, सोते-जागते, देश-कालके नियमसे परे रहकर किसी भी प्रकार नामग्रहण करनेका उपदेश दिया है। संख्या या विना संख्या कुछ भी सङ्केत नहीं दिया।

**महाप्रभु-सङ्कीर्तित श्रीनाम—**

यह बात सर्व वेद-शास्त्र सम्मत है कि श्रीभगवान्‌के सब नाम समान मङ्गलकारी हैं, तत्त्वतः सर्वशक्तिमान, समान-फलदायक हैं। फिर भी स्वाभाविक यह प्रश्न उठता है कि नाम प्रेमदानकारी कलियुगपावनावतार श्रीमन्महाप्रभु किस नामका सङ्कीर्तन करते थे?—श्रीमद्भागवतमें आपके स्वरूप एवं उपासनाका वर्णन करते हुए श्रीकरभाजन मुनिने सर्वप्रथम इसी प्रश्नका उत्तर दिया है—'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं' कलिके अवतार श्रीभगवान् 'कृष्ण' का वर्णन अर्थात् कृष्णनाम-गुण लीलादिका कीर्तन करते हैं और





उनकी कान्ति अकृष्ण यानि गौरवर्णकी है। श्रीराधा-भाव-द्युति अङ्गीकार कर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्णचैतन्य रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। राधा-भावाविष्ट श्रीमन्महाप्रभुके लिये श्रीकृष्णनाम-रूप-लीला गान ही प्रिय है। विशेषत: वे कृष्ण-विषयंक राधाप्रेमका, राधाप्रेम द्वारा आस्वादित कृष्णनाम-रूप-लीला-माधुर्यका आस्वादन करनेके लिये श्यामसुन्दरसे गौरसुन्दर हुए हैं।

**सोलह नाम—बत्तीसाक्षरात्मक तारक ब्रह्म-नाम—**

श्रीमन्महाप्रभुकी नामदान-लीलाका आरम्भ होता है पूर्वबंग में। पद्मानदीके किनारे श्रीतपन मिश्रने स्वप्नादेश प्राप्त किया और श्रीमहाप्रभुके चरणोंमें पहुंचा। उसने प्रभुसे श्रेष्ठ साध्य-साधनके निर्णयकी जिज्ञासा की। श्रीमहाप्रभुने कहा—

**साध्य-साधन-तत्त्व जे किछु सकल।**
**हरिनाम संकीर्तने मिलिवे सकल॥** चै० भा० १।१०।१३९

**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।**
**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥** चै० भा० १।१०। श्लोक ६॥

**एइ श्लोक नाम बलि लय महामन्त्र।**
**षोल नाम बत्तिस अक्षर एइ तन्त्र॥**
**साधिते साधिते जबे प्रेमांकुर हवे।**
**साध्य-साधन तत्त्व जानिवा से तबे॥**

श्रीचै० भागवत—१।१०।१४०-१४१॥

—हे मिश्र! साध्य-साधन-तत्त्व जो कुछ सब है, वह कलियुगमें हरिनाम सङ्कीर्तनसे प्राप्त होता है। 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥' इस श्लोकको महामन्त्र नामसे कहा जाता है। इसमें सोलह नाम और बत्तीस अक्षर हैं। यह तन्त्र अर्थात् सर्वश्रेष्ठ साधन है और सर्वार्थप्रद है। इस महामन्त्रका कीर्तन करते-करते जब तुममें प्रेमांकुर विकसित होगा, तब तुम साध्य-साधन तत्त्वको जान लोगे अर्थात् उसका साक्षात् अनुभव प्राप्त करोगे।'

इससे स्पष्ट है कि श्रीमहाप्रभुने इस महामन्त्ररूप नामका सर्वप्रथम दान किया है श्रीतपन मिश्रको। श्रीमिश्रने इस महामन्त्रका कीर्तनकर कृष्णप्रेमकी प्राप्ति की एवं परम साध्य कृष्णसेवाका भी सौभाग्य प्राप्त किया—यह सब उनके चरित्रसे जाना जाता है।

**महामन्त्र-विषयक शंका निवृत्ति—**

कलि सन्तरणोपनिषदमें इस तारक-ब्रह्म मन्त्रका रूप इस प्रकार है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इसे श्रीब्रह्माजीने श्रीनारदजीके प्रति प्रदान किया है और इसके द्वारा कलिके समस्त पापोंके ध्वंसकी बात कही है। इसके कीर्तन-जपादिमें भी ब्रह्माजीने कोई संख्या, देश-काल, पात्र, अपात्रका नियम निर्देश नहीं किया।

उपनिषद् वर्णित मन्त्रके रूपको देखकर अनेक साधारणजन, विशेषत: श्रीरामोपासक यह समझते और प्रचार भी करते हैं कि श्रीमहाप्रभुने इस मन्त्रका उलटे रूपमें प्रचार किया है अत: गौड़ीय वैष्णव उलटा मन्त्र जपते हैं। वे लोग यह भी आरोप लगाते हैं कि गौड़ीय वैष्णव कृष्णोपासक हैं, अत: वे कृष्णनामको प्रथम स्थान देते हैं।

किन्तु तथ्य यह है कि श्रीमहाप्रभुने इसे उलटाकर प्रचार नहीं किया; क्योंकि वे स्वयं भगवान् हैं। शास्त्र-श्रुति-समृतिकी मर्यादाका उल्लङ्घन उनमें कभी सम्भव नहीं। कृष्णोपासक गौड़ीय वैष्णव श्रीकृष्ण एवं श्रीराममें बड़े छोटे या पहले-पीछे की भेद-दृष्टि कभी नहीं रखते हैं। गौड़ीयवैष्णवोंमें असंख्य रामोपासक अब भी हैं, महाप्रभुके समयमें भी थे। इस भेद को महापराध माना गया है।

**हरे कृष्ण हरे कृष्ण**—इत्यादि रूपमें महामन्त्रका उल्लेख है ब्रह्माण्ड पुराण (उत्तर खण्ड ६।५५) में। इस मन्त्रको प्रदान किया है श्रीक्रतुनामक मुनिने श्रीवृषभानु महाराजको। एक बार श्रीवृषभानु महाराज चिद्रूपा परमेशानी कात्यायनीदेवीकी उपासनामें लगे हुए थे। तब एक अशरीरी आकाश-वाणी हुई कि आप क्रतुमुनिकी शरणमें जाओ। उनसे आपको अपनी उपासनाकी सिद्धिका उपाय ज्ञात होगा। महाराज वृषभानुजी क्रतुमुनिकी शरणमें आये। उन्होंने महाराजको इस तारक-ब्रह्म महामंत्रका उपदेश किया—'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।'—इस रूपमें। क्रतुमुनिने कहा—'महाराज! इस तारक ब्रह्म महामन्त्रका उपदेश भगवान् श्रीवेदव्यास कृष्णद्वैपायनने लोमहर्षण सूतजीको किया था। श्रीव्यासजीने कहा था—इस मन्त्रका सङ्कीर्त्तन करनेसे जीव ब्रह्ममय हो जाता है। सुरापायी पापी व्यक्ति भी इस महामन्त्रको ग्रहण करनेसे परम पवित्र होकर सर्वसिद्धि–कृष्णसेवा को प्राप्त करता है।

श्रीमन्महाप्रभु राधाभावाविष्ट-प्रधान स्वरूप हैं। श्रीराधाजीके पिता श्रीवृषभानु महाराजके सिद्धिप्रद महामन्त्रका ही वे सङ्कीर्त्तन कर स्वयं कृष्णप्रेमरस आस्वादन करते हैं। अत: उन्होंने सबको इस महामंत्रके संकीर्त्तन-की आज्ञा की है।

इस रूपमें विशेषता यह है कि यह पुराणोक्त महामन्त्र है। पुराणों-के आविर्भावकर्ता हैं श्रीवेदव्यासजी। उपनिषदोंके सार-अर्थको श्रीव्यासजीने ब्रह्मसूत्रोंमें विस्तारसे वर्णन किया है। ब्रह्मसूत्रोंके अभिप्राय तथा सार अर्थके





निर्णायक हैं अठारह पुराण; जो वेदतुल्य हैं। वेदोके अर्थोंकी पूर्णता विधान करने वाले हैं, अत: उनका नाम है 'पुराण'। अत: पुराणोक्त मन्त्रोंका उपनिषत् वर्णित मन्त्रोंसे विशेष महत्व है। ब्रह्मयामल ग्रन्थमें श्रीशिवजीने भी इस मन्त्रका यही स्वरूप वर्णन किया है।[1]

**हरिं विना नास्ति किञ्चित् पापनिस्तारकं कलौ।**
**तस्माल्लोकोद्धारणार्थं हरिनाम प्रकाशयेत् ॥**
**सर्वत्र मुच्यते लोको महापापात् कलौ युगे ॥**
**हरेकृष्णपदद्वन्द्वं कृष्णेति च पदद्वयम्।**
**तथा हरेपदद्वन्द्वं हरेराम इति द्वयम् ॥**
**तदन्ते च महादेवि ! राम राम द्वयं वदेत्।**
**हरे हरे ततो ब्रूयाद् हरिनाम समुद्धरेत ॥**
**महामन्त्रं च कृष्णस्य सर्वपापप्रणाशकमिति ॥**

—'हे महादेवि ! कलियुगमें श्रीहरिके विना कोई भी पापसे निस्तार करने वाला नहीं है। अत: समस्त लोकोंके उद्धारके लिए श्रीहरिनामको प्रकाशित करना चाहिये। इस हरिनाम-के संकीर्तनसे कलियुगमें सर्वत्र सब लोग महापापोंसे मुक्त हो जाते हैं। इस महामन्त्रमें पहले 'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' ये दो पद हैं। फिर 'कृष्ण' 'कृष्ण' ये दो पद तथा फिर 'हरे' 'हरे'—ये दो पद बोलने चाहियें। तदनन्तर 'हरे राम' 'हरे राम' ये दो पद बोलकर 'राम राम' ये दो पद तथा फिर 'हरे' 'हरे' ये दो पद बोलने चाहियें—इस प्रकार सर्व पापविनाशक श्रीकृष्णके इस महामन्त्रका समुद्धरण करना चाहिये।'

इस प्रकार इस मन्त्रका 'हरे कृष्ण'–इत्यादि रूपमें राधातन्त्र, पद्मपुराण, अनन्त संहिता, एवं सनतकुमार संहिता आदि ग्रन्थोंमें भी उल्लेख होनेकी बात महत्पुरुषोंने वर्णन की है।

इस 'हरे कृष्ण' इत्यादि मन्त्रके माहात्म्यमें कहा गया है कि यह कलियुगके समस्त कलमष नाश करने वाला है। इससे बढ़कर संसारसे पार जानेका और कोई उत्कृष्ट उपाय नहीं है। ब्रह्माण्ड पुराण, उत्तर खण्ड (६।६४) में यह भी कहा गया है—

**शाक्तो वा वैष्णवो वापि सौरो वा शैव एव वा।**
**गाणपत्यो लभेत् कर्णशुद्धिं नामानुकीर्तनात् ॥**

शाक्त, (शक्तिके उपासक) वैष्णव, सौर (सूर्योपासक), शैव, गाणपत्य (गणेशोपासक) सबकी इस महामन्त्रके श्रवण मात्रसे कर्णशुद्धि—बुद्धि मनेन्द्रिय-देहकी पवित्रता होती है।

---

१ श्रीस्तवरत्ननिधि:, महामन्त्र भाष्य, पृष्ठ २१४

श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत प्रियपार्षद, श्रीजीवगोस्वामी, श्रीगोपालगुरु गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि ने तथा श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने इस 'हरे कृष्ण'—महामन्त्रकी माधुर्यमयी, ऐश्वर्यमयी तथा युगल-स्मरणमयी विभिन्न व्याख्याएं प्रस्तुतकर इसका अनुपम रसास्वादन किया है। उन समस्त व्याख्याओंका उल्लेख यहां सम्भव नहीं है। सहज रूपमें ज्ञातव्य है कि इस सोलहनामात्मक महामन्त्रमें हरि, कृष्ण एवं राम इन तीन नामोंका उल्लेख है। ये तीनों नाम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके ही हैं। सर्वचित्तहर होनेसे वे 'हरि' हैं, सर्वचित्ताकर्षक होनेसे वे 'कृष्ण' हैं तथा सर्वचित्तरमण (सर्वचित्त-आनन्ददायक) होनेसे वे 'राम' हैं। इन तीन नामोंसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका आह्वान किया गया है।

व्याख्याकारोंने 'हरे' शब्दको 'हरा'–शब्दका सम्बोधन रूप निश्चित किया है। 'हरा' का अर्थ है राधा। 'कृष्ण' से राधाचित्ताकर्षक तथा 'राम'–शब्द से (रमते इति रामः) रमण करने वाले अर्थात् राधारमण ही अभिप्रेत हैं।

श्रीमन्महाप्रभु राधा-भाव-द्युति सुवलित श्रीकृष्ण-स्वरूप हैं। भीतर कृष्ण हैं और बाहर राधा (अन्त कृष्णं बहिर्गौरं)। वे राधाभावाविष्ट हो पूर्णतः आत्मविस्मृत हो जाते थे, वे इस मन्त्रका रसास्वादन करते थे महाभाव-रसराज विवर्तस्वरूप में। वे अपनेको निश्चय ही नहीं कर पाते थे कि वे राधा हैं या कृष्ण। आत्मविभोर होकर कहते थे—

हरे—हे राधे ! [कृष्ण-वचन]

**कृष्ण**—कृष्ण ! (प्राणवल्लभ ! कहो क्या बात है ?) [राधा-वचन]

**हरे**—राधे ! (क्या कहा ? कृष्ण ! क्या मैं कृष्ण हूं ?) [कृष्ण-वचन]

**कृष्ण**—कृष्ण ! (हां आप कृष्ण ही हैं) [राधा-वचन]

**कृष्ण कृष्ण**—कृष्ण ! कृष्ण !! (क्या कह रही हो आप) [विस्मयपूर्ण कृष्ण-वचन]

**हरे हरे**—राधे, राधे। (मैं राधा हूं कृष्ण नहीं हूं) [कृष्ण-वचन]

**हरे राम**—राधारमण हैं आप (राधा नहीं हो) [राधा-वचन]

**हरे राम**—राधारमण ? (मैं राधारमण हूं क्या ? [कृष्ण-वचन]

**राम-राम**—(हां, हां आप) राधारमण हैं, राधारमण हैं। [राधा-वचन]

**हरे हरे**—राधे ! राधे !! (क्या कह रही हो ?–मैं राधा हूं) [कृष्ण-वचन]

इस प्रकार प्रेमविवर्त विलास-मूर्ति श्रीमन्महाप्रभु इस मन्त्रका अपूर्व रसास्वादन करते थे, जो उनका स्वरूपानुबन्धि है।

श्रीतपन मिश्रको इस महामन्त्रका उपदेश देनेके बाद श्रीमहाप्रभु गया पधारे और श्रीपाद ईश्वर पुरीसे मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की। निज इष्ट-मन्त्रका ध्यान करते ही प्रेममय संकीर्तन रूपमें उनके श्रीमुख-निसृत सर्वप्रथम नाम थे 'कृष्ण' प्राणवल्लभ ! हरि !—





**कृष्ण रे बापरे ! मोर जीवन श्रीहरि ।**

**कोन् दिगे गेला मोर प्राण करि चुरि ।।**

श्रीचै० भा० १।१२।११५।।

गयासे लौट आनेपर नवद्वीपमें भक्तमण्डलीमें सर्वत्र, श्रीवासके घर श्रीमन्महाप्रभुका संकीर्तन था -

**हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।**

**गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ।।**

श्रीचै० च० ३।१६।११६।।

संन्यास ग्रहण करनेके तुरन्त बाद श्रीमन्महाप्रभुका मुख्य संकीर्तन था— हरि बोल-हरि-हरि बोल।' वैसे तो हरि-हरि बोलकी ध्वनिमें ही श्रीगौरहरिका आविर्भाव हुआ और उसके बाद सर्वत्र 'हरि-बोल, हरि-हरि बोल' ध्वनिसे गौड़ मण्डल गूंज उठा था। संन्यासके बाद श्रीमहाप्रभुने 'हरि-हरि' संकीर्तन करते हुए जब नृत्य आरम्भ किया, और गुरुदेव श्रीपाद केशव भारतीजीको आलिंगन किया तो वे अपनेको स्थिर न रख सके। उन्होंने अपने दण्ड कमण्डलको घुमाकर दूर फेंका और प्रेमाविष्ट होकर श्रीप्रभुके साथ भुजाएं ऊंची उठा उच्च-स्वरमें गद्गद कण्ठपूर्वक 'हरि-हरि' नाम संकीर्तन करने लगे—

**पाक दिया दण्ड कमण्डलु दूरे फेलि ।**

**सुकृति भारती नाचे 'हरि-हरि' बलि ।।** श्रीचै० भा० ३।१।१३।।

श्रीमहाप्रभु नीलाचलसे जब दक्षिण यात्राके बहाने उधरके तीर्थोंको सुतीर्थता प्रदान करने चले और नीलाचलसे लेकर दक्षिण-भारत तकके स्थावर-जंगम, वन-पशुओं, आचाण्डाल जन-साधारणको नाम-प्रेमकी वन्यामें निर्विचार प्लावित करनेके लिये चले, तो आपके श्रीमुखसे एकमात्र 'कृष्ण-कृष्ण' नामामृतकी स्रोत-धारा प्रवाहित होने लगी, मतवाले-सिंहकी भांति प्रेमावेशमें वे कृष्णनाम संकीर्तन करते हुए जा रहे थे—

**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम् ।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम् ।।**
**राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम् ।**
**कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम् ।।**

आखरीके छय वर्षोंमें नीलाचलमें अवस्थान करते समय तो श्रीमहाप्रभु कृष्णनाम संकीर्तन करते-करते कृष्णप्रेममूर्त्ति कृष्णवल्लभा वृषभानु-नन्दिनीके कृष्णमय प्रेमविग्रह ही बन गये थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कलिपावनावतार **'श्रीनामसंकीर्तनके पिता'** श्रीमन्महाप्रभु द्वारा संकीर्तित नाम यदि कोई था, तो वह था 'कृष्णनाम'। कृष्णनाम, कृष्णरूप-गुण-लीलाको छोड़कर उनका जीवनाधार और कुछ भी ना था। श्रीमद्भागवत-वचन 'कृष्णवर्णं की चरितार्थता प्रदर्शित करते हुए श्रीमन्महाप्रभुने कृष्णनामामृत सिन्धुमें निखिल धरणितलको प्लावितकर अपनेको श्रीनामसंकीर्तन-पिता रूपमें विभूषित किया।

**श्रीनाम संकीर्तन कलौ परम उपाय—**

श्रीकृष्णनाम संकीर्तन द्वारा स्वमाधुर्यका पूर्णतम आस्वादन करते हुए श्रीमन्महाप्रभुने अन्तमें प्रसन्न-चित्त होकर असंख्य गुण-गणालंकृत श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनको **'परम-उपाय'** कह-कर कलि-जीवोंके प्रति दिव्य सन्देश दिया।

**हर्षे प्रभु कहे, शुन स्वरूप रामराय।**
**नामसंकीर्तन कलौ परम उपाय॥** श्रीचै० च० ३।२०।७

भगवत्-प्राप्तिके समस्त साधनोंपर श्रीनामकी स्वतन्त्र रूपसे व्याप्ति तथा आनुषंगिक भावसे साहचर्यदान रूप-व्याप्ति होनेसे एवं सर्व श्रुति-उपनिषत्-वेद-पुराणोंमें श्रीनामकी असाधारण महिमाका उल्लेख होनेसे श्रीमन्महाप्रभु-गौरसुन्दरने श्रीनामसकीर्तनको परम-उपाय—सर्वश्रेष्ठ साधन और साध्य रूपमें उद्घोषित किया।

कलियुग-पावनावतार-परमकरुणा-पारावार श्रीमन्महाप्रभु-गौरांगदेवके आविर्भाव-पञ्च-शताब्दीके निखिलविश्व पावन दिव्यातिदिव्य महोत्सवके उपलक्ष्यमें प्रकाशित इस स्मारिकाके शेषमें परम मङ्गलमय श्रीकृष्णनामका कोटि-कोटि प्रणिपात पूर्वक हम जयगान करते हैं—

**'मधुर मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां**
**सकल-निगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्।**
**सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा**
**भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥'**

**'परम् विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्'॥**

**नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।**
**कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥**







# जय जय जय जग-मंगलकारी

जन-मन-मोहन गौरकृष्णविधु नदियापुरबर-वरज विहारि ।।ध्रु०
नित्यानंदचन्द्र हलधर हर–कलिकुलकलुष विषम अन्धियारि ।
श्रीअद्वैत परमकरुणानिधि दारुण भव-दव दहन उधारि ।।
सुखद गदाधर धरनि विदित सिरिवासहि प्रेमभकति अधिकारि ।
गरुड़ गदाधर नरहरि हरिदास स्वरूप प्रिय गुपत मुरारि ।।
सार्वभौम सिरि-वासुदेव विद्यानिधि पुण्डरीक सुखकारि ।
सिरि जगदीश विजय वक्रेश्वर दामोदर वर विपद-विदारि ।।
रामानंद मुकुंद सुन्दरानन्द नन्दनानन्द प्रचारि ।
श्रीनिधि प्रबोधानन्द गौररसे गरगर हृदय न रहत सम्भारि ।।
रामानन्दराय रससागर परमानन्द गुपत धृति धारि ।
राघव रघुपति राम महिवर करन प्रेमधन मुदित विकारि ।।
काशीश्वर परमेश्वर नारायण सुदर्शन नयन-फल चारि ।
रूप सनातन रघुनाथ श्रीजीव भक्तिवर रतन उघारि ।।
श्रीगोपालभट्ट रघुनाथ ही लोकनाथ चैतन्य मुरारि ।
वासुघोष माधव गोविन्द सुप्रेम जलधि मधि सतत साँतारि ।।
श्रीधर परमानन्द पुरन्दर प्रभु गुणे निरत नयने झरु वारि ।
सिरि उद्धारण धनञ्जय सञ्जय गौरिदास यश विसद विथारि ।।
संकर रघुनन्दन महेष अभिराम शमन भय भञ्जन कारि ।
श्रीयदु मधु-पण्डित शुक्लाम्बर वृन्दावन वरषत रस भारि ।।
जगदानन्द मुकुन्द गानरत प्रभु रस-वस निशि-दिवस विसारिं ।
कर्णपूर कविलोचन जनलोचन गुणगण गावत नर नारि ।।
सिरि श्रीनिवास नरोत्तम श्यामानन्द सगण गुण गनइ ना पारि ।।
'नरहरि भण' मन आस पुरह निज दास करह अति दुखित नेहारि ।।



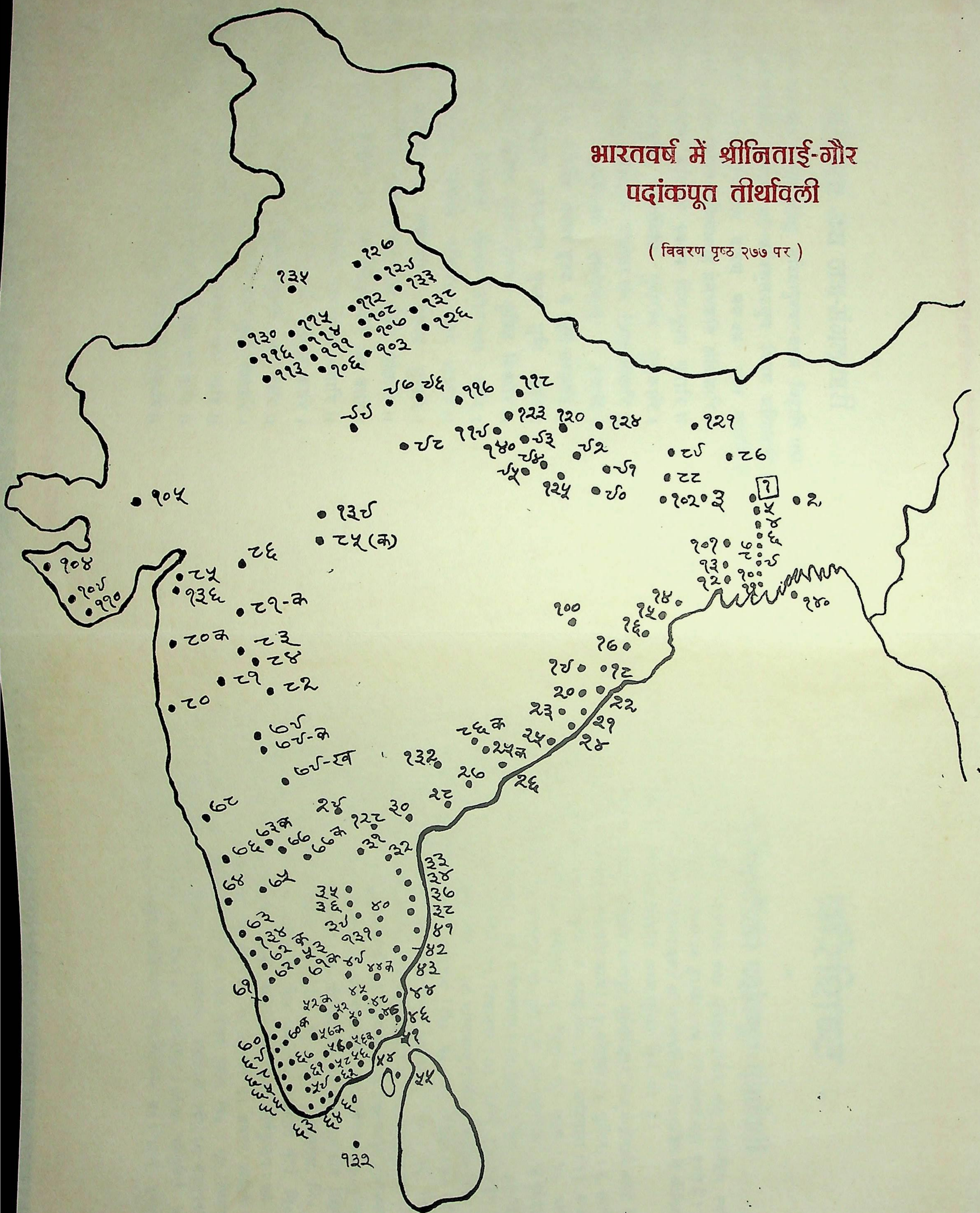
# • परिशिष्ट •

•

## महाप्रभु-गौरांग पदांकपूत तीर्थावली

भारत वर्षमें महाप्रभु श्रीगौरांग तथा श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जिन-जिन स्थानोंपर पधारे, वे स्थान सब तीर्थ तुल्य परम पावन हो गये। उन का उल्लेख यहां करते हैं। संलग्न मानचित्रमें संख्या देखकर स्थानकी सूचना प्राप्त की जा सकती है। नि०-संकेत से श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा ब-संकेत से श्रीबलदेव-पदांकपूत स्थान सूचित किये गये हैं।

१. श्रीधाम नवद्वीप [ अन्तर्द्वीप, मायापुर, सुवर्णविहार, गोद्रुम-द्वीपादि प्रदेश ] नि०। २. पद्मावती [यशोहर जिलान्तर्गत तालखड़ि आदि]। ३. कोटाया। ४. फुलिया। ५. शांतिपुर। ६. यशोड़ा। ७. कुमारहट्ट। ८. पाणिहाटि। ९. वराह नगर। १०. आटिसारा। ११. छत्रभोग। १२. पिछलदा। १३. तमलुक। १४. जलेश्वर। १५. रेमुणा। १६. भद्रक। १७. याजपुर। १८. कटक। १९. भुवनेश्वर। २०. कमलपुर। २१. पुरी [इन सब स्थानों पर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु भी पधारे थे] २२. कोणारक। २३. आलालनाथ। २४. कूर्माचल, नि०। २५. सिंहाचल [जियड़ नृसिंह] नि०। २५-क गोदावरी। २६. विद्यानगर। २७. गौतमी गंगा, कभुर गोष्पद घाट। २८. पाना नृसिंह। मंगल गिरि ]। २९. मल्लिकार्जुन तीर्थ [ श्रीशैल ] नि० ब०। ३०. अहोबिलम्। ३१. पंचाप्सरातीर्थ [ फलगुतीर्थ ] नि० ब०। ३२. सिद्धबट। ३३. व्यंकटाद्रि नि० ब०। ३४. त्रिकाल-हस्ती। ३५. तिरुमलयम् [ देवस्थान ] नि०। ३६. तिरुपति। ३७. शिवकाञ्ची [कञ्जिभेराम्] नि० ब०। ३८. स्कन्ध क्षेत्र, नि०। ३९. विष्णुकाञ्ची [त्रिमठ] नि० ब०। ४०. पक्षितीर्थ। ४१. वृद्ध कोलतीर्थ। ४२. वृद्धकाशी। ४३. चिदाम्बरम् [पीताम्बरम]। ४४. शियाली। ४४-क. कावेरी, नि० ब०। ४५. गोसमाज तीर्थ। ४६. वेदावन। ४७. कुम्भकोरम [काम-कोष्ठी] नि० ब०। ४८. पापनाशन। ४९. श्रीरंगम्, नि० ब०। ५०. ताञ्जोर [शिवक्षेत्र] ५१. दुर्वशनम्। ५२. मदुरा [ दक्षिण मथुरा ] नि० ब०। ५२-क. कृतमाला, नि० ब०। ५३- ऋषभ-पर्वत, नि० ब०। ५४. रामेश्वरम्, नि० ब०। ५५. धनुकोटि तीर्थ, नि० ब०। ५६. तिलकाञ्ची। ५७. आमलितला ५७-क. मल्लार देश। ५८. श्रीवैकुण्ठम्। ५९. महेन्द्र शैल, नि० ब०। ५९-क. ताम्रपर्णी, नि० ब०। ६०. नय तिरुपति, ६१. तमाल कार्तिक तीर्थ। ६२. वेतापनि। ६३. कुमारिका, नि० ब०। ६४. मलय पर्वत, नि०। ६५. चियड़तला, ६६. गजेन्द्रमोक्षण तीर्थ। ६७. पानागड़ि। ६८. तिरुवत्तर [पयस्विनी नदी] ६९. अनंतपद्मनाभ। ७०. जनार्दन। ७०-क. पयोञ्ची, नि० ब०। ७१. चामतापुर। ७१-क. फलगुतीर्थ, फाल्गुन वा अनन्तपुर, नि० ब०। ७२. त्रितकूप [दाक्षिणात्य गुजरात] नि० ब०। ७२-क. पञ्चाप्सरा



( विवरण पृष्ठ २७७ पर )

तीर्थ नि० ब० । ७३. मत्स्य तीर्थ, नि० । ७३-क. तुंगभद्रा, ७४. उडूपी । ७५. शृंगेरी नि० । ७६. गोकर्ण, नि० ब० । ७७ ऋष्यमूक पर्वत, नि० ब० । ७७-क. दण्डकारण्य, पम्पा सरोवर, नि० ब० । ७८. कोलापुर । ७९. पाण्डरपुर । ७ क. भीमा; नि० ब० । ७९-ख. कृष्णवेण्वा, नि० ब० । ८०. द्वैपायनो ब० । ८० क. तापी नि० ब० । ८१. सुपरिक तीर्थ नि० ब० । ८१-क. नर्मदा, नि० ब० । ८२. कुशावर्त्त गिरि, ८३. नासिक [पञ्चवटी] ८४. ब्रह्मगिरि । ८५. धनुस्तीर्थ नि० ब० । ८५-क. निर्विन्ध्या, नि० ब०, ८६. माहिष्मती पुर, नि० ब० । ८६-क. सप्त गोदावरी, नि० ब०, ८७. रामकेलि नि० । ८८. मन्दार पर्वत ८९. कानाईनाट शाला, नि० ९०. गया, नि० ब० । ९१. राजगिरि, ९२. पुन्पुना तीर्थ, ९३. काशी, नि० । ९४. प्रयाग, नि० ब० ९५. आड़ाइल । ९६. सोरों क्षेत्र । ९७. मथुरा, नि० ब० । ९८. रेणुका । ९९. ब्रजमण्डल (गोवर्धन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, वृन्दावन, शेषशायो आदि) नि० ब० । १००. झारिखण्ड [छोट नागपुर आंचल] [श्रीनाभाकृत भक्तमाल मतानुसार श्रीमन्महाप्रभु कुरुक्षेत्र भी पधारे थे । थानेश्वरी-जगन्नाथ प्रसंग आलोच्य है]

### श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु तीर्थ यात्रा-स्थान

(१०१) वक्रेश्वर (१०२) वैद्यनाथ, (१०३) हस्तिनापुर, ब० । (१०४) द्वारका, ब०, (१०५) सिद्धपुर (गुजरात) (१०६) कुरुक्षेत्र, ब० (१०७) पृथूदक, ब० (१०८) विन्दु सरोवर (गुजरात) (१०९) प्रभास, ब०, (११०) सुदर्शन तीर्थ, ब०, (१११) त्रितकूप (सरस्वती तीरवर्त्ती) ब० (११२) विशाला, ब० (११३) ब्रह्मतीर्थ (कन्यातोर्थ एवं सोमतीर्थके मध्यवर्त्ती) ब० (११४) चक्रतीर्थ ब०, (११५) प्रतिस्रोता, ब०; (११६) प्राची सरस्वती, ब० (११७) नैमिषारण्य, ब, (११८) अयोध्या (११९) शृंगबेरपुर (१२०) सरयू ब० (१२१) कौशिकी, ब०, (१२२) पुलस्ताश्रम (शालिग्राम) (१२३) गोमती, ब०, (१२४) गण्डकी, ब०, (१२५) शोणनद, ब० (१२६) हरिद्वार (१२७) विपाशा, ब० (१२८) हरिक्षेत्र, (१२९) उत्तरा यमुना, (१३०) व्यासाश्रम [शम्याप्रास], (१३१) बौद्धालय (वृद्ध-काशी-निकटवर्त्ती) (१३२) दक्षिण सागर, ब० (१३३) बदरिकाश्रम, (१३४) केरल [त्रिवांकुर एवं कोचीन राज्य], (१३५) त्रिगर्त (१३६) मल्लतीर्थ, [मनुतीर्थ] (१३७) विजयनगर, (१३८) मायापुरी, (१३९) अवन्ती-उज्जयिनी, (१४०) गंगासागर, ब० ।



[ पञ्जाब, सिन्ध, राजस्थान, बलोचिस्तान एवं अफगानिस्तानमें श्रीमन्महाप्रभु गौराँगके तथा श्रीमन्नित्यानन्दप्रभुके कृपापात्र-आचार्योंने जाकर प्रभुके भक्तिमतका विपुल प्रचार-प्रसार किया ]

# श्रीगौड़ीय वैष्णव-साहित्य



महाप्रभु श्रीगौरांगके आविर्भावके बाद उनके प्रिय-पार्षदों षड़ गोस्वामिवृन्द तथा अनुयायी कृपापात्र अनेक भक्तों द्वारा श्रीश्रीराधाकृष्ण तथा श्रीगौरकृष्ण सम्बन्धी सर्वांगपूर्ण विपुल भक्ति-साहित्य सृजन हुआ, जो भक्ति-साहित्यका मुकुटमणि है। संस्कृत एवं बंगला तथा हिन्दी भाषामें रचने वालोंकी संख्या 'चैतन्यमत और व्रज साहित्य'[1] में संवत् २०१९ (सन् १९६२) तक ५६६ बताई गयी है और उनके द्वारा तथा अन्यान्य बंगाली महानुभावों द्वारा रचित ग्रन्थोंकी संख्या ७२०[2] श्रीगौड़ीय वैष्णव-अभिधान (तृतीय) खण्डमें गिनायी गयी है। यह ग्रन्थ संख्या थी संवत् २०14 (सन् १९५७) तक। गत २८-३० वर्षोंमें (सन् १९८४ तक) संस्कृत, बंगलामें इस सम्प्रदायका कितना और साहित्य प्रकाशित हुआ और व्रजभाषा तथा हिन्दीमें अब तक कितना साहित्य सृजन हुआ, उसका अनुमान लगाना सहज बात नहीं है। अत: यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि श्रीगौड़ीय वैष्णवों द्वारा जितना भक्ति-साहित्य सृजन हुआ है, उतना और किसी भी वैष्णव-सम्प्रदायमें नहीं हुआ। दिग्दर्शनार्थ प्रमुख महानुभावोंकी कुछ एक संस्कृत-बंगला भाषा प्रमुख रचनाओंके नाममात्र यहां उल्लेख किये जाते हैं—

**१. श्रीचैतन्य महाप्रभु**—(स्वयं) १. शिक्षाष्टक, २. कृष्णप्रेमामृत स्तोत्र, ३ युगल-परिहार स्तोत्र, ४. राधारस-मंजरी, ५. राधिकाष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र, ६. श्रीकृष्ण-स्तोत्र, ७. राधा प्रेमामृत, ८. नित्यानन्दाष्टक, ९. विद्यासागरी, १०- न्यायशास्त्र टीका, ११. कलाप व्याकरण-टिप्पणी, १२. भागवत-टीका।

**२. श्रीनित्यानन्द प्रभु**—श्रीगौरीदास पंडिताष्टक।

**३. श्रीअद्वैत प्रभु**—श्रीगौरांग-प्रत्यंग वर्णन स्तवराज।

**४. श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य**—१, चैतन्य-शतक, २. महाप्रभो शतनाम स्तोत्र, ३. श्रीकृष्णचैतन्य नाम विंशति स्तोत्र, ४. श्रीनित्यानन्दनाम द्वादशक, ५. अद्वैताष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र, ६. श्रीअद्वैताष्टक, ७. श्रीगौरांगाष्टक, ८. शचीतनयाष्टक, ९. गौरांगाष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र, १०. श्रीचैतन्य-शतक।

**५. श्रीस्वरूप दामोदर**—१. कड़चा, २. गदाधराष्टक।

---

१—डॉ. प्रभुदयाल मीतल, साहित्य-वाचस्पति।

२—श्रीहरिदासदास, हरिबोल कुटीर।

६. **श्रीगदाधर पण्डित—**१. प्रेमामृत-स्तोत्र।

७. **श्रीराय रामानन्द—**१, जगन्नाथवल्लभ नाटक, २. छुद्रगीत-प्रबन्ध

८. **श्रीमुरारि गुप्त—**१. कृष्णचैतन्य-चरितामृत (कड़चा)

९. **श्रीसनातन गोस्वामी—**१. बृहद् भागवतामृत एवं उसकी दिग्दर्शिनी टीका, २. कृष्णलीला स्तव, ३, बृहत् वैष्णवतोषणी (भागवत टीका), ४, श्रीहरिभक्तिविलास एवं उसकी टीका, ५. सक्षिप्त हरिनामामृत व्याकरण, ६. लघु हरिभक्ति विलास, ७. तात्पर्य दीपिका (मेघदूत-टीका) ८. रसमय कलिका, ९. गोपाल पूजा। १०. दशम चरित।

**१०. श्रीरूप गोस्वामी** १. भक्तिरसामृतसिन्धु, २. उज्ज्वलनीलमणि, ३. विदग्ध-माधव नाटक, ४. ललित माधव नाटक, ५. दानकेलि कौमुदी, ६. लघु भागवतामृत, ७. पद्यावली, ८. मथुरा-महिमा, ९. नाटक-चन्द्रिका, १०. कृष्णाभिषेक, ११. हंसदूत, १२. उद्धव सन्देश, १३. राधाकृष्णगणोद्देश दीपिका (बृहत् एवं लघु) १४. निकुञ्ज रहस्य स्तव, १५. स्मरणमंगल स्तोत्र, १६. कृणजन्मतिथि पूजाविधि, १७. सामान्यविरुदावली लक्षण, १८. प्रयुक्ताख्यात मञ्जरी, १९. महाप्रभोरष्टक, २०. कृष्णचैतन्य दिव्य सहस्रनाम स्तोत्र, २१. शचीसुताष्टक, २२. स्तवमाला।

**११. श्रीरघुनाथदास गोस्वामी—**१. मुक्ता - चरित, २. दानकेलि चिन्तामणि, ३. स्तवावली।

**१२. श्रीजीव गोस्वामी—**१. गोपालचम्पू (पूर्व-उत्तर), २. हरिनामामृत व्याकरण, ३. बृहत् क्रमसन्दर्भ (भागवत-टीका) ४. लघु क्रमसन्दर्भ, ५. लघु वैष्णव तोषिणी, ६. भागवत सन्दर्भ (षड्-सन्दर्भ) ७. संकल्प कल्पद्रुम ८. सर्वसंवादिनी, ९. माधव महोत्सव, १०. राधा-कृष्णार्चन-दीपिका, ११. गोपाल विरुदावली, १२. रसामृत शेष, १३. अग्नि पुराणस्थ गायत्री-व्याख्या, १४. ब्रह्मसंहिता-टीका, १५. सूत्र मालिका, १६. धातु संग्रह, १७. योगसार स्तव, १८. श्रीकृष्णपदचिह्न समाहार, १९. राधिकापदचिह्न समाहुति, २०. भक्तिरसामृतसिन्धु टीका (दुर्गमसंगमनी) २१. उज्ज्वलनीलमणिकी टीका २२. हरिनाम व्याख्या, २३. युगलाष्टक, २४. उपासना तत्त्व, २५. अनर्पित चरी-श्लोक टीका, २६. स्वर्ण टीका, २७- जाह्नवाष्टक।

**१३. कवि श्रीकर्णपूर गोस्वामी—**१. आनन्दवृन्दावनचम्पू, २. कृष्णाह्निक कौमुदी, ३. चैतन्यचरितामृत महाकाव्य, ४. गौरगुणोद्देश दीपिका, ५ अलंकार-कौस्तुभ, ६. आर्या शतक, ७. चैतन्यामृत व्याकरण, ८. श्रीकृष्णचन्द्र सहस्रनाम स्तोत्र, ९. पारिजात-हरण महा-काव्य, १०. दशम स्कन्ध-टीका, ११. चैतन्यचन्द्रोदय।

**१४. श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती—**१. श्रीराधारससुधानिधि, २. चैतन्यचन्द्रामृत, ३. वृन्दावन महिमामृत (१०० शतक) ४. संगीत माधव, ५. आश्चर्य रासप्रबन्ध, ६. गीतगोविन्द-टीका, ७. वेदस्तुति टीका, ८. नवद्वीप शतक, ९. काम गायत्री व्याख्या, १०. गौरांग सुधाकर चित्राष्टक, ११. श्रीनित्यानन्द स्तवराज।

**१५. गो० श्रीकृष्णदास कविराज**—१. गोविन्द लीलामृत महाकाव्य २. चैतन्यचरितामृत ३. कृष्णार्चन दीपिका टीका ४. कृष्णकर्णामृत-टीका सारंगरंगदा ५. स्वरूप वर्णन ६. गुरुवैष्णवाष्टक ७. परिणामार्थ दीपिका ८. सिद्धनाम।

**१६. श्रीनारायण भट्ट गोस्वामी**—१. भक्तिरस तरङ्गिणी २. ब्रज भक्तिविलास ३. ब्रजोत्सव चन्द्रिका ४. ब्रजोत्सवाह्लादिनी ५. ब्रज प्रदीपिका ६. ब्रज महोदधि ७. बृहत् ब्रज-गुणोत्सव ८. ब्रजप्रकाश ९. भक्ति विवेक १० साधन दीपिका ११. भक्त-भूषण सन्दर्भ १२. रसिकाह्लादिनी (भागवत टीका) १३. धर्म प्रवर्तिनी १४. लाड़िलेयाष्टक, १५. प्रेमांकुर नाटक, १६. सिद्धान्त चूड़ामणि १७. नीति श्लोकानि १८. ब्रजरत्न दीपिका १९. भक्ति रहस्य २०. धर्म प्रबोधिनी २१. राधाविनोद काव्य-टीका।

**१७. श्रीरामरायजी**—१. गौरविनोदिनी वृत्ति २. गौरप्रेम स्तवराज ३. नित्यानन्द भाष्य।

**१८. श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती**—१. भक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दु २. उज्ज्वल नीलमणि-किरण ३. बृहत्भागवतामृतकणा ४. रागवर्त्म चन्द्रिका ५. माधुर्य कादम्बिनी ६. ऐश्वर्य-कादम्बिनी ७. कृष्ण-भावनामृत महाकाव्य ८. सुरत कथामृत ९. प्रेम संपुट १०. ब्रजरीति चिन्तामणि ११. चमत्कार चन्द्रिका, १२. सारार्थदर्शिनी भागवत टीका १३. विदग्धमाधव-विवृति १४. ललितमाधव टिप्पणी १५. उज्ज्वलनीलमणि टीका १६. स्तवमाला-टीका १७. निकुञ्ज-केलि-विरुदावली १८. स्तवामृत लहरी १९. हंसदूत टीका २०. आनन्द-वृन्दावन चम्पू टीका (सुखवर्तिनी) २१. गोपालतापिनी विवृति २२. प्रेमभक्ति चन्द्रिका-टीका २३. मंत्रार्थ दीपिका २४. साध्यसाधन-कौमुदी २५. हरिनामार्थ दीपिका २६. महाप्रभु अष्टकालीय स्मरण मंगल स्तोत्र २७. गौरगुणोद्देश चन्द्रिका २८. गौरांगगण स्वरूप-तत्त्व चन्द्रिका २९. ब्रह्मसंहिता-टीका ३०. भक्तिरसामृतसिन्धु टीका (भक्तिसार प्रदर्शिनी) ३१. दानकेलिकौमुदी टीका ३२. अलंकार-कौस्तुभ-टीका ३३. चैतन्यचरितामृत-टीका ३४. सारार्थवर्षिणी गीता-टीका ३५. चैतन्यरसायन ३६. गौरगण चन्द्रिका एवं ३७. स्मरण मंगल।

**१९. श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण**—१. ब्रह्मसूत्र गोविन्दभाष्य २. सिद्धान्तरत्न (भाष्य-पीठकम्) ३. प्रमेयरत्नावली ४. काव्यकौस्तुभ ५. साहित्य कौमुदी ६. वेदान्तस्यमंतक ७. सिद्धान्त दर्पण ८. ईशावास्योपनिषद् भाष्य ९. गीता-भूषणभाष्य १०. गोपालतापिनी-भाष्य ११. भागवत-टीका (वैष्णवानन्दिनी) १२. नित्यानन्द वंश परिचय भाष्य १३. लघुभागवतामृत टिप्पणी (सारंगरंगदा) १४. तत्त्वसन्दर्भ-टीका १५. नाटक चन्द्रिका टीका १६. स्तवमाला विभूषण-भाष्य १७. छन्द कौस्तुभ-भाष्य १८. श्यामानन्द शतक-टीका १९. चन्द्रालोक-टीका २०. साहित्यकौमुदी वृति २१. गोविन्दभाष्य-टीका २२. सिद्धान्तरत्न टीका २३. विष्णुसहस्र नामभाष्य (नामार्थसुधा) २४. कांति माला २५. कृष्णभावनामृत-टीका २६. स्तवावली-काशिका २७. सदानन्द विधायिनी टीका २८. बालतोषणी २९. संशयशातनी ३०. गोपालचम्पू टीका ( शब्दार्थ बोधिका ) ३१.

पद्यावली टीका (रसिकरंगदा) ३२. व्याकरण कौमुदी ३३. पाद-कौस्तुभ ३४. ऐश्वर्य कादम्विनी ३५. दशोपनिषदोंके भाष्य ३६. साहित्यकौमुदी-टीका वृति ३७. नामार्थ सुधा।

**२०. श्रीहरिदास गोस्वामी**—१. महाप्रभु नवद्वीप-लीला २. महाप्रभु नीलाचल लीला ३. श्रीविष्णुप्रिया-चरित ४. श्रीनिताईगौर-विग्रहलीला काहिनी ५. बांगलार ठाकुर श्रीगौरांग ६. गौरविष्णुप्रिया अष्टकालीय लीला ७. विष्णुप्रिया विलाप गीतो ८. श्रीलक्ष्मीप्रिया चरित ९. श्रीगौरगीतिका १०. श्रीविष्णुप्रिया नाटक ११. श्रीविश्वरूप चरित १२. निताईगौर नाम माहात्म्य १३. वैष्णव महिमा गीत चिन्तामणि १४. श्रीधामवृन्दावनेर पत्र १५. श्रीमुरारि गुप्त पूजित निताई विग्रहरे लीला काहिनी १६. प्राचीन पदावली व्याख्या १७. अद्वैत गृहिणी सीता चरित्र १८. नवद्वीपरस १९. शचीमाता चरित्र २०. जगद्गुरु श्रीगौरांग २१. महाप्रभु-उपदेश २२. गौरांग कथामृत २३. गौरविष्णुप्रिया-युगल गीती २४. रामचन्द्र कविराज २५. नामब्रह्माचार्य हरिदास ठाकुर २६. श्रीविष्णुप्रिया मंगल २७. गजपति प्रतापरुद्र नाटक एवं २८. गम्भीराय श्रीविष्णुप्रिया।

**२१. श्रीहरिदास दास**—१. गौड़ीय वैष्णव इतिहास २. गौड़ीय वैष्णव जीवनी (दो भाग) ३. गौड़ीयवैष्णव तीर्थ ४. गौड़ीयवैष्णव अभिधान तथा मुख्य २३ ग्रन्थोंके अनुवाद।

**२२. श्रीराधागोविन्द नाथ**—१. गौरकरुणा-वैशिष्टच २. गौरतत्त्व, ३. श्रीचैतन्य-चरितामृत-टीका (गौरकृपा तरङ्गिणी) ४. चैतन्यचरितामृत भूमिका ५. परिशिष्ट ६. चैतन्य-भागवत-टीका (निताई करुणा-कल्लोलिनी) ७. चैतन्यभागवत भूमिका ८. परिशिष्ट ९. श्रीमहाप्रभु श्रीगौरांग १०. गौड़ीयवैष्णव दर्शन (५ खण्ड) ११. श्रीमद्भागवत-भूमिका १२. श्रीमद्-भागवतका प्रथम स्कन्ध अन्वय-अर्थ टीका सहित १३. श्रीभागवत द्वितीय स्कन्ध। (दशम स्कन्धके ३०वें अध्यायका सम्पादन करते हुए नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गये)

---

**हिन्दी भाषामें गौड़ीयवैष्णव साहित्यके**

## कुछ प्रमुख प्रस्तोता

१—बाबा श्रीकृष्णदासजी (कुसुम सरोवर)
२—श्रीरामदासजी शास्त्री
३—श्रीवनमालीदासजी शास्त्री
४—श्रीहरिदासजी शास्त्री
५—श्रीब्रजभूषणजी अग्रवाल
६—श्री ए० सी० भक्तिवेदान्त
७—श्रीअवधविहारी लालजी कपूर
८—श्रीश्यामदास (श्यामलाल हकीम)
९—श्रीगणेशदासजी चुघ

---

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित

# भक्ति-साहित्य

☆

**श्रीचैतन्यचरितामृत** ( कविराज कृष्णदास गोस्वामि-कृत )—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके गुण-लीला वर्णन सहित वैष्णवधर्मके मूल सिद्धान्तों तथा दार्शनिक तत्त्वोंका अनुपम सम्पुट। मूल, अनुवाद तथा 'चैतन्यचरणचुम्बिनी' विस्तृत-सरस टीका सहित ग्रन्थकारकी जीवनी, चैतन्यशलाका प्रश्नावली, पारायण विधि, पारिभाषिक शब्द कोश इस संस्करणकी विशेषताएं हैं— पूरा सैट १००) रु०

आदिलीला--३०) रु०, मध्यलीला ४०) रु०, अन्त्यलीला ३०) रु०

**श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तरत्न संग्रह**—श्रीचैतन्यचरितामृतकी भूमिकाके रूपमें वैष्णवधर्मके २७ मूल तत्त्वोंके संक्षिप्त-सार विवेचनके साथ विभिन्न दार्शनिकोंके मतवादोंका परिचय इसमें उपलब्ध है। १५) रु०

**श्रीगोपालचम्पू** ( पूर्व-उत्तर ) श्रीजीव-गोस्वामि-विरचित श्रीश्रीराधाकृष्णकी अप्रकट-प्रकट व्रजलीलाओंका गद्य पद्यात्मक अपूर्व रसमय बृहद् ग्रन्थ, मूल, सहजबोध अनुवाद, श्लोक सूची, विषय सूची युक्त है। पूरा सैट (पूर्व एवं उत्तर) ८०) रु०

**श्रीवृन्दावन महिमामृतम्** ( १७ शतक ) श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित वृन्दावनधाम-निष्ठा, राधा-निष्ठा तथा युगलकिशोरकी निकुञ्ज-माधुरीसे परिपूर्ण। ग्रन्थकारके जीवन वृत्त, उनकी रचनाओंके गवेषणापूर्ण विवेचनके साथ अति उपादेय संकलन है। चार खण्डमें सम्पूर्ण सैट— १६) रु०

**श्रीविदग्धमाधव नाटक**—श्रीरूपगोस्वामि-रचित श्रीश्रीराधाकृष्णका व्रजलीलामय अद्‌भुत नाटक ( केवल हिन्दीमें )— ५) रु०

**श्रीनिताई चाँद** ( सचित्र ) श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके तत्त्वांश, चरितांश, उपासनांश तथा परिकरांश नामक चार खण्डोंमें ६० भक्तोंके मनोहारी चरित्रोंसे भरपूर। १०) रु०

**श्रीचैतन्य प्रेमसागर**—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी आद्योपान्त लीलाओंका परम सरस सहज-बोध प्रामाणिक ग्रन्थ, जो सात खण्डोंमें पूरा हुआ है। ३६) रु०

**श्रीनरोत्तम-चरित्र**—श्रीनरोत्तमदास ठाकुरका असाधारण जीवन परिचय। २) ५०

**श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका** ( सानुवाद ) श्रीनरोत्तमदास ठाकुर-रचित प्रेमभक्ति प्रदायिनी संजीविनी बूटी तुल्य । २) रु०

**श्रीनरोत्तम प्रार्थना**—श्रीनरोत्तमदास ठाकुर-कृत जीवस्वरूपानुबन्धिनी श्रीयुगलसेवा याचनात्मक करुण-प्रार्थना २) रु०

**श्रीकृष्ण-कर्णामृत** – लीलाशुक विल्वमंगल-कृत श्रीकृष्ण कर्णाकर्षक मधुराति-मधुर स्तवगान, मूल-अनुवाद एवं ग्रन्थकारके विस्तृत जीवन चरित्र सहित ४) रु०

**श्रीगौरतत्त्व**—श्रीगौरांग महाप्रभुका चरितांश एवं तत्त्वांश समझनेका परमोपयोगी संकलन ३)५० रु०

**जीवतत्त्व**—जीवके स्वरूप, आयतनादिका गवेषणापूर्ण शास्त्रीय दार्शनिक विवेचन १)७५

**श्रीकृष्ण-भक्ति**—भक्तिके स्वरूप, प्रकार भेदादिका दार्शनिक विवेचन ४) रु०

**जीव-पुरुषार्थ**—धर्म-अर्थ काम-मोक्ष तथा प्रेम-पुरुषार्थोंकी स्वरूप-व्याख्या एवं प्राप्तव्य साध्य । ३) रु०

**भक्तभाव संग्रह**—प्राचीन अर्वाचीन भक्तकवियोंके, रासमण्डलियोंके पद-रसिया, सवैया-कवित्त एवं उर्दू-कवियोंकी गजलोंका, वर्षोत्सव और अष्टयाम लीला-पदोंका अनूठा संग्रह । ४) रु०

**श्रीव्रजविरही सन्त**—विगत ५०-१०० वर्षोंमें होने वाले गिने-चुने व्रजके सिद्ध-सन्तोंकी उज्ज्वल जीवनियां । २) रु०

**महत्कृपा-तत्त्व**—भगवत्-प्राप्तिके एकमात्र मूलकारण महत्कृपाका अद्भुत निरूपण । १)

**गौरांग-करुणा वैशिष्टच**—करुणावतार श्रीगौरांगकी करुणाके असाधारण एवं स्वतन्त्र उल्लास-विकासका विवेचन महाप्रभुकी अनेक लीलाओंके माध्यम से । ५) रु०

**श्रीहरिनाम ( मासिक पत्र )** वास्तविक परमार्थ पथका प्रदर्शक, विशुद्ध प्रेम-भक्तिका निरूपक, श्रीभगवत्-भागवतोंके नाम-गुण-लीलारसका प्रवाहक, भक्ति-सिद्धान्त एवं दार्शनिक तत्त्वोंका विवेचक तथा शाश्वत सुख-समृद्धि-शान्तिका दायक यह मासिक पत्र 'श्रीहरिनाम' विगत १५ वर्षोंमे प्रकाशित हो रहा है। वैष्णवाचरण, मानवता, मैत्रीके उपदेशों द्वारा सामाजिक संकीर्णताको दूरकर पंचम पुरुषार्थ 'प्रेम' संचार-प्रसार करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

वार्षिक शुल्क १२)रु०
आजीवन १५१) रु०

# व्रजगौरव-प्रकाशनका अनुपम साहित्य

**श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु**--श्रीरूपगोस्वामि-रचित-मूल, श्रीजीवगोस्वामी तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकी दो संस्कृत टीकाओं तथा 'हरिकृपाबोधिनी' सहजबोध हिन्दी टीका सहित। सरल अनुवाद, श्लोक एवं विषय सूचीके साथ हिन्दी-जगत्‌का प्रथम संस्करण। ६०) रु०

**श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दु**--श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती रचित, अनुवाद तथा 'विश्वकृपादर्शिनी' विस्तृत सरस हिन्दी टीका सहित।
१०) रु०

**श्रीतत्त्वसन्दर्भः**--श्रीजीवगोस्वामि-रचित मूल, अनुवाद तथा 'गोपालतोषणी' सरल विस्तृत हिन्दी टीका सहित, ( पहला सन्दर्भ )।
२५) रु०

**श्रीभक्तिसन्दर्भः**--श्रीजीवगोस्वामि-रचित मूल, अनुवाद तथा 'गोपालतोषणी' विस्तृत हिन्दी टीका सहित। परम साध्य भक्ति-अभिधेय तत्त्वका शास्त्रीय दार्शनिक विवेचन। ( चौथा सन्दर्भ )-
६०) रु०

**श्रीमाधुर्य कादम्बिनी**--श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति रचित मूल, सरस अनुवाद तथा विश्वोल्लासिनी विस्तृत हिन्दी टीका सहित। साधकमें भक्तिस्तरोंका क्रम, भगवत् प्राप्ति पर्यन्त उसकी मनोवृतियोंका सजीव चित्रण।
१५) रु०

**संस्कृत काव्यशास्त्रे भक्तिरस विवेचनम्** ( केवल संस्कृतमें ) भक्तिरसका शोधग्रन्थ, भक्ति-विषयक सर्वांगीण अध्ययन।
२५) रु०

**श्रीगौड़ीय गोस्वामिवृन्द**--सर्वश्री-रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, जीव, गोपाल भट्ट एवं रघुनाथदास-गौड़ीयगोस्वामि रत्नोंके शोधपूर्ण चरित्र एवं रचनाएं।
६) रु०

**षड्‌गोस्वामी तथा व्रजमण्डलके सिद्ध सन्त**--गौड़ीय षड्‌गोस्वामियों सहित व्रजमण्डल तथा नवद्वीप मण्डलके सिद्ध सन्तोंके भक्ति-आदर्श चरित्रोंका हिन्दीमें पहला संकलन।
१५) रु०

**श्रीदम्पति-विलास**--श्रीश्रीराधाकृष्णकी व्रजलीलाओं, छद्मादि मधुरात्मक निकुञ्ज लीलाओंका विविध रागोंमें पद्यात्मक वर्णन, जिनका अनुकरण व्रजकी श्रेष्ठ रास-मंडलियां करती हैं।
१५) रु०

**शिक्षामृत तरंगिणी**--सदाचारात्मक, नैतिक शिक्षापरक रसीले कवित्तोंका पद्यात्मक संकलन।
५) रु०

**श्रीभगवत् कर-पदयुगल चिह्न**--( सचित्र ) श्रीमन्महाप्रभु, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु तथा श्रीश्रीराधाकृष्णके करयुगल तथा पद-युगलके चिह्नोंका स्थानों सहित विवरण जो भक्तोंके ध्यानका प्राण है। श्रीराधाकृष्ण-गुणावली सहित
४) रु०

**श्रीगौरांग-लीला**—श्रीमन्महाप्रभुकी कुछ एक विशिष्ट लीलाओंका संक्षिप्त परिचय। १) रु०

**PREMA BHAKTI**–(अंग्रेजी) स्वामी श्रीभक्तिहृदय वन महाराज द्वारा लिखित प्रेम-भक्ति-का निरूपण। ५) रु०

**श्रीश्रीराधा-कृष्ण कृपाकटाक्ष स्तोत्र**—सरस अनुवाद सहित नित्य पाठ्य-पुस्तिका। १) रु०

## भावी प्रकाशन

**श्रीमद्‌भगवद्‌गीता**—मूल, एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपादकी 'सारार्थवर्षिणी'-टीकाके सहजबोध हिन्दी अनुवादके साथ।

**श्रीभगवत्-सन्दर्भ** ( सटीक ) श्रीजीवगोस्वामि-रचित षड्सन्दर्भान्तर्गत दूसरा सन्दर्भ।

**गम्भीरामें श्रीविष्णुप्रिया**—गोस्वामी श्रीहरिदास-कृत बंगला-संस्करणका हिन्दी अनुवाद। गौरांग शून्य शचीगृहरूप गम्भीरामें श्रीविष्णुप्रियाजीके हृदय-विदारक विरह वेदना-पूर्ण करुण-जीवनकी सजीव झांकी। प्राचीन पदकर्ताओंके असंख्य पदोंका टिप्पणी सहित अभूतपूर्व संकलन।

**श्रीचैतन्य-भागवत**--श्रीवृन्दावनदास ठाकुर रचित मूल, अनुवाद तथा विस्तृत सरस टीका सहित प्रथम संस्करण।

**श्रीबृहद् भागवतामृतम्**--श्रीसनातन-गोस्वामिपादकी अनुपम रचना। उनकी संस्कृत टीका तथा सहजबोध हिन्दी टीका सहित। ( दूसरा-संस्करण )

**श्रीचैतन्य-भक्तमाल**--श्रीमन्महाप्रभुके समकालीय समस्त प्रिय भक्तोंकी अद्‌भुत जीवनियों-का पहला हिन्दी संस्करण। भक्ति-आदर्श, उपदेशोंके साथ श्रीगौरांगकी करुणाका प्रकाशक अद्‌भुत नवीन संकलन।

**श्रीविलाप-कुसुमांजली**—श्रीरघुनाथदास गोस्वामि-रचित मूल, सरस अनुवाद सहित-नित्य पाठ्य-पुस्तिका।

**साध्यसाधन निर्णय**--श्रीमन्महाप्रभु राय रामानन्द-संवादमें साध्य-साधनोंका शास्त्रीय विवेचन ( दूसरा संस्करण )

**नित्यपाठ-गुटका**— नामापराध एवं उनका खण्डन उपाय। शिक्षाष्टक (मूल, दोहा-चौपाईमें पद्यात्मक अनुवाद सहित) मन-शिक्षा, स्वनियम दशकम्, उपदेशामृत आदि गोस्वामि-वृन्द श्रीमुख वाणियोंका संग्रह।

**श्रीब्रह्मसंहिता** - ( पंचम अध्याय ) मूल, अनुवाद तथा परिचय सहित। श्रीकृष्णधाम-स्वरूपका प्रामाणिक ग्रन्थरतन।

**श्रीकिशोरी करुणा-कटाक्ष**—श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी अनेक वृन्दावनीय-निकुञ्ज लीलाओंका विविध रागोंमें पद्यात्मक संकलन। विनयके पद, वर्षोत्सवोंके पदोंका अद्‌भुत निरूपण है, सरस दोहावली सहित।



विशुद्ध उपकरणों से शास्त्रीय ढंग से
एवं ईमानदारी से बनायी हुई औषध
शारीरिक रोगों को नाश करती है,
और निष्कपट एवं निरपराध होकर
श्रीभगवन्नाम ग्रहण करने से असाध्य
संसार रोग निर्मूल हो जाता है.



शुभकामनाओं सहित :

The Gujrat Pharmaceutical & Chemical Works

Manufacturers of

Patent Medicines and Pharmaceutical Preparation

H. C. SHAH
B. Sc. (Hons)
B. Sc. (Tech)
M. S. (U.S A.)

Near Chamunda Mata
Asarwa
AHMEDABAD—380016
Phone : 385123, 386335




# Light Weight Aggregate Private Limited

Civil Engineering Contractors

&

EXPORTERS



59-Apollo street BOMBAY-400 023

TELEPHONE—259411—2

CABLE : AGGREGATE  TELEX : 11–4595 LITE IN



Branches

DELHI • VISHAKHAPATTANAM • HIDKAL DAM

※ जयगौर ※

कलि नामसंकीर्त्तन परम उपाय ॥

एक कृष्णनाम करे सर्वपाप नाश ।

प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश ॥

—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ।

हर प्रकार की फैन्सी कोटा-साड़ियों के

निर्माता व विक्रेता

**मै. राधिका साड़ी एम्पोरियम**

भेरूगली रामपुरा कोटा (राज) ३२४००६

---

कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार ।

नाम हैते हय सर्व जगत-निस्तार ॥

श्रीचैतन्यचरितामृत ॥

श्रीमहाप्रभु पंचशताब्दी अवसर पर

शुभकामनाओं के साथ –

**M/s CHAKULIA STEEL & METAL WORKS (P) Ltd.**

Post. Chakulia Distt. Singhbhum (Bihar)

Gram : Bharat Phone 20 & 53

With Best Compliments from :



# ORIENT PAPER & INDUSTRIES Ltd.

( Regd. Office : Brajrajnagar, Orissa )

Manufacturers of superior Quality Printing—Writing,

Packing—Wrapping Papers and Paper Boards,

MILLS : BRAJRAJNAGAR 768 216 : AMLAI 484 117

With the best Compliments of

# Hercules Hoists Ltd.

manufacturers of

Chain • Pulley Blocks • Electric Hoists
Travelling Trolleys Etc.



Minerva Industrial Estate opp., Ralli Wolf
Lal Bahadur Shastri Marg, Mulund
BOMBAY—400 080

Tel—594367 Gram : INDEF (Mulund-West)

GRAM : HARIKRIPA TELEPHONE NO : OFFICE 384987
384688
PERSONAL 383440
RESI. 4480487
448207

# Harikripa Paper Co.

647, KHADIA CHAR RASTA
NAVA DARWAJA ROAD AHMEDABAD, 380 001.



*Wholesalers*

J. K. PAPER MILLS, RAYAGADA (ORISSA)
ANDHRA PRADESH PAPER MILLS LTD. RAJAHMUNDRY
WEST COAST PAPER MILLS LTD. DANDELI.
STRAW PRODUCTS LTD. BHOPAL.
SHREE VINDHYA PAPER MILLS LTD. BOMBAY.

प्रस्तुत ग्रन्थ

महाप्रभु – श्री गौरांग

का

# यह सुसज्जित रूप

# श्री हरिनाम प्रेस

की

□ दूरदर्शिता, कर्मठता, समयबद्धता तथा

□ अनुभवी कुशल कर्मचारियों द्वारा कार्य सम्पादन

□ स्तरीय साधनों एवं उपकरणों के प्रयोग

से सम्पादित हो सका है।

□

**मुद्रण सम्बन्धी आपकी**

**किसी भी अपेक्षा की पूर्ति के लिए आपकी सेवा में**

**विगत दो दशकों से रत**

**हम**

**आपकी सेवा के स्वागत की प्रतीक्षा में हैं.**

□

**श्रीहरिनामपथ, वृन्दाबन** **फोन : 415**

□

समय पर उचित कार्य हमारी विशेषता • समय पर भुगतान : हमारा आग्रह

# आर्थिक - सहयोग



श्रीमन्महाप्रभु आविर्भाव-पञ्चशती महोत्सव उपलक्ष्य में प्रकाशित प्रस्तुत ग्रन्थरत्न 'महाप्रभु-श्रीगौरांग' के प्रकाशन में निम्नलिखित व्यक्तियों का आर्थिक सहयोग मण्डल को प्राप्त हुआ है। मण्डल इन सज्जनों का हृदय से आभारी है। इनके अर्थ-सहयोग का ही मूर्त्त रूप है- यह ग्रन्थ रत्न।

श्री जयदयाल जी डालमिया, दिल्ली
डा० कृष्णा पुरवार, कानपुर
श्रीमती राधादासी चम्पकमंजरी, आगरा
सेठ श्री नन्दलाल जी, बम्बई
श्री सतीशचन्द्र जी लेखाकार, आगरा
डा० काम्तानाथ जी, आगरा
श्री ईश्वरचन्द्र जी बंसल, दिल्ली
श्री केदारनाथ जी, फरीदावाद
श्री हीरालाल जी अरोड़ा, बम्बई
श्रीनारायणदास जी, मुरादाबाद
डा० अश्विन भाई आर. रवि बीजलपुर
बाबा माधवदास जी, उभाला
श्रीरामनन्दन प्रसाद चौरासिया (श्रीसन्त जी)
श्रीवासुदेव सखाराम कोपर्डेकर पुणे
श्री कन्हैयालाल जी गुप्त, वृन्दावन
श्री काशीप्रसाद जी श्रीवास्तव, जयपुर
श्री जे० एन० शर्मा, दिल्ली
श्री रामजीलाल विजयवर्गीय, जयपुर
श्री रामसिंह जी, बड़ौत

श्रीमन्महाप्रभु के चारु चरणारविन्द में विनम्र प्रार्थना है कि आपके हृदयों में विशुद्ध प्रेमा-भक्ति सदा जाग्रत रहे एवं भगवन्नाम प्रचार-प्रसार के सहयोग में आपकी सद्भावनायें जीव-जगत् का श्रेय सम्पादन करती रहें।

—सम्पादक

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतो,

उदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।

देवा नो यथा सद्भिद् वृधे असन् न;

अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ।।

—ऋग्वेद १.८६.१

हमें (जो भी) विचार आवें सब प्रकार से कल्याणमय हों। उनमें धोखा न हो। उनमें बाधा न हो। वे खुले और स्पष्ट हों। वे उलझे हुए न हों, ताकि हमारे अन्दर दैवी शक्तियाँ जाग पड़ें, जो सदा हमारा साथ देने वाली होकर हमारी रक्षा और वृद्धि करती रहें!




## डालमिया सिमेण्ट (भारत) लिमिटेड

डालमियापुरम् – ६२१६५१ (तमिलनाडु)



मुख्य कार्यालय :

हंसालय (११वीं/१२वीं मंजिल) १५–बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली



## राकफोर्ट सिमेण्ट के निर्माता